ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क १६

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति मे आयोजित]

[श्री श्यामार्यवाचक-संकलित चतुर्थ उपांग]

प्रज्ञापनासूत्र

[प्रथम खण्ड : पद १ से ९]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, टिप्पणयुक्त]

☐

प्रेरणा

उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

☐

आद्य संयोजक—प्रधान सम्पादक

स्व० युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

☐

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक

श्री ज्ञानमुनिजी महाराज

[स्व. जैनधर्मदिवाकर, आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के सुशिष्य]

☐

सह-सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

☐

प्रकाशक

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क १६

☐ निर्देशन

महासती श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

☐ सम्पादक मण्डल

अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक

मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ द्वितीय संस्करण

वीरनिर्वाण संवत् २५१९
विक्रम संवत् २०५०, भाद्रपद (प्रथम)
अगस्त, १९९३

☐ प्रकाशक

श्री आगम प्रकाशन समिति
ब्रजमधुकर-स्मृति-भवन,
पीपलिया बाजार, ब्यावर—३०५९०१ (राजस्थान)

☐ मुद्रक

सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : ९५) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

FOURTH UPĀNGA

PANNAVANĀ SUTTAM

[Part I : Pad 1 to 9]
[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

☐

Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

☐

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

☐

Translator & Annotator
Shri Jnan Muni

☐

Sub-Editor
Shrichand Surana 'Saras'

☐

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 16

☐ **Direction**
Sadhwi Shri Umravkunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji **'Kamal'**
Acharya Shri Devendra Muniji
Shri Ratan Muni

☐ **Promotor**
Munishri Vinayakumar 'Bhima'
Shri Mahendra Muni 'Dinakar'

☐ **Second Edition**
Vir-Nirvana Samvat 2519
Vikram Samvat 2050, Bhadrapad (First)
August, 1993

☐ **Publisher**
Shri Agam Prakashan Samiti,
Brij Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)—305 901

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price : Rs. 95/-**

समर्पण

जिन्होंने
जैनागमों पर हिन्दी भाषा में
टीकाएँ लिखकर
तथा
आगम-सम्पादन की आधुनिक शैली का
प्रथम प्रवर्तन कर
महान् ऐतिहासिक श्रुत-सेवा की,
उन
परमश्रद्धेय आगम-रहस्यविज्ञ
जैनधर्मदिवाकर
श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य

पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज

की पावन स्मृति में
उन्हीं के जन्म-शताब्दी वर्ष के
पावन-प्रसंग पर
सविनय सभक्ति समर्पित

—मधुकर मुनि

[प्रथम संस्करण से]

प्रकाशकीय

सर्वतोभद्र स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म के मानस मे एक विचार समुत्पन्न हुआ था कि अर्थ-गभीर आगमो का शुद्ध मूलपाठ हिन्दी भाषा मे अनुदित एव सम्बन्धित विवेचन सहित सस्करण प्रकाशित हो, जिससे जन साधारण एव जैन सिद्धान्तो के जिज्ञासु जैन वाङ्मय का अध्ययन कर सके।

विचार साकार हुआ। श्री आगम प्रकाशन समिति के माध्यम से आगम ग्रन्थो का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। यथाक्रम जैसे-जैसे ग्रन्थो का प्रकाशन होता गया तो पाठको की सख्या मे अनुमान से भी अधिक वृद्धि हुई। अत प्रथम सस्करण के ग्रन्थो के अनुपलब्ध होते जाने पर भी आगमबत्तीसी के समस्त ग्रथो की माग बढती गई। इसकी पूर्ति के लिये अध्यात्मयोगिनी मालवज्योति साध्वी श्री उमरावकु वरजी म "अर्चना" के निर्देशन मे द्वितीय सस्करण प्रकाशित करने का निर्णय किया।

निर्णय के अनुसार अप्राप्त होते जा रहे ग्रन्थो को प्रकाशित करने का कार्य चालू है। इसी क्रम मे प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम खण्ड का प्रकाशन किया जा रहा है। शेष दो खण्ड एव अन्य ग्रन्थ भी मुद्रणाधीन है।

प्रज्ञापना सूत्र का अनुवाद एव सपादन जैनभूषण प र मुनि श्री ज्ञानमुनिजी म ने किया है। आपने ग्रन्थ के अर्थगभीर अशो को सरल भाषा मे स्पष्ट करके श्रुतसेवा का अपूर्व लाभ लिया है। एतदर्थ समिति उनका अभिनदन करती है।

अत मे समिति की ओर से हम अपने सभी सहयोगियो का हार्दिक आभार मानते हैं।

रतनचन्द मोदी	सायरमल चोरड़िया	अमरचन्द मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामन्त्री	मत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१	श्रीमान्	सागरमलजी बेताला	अध्यक्ष	इन्दौर
२	,,	रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३.	,,	धनराजजी विनायकिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
४	,,	एम० पारसमलजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
५	,,	हुक्मीचन्दजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
६	,,	दुलीचन्दजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
७	,,	जसराजजी पारख	उपाध्यक्ष	दुर्ग
८	,,	जी० सायरमलजी चोरडिया	महामन्त्री	मद्रास
९	,,	अमरचन्दजी मोदी	मन्त्री	ब्यावर
१०.	,,	ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
११.	,,	ज्ञानचन्दजी विनायकिया	सह-मन्त्री	ब्यावर
१२	,,	जवरीलालजी शिशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१३	,,	आर० प्रसन्नचन्द्रजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१४	,,	श्री माणकचन्दजी सचेती	परामर्शदाता	जोधपुर
१५.	,,	एस० सायरमलजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
१६	,,	मोतीचन्दजी चोरडिया	,,	मद्रास
१७	,,	मूलचन्दजी सुराणा	,,	नागौर
१८	,,	तेजराजजी भण्डारी	,,	महामन्दिर
१९	,,	भवरलालजी गोठी	,,	मद्रास
२०	,,	प्रकाशचन्दजी चोपडा	,,	ब्यावर
२१	,,	जतनराजजी मेहता	,,	मेडतासिटी
२२	,,	भवरलालजी श्रीश्रीमाल	,,	दुर्ग
२३	,,	चन्दनमलजी चोरडिया	,,	मद्रास
२४.	,,	सुमेरमलजी मेडतिया	,,	जोधपुर
२५	,,	आसूलालजी बोहरा	,,	महामन्दिर

प्रथम संस्करण के विशिष्ट अर्थ-सहयोगी

श्रीमान् सेठ एस. सायरचंदजी चोरडिया, मद्रास

[जीवन परिचय]

धर्मनिष्ठ समाजसेवी चोरडिया परिवार के कारण प्रसिद्ध नोखा (चादावतो का, जिला नागौर, राजस्थान) आपका जन्मस्थान है। आपका जन्म स. १९८४ वि. आषाढ कृष्णा १३ को स्वर्गीय श्रीमान् सिमरथमलजी चोरडिया की धर्मपत्नी स्व श्रीमती गट्टूबाई की कुक्षि से हुआ। आपका बाल्यकाल ग्राम मे बीता। साधारण शिक्षण के बाद आपकी शिक्षा आगरा मे सम्पन्न हुई और वही अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् रतनचदजी चोरडिया की देखरेख मे व्यापार-व्यवसाय प्रारम्भ किया। अपनी प्रतिभा और कुशलता से व्यापारिक क्षेत्र मे अच्छी प्रतिष्ठा उपार्जित की।

तत्पश्चात आपने स २००८ मे दक्षिण भारत के प्रमुख व्यवसाय-केन्द्र मद्रास मे फाइनेन्स का कार्य प्रारम्भ किया। आज तो वहा के इने-गिने फाइनेन्स व्यवसाइयो मे से आप एक हैं।

आपकी तरह ही धार्मिक सामाजिक कार्यों मे सोत्साह सहयोग देने वाले युवक आपके सुपुत्र श्री किशोरचदजी भी उदीयमान व्यवसायियो मे गणनीय माने जाते हैं।

व्यावसायिक क्षेत्र मे जैसे-जैसे ख्याति फैलती गई, वैसे-वैसे आपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों मे तन-मन-धन से योग देने की कीर्ति भी उपार्जित की है। शुभ कार्यों मे सदैव अर्जित अर्थ को विनियोजित करते रहते हैं। सग्रह नही अपितु सविभाग करने की दृष्टि से मद्रास जैसे महानगर की प्रत्येक जनोपयोगी प्रवृत्ति से आप सबद्ध हैं। अनेक सार्वजनिक संस्थाओ को एक साथ पुष्कल अर्थ प्रदान कर आपने स्थायी बना दिया है।

आप मद्रास एव अन्य स्थानो की जैन सस्थाओ से किसी न किसी रूप मे सबन्धित है। अध्यक्ष, मत्री आदि आदि अधिकारी होने के साथ ऐसी भी सस्थायें हैं, जिनके प्रबन्ध-मडल के सदस्य न होते हुए भी प्रमुख सचालक हैं। कतिपय सस्थाओं के नाम, जिनके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है, इस प्रकार हैं—

- श्री एस एस जैन एज्यूकेशन सोसायटी, मद्रास
- श्री राजस्थानी एसोशियेशन, मद्रास
- श्री राजस्थानी श्वे. स्था. जैन सेवासघ, मद्रास
- श्री वर्धमान सेवासमिति, नोखा
- श्री भगवान् महावीर अहिंसा-प्रचार-सघ
- स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. जैन ट्रस्ट, नोखा

सदैव सत-सतियाजी की सेवा करना भी आपके जीवन का ध्येय है। आपकी धर्मपत्नी भी धर्मश्रद्धा की प्रतिमूर्ति एव तपस्विनी हैं।

आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री रतनचदजी और बादलचदजी भी धार्मिक वृत्ति के हैं। वे भी प्रत्येक सत्कार्य मे अपना सहयोग प्रदान करते हैं।

आपका परिवार स्वामीजी श्री व्रजलालजी म. सा., पूज्य युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म सा 'मधुकर' का अनन्य भक्त है। आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे श्री आगमप्रकाशन समिति को अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ समिति आपकी आभारी है एव अपेक्षा रखती है कि भविष्य मे भी समिति को आपका अपूर्व सहयोग मिलता रहेगा।

मत्री

श्री आगम- प्रकाशन-समिति, ब्यावर

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाग्रो/चिन्तकों ने "ग्रात्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या ग्रात्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ ग्रात्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। ग्रात्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन ग्राज ग्रागम/पिटक/वेद/उपनिषद् ग्रादि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि ग्रात्मा के विकारो—राग-द्वेष ग्रादि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, ग्रौर विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो ग्रात्मा की शक्तिया ज्ञान/सुख/वीर्य ग्रादि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है ग्रौर सर्वज्ञ/ग्राप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"ग्रागम" के नाम से ग्रभिहित होती है। ग्रागम ग्रर्थात् तत्त्वज्ञान, ग्रात्म-ज्ञान तथा ग्राचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/ग्राप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट ग्रतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्मप्रवर्तक/ग्ररिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के ग्रतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "ग्रागम" या शास्त्र का रूप देते हैं ग्रर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "ग्रागम" का रूप धारण करती है। वही ग्रागम ग्रर्थात् जिन-प्रवचन ग्राज हम सब के लिए ग्रात्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत हैं।

"ग्रागम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। ग्ररिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते हे ग्रौर द्वादशाग/ग्राचाराग-सूत्रकृताग ग्रादि के ग्रग-उपाग ग्रादि ग्रनेक भेदोपभेद विकसित हुए है। इस द्वादशागी का ग्रध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए ग्रावश्यक ग्रौर उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवां अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका ग्रध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुत सम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का ग्रध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ग्रोर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी ग्रल्पतम था, तब ग्रागमो/शास्त्रो/को स्मृति के ग्राधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत: इसलिए ग्रागम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया ग्रौर इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक ग्रागमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही ग्राधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव ग्रादि ग्रनेक कारणो से धीरे-धीरे ग्रागमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया ग्रौर स्मृति-दोष से लुप्त होते ग्रागम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का ग्राह्वान किया। सर्व-सम्मति से ग्रागमो को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विछिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इससे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है, जनता मे आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवाये नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ है, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमो– ३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत. परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय. शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिए दुरूह तो है ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्यज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तडप कई वार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा वनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म-दिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथी सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील है। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे है तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्यायें की जा रही है। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम-मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलालजी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये विना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एव प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुवरजी म० की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुवरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व० प० श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुवरजी, महासती श्री झणकारकुवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिहजी लोढा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के अल्पकाल मे ही पन्द्रह आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनि-जनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

आचार्यसम्राट् श्री आत्मारामजी महाराज

[जीवन और साधना की एक संक्षिप्त झांकी]

हजारो जीव प्रतिक्षण जन्म लेते हैं और मनुष्य का शरीर धारण करके इस धरातल पर अवतरित होते रहते हैं, परन्तु, सबकी जयन्तियां नही मनाई जाती। ना ही सबको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। आदर उन्ही को सम्प्राप्त होता है जो अपने लिए नही, समाज के लिए जीते हैं। जन-जीवन के उत्थान, निर्माण एव कल्याण के लिए जो अपनी समस्त जीवन-शक्तिया समर्पित कर देते हैं। वे स्वय जहा आत्म-कल्याण मे जागरूक रहते है, वहा वे दूसरो की हित-साधना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज उन महापुरुषो मे से एक थे जिनका जीवन सदा लोकोपकारी जीवन रहा है। जीवन के ७८ वर्षों तक वे अहिंसा, सयम और तप के दीप जगाते रहे। इनकी जीवन-सरिता जिधर से गुजर गई वही पर एक अद्‌भुत सुषमा छा गई। आज भी उनकी वाणी तथा साहित्य जन-जीवन के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है।

जन्मकाल

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज वि स. १९३९ भादो सुदी द्वादशी को पजाब-प्रान्तीय राहो के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मशारामजी चोपडा के घर पैदा हुए। माताजी का नाम परमेश्वरी देवी था। सोने जैसे सुन्दर लाल को पाकर माता-पिता फूले नही समा रहे थे। पुण्यवान सन्तति भी जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ही प्राप्त हुआ करती है।

सकट को घड़ियां

आचार्य श्री का बचपन बडा ही सकटमय रहा। असातावेदनीय कर्म के प्रहारों ने इन्हें बुरी तरह से परेशान कर दिया था। दो वर्ष की स्वल्प आयु मे आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। आठ वर्ष की आयु मे पिता परलोकवासी हो गए। मात्र एक दादी थी जिसकी देख-रेख में आपका शैशवकाल गुजर रहा था। दो वर्षों के अनन्तर उनका भी देहात हो गया। इस तरह आचार्य देव का बचपन सकटो की भीषणता ने बुरी तरह से आक्रात कर लिया था। कर्म बडे बलवान होते हैं। इनसे कौन बच सकता है?

संयम-साधना की राह पर

माता-पिता और दादी के वियोग ने आचार्य-देव के मानस को ससार से बिल्कुल उपरत कर दिया था। ससार की अनित्यता साकार हो कर आपके सामने नाचने लगी थी। फलत आत्म-साधना और प्रभु-भक्ति का महापथ ही आपको सच्चिदानन्ददायी अनुभव हुआ था। अन्त मे ११ वर्ष की स्वल्प आयु मे आप सम्वत् १९५१ को बनूड मे महामहिम गुरुदेव पूज्य श्री स्वामी शालिगरामजी महाराज के चरणो मे दीक्षित हो गए।

साहित्यसेवा

आपका शास्त्र-स्वाध्याय बडा ही व्यापक और तलस्पर्शी था। जैन शास्त्रो के महासागर मे कौनसा मोती कहा पड़ा है, यह आपके ज्ञान-नेत्रो से ओझल नही था। आपके शास्त्रीय वैदुष्य की विलक्षता के कारण ही जैन समाज ने आपको पजाब सम्प्रदाय के उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपने ६० के लगभग ग्रन्थ लिखे, बडे-बडे शास्त्रो का भाषानुवाद किया। 'तत्त्वार्थसूत्र जैनागम-समन्वय' आप की अपूर्व रचना है। जर्मन, फ्रास, अमरीका तथा कनाडा के विद्वानो ने भी इस रचना का हार्दिक अभिनन्दन किया था। जैन, बौद्ध और वैदिक शास्त्रो के आप अधिकारी विद्वान् थे। आपकी साहित्य-सेवा जैन-जगत् के साहित्य-गगन पर सूर्य की तरह सदा चमचमाती रहेगी।

सहिष्णुता के महासागर

वीरता, धीरता तथा सहिष्णुता के आपश्री महासागर थे। भयकर से भयकर सकटकाल मे भी आपको किसी ने परेशान नहीं देखा। एक बार लुधियाना मे आप की जाघ की हड्डी टूट गयी, उसके तीन टुकडे हो गये। लुधियाना के क्रिश्चियन हॉस्पीटल मे डा वर्जन ने आपका ऑपरेशन किया। ऑपरेशन-काल मे आपको बेहोश नही किया गया था, तथापि आप इतने शांत और गम्भीर रहे कि डा वर्जन दग रह गये। बरबस उनकी जबान से निकला कि ईसा की शान्ति की कहानियाँ सुना करते थे, परन्तु इस महापुरुष के जीवन मे उस शान्ति के साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।

जीवन के सध्याकाल मे आपको कैसर के रोग ने आक्रान्त कर लिया था। तथापि आप सदा शान्त रहते थे। भयकर वेदना होने पर भी आपके चेहरे पर कभी उदासीनता या व्याकुलता नही देखी। लुधियाना जैन बिरादरी के लोग जब डॉक्टर को लाए और डॉक्टर ने जब पूछा--महाराज, आप को क्या तकलीफ है ? तब आप ने बडा सुन्दर उत्तर दिया। आप बोले—डाक्टर साहब ! मुझे तो कोई तकलीफ नही, जो लोग आप को लाए हैं, उनको अवश्य तकलीफ है। उनका ध्यान करे। महाराजश्री जी की सहिष्णुता देखकर सभी लोग विस्मित हो रहे थे और कह रहे थे कि कैसर-जैसे भयकर रोग के होने पर भी गुरुदेव बिल्कुल शात हैं, जैसे कोई बात ही नही है।

प्रधानाचार्य पद

वि स २००३ लुधियाना मे आप पजाब के स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के आचार्य बनाए गए और वि स २००९ मे सादडी मे आपको श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के प्रधानाचार्य पद से विभूषित किया गया। सचमुच आप का वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व यत्र, तत्र और सर्वत्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। क्या जैन, क्या अजैन, सभी आपकी आचार तथा विचार सम्बन्धी गरिमा की महिमा को गाते नही थकते थे। आज भी लोग जब आपके अगाध शास्त्रीय ज्ञान की चर्चा करते हैं तो श्रद्धा से झूम उठते हैं।

सफल प्रवचनकार

आचार्य-प्रवर अपने युग के एक सफल प्रवक्ता एव प्रवचनकार रहे है। शास्त्रीय तथ्य एव सत्य ही आपके प्रवचनो का आधार होते थे। उनसे हृदयस्पर्शी ठोस तत्त्व श्रोता को प्राप्त होता था। प जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, श्री प्रतापसिंह कैरो, श्री भीमसेन सच्चर प्रभृति राष्ट्र के महान् नेताओ ने भी आपके प्रवचनो का लाभ लिया था। सचमुच आपकी वाणी मे निराला माधुर्य था, सरलता इतनी कि साधारण पढा-लिखा व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह समझ लेता था। आपके मगलमय उपदेश आज भी जनजीवन को नवजागरण का सन्देश दे रहे हैं।

जन्म शताब्दी वर्ष

वि स २०३९ आपका जन्म शताब्दी वर्ष है। यह पावन वर्ष है। ऐतिहासिक है। यह वर्ष विशेषरूप से पूज्य गुरुदेव के चरणो मे श्रद्धासुमन समर्पित करने का है।

स्व गुरुदेव की जीवन की महान्तम उपलब्धि थी—जैन आगम साहित्य का विद्वानों तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी सस्करण। यही उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनआगमज्ञान का यथार्थ प्रसार हो, जन-जन के हाथो मे आगमज्ञान की मूल्यवान् मणिया पहुँचे। गुरुदेव श्री की इसी भावना को साकार रूप देने हेतु मैंने प्रज्ञापना सूत्र का अनुवाद-विवेचन करने का दायित्व लिया है। अपने श्रद्धेय गुरुदेव के प्रति यही मेरी श्रद्धाञ्जलि है।

[प्रथम संस्करण से] **—ज्ञान मुनि**

सम्पादकीय

[प्रथम संस्करण से]

नामकरण

'पण्णवणा' अथवा 'प्रज्ञापना,'[1] जैन आगमसाहित्य का चतुर्थ उपांग है। प्रस्तुत उपांग के संकलयिता श्री श्यामाचार्य ने इसका नाम[2] 'अध्ययन' दिया है, जो इसका सामान्य नाम है, इसका विशिष्ट और प्रचलित नाम 'प्रज्ञापना' है। आचार्यश्री ने स्वयं 'प्रज्ञापना' का परिचय देते हुए कहा है—चूंकि भगवान् महावीर ने सर्वभावों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) उपदिष्ट की है, उसी प्रकार मैं भी (प्रज्ञापना) करने वाला हूँ।[3] अतएव इसका विशेष नाम प्रज्ञापना है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' की भांति प्रस्तुत आगम का पूर्ण और सार्थक नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' हो सकता है।

प्रज्ञापना-शब्द का उल्लेख

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा दी गई देशनाओं का वास्तविक नाम 'पन्नवेति, परूवेति' आदि क्रियाओं के आधार पर 'प्रज्ञापना' या 'प्ररूपणा' है। उन्हीं देशनाओं का आधार लेकर प्रस्तुत उपांग की रचना होने से इसका नाम 'प्रज्ञापना'[4] रखा हो, ऐसा ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त इसी उपांग में तथा अन्य अंगशास्त्रों में यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरों में, अतिदेश में, तथा संवादों में **'पण्णत्ते, पण्णत्तं पण्णत्ता'**[5] आदि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवतीसूत्र में आर्यस्कन्धक के प्रश्नों का समाधान करते हुए स्वयं भगवान् महावीर ने कहा है—**एवं खलु मए खंधया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते।**[6] इन सब पर से भगवान महावीर के उपदेशों के लिए 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

---

१ 'नन्दीसूत्र' अंगबाह्यसूची

२. **अज्झयणमिणं चित्तं**—प्रज्ञापना गा. ३

३ उवदंसिया भगवया पण्णवणा सव्वभावाणं ।
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥ —प्रज्ञापना. गाथा २-३

४ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्र १ (ख) भगवती. श १६ उ ६

५. यथा—**'कति णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ'**—प्रज्ञापना पद २२, सू. १५६७ इत्यादि सूत्रों में यत्रतत्र **'पण्णत्ते, पण्णत्तं या पण्णत्ता-पण्णत्ताओ'** पद मिलते हैं।

६ भगवतीसूत्र २।१।९०

प्रज्ञापना की महत्ता और विशेषता

सम्पूर्ण जैन-आगमसाहित्य मे जो स्थान पचम अगशास्त्र—भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति का है, वही उपाग-शास्त्रो मे प्रज्ञापना का है।[७] बल्कि भगवतीसूत्र मे यत्र-तत्र अनेक स्थलो मे 'जहा पण्णवणाए' कह कर प्रज्ञापना-सूत्र के १, २, ५, ६, ११, १५, १७, २४, २५, २६, और २७ वें पद से प्रस्तुत विषय की पूर्ति करने हेतु सूचना दी गई है यह प्रज्ञापना की विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञापना उपाग होने पर भी भगवती आदि का सूचन इसमे क्वचित् ही किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना मे जिन विषयो की चर्चा की गई है, उन विषयों का इसमे सागोपाग वर्णन है। इस पर से प्रज्ञपनासूत्र की गहनता और व्यापक सिद्धान्त-प्ररूपणा स्पष्टत: परिलक्षित होती है।[८]

इसके अतिरिक्त पचम अगशास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति का 'भगवती' विशेषण है। इसी प्रकार प्रस्तुत उपागशास्त्र के प्रत्येक पद की समाप्ति पर 'पण्णवणाए भगवईए'[९] कह कर प्रज्ञापना के लिए भी भगवती विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण 'प्रज्ञापना' की महत्ता का सूचक है। कहा जाता है कि भगवान् महावीर के पश्चात् २३ वे पट्टधर भगवान् आर्यश्याम पूर्वश्रुत मे निष्णात थे।[१०] उन्होने प्रज्ञापना की रचना मे अपनी विशिष्ट कलाकुशलता प्रदर्शित की, जिसके कारण अग और उपाग मे उन विषयो की विशेष जानकारी के लिए 'प्रज्ञापना' के अवलोकन का सूचन किया गया है।

प्रज्ञापना का अर्थ

'प्रज्ञापना' क्या है ? इसके उत्तर मे स्वय शास्त्रकार ने बताया है—'जीव और अजीव के सम्बन्ध मे जो प्ररूपणा है, वह 'प्रज्ञापना' है।'[११]

प्रस्तुत आगम के प्रसिद्ध वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि के अनुसार 'प्रज्ञापना' शब्द के प्रारम्भ मे जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता सूचित करता है।[१२] अर्थात्—जीव, अजीव आदि तत्त्वो का जो सूक्ष्म विश्लेषण सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने किया है, उतना सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के किन्ही अन्यतीर्थिक धर्माचार्यों के उपदेश मे उपलब्ध नही होता।

प्रज्ञापना का आधार

आचार्य मलयगिरि ने इस आगम को समवायागसूत्र का उपाग[१३] बताया है। उसका कारण यह प्रतीत होता है कि समवायाग में जीव, अजीव आदि तत्त्वो का मुख्यरूप से निरूपण है और प्रज्ञापना मे भी जीव, अजीव आदि तत्त्वो से सम्बन्धित वर्णन है। अत इसे समवायाग का उपाग मानने मे भी कोई आपत्ति नही है।

---

७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा २, पृ. ८४

८. जैन आगम-साहित्य, मनन और मीमासा पृ. २३०-२३१

९. 'पण्णवणासुत्त' भा २ प्रस्तावना

१०. (क) जैन-आगमसाहित्य मनन और मीमासा पृ २३१
 (ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ७२, ४७, ३८५
 (ग) सर्वेषामपि प्रावचनिकसूरीणा मतानि भगवान् आर्यश्याम उपदिष्टवान—प्रज्ञापना, पृ ३८५

११ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) पृ. १

१२. प्रज्ञापना, मलयवृत्ति पत्राक १-२

१३. इद च समवायाख्यस्य चतुर्थांगस्योपागम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात्। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, प. १

प्रज्ञापनासूत्र के सकलयिता श्री श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद का निष्कर्ष[14] बताया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दृष्टिवाद के विस्तृत वर्णन मे से सारभूत वर्णन प्रज्ञापना मे लिया गया है। दृष्टिवाद आज हमारे सामने उपलब्ध नही है, किन्तु सम्भव है, दृष्टिवाद मे दृष्टिदर्शन से सम्बन्धित वर्णन हो, तथापि इतना तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना मे वर्णित विषयवस्तु का ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद आदि के साथ मेल खाता है।[15] षट्खण्डागम और प्रज्ञापना दोनो का विषय प्राय: मिलता जुलता है। षट्खण्डागम की धवलाटीका मे षट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणीपूर्व के साथ जोडा गया है।[16] अत. प्रज्ञापना का सम्बन्ध भी अग्रायणीपूर्व के साथ सगत हो सकता है।

विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता

दृष्टिवाद एव पूर्वों का विषय कितना गहन और दुरूह है, यह जैनागम के अभ्यासी विद्वान् जानते हैं। उन्ही मे से साररूप मे उद्धृत करना अथवा भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट सर्वभावो की प्रज्ञापना के सदृश प्रज्ञापना करना कितना कठिन और दुरूह है, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की विषयवस्तु की गहनता एव दुरूहता का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रज्ञापनासूत्र की विषयबद्ध सकलना करने मे और उसे छत्तीस पदो मे विभक्त करने मे श्री श्यामाचार्य ने बहुत ही कुशलता का परिचय दिया है, तथापि कही-कही भगजाल इतना जटिल है अथवा विषयवस्तु की प्ररूपणा इतनी गूढ है कि पाठक जरा-सा असावधान-युक्त रहा कि वह विषयवस्तु के तथ्य—सत्य से दूर चला जाएगा, और वस्तुतत्त्व को नही पकड सकेगा।

प्रज्ञापना के छत्तीस पदो मे से कई पद बहुत ही विस्तृत हैं, और कई पद अत्यन्त सक्षिप्त हैं। ये छत्तीस पद एक प्रकार से छत्तीस प्रतिपाद्य विषय के प्रकरण है,[17] जिनके लिए प्रत्येक प्रकरण के अन्त मे पदशब्द का प्रयोग किया गया है।

रचनाशैली

प्रस्तुत सम्पूर्ण उपागशास्त्र की रचना प्रश्नोत्तरशैली मे हुई है। प्रारम्भ से ८१ वे सूत्र तक प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता का कोई परिचय नही मिलता। इसके पश्चात् गणधर गौतम और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तररूप मे वर्णन किया गया है। कही कही बीच बीच मे सामान्य प्रश्नोत्तर है।

जिस प्रकार प्रारम्भ मे समग्रशास्त्र की अधिकारगाथाएँ दी गई है, उसी प्रकार कितने ही पदो के प्रारम्भ मे विषय-सग्रहणी गाथाएँ भी प्रस्तुत की गई है। जैसे ३, १८, २०, एव २३ वे पद के प्रारम्भ और उपसहार मे गाथाएँ दी गई हैं, इसी प्रकार १० वे पद के अन्त मे[18] और ग्रन्थ के मध्य मे, यथावश्यक गाथाएँ दी गई हैं। इसमे प्रक्षिप्त गाथाओ को छोडकर कुल २३१ गाथाएँ हैं और शेष गद्यपाठ है। प्रज्ञापनासूत्र मे जो सग्रहणी गाथाएँ हैं, उनके रचयिता कौन हैं ? इस सम्बन्ध मे कुछ कहा नही जा सकता। प्रस्तुत सम्पूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण ७८८७ है।[19]

---

१४. अज्झयणमिण चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंद । —प्रज्ञापना गा ३

१५ पण्णवणासुत्त भा. २, प्रस्तावना पृ. ९

१६ षट्खण्डागम १, प्रस्तावना पृ. ७२

१७. 'पद प्रकरणमर्थाधिकार , इति पर्याया —प्रज्ञापना. म वृत्ति, पत्र ६

१८. पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ. १०-११

१९ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा. १ पृ ४४६

इसमे कही-कही सूत्रपाठ बहुत लम्बे-लम्बे हैं, कही अतिदेश युक्त अतिसक्षिप्त है। कही-कही एक ही विषय की पुनरावृत्ति भी हुई है। प्राय. क्रमबद्ध सकलना है, परन्तु कही-कही व्युत्क्रम से भी सकलना की गई है।

प्रज्ञापना के समग्र पदो का विषय जैन सिद्धान्त से सम्मत है। भगवतीसूत्र में जैसे कई उद्देशको या प्रकरणो के प्रारम्भ मे कही-कही अन्यतीर्थिकमत देकर तदनन्तर स्वसिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वैसे प्रस्तुत प्रज्ञापनासूत्र मे नही दिया गया है। इसमे सर्वत्र प्राय· प्रश्नोत्तरशैली मे स्वसिद्धान्तविषयक प्रश्न एवं उत्तर अंकित किये गये हैं।

आचार्यश्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना मे प्ररूपित विषयो का सम्बन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्त्वो के निरूपण के साथ इस प्रकार सयोजित किया है—

१-२	जीव-अजीव	=	पद १, ३, ५, १० और १३ मे
३	आस्रव	=	पद १६ और २२ मे
४	बन्ध	=	पद २३ मे
५-६-७	सवर, निर्जरा और मोक्ष	=	पद ३६ मे

इन पदो ने सिवाय शेष पदो मे कही-कही किसी न किसी तत्त्व का निरूपण है। आचार्य मलयगिरि ने जैन दृष्टि से द्रव्य का समावेश प्रथम पद में, क्षेत्र का द्वितीय पद मे, काल का चतुर्थ पद मे और भाव का शेष पदो मे समावेश किया है।[२०] इस ग्रन्थ मे विषयो का निरूपण पहले लक्षण बनाकर नही किया गया, अपितु विभाग-उपविभाग द्वारा बताया गया है। अत यह ग्रन्थ विभाग-प्रधान है। लक्षणप्रधान नही।[२१]

प्रज्ञापना-उपाग आर्य श्यामाचार्य की सकलना है, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इसमे अकित सभी बातें उन्होने स्वय विचार करके प्रस्तुत की हैं। उनका प्रयोजन तो श्रुतपरम्परा मे से तथ्यो का सग्रह करना और उनकी सकलना अमुक प्रकार से करना था। जैसे—प्रथम पद मे जीव के जो भेद बताए हैं, उन्हीं भेदो को लेकर द्वितीय 'स्थान' आदि द्वारो को घटित करके प्रस्तुत नही किया बल्कि स्थान आदि द्वारो का जो विचार जिन विविध रूपो मे पूर्वाचार्यों द्वारा उनके समक्ष विद्यमान था, उन्होने उन-उन द्वारो एव पदो मे उन-उन विचारो का सग्रह एव सकलन किया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न काल मे जो विचार किया, और परम्परा से श्यामाचार्य को जो प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने सगृहीत-सकलित किया। इस दृष्टि से विचार करे तो प्रज्ञापना उस काल की विचार-परम्परा का व्यवस्थित सग्रह है। यही कारण है कि जब आगम लिपिबद्ध किये गये, तब उस-उस विषय की समग्र विचारणा के लिए प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश किया गया।

जैनागमो के मुख्य दो विषय है—जीव और कर्म। एक विचारणा जीव को केन्द्र मे रखकर उसके अनेक विषयो की—(जैसे कि उसके कितने प्रकार है, वे कहाँ-कहाँ रहते हैं? उनका आयुष्य कितना है? वे मर कर कहाँ-कहाँ जाते हैं? कहाँ-कहाँ से किस गति या योनि मे आते हैं? उनकी इन्द्रियाँ कितनी? वेद कितने? ज्ञान कितने? उनके कर्म कौन-कौन से बधते हैं? आदि) की जाती है। दूसरी विचारणा कर्म

---

२०. प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्राक ५

२१. पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ १३

को केन्द्र मे रख कर की जाती है। जैसे कि—कर्म कितने प्रकार के हैं ? विविध प्रकार के जीवो के विकास और ह्रास मे उनका कितना हिस्सा है ? आदि।[२२]

प्रज्ञापना मे प्रथम प्रकार से विचारणा की गई है।

प्रस्तुत सम्पादन

स्थानकवासी जैनसमाज जागरूक रह कर आगमो एव जैनसिद्धान्तो के प्रति पूर्ण श्रद्धाशील रहा है। समय-समय पर आगमो के गूढ़भावो को समझाने के लिए स्थानकवासी समाज के अनेक आगमवेत्ताओ ने अपने युग की भाषा मे उनका अनुवाद एवं विवेचन किया है। जिस समय टब्बा युग आया, उस समय आचार्य श्री धर्मसिहजी ने सत्ताईस आगमों पर बालावबोध टब्बे लिखे, जो मूलस्पर्शी एव शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाले है। अनुवादयुग मे शास्त्रोद्धारक आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म ने बत्तीस आगमो का हिन्दी-अनुवाद किया। पूज्य गुरुदेव श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर श्री आत्मारामजी महाराज ने अनेक आगमो का हिन्दी-अनुवाद एव विस्तृत व्याख्या लिखी। तत्पश्चात् पूज्य श्री घासीलालजी महाराज ने सस्कृत मे विस्तृत टीका हिन्दी-गुजराती-अनुवादसहित लिखी। और भी अनेक स्थलो से आगम-साहित्य प्रकाशित हुआ। किन्तु जनसाधारण को तथा वर्तमान-तर्कप्रधानयुग की जनता को सन्तुष्ट कर सके, ऐसे न अतिविस्तृत और न अतिसक्षिप्त सस्करण की माग निरन्तर बनी रही।

अत आगममर्मज्ञ बहुतश्रुत विद्वान् श्रमणसघ के युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर' के प्रधान सम्पादन-निर्देशन मे तथा प. कन्हैयालालजी म. 'कमल', प देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, श्री रतनमुनिजी म एव प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल जैसे विद्वद्वर्य सम्पादकमण्डल के तत्त्वावधान मे प्रज्ञापनासूत्र का प्रस्तुत अभिनव सस्करण अनुवादित एव सम्पादित किया गया है।

प्रज्ञापनासूत्र के इस सस्करण की यह विशेषता है कि इसमे श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई से प्रकाशित 'पण्णवणासुत्त' के शुद्ध मूलपाठ का अनुसरण किया गया है। इससे यह लाभ हुआ कि सूत्र सख्या छत्तीस पदों की क्रमश दी गई है। प्रत्येक सूत्र मे प्रश्न को अलग पक्ति मे रखा गया है, उत्तर अलग पक्ति मे। तथा प्रत्येक प्रकरण के शीर्षक-उपशीर्षक पृथक्-पृथक् दिये गए है, जिससे पाठक को प्रतिपाद्य विषय को ग्रहण करने मे आसानी रहे। प्रत्येक परिच्छेद का मूलपाठ देने के पश्चात् सूत्र-सख्या के क्रम से उसका भाववाही अनुवाद दिया गया है। जहा कठिन शब्द हैं या मूल मे सक्षिप्त शब्द हैं, वहा कोष्ठक मे उनका सरल अर्थ तथा पूरा भावार्थ भी दिया गया है, ताकि पाठक को पिछले स्थलो को टटोलना न पडे। शब्दार्थ के पश्चात् विवेच्यस्थलो का विवेचन दिया गया है। विवेचन प्राय आचार्य मलयगिरि रचित वृत्ति को ध्यान मे रखकर किया गया है। वृत्ति का पूरा का पूरा अनुसरण नही किया गया है। जहा वृत्ति मे अतिविस्तार है, या प्रासगिक विषय से हट कर चर्चा की गई है, वहां उसे छोड दिया गया है। मूल के शब्दार्थ मे जो बात स्पष्ट हो गई है या स्पष्ट है, उसका विवेचन मे पिष्टपेषण नही किया गया है। जहा मूलपाठ अतिविस्तृत एव पुनरुक्त है, वहा विवेचन मे उसका निष्कर्षमात्र दे दिया गया है। कहीं-कही मूलपाठ मे उक्त विषयवस्तु को विवेचन मे युक्ति-हेतुपूर्वक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। विवेचन मे प्रतिपादित विषय एव उद्धृत प्रमाणो के सन्दर्भस्थलों का उल्लेख टिप्पण मे कर दिया गया है। कही-कहीं तत्त्वार्थसूत्र, जीवाभिगम, भगवती, कर्मग्रन्थ आदि तथा बौद्ध एव वैदिक ग्रन्थो के तुलनात्मक टिप्पण भी दिए गए हैं।

---

२२. पण्णवणासुत्तं भा २ प्रस्तावना, पृ. २०-२१

प्रत्येक पद के प्रारम्भ मे प्राथमिक अर्थ देकर पद मे प्रतिपादित समस्त विषयो की समीक्षा की गई है, जिससे पाठक को समग्र पद का हार्द मालूम हो सके । पुनरुक्ति से बचने के लिए जहाँ 'जाव' 'जहा' 'एव' आदि आगमिक पाठो के सक्षेपसूचक शब्द हैं, उनका स्पष्टीकरण प्राय शब्दार्थ मे ही दे दिया गया है । कही-कही मूल-पाठ के नीचे टिप्पण में स्पष्टीकरण कर दिया गया है । प्रज्ञापना विशालकाय शास्त्र होने से हमने इसे तीन खण्डो मे विभाजित कर दिया है । अन्त मे, तीन परिशिष्ट देने का विचार है । एक परिशिष्ट मे सन्दर्भ-ग्रन्थो की सूची, दूसरे परिशिष्ट मे विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो की सूची और तीसरे मे स्थलविशेष की सूची होगी ।

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत सम्पादन मे मूलपाठ के निर्धारण एव प्राथमिक-लेखन मे आगम प्रभाकर स्व पुण्यविजयजी म , प दलसुखभाई मालवणिया एव प अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित पण्णवणासुत्त भाग १-२ का उपयोग किया गया है तथा अर्थ एव विवेचन में प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति एव प्रमेयबोधिनी टीका का प्राय अनुसरण किया गया है । इसकी प्रति उपलब्ध कराने मे सौजन्यमूर्ति श्री कृष्णचन्द्राचार्यजी (पचकूला) का सहयोग स्मरणीय रहेगा । एतदर्थ उनके प्रति हम आभारी हैं । इसके अतिरिक्त अनेक आगमो जैन-बौद्ध ग्रन्थो, पन्नवणासूत्र के थोकडो आदि से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्त्तव्य है ।

हम यहाँ प्रसगवश श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनागमरत्नाकर स्व गुरुदेव पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का पुण्यस्मरण किये बिना नही रह सकते, जो आजीवन आगमोद्धार के पुनीत कार्य मे सलग्न रहे थे और अन्तिम समय मे भी उनके आगम-निष्ठापूर्ण हृदयोद्गार थे— 'मेरे पीछे भी श्रमणसघीय आचार्यश्री, युवा-चार्यश्री इस भगीरथ श्रुतसेवा को चलाते रहे, यही मेरी परमकृपालु शासनदेव से मगलमयी हार्दिक प्रार्थना है ।''

उनके ही द्वारा परिष्कृत आगमोद्धार के पुण्यपथ पर चल कर श्रमणसघीय युवाचार्य पडितरत्न मिश्रीमलजी म सा के नेतृत्व मे हमने प्रज्ञापना जैसे दुरूह एव गहन आगम के सम्पादन का कार्य हाथ मे लिया। इस सम्पादनकार्य मे मै अपने सहयोगिजनो को कैसे विस्मृत कर सकता हू ?

आगमतत्त्वमनीषी प्रवचनप्रभाकर श्री सुमेरमुनिजी, विद्वद्वर्य प रत्न मुनिश्री नेमिचन्द्रजी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होने निष्ठापूर्वक इस आगमकार्य के सम्पादन मे सहयोग दिया है । आगममर्मज्ञ प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल एव सपादनकलाविशारद साहित्यमहारथी श्री श्रीचन्दजी सुराना की श्रुतसेवाओ को कैसे भुलाया जा सकता है ? जिन्होने इस शास्त्रराज को सशोधित-परिष्कृत करके मुद्रित करने तक का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया है । साथ ही, मैं अपने ज्ञात-अज्ञात सहयोगियो का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर योग्य परामर्श देकर मुझे उत्साहित किया है ।

अपने सम्पादन के विषय मे क्या कहूँ ? जैसा भी, जितना भी अच्छा से अच्छा बन सकता था, 'यावद्बुद्धिबलोदयम्' प्रज्ञापना का सम्पादन करने का मैने प्रयत्न किया है । मै दावा तो नही करता, सर्वज्ञ महा-पुरुषो के पुनीत सिद्धात-रहस्यो को खोलने का ! मुझे जैसे अल्पज्ञ की भी आखिर एक सीमा है । फिर भी मुझे सात्त्विक सन्तोष अवश्य है कि आगमो के सुधी पाठको को तथा शोधकर्त्ताओ को इस सम्पादन से अवश्य सन्तोष होगा ।

जैनस्थानक
बनूड

—ज्ञान मुनि

प्रस्तावना

प्रज्ञापना : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(प्रथम सस्करण से)

भारतवर्ष अध्यात्म की उर्वरा भूमि है। यहाँ के प्रत्येक कण-कण मे अध्यात्म का सुरीला सगीत है। प्रत्येक अणु-अणु मे तत्त्व-दर्शन का मधुर रस है। यहाँ की पावन पुण्य धरा ने ऐसे नर-रत्नो का प्रसव किया है जो धर्म और अध्यात्म के मूर्त्त रूप हैं। उनके हृदय की प्रत्येक धडकन अध्यात्म की धडकन है। उनके प्रशस्त और निर्मल चिन्तन ने जीव और जगत् की आत्मा और परमात्मा को, धर्म और दर्शन को समझने का विमल और विशुद्ध दृष्टिकोण प्रदान किया।

चौबीस तीर्थंकरो ने इस अध्यात्मप्रधान पुण्य-भूमि पर जन्म लिया। उन्हे वैदिकपरम्परा के अवतारो की तरह पुन -पुन जन्म ग्रहण कर जन-जन का उत्थान करना अभीष्ट नही था, और न तथागत बुद्ध की तरह बोधिसत्वो के माध्यम से पुन -पुन. जन्म लेकर जन-जीवन मे अभिनव चेतना का सचार करना ही मान्य था। अवतारवाद मे उनका विश्वास नही था, उत्तारवाद ही उन्हे पसन्द था।

जैनपरम्परा मे तीर्थंकरो का स्थान सर्वोपरि है। नमस्कार महामत्र मे सिद्धो से पूर्व तीर्थंकरो—अरिहतो को नमस्कार किया गया है। तीर्थंकर सूर्य की भाति तेजस्वी होते है —'आइच्चेसु अहिय पयासयरा।' वे अपनी ज्ञान-रश्मियो से विश्व की आत्मा को आलोकित करते हैं। वे अपने युग के प्रबल प्रतिनिधि होते है। चन्द्र की तरह वे सौम्य होते हैं। मानवता के परम प्रस्थापक होते हैं। वे साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता तथा आत्मनिर्भर होते है। वे केवलज्ञान एव केवलदर्शन उत्पन्न होने के पश्चात् उपदेश देते है। उनका उपदेश अनुभूत सत्य पर आधृत होता है।[1] उनके उपदेश और व्यवस्था किसी परम्परा से आबद्ध नही होती।

वर्तमान अवसर्पिणी काल मे इस पावन धरा पर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। उनके बाद बावीस तीर्थंकर हुए, फिर चौबीसवे तीर्थंकर महावीर हुए।[2] सभी तीर्थंकरो की सर्वतन्त्र-स्वतत्र परम्पराएँ थी और सर्वतत्र-स्वतत्र उनका शासन था। श्रमण भगवान् महावीर के समय भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के हजारो श्रमण थे। जब वे महावीर के सघ मे प्रविष्ट हुए तो उन्हे भगवान् पार्श्वनाथ की चातुर्याम साधना-पद्धति का परित्याग किया और पच महाव्रत-साधना-पद्धति को स्वीकार किया।[3] इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक तीर्थंकर का विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व किसी तीर्थंकर विशेष की परम्परा के साथ आबद्ध नही होता, यद्यपि मौलिक आचारव्यवस्था एव तत्त्वदर्शन सनातन है, त्रिकाल मे एकरूप रहता है, क्योकि सत्य शाश्वत है।

---

१ "धम्मतित्थयरे जिणे" —समवायाग-१।२

२. नन्दीसूत्र, पट्टावली—१।१८-१९

३ उत्तराध्ययन - २३।२३

वर्त्तमान जैन शासन श्रमण भगवान् महावीर से सम्बन्धित है। भगवान् महावीर के संघ की संचालन विधि सुव्यवस्थित थी। उनके संघ में ग्यारह गणधर, नौ गण तथा सात व्यवस्थापद थे।[४] संघ की शिक्षा, दीक्षा आदि में सातों पदाधिकारियों का अपूर्व योगदान था। आचार्य संघ का संचालन करते थे। उपाध्याय सूत्र की वाचना देते थे। स्थविर श्रमणों को संयम-साधना में स्थिर करते। प्रवर्तक आचार्य द्वारा निर्दिष्ट प्रवृत्तियों का संघ में प्रवर्तन करते। गणी लघु श्रमणों के समूह का कुशल नेतृत्व करते। गणधर श्रमणों की दिनचर्या का ध्यान रखते और गणावच्छेदक अन्तरंग व्यवस्था करते। इस तरह सभी शासन की श्रीवृद्धि में जुटे रहते थे। भगवान् महावीर के शासन में अनेक प्रतिभासम्पन्न, तेजस्वी, वर्चस्वी, मनस्वी, यशस्वी श्रमण थे। श्रमण भगवान् महावीर ने भव्य जीवों के उद्बोधनार्थ अर्थागम प्रदान किया। गणधरों ने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से उसको गूंथ कर सूत्रागम का रूप दिया। आचार्यों ने उस श्रुत-सम्पदा का संरक्षण किया। गणधरों द्वारा रचित अंगागम-निधि का आलम्बन लेकर उपांगों की रचना हुई। उपांगों में चतुर्थ उपांग का नाम "प्रज्ञापना" है।

बौद्ध साहित्य में प्रज्ञा के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है। वहां पर 'पञ्ञ' और 'पञ्ञा' शब्द अनेक बार व्यवहृत हुए हैं। बौद्ध पाली साहित्य में 'पञ्ञत्ती' नामक एक ग्रन्थ भी है, जिसमें विविध प्रकार के पुद्गल अर्थात् पुरुष के अनेक प्रकार के भेदों का निरूपण है। उनमें पञ्ञत्ति यानी प्रज्ञप्ति और प्रज्ञापना नाम का तात्पर्य एक सदृश है। आचार्य पतंजलि ने "ऋतंभरा प्रज्ञा[५]" तथा "तज्जयात्प्रज्ञालोक[६]" प्रभृति सूत्रों में प्रज्ञा का उल्लेख किया है। भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ की चर्चा करते हुए "तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता[७]" शब्द का प्रयोग किया है। जैन आगम साहित्य में भी अनेक स्थलों पर 'प्रज्ञा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के रूप में आचारांग सूत्र के दूसरे अध्ययन के पच्चीसवें, छब्बीसवें सूत्र में 'प्रज्ञान' शब्द प्राप्त है और अन्य स्थलों पर सूत्रकृतांग में श्रमण भगवान् महावीर की संस्तुति करते हुए प्रज्ञ[८], आशुप्रज्ञ[९], भूतिप्रज्ञ[१०], तथा अन्य स्थलों पर महाप्रज्ञ[११] शब्द प्रयुक्त हुए है। भगवान् महावीर को प्रज्ञा का अक्षय सागर कहा है।[१२] उत्तराध्ययनसूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के केशीकुमार श्रमण गणधर गौतम से पूछते हैं हे मेधाविन्! हम एक ही उद्देश्य को लेकर प्रवृत्त हुए हैं तो फिर इस (आचार) भेद का क्या कारण है? इन दो प्रकार के धर्मों में आपको विप्रत्यय नहीं होता? गौतम ने कहा—धर्म तत्त्व का निर्णय प्रज्ञा से करना चाहिए।[१३] केशीकुमार श्रमण ने गणधर

४ (क) भगवतो महावीरस्स नव गणा होत्था। ठाण-९।३, सूत्र ६८०
(ख) आयरिएति वा, उवज्झाएति वा, पवत्तीति वा,
थेरेति वा, गणीति वा, गणधरेति वा, गणावच्छेदेति वा। —ठाण-३।३, सूत्र १७७

५ पातंजलयोगदर्शन, समाधिपाद सूत्र ४८

६ पातंजलयोगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र ५

७ श्रीमद् भगवद्गीता, अ २-५७, ५८, ६१, ६८

८ सूत्रकृतांग, प्रज्ञ ६।४, १५ १।७।८, १।१४।१९, २।१।६६, २।६।६

९ सूत्रकृतांग, आशुप्रज्ञ ६।७।२५, १।५।२, १।१४।४, २२, २।५।१, २।६।१८

१० सूत्रकृतांग ६।१५।१८

११ सूत्रकृतांग, महाप्रज्ञ १।११।१३, ३८।

१२ सूत्रकृतांग १।६।८

१३ उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २३, गाथा २५

गौतम की प्रज्ञा को पुन:-पुन: साधुवाद दिया।[14] आचारचूला मे यह स्पष्ट लिखा है—समाधिस्थ श्रमण की प्रज्ञा बढ़ती है।[15] आचार्य यतिवृषभ ने 'तिलोयपन्नत्ति' ग्रन्थ मे[16] श्रमणो की लब्धियो का वर्णन करते हुए एक लब्धि का नाम 'प्रज्ञाश्रमण' दिया है। प्रज्ञाश्रमण लब्धि जिस मुनि को प्राप्त होती है, वह मुनि सम्पूर्ण श्रुत का तलस्पर्शी अध्येता बन जाता है। प्रज्ञाश्रमणऋद्धि के औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी और कर्मजा ये चार प्रकार बताये हैं। मत्रराजरहस्य मे प्रज्ञाश्रमण का वर्णन है।[17] कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने प्रज्ञा-श्रमण की व्याख्या की है।[18] आचार्य वीरसेन ने प्रज्ञाश्रमण को वन्दन किया है और साथ ही उन्हें जिन भी कहा है।[19] आचार्य अकलक ने भी प्रज्ञाश्रमण का वर्णन किया है।[20]

अब चिन्तनीय यह है कि प्रज्ञा शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रन्थो मे विभिन्न स्थलो पर हुआ है। विभिन्न कोशकारो ने प्रज्ञा को ही बुद्धि कहा है। वह बुद्धि का पर्यायवाची माना गया है और एकार्थक भी ! किन्तु चिन्तन करने पर सूर्य के प्रकाश की भाँति यह स्पष्ट होता है कि दोनो शब्दो की एकार्थता स्थूलदृष्टि से ही है। कोशकार जिन शब्दो को पर्यायवाची कहता है, वे शब्द वस्तुत. पर्यायवाची नही होते। समभि-रूढनय की दृष्टि से कोई भी शब्द पर्यायवाची नही है। प्रत्येक शब्द का अपना पृथक अर्थ वाच्य होता है। प्रज्ञा शब्द का भी अपने आप मे एक विशिष्ट अर्थ है। बुद्धि शब्द स्थूल और भौतिक जगत् से सम्बन्धित है। पर प्रज्ञा शब्द बुद्धि से बहुत ऊपर उठा हुआ है। बहिरग ज्ञान के अर्थ मे बुद्धि शब्द का प्रयोग हुआ है तो अन्तरग जगत् की बुद्धि प्रज्ञा है। प्रज्ञा अतीन्द्रिय जगत् का ज्ञान है। वह आन्तरिक चेतना का आलोक है। 'प्रज्ञा' किसी ग्रन्थ के अध्ययन से उपलब्ध नही होती। वह तो सयम और साधना से उपलब्ध होती है। प्रज्ञा को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) इन्द्रियसबद्ध प्रज्ञा और (२) इन्द्रियातीत प्रज्ञा। आचार्य वीरसेन ने प्रज्ञा और ज्ञान का भेद प्रतिपादित करते हुए लिखा है– गुरु के उपदेश से निरपेक्ष ज्ञान की हेतुभूत चैतन्यशक्ति प्रज्ञा है और ज्ञान उसका कार्य है। इससे यह स्पष्ट है कि चेतना का शास्त्रनिरपेक्ष विकास प्रज्ञा है। प्रज्ञा शास्त्रीय ज्ञान से उपलब्ध नही होती, अपितु आन्तरिक विकास से उपलब्ध होती है। प्रज्ञा इन्द्रियज्ञान से प्राप्त प्रत्ययो का विवेक करने वाली बुद्धि से परे का ज्ञान है। पातजलयोग-दर्शन मे प्रज्ञा पर विस्तार से चिन्तन करते हुए उसकी मर्यादायें तथा उसके क्रमिक विकास की सीमाये बताई हैं। प्रज्ञा की सात भूमिकाएँ भी बताई है। जितना सयम का विकास होता है, उतनी ही प्रज्ञा निर्मल होती है। सक्षेप मे साराश यह है कि विशिष्ट ज्ञान प्रज्ञा है।

प्रज्ञापना मे जीव और अजीव का गहराई से निरूपण होने के कारण इस आगम का नाम 'प्रज्ञापना'' रखा गया है। भगवती,[21] आवश्यक मलयगिरिवृत्ति,[22] आवश्यकचूर्णि,[23] महावीरचरिय,[24] त्रिषष्टिशलाका-

१४ उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन—२३, गाथा—२८, ३४, ३९, ४४, ४९, ५४, ५९, ६४, ६९, ७४, ७९, ८५
१५ आयारचूला, २६।५
१६ धवला ९।४, १; १८।८४।२
१७ मत्रराजरहस्य, श्लोक ५२२
१८ योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति, सूरिमत्रकल्पसमुच्चय भाग २, पृष्ठ ३६५
१९ षट्खण्डागम, चतुर्थ वेदना खण्ड, धवला ९, लब्धि स्वरूप का वर्णन।
२० तत्त्वार्थराजवार्तिक, सूत्र ३६
२१ भगवती १६।६।५७०
२२ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पृष्ठ २७०
२३ आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २७५
२४. महावीरचरियं ५।१५५

पुरुषचरित्र,[२५] मे श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा छद्मस्थ अवस्था मे दश महास्वप्न देखने का उल्लेख है। उन स्वप्नो मे तृतीय स्वप्न यह था —एक रग-बिरगा पुंस्कोकिल उनके सामने समुपस्थित था। उस स्वप्न का फल था—वे विविध ज्ञानमय द्वादशाग श्रुत की प्रज्ञापना करेंगे। इसमे 'प्रज्ञापयति' और 'प्ररूपयति' इन क्रियाओं से यह स्पष्ट है कि भगवान् का उपदेश प्रज्ञापना-प्ररूपणा है। उस उपदेश को मूल आधार बनाकर प्रस्तुत आगम की रचना की गई, इसलिए इसका नाम 'प्रज्ञापना' रखा गया। प्रस्तुत आगम के रचयिता श्यामाचार्य ने इसका सामान्य नाम 'अध्ययन' दिया है[२६] और विशेष नाम 'प्रज्ञापना' दिया है। उनका अभिमत है--भगवान् महावीर ने सर्वभावो की प्रज्ञापना की है। उसी प्रकार मैं भी यहाँ सर्वभावो की प्रज्ञापना करने वाला हूँ। अत. इस आगम का विशेष नाम 'प्रज्ञापना' है।[२७] उत्तराध्ययन की तरह प्रस्तुत आगम का पूर्ण नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' यह हो सकता है।

प्रज्ञापना सूत्र मे एक ही अध्ययन है, जबकि उत्तराध्ययन मे छत्तीस अध्ययन हैं। प्रज्ञापना के प्रत्येक पद के अन्त मे 'पन्नवणाए भगवईए' यह पाठ मिलता है, इसीलिए यह स्पष्ट है कि अग साहित्य मे जो स्थान भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) का है, वही स्थान उपागो मे 'प्रज्ञापना' का है। अगसाहित्य मे जहाँ-तहाँ भगवान् ने यह कहा' इस प्रकार के वाक्य उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर 'पण्णत्त' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत आगम मे भी प्रज्ञापना शब्द का प्राधान्य है, सम्भवत इसीलिए श्यामाचार्य ने इसका नाम प्रज्ञापना रखा हो। भगवतीसूत्र मे आर्यस्कन्धक का वर्णन है। वहाँ पर स्वय भगवान् महावीर ने कहा--"एव खलु मए खन्धया! चउव्विहे लोए पण्णत्ते"।[२८] इसी तरह आचाराग आदि आगमो मे अनेक स्थलो पर भगवान् के उपदेश के लिए प्रज्ञापना शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य मलयगिरि के अभिमतानुसार प्रज्ञापना मे जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता को सूचित करता है। भगवान् महावीर के समय मे श्रमण परम्परा के अन्य पाँच सम्प्रदाय विद्यमान थे।[२९] उनमे से कुछ ऐसे थे जिनके अनुयायियो की सख्या महावीर के सघ से भी अधिक थी। उन पाँच सम्प्रदायो का नेतृत्व क्रमश पूरण काश्यप, मखली गोशालक, अजित केशकम्बल, पकुध कात्यायन और सजय वेलट्ठिपुत्र कर रहे थे। परिस्थितियो के वात्याचक्र से वे पाँचो सम्प्रदाय काल के गर्भ मे विलीन हो गये। वर्तमान मे उनका अस्तित्व इतर साहित्य मे ही उपलब्ध होता है। तथागत बुद्ध की धारा विदेशो तक प्रवाहित हुई और भारत मे लगभग विच्छिन्न हो गई थी। यदि हम उन सभी धर्माचार्यों के दार्शनिक पहलुओ पर चिन्तन करे तो स्पष्ट होगा कि भगवान् महावीर ने जीव, अजीव प्रभृति तत्त्वो का जो सूक्ष्म विश्लेषण किया है, वैसा सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के अन्य कोई भी धर्माचार्य नही कर सके। यहाँ तक कि तथागत बुद्ध तो 'अव्याकृत' कहकर आत्मा, परमात्मा आदि प्रश्नो को टालने का ही प्रयास करते रहे।[३०]

---

२५ त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०।३।१४६

२६ "अज्झयणमिण चित्त' — प्रज्ञापना गा ३

२७ "उवदसिया भगवया पण्णवणा सव्व भावाण।
जह वण्णिय भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि। —प्रज्ञापना गा २-३

२८ भगवतीसूत्र, २।१।९०,

२९ तेन खलु समयेन राजगृहे नगरे षट् पूर्णाद्या. शास्तारोऽसर्वज्ञा सर्वज्ञमानिनः प्रतिवसतिस्म। तद्यथा—पूरण-काश्यपो, मश्करीगोशलिपुत्र,, सजयी वैरट्टीपुत्रोऽजित केशकम्बल, ककुद कत्यायनो, निग्रथो ज्ञातपुत्र।"
(दिव्यावदान, १२।१४३।१४४)

३०. मिलिन्द प्रश्न—२।२५ से ३३, पृष्ठ ४१ से ५२

प्रज्ञापना के भाषापद मे 'पन्नवणी' एक भाषा का प्रकार बताया है। उसकी व्याख्या करते हुए आचार्य मलयगिरि ने लिखा है —"जिस प्रकार से वस्तु व्यवस्थित हो, उसी प्रकार उसका कथन जिस भाषा के द्वारा किया जाय, वह भाषा 'प्रज्ञापनी' है।[31] प्रज्ञापना का यह सामान्य अर्थ है । तात्पर्य यह है कि जिसमे किसी भी प्रकार के धार्मिक विधि-निषेध का नही अपितु सिर्फ वस्तुस्वरूप का ही निरूपण होता है, वह 'प्रज्ञापनी' भाषा है।[32]

आचार्य मलयगिरि का यह अभिमत है कि प्रज्ञापना समवाय का उपाग है।[33] पर निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि प्रज्ञापना का सम्बन्ध समवाय के साथ कब जोडा गया ? प्रज्ञापना के रचयिता आचार्य श्याम का अभिमत है कि उन्होने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद से लिया है।[34] पर हमारे सामने इस समय दृष्टिवाद उपलब्ध नही है, अत: स्पष्ट रूप से यह नही कहा जा सकता कि प्रज्ञापना मे पूर्वसाहित्य से कौन सी सामग्री ली है ? तथापि यह निश्चित है कि ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद और कर्मप्रवाद के साथ इसके वस्तु निरूपण का मेल बैठता है।[35]

प्रज्ञापना और दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ षट्खण्डागम का विषय प्राय समान है। आचार्य वीरसेन ने अपनी धवला टीका मे षट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणी पूर्व के साथ जोडा है।[36] अत हम भी प्रज्ञापना का सम्बन्ध अग्रायणी पूर्व के साथ जोड सकते है।

टीकाकार आचार्य मलयगिरि की दृष्टि से समवायाग मे जो वर्णन है, उसी का विस्तार प्रज्ञापना मे हुआ है। अत प्रज्ञापना समवायाग का उपाग है । पर स्वय शास्त्रकार ने इसका सम्बन्ध दृष्टिवाद से बताया है। अत यही मानना उचित प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध समवायाग की अपेक्षा दृष्टिवाद से अधिक है। किन्तु दृष्टिवाद मे मुख्य रूप से दृष्टि (दर्शन) का ही वर्णन था। समवायाग मे भी मुख्य रूप से जीव, अजीव आदि तत्त्वो का निरूपण है और प्रज्ञापना मे भी यही निरूपण है, अत: प्रज्ञापना को समवायाग का उपाग मानने मे भी किसी प्रकार की बाधा नही है।

प्रज्ञापना मे छत्तीस विषयो का निर्देश है, इसलिए इसके छत्तीस प्रकरण हैं। प्रकरण को इसमे 'पद' नाम दिया है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त मे प्रतिपाद्य विषय के साथ पद शब्द व्यवहृत हुआ है। आचार्य मलयगिरि पद की व्याख्या करते हुये लिखते है —"पद प्रकरणमर्थाधिकार इति पर्याया "[37], अत यहाँ पद का अर्थ प्रकरण[38] और अर्थाधिकार समझना चाहिए।

---

३१ "प्रज्ञापनी-प्रज्ञाप्यतेऽर्थोऽनयेति प्रज्ञापनी" —प्रज्ञापना, पत्र २४९

३२ यथावस्थितार्थाभिधानादिय प्रज्ञापनी ।। प्रज्ञापना, पत्र २४९

३३ इय च समवायाख्यस्य चतुर्थाङ्गस्योपागम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात् । —प्रज्ञापना टीका पत्र १

३४ अज्झयणमिण चित्त सुयरयण दिट्ठिवायणीसद ।
जह वण्णिय भगवया अहमवि तद वणइस्सामि ।। ।। गा० ३ ।।

३५. पण्णवणासुत्त —प्रस्तावना मुनि पुण्यविजयजी, पृ० ९

३६ षट्खण्डागम, पु० १, प्रस्तावना, पृष्ठ ७२

३७ प्रज्ञापना टीका, पत्र ६

३८ सूत्रसमूह प्रकरणम् । —न्यायवार्तिक, पृ० १

रचना-शैली

प्रज्ञापना की रचना प्रश्नोत्तर के रूप मे हुई है। प्रथम सूत्र से लेकर इक्यासीवें सूत्र तक प्रश्नकर्त्ता कौन है और उत्तरदाता कौन है ? इस सम्बन्ध मे कोई भी सूचन नही है । केवल प्रश्न और उत्तर हैं। इसके पश्चात् बयासीवें सूत्र मे श्रमण भगवान् महावीर और गणधर गौतम का सवाद है। तेरासीवें सूत्र से लेकर बानवें (९२) सूत्र तक सामान्य प्रश्नोत्तर हैं। तेरानवे सूत्र मे गणधर गौतम और महावीर के प्रश्नोत्तर, उसके पश्चात् चौरानवे सूत्र से लेकर एक सौ सेतालीसवे सूत्र तक सामान्य प्रश्नोत्तर हैं। उसके पश्चात् एक सौ अडतालीस से लेकर दो सौ ग्यारह तक अर्थात् सम्पूर्ण द्वितीय पद मे, तृतीय पद के सूत्र दो सौ पच्चीस से दो सौ पचहत्तर तक और सूत्र तीन सौ पच्चीस, तीन सौ तीस से तीन सौ तेतीस तक व चतुर्थ पद से लेकर शेष सभी पदो के सूत्रो मे गौतम गणधर और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर दिये हैं। केवल उनके प्रारम्भ, मध्य और अन्त मे आने वाली गाथा और एक हजार छियासी मे वे प्रश्नोत्तर नही है।

जिस प्रकार प्रारम्भ मे सम्पूर्ण ग्रन्थ की अधिकार-गाथाएँ आई हैं, उसी प्रकार कितने ही पदो के प्रारम्भ मे भी विषय निर्देशक गाथाएँ हैं। उदाहरण के रूप मे—तीसरे, अठारहवे, बीसवे और तेईसवें पदा के प्रारम्भ और उपमहार मे गाथाएँ हैं। इसी प्रकार दसवे पद के अन्त मे, ग्रन्थ के मध्य मे और जहाँ आवश्यकता हुई, वहाँ भी गाथाएँ दी गई हैं।[३९] सम्पूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण सात हजार आठ सौ सतासी है। इसमे प्रक्षिप्त गाथाओ को छोडकर कुल दो सौ बत्तीस गाथाएँ हैं और शेष गद्य भाग है। इस आगम मे जो सग्रहणी गाथाएँ है, उनके रचयिता कौन हैं ? यह कहना कठिन है। प्रज्ञापना के छत्तीस पदो मे से प्रथम पद मे जीव मे दो भेद-- ससारी और सिद्ध बनाये है। उसके बाद इन्द्रियो के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक मे सभी ससारी जीवो का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदो का नियामक तत्त्व इन्द्रियो की क्रमश वृद्धि बतलाया है। दूसरे पद मे जीवो की स्थानभेद से विचारणा की गई है। इसका क्रम भी प्रथम पद की भाँति इन्द्रियप्रधान ही है। जैसे—वहाँ एकेन्द्रिय कहा, वैसे ही यहाँ पृथ्वीकाय, अप्काय आदि कायो को लेकर भेदो का निरूपण किया गया है। तृतीय पद से लेकर शेष पदो मे जीवो का विभाजन गति इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग, आहार, भाषक, परित्त, पर्याप्त, सूक्ष्म, सज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, बध, इन सभी दृष्टियो से किया गया है। उनके अल्पबहुत्व का भी विचार किया गया है। अर्थात् प्रज्ञापना मे तृतीय पद के पश्चात् के पदो मे कुछ अपवादो[४०] को छोडकर सर्वत्र नारक से लेकर चौबीस दण्डको मे विभाजित जीवो की विचारणा की गई है।

विषय विभाग

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना सूत्र मे आई हुई दूसरी गाथा की व्याख्या करते हुए विषय-विभाग का सम्बन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्त्वो के निरूपण के साथ इस प्रकार सयोजित किया है—

१-२ जीव-अजीव पद—१, ३, ५, १० और १३ = ५ पद

३ आस्रव पद -१६, २२ = २ पद

---

३९ पण्णवणासुत्त, द्वितीय भाग (प्रकाशक —श्री महावीर जैन विद्यालय) प्रस्तावना, पृष्ठ १०-११

४० इस अपवाद के लिए देखिए, पद-१३, १८, २१

४   बन्धपद—२३   = १ पद
५-७. सवर, निर्जरा और मोक्ष पद —३६   = १ पद

शेष पदो मे क्वचित् जीवादितत्त्वो मे से यथायोग्य किसी तत्त्व का निरूपण है।

जैन दृष्टि से सभी तत्त्वो का समन्वय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे किया गया है। अत आचार्य मलयगिरी ने द्रव्य का समावेश प्रथम पद मे, क्षेत्र का द्वितीय पद मे, काल का चतुर्थ पद मे और भाव का शेष पदो मे समावेश किया है।

प्रज्ञापना का भगवती विशेषण

पाँचवे अग का नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति है और उसका विशेषण 'भगवती' है। प्रज्ञापना को भी 'भगवती' विशेषण दिया गया है, जबकि अन्य किसी भी आगम के साथ यह विशेषण नही लगाया गया है। यह विशेषण प्रज्ञापना की महत्ता—विशेषता का प्रतीक है। भगवती मे प्रज्ञापना सूत्र के एक, दो, पाँच, छह, ग्यारह, पन्द्रह, सत्तरह, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस पदो के अनुसार विषय की पूर्ति करने की सूचना है। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि प्रज्ञापना उपाग होने पर भी भगवती आदि का सूचन उसमे नही किया गया है। इसके विपरीत भगवती मे प्रज्ञापना का सूचन है। इसका मूल कारण यह है कि प्रज्ञापना मे जिन विषयो की चर्चाएँ की गई है, उन विषयो का उसमे सागोपाग वर्णन है।

महायान बौद्धो मे 'प्रज्ञापारमिता' ग्रन्थ का अत्यधिक महत्त्व है। अतः अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता का भी अपरनाम 'भगवती' मिलता है।[४१]

प्रज्ञापना के रचयिता

प्रज्ञापना के मूल मे कही पर भी उसके रचयिता के नाम का निर्देश नही है। उसके प्रारम्भ मे मगल के पश्चात् दो गाथाएँ है। उनकी व्याख्या आचार्य हरिभद्र और आचार्य मलयगिरी दोनो ने की है। किन्तु वे उन गाथाओ को प्रक्षिप्त मानते हैं। उन गाथाओ मे स्पष्ट उल्लेख है—यह श्यामाचार्य की रचना है। आचार्य मलयगिरी ने श्यामाचार्य के लिए 'भगवान्' विशेषण का प्रयोग किया है।[४२] आर्य श्याम वाचक वश के थे। वे पूर्वश्रुत मे निष्णात थे। उन्होने प्रज्ञापना की रचना मे विशिष्ट कला प्रदर्शित की, जिसके कारण अग और उपाग मे उन विषयो की चर्चा के लिए प्रज्ञापना देखने का सूचन किया है। नन्दी-स्थविरावली मे सुधर्मा से लेकर क्रमश आचार्यों की परम्परा का उल्लेख है। उसमे ग्यारहवा नाम 'वन्दिमो हारिय च सामज्ज' है। हारित गोत्रीय आर्य बलिस्सह के शिष्य आर्य स्वाति थे। आर्य स्वाति भी हारित गोत्रीय परिवार के थे। आचार्य श्याम आर्य स्वाति के शिष्य थे।[४३] किन्तु प्रज्ञापना की प्रारम्भिक प्रक्षिप्त गाथा मे आर्य श्याम को वाचक वश का बताया है और साथ ही तेवीसवे पट्ट पर भी बताया है। आचार्य मलयगिरि ने भी उनको तेवीसवी आचार्यपरम्परा पर माना है। किन्तु

---

४१ शिक्षा समुच्चय, पृ १०४-११२, २००

४२ (क) भगवान् आर्यश्यामोऽपि इत्थमेव सूत्र रचयति (टीका, पत्र ७२)
(ख) भगवान् आर्यश्यामपठति (टीका, पत्र ४७)
(ग) सर्वेषामपि प्रावचनिकसूरीणा मतानि भगवान् आर्यश्याम उपदिष्टवान् (टीका, पत्र ३८५)
(घ) भगवदार्यश्यामप्रतिपत्तौ (टीका, पत्र-३८५)

४३. हारियगोत्त साइ च, वदिमो हारिय च सामज्ज ॥२६   (नन्दी स्थविरावली)

सुधर्मा से लेकर श्यामाचार्य तक उन्होने नाम नही दिये हैं। पट्टावलियो के अध्ययन से यह भी परिज्ञात होता है कि कालकाचार्य नाम के तीन आचार्य हुए है। एक का वीर निर्वाण ३७६ मे स्वर्गवास हुआ था।[४४] द्वितीय गर्दभिल्ल को नष्ट करने वाले कालकाचार्य हुए। उनका समय वीरनिर्वाण ४५३ है।[४५] तृतीय कालकाचार्य, जिन्होने सवत्सरी महापर्व पचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनाया था, उनका समय वीरनिर्वाण ९९३ है।[४६]

इन तीन कालकाचार्यों मे प्रथम कालकाचार्य 'श्यामाचार्य' के नाम से प्रसिद्ध है। ये अपने युग के महा-प्रभावक आचार्य थे। उनका जन्म वीरनिर्वाण २८० (विक्रम पूर्व १९०) है। ससार से विरक्त होकर वीरनिर्वाण ३०० (विक्रम पूर्व १७०) मे उन्होने श्रमण दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा ग्रहण के समय उनकी अवस्था बीस वर्ष की थी। अपनी महान् योग्यता के आधार पर वीरनिर्वाण ३३५ (विक्रमपूर्व १३५) मे उन्हे युग-प्रधानाचार्य के पद से विभूषित किया गया था।[४७]

इन तीन कालकाचार्यों मे प्रथम कालकाचार्य ने, जिन्हे श्यामाचार्य भी कहते है, प्रज्ञापना जैसे विशालकाय सूत्र की रचना कर अपने विशद वैदुष्य का परिचय दिया था।[४८] अनुयोग की दृष्टि से प्रज्ञापना द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत है। प्रज्ञापना को समग्र श्रमण-सघ ने आगम के रूप मे स्वीकार किया। यह आचार्य श्याम की निर्मल नीति और हार्दिक विश्वास का द्योतक है। उनका नाम श्याम था पर विशुद्धतम चारित्र की आराधना से वे अत्यन्त समुज्ज्वल पर्याय के धनी थे। पट्टावलियो मे उनका तेवीसवाँ स्थान पट्ट-परम्परा मे नही है। अन्तिम कालकाचार्य प्रज्ञापना के कर्त्ता नही है, क्योकि नन्दीसूत्र, जो वीरनिर्वाण ९९३ के पहले रचित है, उसमे प्रज्ञापना को आगम-सूची मे स्थान दिया है। अत अब चिन्तन करना है कि प्रथम और द्वितीय कालकाचार्य मे से कौन प्रज्ञापना के रचयिता है? डॉ उमाकान्त का अभिमत है कि यदि दोनो कालकाचार्यों को एक माना जाये तो ग्यारहवे पाट पर जिन श्यामाचार्य का उल्लेख है, वे और गर्दभिल्ल राजा को नष्ट करने वाले कालकाचार्य ये दोनो एक सिद्ध होते है। पट्टावली मे जहाँ उन्हे भिन्न-भिन्न गिना है, वहाँ भी एक तिथि वीर-सवत् ३७६ है और दूसरे की तिथि वीर-सवत् ४५३ है। वैसे देखे तो इनमे ७७ वर्ष का अन्तर है। इसलिए चाहे जिसने प्रज्ञा-पना की रचना की हो प्रथम या द्वितीय अथवा दोनो एक ही हो तो भी विक्रम के पूर्व होने वाले कालकाचार्य (श्यामाचार्य) थे इतना तो निश्चित रूप मे कहा जा सकता है।

---

४४ (क) आद्यः प्रज्ञापनाकृत् इन्द्रस्य अग्रे निगोद-विचारवक्ता श्यामाचार्यपरनामा। स तु वीरात् ३७६ वर्षैर्जातः।
—(खरतरगच्छीय पट्टावली)

(ख) धर्मसागरीय पट्टावली के अनुसार -एक कालक जो वीरनिर्वाण ३७६ मे मृत्यु को प्राप्त हुए।

४५ 'पन्नवणासुत्त'—पुण्यविजयजी म, प्रस्तावना पृष्ठ २२

४६ (क) पृथ्वीचन्द्रसूरि विरचित कल्पसूत्र टिप्पणक, सूत्र २९१ की व्याख्या।

(ख) कल्पसूत्र की विविध टीकाएँ।

४७ सिरिवीराओ गएसु पणतीसहिएसु तिसय (३३५) वरिसेसु।
पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ ५५ ॥

(रत्नसचय प्रकरण, पत्राक ३२)

४८ निज्जूढा जेण तया पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा।
तेवीसइमो पुरिसो पवरो सो जयइ सामज्जो ॥ १८८ ॥

परम्परा की दृष्टि से आचार्य श्याम की अधिक प्रसिद्धि निगोद-व्याख्याता के रूप में रही है। एक बार भगवान् सीमधर से महाविदेह क्षेत्र मे शक्रेन्द्र ने सूक्ष्मनिगोद की विशिष्ट व्याख्या सुनी। उन्होंने जिज्ञासा प्रस्तुत की—क्या भगवन्! भरतक्षेत्र मे भी निगोद सम्बन्धी इस प्रकार की व्याख्या करने वाले कोई श्रमण, आचार्य और उपाध्याय हैं? भगवान् सीमधर ने आचार्य श्याम का नाम प्रस्तुत किया। वृद्ध ब्राह्मण के रूप मे शक्रेन्द्र आचार्य श्याम के पास आये। आचार्य के ज्ञानबल का परीक्षण करने के लिए उन्होने अपना हाथ उनके सामने किया। हस्तरेखा के आधार पर आचार्य श्याम ने देखा—वृद्ध ब्राह्मण की आयु पल्योपम से भी अधिक है। उनकी गम्भीर दृष्टि उन पर उठी और कहा—तुम मानव नही, अपितु शक्रेन्द्र हो। शक्रेन्द्र को आचार्य श्याम के प्रस्तुत उत्तर से सतोष प्राप्त हुआ। उन्होने निगोद के सम्बन्ध मे अपनी जिज्ञासा रखी। आचार्य श्याम ने निगोद का सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण कर शक्रेन्द्र को आश्चर्याभिभूत कर दिया। शक्रेन्द्र ने कहा—जैसा मैंने भगवान् सीमधर से निगोद का विवेचन सुना, वैसा ही विवेचन आपके मुखारविन्द से सुनकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। देव की अद्‌भुत रूपसम्पदा को देखकर कोई शिष्य निदान न कर ले, इस दृष्टि से भिक्षाचर्या मे प्रवृत्त मुनिमण्डल के आगमन से पहले ही शक्रेन्द्र श्यामाचार्य की प्रशसा करता हुआ जाने के लिए उद्यत हो गया।

ज्ञान के साथ अह न आये, यह असम्भव है। महाबली, विशिष्ट साधक बाहुबली और कामविजेता आर्य स्थूलभद्र मे भी अहकार आ गया था, वैसे ही श्यामाचार्य भी अहकार से ग्रसित हो गये। उन्होने कहा—तुम्हारे आगमन के बाद मेरे शिष्य विना किसी साकेतिक चिह्न के किस प्रकार जान पायेंगे? आचार्यदेव के सकेत मे शक्रेन्द्र ने उपाश्रय का द्वार पूर्वाभिमुख से पश्चिमाभिमुख कर दिया। जब आचार्य श्याम के शिष्य भिक्षा लेकर लौटे तो द्वार को विपरीत दिशा मे देखकर विस्मित हुए। इन्द्र के आगमन की प्रस्तुत घटना प्रभावकचरित मे कालकसूरि प्रबन्ध मे आचार्य कालक के साथ दी है। विशेषावश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि प्रभृति ग्रन्थो मे आर्य रक्षित के साथ यह घटना दी गई है।

परम्परा की दृष्टि से निगोद की व्याख्या करने वाले कालक और श्याम ये दोनो एक ही आचार्य है, क्योकि कालक और श्याम ये दोनो शब्द एकार्थक हैं। परम्परा की दृष्टि से वीरनिर्वाण ३३५ मे वे युगप्रधान आचार्य हुए और ३७६ तक जीवित रहे। यदि प्रज्ञापना उन्ही कालकाचार्य की रचना है तो वीरनिर्वाण ३३५ मे ३७६ के मध्य की रचना है। आधुनिक अनुसधान से यह सिद्ध है कि निर्युक्ति के पश्चात् प्रज्ञापना की रचना हुई है। नन्दीसूत्र मे जो आगम-सूची दी गई है, उसमे प्रज्ञापना का उल्लेख है। नन्दीसूत्र विक्रम सवत् ५२३ के पूर्व की रचना है। अतः इसके साथ प्रज्ञापना के उक्त समय का विरोध नही।

प्रज्ञापना और षट्खण्डागम : एक तुलना

आगमप्रभाकर पुण्यविजयजी म एव प दलसुख मालवणिया ने 'पन्नवणासुत्त' ग्रन्थ की प्रस्तावना मे प्रज्ञापनासूत्र और षट्खण्डागम की विस्तृत तुलना दी है। हम यहाँ उसी का सक्षेप मे सारांश अपनी दृष्टि से प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रज्ञापना श्वेताम्बरपरम्परा का आगम है तो षट्खण्डागम दिगम्बरपरम्परा का आगम है। प्रज्ञापना के रचयिता दशपूर्वधर श्यामाचार्य हैं तो षट्खण्डागम के रचयिता आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि हैं। दिगम्बर विद्वान् षट्खण्डागम की रचना का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी मानते हैं। यह ग्रन्थ छह खण्डो

मे विभक्त होने से 'षट्खण्डागम' के रूप मे विश्रुत है। ऐतिहासिक प्रमाणो से यह सिद्ध है कि पुष्पदन्त और भूतबलि से पूर्व श्यामाचार्य हुए थे। अत प्रज्ञापना षट्खण्डागम से बहुत पहले की रचना है।

दोनो ही आगमो का मूल स्रोत दृष्टिवाद है।[४९] दोनो ही आगमो का विषय जीव और कर्म का सैद्धान्तिक दृष्टि से विश्लेषण करना है। दोनो मे अल्पबहुत्व का जो वर्णन है, उसमे अत्यधिक समानता है, जिसे महादण्डक कहा गया है।[५०] दोनो मे गति-आगति प्रकरण मे तीर्थंकर, बलदेव एव वासुदेव के पदो की प्राप्ति के उल्लेख की समानता वस्तुत. प्रेक्षणीय है।[५१] दोनो मे अवगाहना, अन्तर आदि अनेक विषयो का समान रूप से प्रतिपादन किया गया है। प्रज्ञापना मे छत्तीस पद हैं, उनमे से २३वें, २७वें, ३५वे पद मे क्रमश प्रकृतिपद, कर्मपद, कर्मबधवेदपद, कर्मवेदबधपद, कर्मवेदवेदकपद और वेदनापद ये छह नाम हैं। षट्खण्डागम के टीकाकार वीरसेन ने षट्खण्डागम के जीवस्थान, क्षुद्रकबध, बधस्वामित्व, वेदना, वर्गणा और महाबध ये छह नाम दिये हैं। प्रज्ञापना के उपर्युक्त पदो मे जिन तथ्यो की चर्चाएँ की गई हैं, उन्ही तथ्यो की चर्चाएँ षट्खण्डागम मे भी की गई हैं।

दोनो ही आगमा मे गति आदि मार्गणास्थानो की दृष्टि से जीवो के अल्पबहुत्व पर चिन्तन किया गया है। प्रज्ञापना मे अल्पबहुत्व की मार्गणाओ के छब्बीस द्वार हैं जिनमे जीव और अजीव इन दोनो पर विचार किया गया है। षट्खण्डागम मे चौदह गुणस्थानो से सम्बन्धित गति आदि मार्गणाओ को दृष्टि मे रखते हुए जीवो के अल्पबहुत्व पर विचार किया गया है। प्रज्ञापना मे अल्पबहुत्व की मार्गणाओ के छब्बीस द्वार हैं तो षट्खण्डागम मे चौदह हैं। किन्तु दोनो के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि षट्खण्डागम मे वर्णित चौदह मार्गणा द्वार प्रज्ञापना मे वर्णित छब्बीस द्वारो मे चौदह के साथ पूर्ण रूप से मिलते हैं। जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है.—

---

४९ (क) अज्झयणमिणचित्त सुयरयण दिट्ठीवायणीसद।
जह वण्णिय भगवया, अहमवि तह वण्णइस्सामि॥ —प्रज्ञापनासूत्र, पृष्ठ १, गा ३

(ख) अग्रायणीयपूर्वस्थित-पचमवस्तुगतचतुर्थमहाकर्मप्राभृतकज्ञ सूरिर्धरसेननामाऽभूत्॥ १०४॥
कर्मप्रकृतिप्राभृतमुपसहार्यैव षड्भिरिह खण्डै॥ १३४॥ —श्रुतावतार-इन्द्रनन्दीकृत

(ग) भूतबलि-भयावदा जिणवालिदपासे दिट्ठविसदिसुत्तेण अप्पाउओत्ति अवगयजिणवालिदेण महाकम्मपयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्णबुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादिं काऊण गथरयणा कदा।

—षट्खण्डागम, जीवट्ठाण, भाग १, पृष्ठ ७१

५० अह भते! सव्वजीवप्पबहु महादडय वण्णइस्सामि सव्वत्थोवा गब्भवक्कतिया मणुस्सा सजोगी विसेसाहिया ९६, ससारत्था विसेसाहिया ९८, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८। —प्रज्ञापनासूत्र-३३४

तुलना करें—

'एत्तो सव्वजीवेसु महादडओ कादव्वो भवदि सव्वत्थोवा मणुस्सपज्जत्ता गब्भोववक्कतिया णिगोद-जीवा विसेसाहिया। -षट्खण्डागम, पुस्तक ७

५१. प्रज्ञापनासूत्र, सू० १४४४ से ६५

तुलना करें—

षट्खण्डागम, पुस्तक ६. सू ११६-२२०

प्रज्ञापना[52]	षट्खण्डागम[53]
१. दिशा	
२. गति	१. गति
३ इन्द्रिय	२. इन्द्रिय
४. काय	३. काय
५ योग	४ योग
६ वेद	५ वेद
७ कषाय	६ कषाय
८ लेश्या	१० लेश्या
९ सम्यक्त्व	१२ सम्यक्त्व
१० ज्ञान	७. ज्ञान
११ दर्शन	९ दर्शन
१२ सयम	८ सयम
१३ उपयोग	—
१४ आहार	१४. आहारक
१५ भाषक	—
१६ परित्त	—
१७ पर्याप्त	—
१८ सूक्ष्म	-
१९ सज्ञी	१३ सज्ञी
२० भव	११ भव्य
२१ अस्तिकाय	-
२२ चरिम	—
२३ जीव	—
२४ क्षेत्र	–
२५ बध	—
२६ पुद्गल	—

जैसे प्रज्ञापनासूत्र के बहुवक्तव्यता नामक तृतीय पद मे गति, प्रभृति मार्गणास्थानो की दृष्टि से छब्बीस द्वारो के अल्पबहुत्व पर चिन्तन करने के पश्चात् प्रस्तुत प्रकरण के अन्त मे "अह भते सव्वजीवप्पबहु महा-

---

५२ दिसि गति इदिय काए जोगे वेदे कसाया लेस्सा य।
सम्मत्त णाण दसण सजम उवओग आहारे ॥
भासग परित्त पज्जत्त सुहुम सण्णी भवत्थिए चरिमे।
जीवे य खेत्त बन्धे पोग्गल महदडए चेव ॥
—पन्नवणा ३, बहुवत्तव्वपय सूत्र २१२ गा १८०, १८१

५३ षट्खण्डागम, पुस्तक ७, पृ ५२०

दण्डय वत्तइस्सामि" कहा है, वैसे ही षट्खण्डागम मे भी चौदह गुणस्थानो मे गति आदि चौदह मार्गणास्थानो द्वारा जीवो के अल्पबहुत्व पर चिन्तन करने के पश्चात् प्रस्तुत प्रकरण के अन्त मे महादण्डक का उल्लेख किया है।[५४]

प्रज्ञापना मे जीव को केन्द्र मानकर निरूपण किया गया है तो षट्खण्डागम में कर्म को केन्द्र मानकर विश्लेषण किया गया है, किन्तु खुद्दाबध (क्षुद्रकबध) नामक द्वितीय खण्ड मे जीव बधन का विचार चौदह मार्गणा स्थानो के द्वारा किया गया है, जिसकी शैली प्रज्ञापना से अत्यधिक मिलती-जुलती है।

प्रज्ञापना[५५] की अनेक गाथाएँ षट्खण्डागम मे[५६] कुछ शब्दो के हेरफेर के साथ मिलती हैं। यहाँ तक कि आवश्यकनिर्युक्ति और विशेषावश्यक की गाथाओ से भी मिलती है।

इसी प्रकार प्रज्ञापना और षट्खण्डागम इन दोनो का प्रतिपाद्य विषय एक है, दोनो का मूल स्रोत भी एक है। तथापि भिन्न-भिन्न लेखक होने से दोनो के निरूपण की शैली पृथक्-पृथक् रही है। कही-कही पर तो षट्खण्डागम से भी प्रज्ञापना का निरूपण अधिक व्यवस्थित रूप से हुआ है। मेरा यहाँ पर यह तात्पर्य नही है कि षट्खण्डागम के लेखक आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि ने प्रज्ञापना की नकल की है, पर यह पूर्ण सत्य-तथ्य है कि प्रज्ञापना की रचना षट्खण्डागम से पहले हुई थी। अत उसका प्रभाव षट्खण्डागम के रचनाकार पर अवश्य ही पडा होगा।

जीवाजीवाभिगम और प्रज्ञापना

जीवाजीवाभिगम तृतीय उपाग है और प्रज्ञापनाचतुर्थ उपाग है। ये दोनो आगम अगबाह्य होने से स्थविरकृत हैं। जीवाजीवाभिगम स्थानाग अग का उपाग है तो प्रज्ञापना, समवायाग का। जीवाजीवाभिगम और प्रज्ञापना इन दोनो ही आगमो मे जीव और अजीव के विविध स्वरूपो का निरूपण किया गया है। इन दोनो मे प्रथम अजीव का निरूपण करने के पश्चात् जीव का निरूपण किया गया है। दोनो ही आगमो मे मुख्य अन्तर यह है कि जीवा-जीवाभिगम, स्थानाग का उपाग होने से उसमे एक से लेकर दश भेदो का निरूपण है। दश तक का निरूपण दोनो मे प्राय समान-सा है। प्रज्ञापना मे वह क्रम आगे बढता है। प्रश्न यह है कि प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम इन दोनो

---

५४ षट्खण्डागम, पुस्तक ७, पृ ७४५

५५ समय वक्कताण, समय तेसिं सरीर निव्वत्ती।
समय आणुग्गहण, समय ऊसास—नीसासे॥
एक्कस्स उ ज गहण, बहूण साहारणाण त चेव।
ज बहुयाण गहण समासओ त पि एगस्स॥
साहारणमाहारो, साहारणमाणुपाण गहण च।
साहारणजीवाण, साहारणलक्खण एय॥ प्रज्ञापना, गा० ९७-१०१

५६. तुलना करे
साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहण च।
साहारणजीवाण, साहारणलक्खण भणिद।
एयस्स अणुग्गहण बहूणसाहारणाणमेयस्स।
एयस्स ज बहूण समासदो त पि होदि एयस्स॥
आवश्यकनिर्युक्ति—गा० ३१ से और विशेषावश्यकभाष्य गा० ६०४ से तुलना करें -
षट्खण्डागम पुस्तक १३, गाथा सूत्र ४ से ९, १२, १३, १५, १६

आगमो मे ऐतिहासिक दृष्टि से पहले किसका निर्माण हुआ ? जीवाजीवाभिगम मे अनेक स्थलो पर प्रज्ञापना के पदो का उल्लेख किया है। उदाहरण के रूप मे[५७] सूत्र—४, ५, १३, १५, २०, ३५, ३६, ३८, ४१, ८६, ९१, १००, १०६, ११३, ११७, ११८, १२०, १२१, १२२, इनके अतिरिक्त राजप्रश्नीयसूत्र का उल्लेख भी सूत्र—१०९, ११० मे हुआ है और औपपातिकसूत्र का उल्लेख सूत्र १११ मे हुआ है। इन सूत्रो के उल्लेख से यह जिज्ञासा सहज रूप से हो सकती है कि इन आगमो के नाम वल्लभीवाचना के समय सुविधा की दृष्टि से उसमे रखे गये है या स्वय आगम रचयिता स्थविर भगवान् ने रखे हैं ? यदि लेखक ने ही रखे हैं तो जीवाजीवाभिगम की रचना प्रज्ञापना के बाद की होनी चाहिए।

उत्तर मे निवेदन है कि जीवाजीवाभिगम आगम की रचनाशैली इस प्रकार की है कि उसमें क्रमश जीव के भेदो का निरूपण है। उन भेदो मे जीव की स्थिति, अन्तर, अल्पबहुत्व आदि का वर्णन है। सम्पूर्ण आगम दो विभागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम विभाग मे अजीव और ससारी जीवो के भेदो का वर्णन है, तो दूसरे विभाग मे सम्पूर्ण ससारी और सिद्ध जीवो का निरूपण है। एक भेद से लेकर दश भेदो तक का उसमे निरूपण हुआ है। किन्तु प्रज्ञापना मे विषयभेद के साथ निरूपण करने की पद्धति भी पृथक् है और वह छत्तीस पदो में निरूपित है। केवल प्रथम पद मे ही जीव और अजीव का भेद किया गया है। अन्य शेष पदो मे जीवो का स्थान, अल्पबहुत्व, स्थिति, आदि का क्रमश. वर्णन है। एक ही स्थान पर जीवों की स्थिति आदि का वर्णन प्राप्त है। पर जीवाजीवाभिगम मे उन सभी विषयो की चर्चा एक साथ नही है। जीवाजीवाभिगम से प्रज्ञापना मे वस्तुविचार का आधिक्य भी रहा हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रज्ञापना की रचना से पूर्व जीवाजीवाभिगम की रचना हुई है। अब रहा प्रज्ञापना के नाम का उल्लेख जीवाजीवाभिगम मे हुआ है, उसका समाधान यही है कि प्रज्ञापना मे उन विषयो की चर्चा विस्तार से हुई है। इसी कारण से प्रज्ञापना का उल्लेख भगवती आदि अग-साहित्य मे भी हुआ है और यह उल्लेख आगमलेखन के युग का है।

आगम प्रभावक पुण्यविजयजी म का यह भी मन्तव्य है कि जैसे आचाराग, सूत्रकृताग आदि प्राचीन आगमो मे मगलाचरण नही है वैसे ही जीवाजीवाभिगम मे भी मगलाचरण नही है। इसलिए उसकी रचना प्रज्ञापना से पहले की है। प्रज्ञापना के प्रारम्भ मे मगलाचरण किया गया है। इसलिए वह जीवाजीवाभिगम से बाद की रचना है।[६०]

मंगलाचरण : एक चिन्तन

मगलाचरण आगमयुग मे नही था। आगमकार अपने अभिधेय के साथ ही आगम का प्रारम्भ करते थे। आगम स्वय मगलस्वरूप होने के कारण उसमे मगलवाक्य अनिवार्य नही माना गया। आचार्य वीरसेन और आचार्य जिनसेन ने कषायपाहुड की जयधवला टीका मे लिखा है-- आगम मे मगलवाक्य का नियम नही है। क्योंकि परमागम मे ध्यान को केन्द्रित करने से नियम से मगल का फल सम्प्राप्त हो जाता है।[६१] यही कारण है कि आचार्य गुणधर ने अपने कषायपाहुड ग्रन्थ मे मगलाचरण नही किया।[६२]

---

५७ देखिए, सूत्र सख्या के लिए जीवाभिगम, देवचद-लालाभाई द्वारा प्रकाशित ई० सन् १९१९ की आवृत्ति

६० देखिए, पन्नवणासुत्त, भाग २, प्रका महावीर जैन विद्यालय बम्बई, प्रस्तावना पृष्ठ १४-१५

६१ एत्थ पुण णियमो णत्थि, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मगलफलोवलभादो।

—कसायपाहुड, भाग १, गाथा १, पृष्ठ ९

६२. एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठ गुणहरभट्टाराएण गथस्सादीए ण मगल कय।

—कसायपाहुड, भाग १, गाथा १, पृष्ठ ९

द्वादशागी मे केवल भगवतीसूत्र को छोडकर अन्य किसी भी आगम के प्रारम्भ मे मगलवाक्य नही है। वैसे ही उपाग मे प्रज्ञापना के प्रारम्भ मे मगलगाथाएँ आई है। उन गाथाओ मे सर्वप्रथम सिद्ध को नमस्कार किया गया है। उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है। प्रज्ञापना की प्राचीनतम जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उन सभी प्रतियो मे पचनमस्कार महामत्र है। प्रज्ञापना के टीकाकार आचार्य हरिभद्र और आचार्य मलयगिरि ने पचनमस्कार महामत्र की व्याख्या नही की है। इस कारण आगमप्रभावक पुण्यविजयजी म , प दलसुखभाई मालवणिया आदि का अभिमत है कि प्रज्ञापना के निर्माण के समय नमस्कारमहामत्र उसमे नही था। किन्तु लिपिकर्त्ताओ ने प्रारम्भ मे उसे सस्थापित किया हो। षट्खण्डागम मे भी आचार्य वीरसेन के अभिमतानुसार पचनमस्कार महामत्र का निर्देश है।

प्रज्ञापना मे प्रथम सिद्ध को नमस्कार कर उसके पश्चात् अरिहत को नमस्कार किया है, जबकि पच-नमस्कर महामत्र मे प्रथम अरिहत को नमस्कार है और उसके पश्चात् सिद्ध को। उत्तराध्ययन आदि आगम साहित्य मे यह स्पष्ट उल्लेख है कि तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करते समय सिद्धो को नमस्कार करते हैं। इस दृष्टि से जैनपरम्परा मे प्रथम सिद्धो को नमस्कार करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। तीर्थंकर अर्थात् अरिहत प्रत्यक्ष उपकारी होने से पचनमस्कार महामत्र मे उन्हे प्रथम स्थान दिया गया है। ई पूर्व महाराज खारवेल, जो कलिगाधिपति थे, उन्होने जो शिलालेख उट्टकित करवाये, उनमे प्रथम अरिहत को नमस्कार किया गया है और उसके बाद सिद्ध को।

मूर्धन्य मनीषियो का यह अभिमत है कि जब तक तीर्थ की सस्थापना नही हो जाती, तब तक सिद्धो को प्रथम नमस्कार किया जाता है और जब तीर्थ की स्थापना हो जाती है, तब सन्निकट के उपकारी होने से प्रथम अरिहन्त को और उसके पश्चात् सिद्धो को नमस्कार करने की प्रथा प्रारम्भ हुई होगी। प्राचीनतम ग्रन्थो मे मगलाचरण की यह पद्धति प्राप्त होती है। इसका यह अर्थ नही कि निश्चित रूप से ऐसा ही क्रम रहा हो। वन्दन का जहाँ तक प्रश्न है, वह साधक की भावना पर अवलम्बित है। तीर्थंकरो के अभाव मे तीर्थंकर-परम्परा का प्रबल प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्य और उपाध्याय है, अत वे भी वन्दनीय माने गये और आचार्य, उपाध्याय पद के अधिकारी साधु हैं, इसलिए वे भी पाचवे पद मे नमस्कार के रूप मे स्वीकृत हुए हो।

पचपरमेष्ठीनमस्कार महामत्र का निर्माण किसने किया ? यह प्रश्न सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति मे समुपस्थित किया गया है। उत्तर मे निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने यह समाधान किया है कि पचपरमेष्ठीनमस्कार महामत्र सामायिक का ही एक अग है। अत सर्वप्रथम पचपरमेष्ठियो को नमस्कार कर सामायिक करना चाहिए।[63] नमस्कारमहामत्र उतना ही पुराना है, जितना सामायिकसूत्र। सामायिक के अर्थकर्ता तीर्थंकर हैं और सूत्रकर्ता गणधर हैं।[64] इसलिए नमस्कारमहामत्र के भी अर्थकर्ता तीर्थंकर हैं और उसके सूत्रकर्ता गणधर है।

द्वितीय प्रश्न यह है कि पचनमस्कार यह आवश्यक का ही एक अश है या यह अश दूसरे स्थान से इसमे स्थापित किया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर भी जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य मे स्पष्ट रूप से दिया है कि आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे पचनमस्कार महामत्र को पृथक् श्रुतस्कध के रूप मे नही गिना है।

---

६३ कयपचनमोक्कारो करेइ सामाइयति सोऽभिहितो।
सामाइयगमेव य ज सो सेस अतो वोच्छ ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १०२७

६४ (क) विशेपावश्यकभाष्य, गाथा १५४४
(ख) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ८९, ९०

तथापि यह स्पष्ट है कि यह सूत्र है और प्रथम मंगल भी है, इसीलिए नमस्कारमहामंत्र केवल आवश्यकसूत्र का ही अंश नही, किन्तु सर्वश्रुत का आदिमगल रूप भी है। किसी भी श्रुत का पाठ ग्रहण करते समय नमस्कार करना आवश्यक है। आचार्य भद्रबाहु ने नमस्कारमहामत्र की उत्पत्ति, अनुत्पत्ति की गहराई से चर्चा विविध नयों की दृष्टि से की है।[६५] आचार्य जिनभद्र ने तो अपने विस्तृत भाष्य में दार्शनिक दृष्टि से शब्द की नित्य-अनित्यता की चर्चा कर नयदृष्टि से उस पर चिन्तन किया है। इस महामत्र के रचयिता अज्ञात हैं। एक प्राचीन आचार्य ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है—

"आगे चौबीसी हुई अनन्ती, होसी बार अनन्त।
नवकार तणी कोई आदि न जाणे, यूं भाख्यो भगवन्त।।"

महानिशीथ, जिसके उद्धारक आचार्य हरिभद्र माने जाते हैं, उसमे महामत्र के उद्धारक आर्य वज्रस्वामी माने गये हैं और आचार्य हरिभद्र के बाद होने वाले धवला टीकाकार वीरसेन आचार्य की दृष्टि मे नमस्कार के कर्त्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं।[६६] आचार्य पुष्पदन्त का अस्तित्वकाल वीरनिर्वाण की सातवी शताब्दी (ई पहली शताब्दी) है। हम पूर्व ही बता चुके है कि खारवेल के शिलालेख, जो ई पूर्व १५२ हैं, उसमे "नमो अरहताण, नमो सव्वसिद्धाण," ये पद प्राप्त होते हैं। इसमे यह स्पष्ट है कि नमस्कारमहामत्र का अस्तित्व आचार्य पुष्पदन्त से बहुत पहले था। श्वेताम्बर-परम्परा की दृष्टि से नमस्कारमहामत्र के रचयिता तीर्थंकर और गणधर हैं। जैसा कि आवश्यकनिर्युक्ति से स्पष्ट है।

अस्तिकाय : एक चिन्तन

प्रज्ञापना के प्रथम पद मे ही जीव और अजीव के भेद और प्रभेद बताकर फिर उन भेद और प्रभेदो की चर्चाएँ अगले पदो मे की है। प्रथम पद मे अजीव के सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण है। अजीव का निरूपण रूपी और अरूपी इन दो भेदो में करके रूपी मे पुद्गल द्रव्य का निरूपण किया है और अरूपी मे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि के रूप मे अजीव द्रव्य का वर्णन किया गया है। किन्तु प्रस्तुत आगम मे इन भेदो का वर्णन करते समय अस्तिकाय शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उनके स्थान पर द्रव्य, तत्त्व और पदार्थ शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है जो आगम की प्राचीनता का प्रतीक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनो को देश और प्रदेश इन भेदो मे विभक्त किया है। किन्तु अस्तिकाय शब्द का अर्थ कही पर भी मूल आगम मे नही दिया गया है। अद्धा-समय के साथ अस्तिकाय शब्द व्यवहृत नही हुआ है। इससे धर्मास्तिकाय आदि के साथ अद्धा समय का जो अन्तर है, वह स्पष्ट होता है। प्रस्तुत आगम मे जीव के साथ अस्तिकाय शब्द का प्रयोग नही हुआ है परन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि जीव के प्रदेश नही है, क्योकि प्रज्ञापना के पाचवे पद में जीव के प्रदेशो पर चिन्तन किया गया है। प्रथम पद मे जिनको अजीव और जीव के मौलिक भेद कहे हैं, उन्हे ही पाचवे पद मे जीवपर्याय और अजीवपर्याय कहा है। तेरहवे पद मे उन्ही को परिणाम नाम से प्रतिपादित किया है।

अजीव के अरूपी और रूपी ये दो भेद बताकर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और अद्धा समय इन चार को अरूपी अजीव के अन्तर्गत लिया गया है। धर्म, अधर्म और आकाश के स्कन्ध, देश और प्रदेश ये

---

६५ (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ६४४ से ६४६
(ख) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३३३५ से ३३३८ तक

६६ षट्खण्डागम, धवला टीका, भाग , १पृष्ठ ४१ तथा भाग २, प्रस्तावना पृष्ठ ३३ से ४१

प्रत्येक के विभाग किये गये हैं। यहाँ पर देश का अर्थ धर्मास्तिकाय आदि का बुद्धि के द्वारा कल्पित दो तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग है और प्रदेश का अर्थ धर्मास्तिकाय आदि का बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश जिसका पुनः विभाग न हो सके, निर्विभाग विभाग प्रदेश है। धर्मास्तिकाय आदि के समग्र प्रदेश का समूह स्कन्ध है। 'अद्धा' काल को कहते हैं, अद्धारूप समय अद्धासमय है। वर्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है। अतीत और अनागत के समय या तो नष्ट हो चुके होते हैं या उत्पन्न नहीं हुए होते हैं। अत काल मे देश-प्रदेशो के सघात की कल्पना नही है। असख्यातसमय आदि की समूहरूप आवलिका की कल्पना व्यावहारिक है।

रूपी अजीव के अन्तर्गत पुद्गल को लिया गया है। उसके स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु पुद्गल ये चार प्रकार है। पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानयुक्त होता है। पाच वर्ण के बीस भेद, दो गध के छियालीस भेद, पाच रस के सौ भेद, आठ स्पर्श के एक सौ चौरासी भेद, पाच सस्थान के सौ भेद, इस तरह रूपी अजीव के पाच सौ तीस भेद और अरूपी अजीव के तीस भेद का निरूपण हुआ है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से अस्तिकाय शब्द 'अस्ति' और 'काय' इन दो शब्दो के मेल से निर्मित हुआ है। अस्ति का अर्थ 'सत्ता' अथवा 'अस्तित्व' है और काय का अर्थ यहाँ पर शरीररूप अस्तिवान् के रूप मे नही हुआ है। क्योकि पचास्तिकाय मे पुद्गल के अतिरिक्त शेष अमूर्त है, अत यहाँ काय का लाक्षणिक अर्थ है - जो अवयवी द्रव्य हैं, वे अस्तिकाय हैं और जो निरवयव द्रव्य है, वह अनस्तिकाय है। अपर शब्दो मे यो कह सकते हैं जिसमे विभिन्न अश या हिस्से है, वह अस्तिकाय है। यहाँ यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि अखण्ड द्रव्यो मे अश या अवयव की कल्पना करना कहाँ तक तर्कसगत है? क्योकि धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनो एक एक है, अविभाज्य और अखण्ड हैं। अत उनके अवयवी होने का तात्पर्य क्या है? कायत्व का अर्थ 'सावयत्व' यदि हम मानते हैं तो एक समस्या यह उपस्थित होती है कि परमाणु तो अविभाज्य, निरश और निरवयव है तो क्या वह अस्तिकाय नही है? परमाणु पुद्गल का ही एक विभाग है और फिर भी उसे अस्तिकाय माना है। इन सभी प्रश्नो पर जैन मनीषियो ने चिन्तन किया है। उन्होने उन सभी प्रश्नो का समाधान भी किया है। यह सत्य है कि धर्म, अधर्म और आकाश अविभाज्य और अखण्ड द्रव्य है पर क्षेत्र की दृष्टि से वे लोकव्यापी है। इसलिए क्षेत्र की अपेक्षा से सावयवत्व की अवधारणा या विभाग की कल्पना वैचारिक स्तर पर की गई है। परमाणु स्वय मे निरश अविभाज्य और निरवयव है पर परमाणु स्वय कायरूप नही है, पर जब वह परमाणु स्कन्ध का रूप धारण करता है तो वह कायत्व और सावयवत्व को धारण कर लेता है। इसलिए परमाणु मे भी कायत्व का सद्भाव माना है।

अस्तिकाय और अनस्तिकाय इस प्रकार के वर्गीकरण का एक आधार बहुप्रदेशत्व भी माना गया है। जो बहुप्रदेश द्रव्य है, वे अस्तिकाय है और एक प्रदेश द्रव्य अनस्तिकाय हैं। यहाँ भी यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनो द्रव्य स्वद्रव्य की अपेक्षा से तो एकप्रदेशी है, चूँकि वे अखण्ड है। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र ने इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए स्पष्ट लिखा है धर्म, अधर्म और आकाश मे बहुप्रदेशत्व द्रव्य की अपेक्षा से नही है अपितु क्षेत्र की अपेक्षा से है।[६७] क्षेत्र की दृष्टि से भी धर्म और अधर्म को असख्यप्रदेशी कहा है और आकाश को अनन्तप्रदेशी कहा है। इसलिए उपचार से उनमे कायत्व की अवधारणा की गई है। पुद्गल परमाणु की अपेक्षा से नही, किन्तु स्कन्ध की अपेक्षा से बहुप्रदेशी है और अस्तिकाय भी बहुप्रदेशत्व की दृष्टि से है। परमाणु स्वय पुद्गल का एक अश है। यहाँ पर कायत्व का अर्थ विस्तारयुक्त होना है। विस्तार की प्रस्तुत अवधारणा क्षेत्र की अवधारणा पर अवलम्बित है। जो द्रव्य

---

६६ यावन्मात्र आकाश अविभागि पुद्गलावष्टब्धम्।
त खलु प्रदेश जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम्॥

— द्रव्यसग्रह सस्कृत छाया २७

विस्तार रहित हैं। वे अनस्तिकाय हैं। विस्तार से यहाँ यह तात्पर्य है—जो द्रव्य जितने-जितने क्षेत्र का अवगाहन करता है, वही उसका विस्तार है।

एक जिज्ञासा यह भी हो सकती है कि कालद्रव्य लोकव्यापी है, फिर उसे अस्तिकाय क्यो नही माना गया ? उत्तर यह है कि कालाणु लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित है। किन्तु हरएक कालाणु अपने-आप मे स्वतत्र है। स्निग्धता और रूक्षतागुण के अभाव मे उनमें बध नही होता, अत वे परस्पर निरपेक्ष रहते है। बध न होने से उनके स्कन्ध नही बनते। स्कन्ध के अभाव मे प्रदेश-प्रचयत्व की कल्पना भी नही हो सकती। कालद्रव्य मे स्वरूप और उपचार—इन दोनो ही प्रकार से प्रदेशप्रचय की कल्पना नही हो सकती।

आकाशद्रव्य सभी द्रव्यो को अवगाहन देता है। यदि आकाशद्रव्य विस्तृत नही होगा तो वह अन्य द्रव्यो को स्थान नही दे सकेगा। उसके अभाव मे अन्य द्रव्य रह नही सकेंगे। धर्मद्रव्य गति का माध्यम है। वह उतने ही क्षेत्र मे विस्तृत और व्याप्त है, जिसमे गति सम्भव है। यदि गति का माध्यम स्वय विस्तृत नही है तो उसमे गति किस प्रकार सम्भव हो सकती है ? उदाहरण मे रूप मे – जितने क्षेत्र मे जल होगा, उतने ही क्षेत्र मे मछली की गति सम्भव है। वैसे ही धर्मद्रव्य का प्रसार जिस क्षेत्र मे होगा, उस क्षेत्र में पुद्गल और जीव की गति सम्भव होगी, इसलिए धर्मद्रव्य को लोक तक विस्तृत माना है। यही स्थिति अधर्मद्रव्य की भी है। अधर्म द्रव्य के कारण ही परमाणु स्कन्ध के रूप मे बनते हैं। स्कन्ध के रूप मे परमाणुओ को सगठित रखने का कार्य अधर्मद्रव्य का है। आत्मा के असख्यात प्रदेश हैं। उन असख्यात प्रदेशो को शरीर तक सीमित रखने का कार्य अधर्मद्रव्य का है। विश्व की जो व्यवस्था पद्धति है, उसको सुव्यवस्थित रखने मे अधर्मद्रव्य का महत्त्वपूर्ण हाथ है, इसलिए अधर्मद्रव्य को भी लोकव्यापी माना है। अधर्मद्रव्य के अभाव मे परमाणु छितर-बितर हो जायेंगे। उनकी किसी भी प्रकार की रचना सम्भव नही होगी। जहाँ-जहाँ पर गति का माध्यम है, वहाँ-वहाँ पर स्थिति का माध्यम भी आवश्यक है, जो गति का नियत्रण करता है। विश्व की गति को और विश्व को सतुलित बनाये रखने के लिए अधर्मद्रव्य को लोकव्यापी माना है। इसलिए उसे अस्तिकाय मे स्थान दिया है। पुद्गलद्रव्य मे भी विस्तार है। वह परमाणु से स्कन्ध के रूप मे परिवर्तित होता है। परमाणु मे स्निग्धता और रूक्षता गुण रहे हुए हैं, जिनके कारण वह स्कन्धरचना करने मे सक्षम है। इसीलिए उपचार से उसमे कायत्व रहा हुआ है। पुद्गलद्रव्य के कारण ही विश्व मे मूर्त्तता है। यदि पुद्गलद्रव्य न हो तो मूर्त्त विश्व की सम्भावना ही नष्ट हो जाये। जीवद्रव्य भी विस्तार युक्त है। शरीर के विस्तार की तरह आत्मा का भी विस्तार होता है। केवलिसमुद्घात के समय आत्मा के असख्यात प्रदेश सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त हो जाते हैं। इसीलिए उसे अस्तिकाय मे स्थान दिया है। हम यह पूर्व मे बता चुके हैं कि काल के अणु स्निग्धता और रूक्षतागुण के अभाव मे स्कन्ध या सघात रूप नही बनते। हम अनादि भूत से लेकर अनन्त भविष्य तक का अनुभव तो करते हैं, किन्तु उनमे कायत्व का आरोपण नही किया जा सकता। काल का लक्षण वर्तना केवल वर्तमान मे ही है। वर्तमान केवल एक समय का है, जो बहुत ही सूक्ष्म है। इसलिए काल मे प्रदेशप्रचय नही मान सकते और प्रदेशप्रचय के अभाव मे वह अस्तिकाय नही है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि सभी द्रव्यो का विस्तारक्षेत्र समान नही है। आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनो मे है। धर्म और अधर्म द्रव्य केवल लोक तक सीमित हैं। पुद्गल और जीव का विस्तार क्षेत्र एक सदृश नही है। पुद्गलपिण्ड का जितना आकार होगा, उतना ही उसका विस्तार होगा। जीव भी जितना शरीर विस्तृत होगा, उतना ही वह आकार को ग्रहण करेगा। उदाहण के रूप मे एक चीटी मे भी

आत्मा के असख्यात प्रदेश हैं तो एक हाथी मे भी। उससे स्पष्ट है कि सभी अस्तिकायो का विस्तारक्षेत्र समान नही है।

भगवतीसूत्र मे[६८] प्रदेशदृष्टि मे अल्पबहुत्व को लेकर सुन्दर वर्णन है। वहाँ पर यह प्रतिपादित किया गया है कि अन्य द्रव्यो की अपेक्षा धर्म और अधर्म द्रव्य सबसे न्यून हैं। वे असख्यप्रदेशी है और लोकाकाश तक सीमित हैं। धर्म और अधर्मद्रव्य की अपेक्षा जीवद्रव्य के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक हैं, कारण यह है कि धर्म और अधर्म द्रव्य एक एक ही हैं, परन्तु जीवद्रव्य अनन्त हैं और हर एक जीवद्रव्य के असख्यात प्रदेश हैं। जीवद्रव्य के प्रदेशो की अपेक्षा पुद्गलद्रव्य के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक है, क्योकि प्रत्येक जीव के एक-एक आत्मप्रदेश पर अनन्तानन्त कर्मों की वर्गणाये है, जो पुद्गल हैं। पुद्गल की अपेक्षा भी काल के प्रदेश अनन्तगुणा अधिक हैं, क्योकि प्रत्येक जीव और पुद्गल की वर्तमान, भूत और भविष्य की अपेक्षा अनन्त पर्याये हैं। कालद्रव्य की अपेक्षा भी आकाशद्रव्य के प्रदेशो की सख्या सबसे अधिक है। अन्य सभी द्रव्य लोक तक ही सीमित हैं, जबकि आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनो मे स्थित है।

प्रश्न यह उद्बुद्ध हो सकता है कि लोकाकाश असख्यातप्रदेशी है। उन असख्यातप्रदेशी लोकाकाश मे अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु किस प्रकार समा सकते हैं? एक आकाशप्रदेश मे एक पुद्गलपरमाणु ही रह सकता है तो असख्यातप्रदेशी लोकाकाश मे असख्य पुद्गलपरमाणु ही रह सकते हैं।

उत्तर मे निवेदन है कि एक आकाश प्रदेश मे अनन्त परमाणु रहे, उसमे किसी भी प्रकार की बाधा नही है। क्योकि परमाणु और परमाणुस्कन्ध मे विशिष्ट अवगाहन शक्ति रही हुई है। यहाँ पर अवगाहन शक्ति का अर्थ है दूसरो को अपने मे समाहित करने की क्षमता। जैसे आकाश द्रव्य अपने अवगाहन गुण के कारण अन्य द्रव्यो को स्थान देता है वैसे ही परमाणु और स्कन्ध भी अपनी अवगाहनशक्ति के कारण अन्य परमाणुओ और स्कन्धो को अपने मे स्थान देते हैं। यथा – एक आवास मे विद्युत का एक बल्ब अपना आलोक प्रसारित कर रहा है, उस आवास मे अन्य हजार बल्ब लगा दिये जायें तो उनका भी प्रकाश उस आवास मे समाहित हो जायेगा। इसी प्रकार शब्दध्वनि को भी ले सकते हैं। जैन दृष्टि से एक आकाशप्रदेश मे अनन्तानन्त ध्वनियाँ रही हुई हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रकाश और ध्वनि पौद्गलिक होने से मूर्त्त है। जब मूर्त्त मे भी एक ही आकाशप्रदेश मे अनन्त परमाणु के स्कन्ध रह सकते हैं तो अमूर्त्त के लिए तो प्रश्न ही नही। चाहे पुद्गलपिण्ड कितना भी घनीभूत क्यो न हो, उसमे दूसरे अन्य अनन्त परमाणु और पुद्गलपिण्डो को अपने मे अवगाहन देने की शक्ति रही हुई है। बहुत कुछ यह सम्भव है कि परमाणु के उत्कृष्ट आकार की दृष्टि से यह बताया गया हो कि एक आकाशप्रदेश एक परमाणु के आकार का है। गति की दृष्टि से जघन्य गति एक परमाणु के काल की है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो एक परमाणु जितने काल मे एक आकाश प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश मे पहुँचता है, वह एक समय है, जो काल का सबसे छोटा विभाग है। उत्कृष्ट गति की दृष्टि से एक परमाणु एक समय मे चौदह राजू लोक की यात्रा कर लेता है।

आधुनिक युग मे विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है। उसकी अपूर्व प्रगति विज्ञो को चमत्कृत कर रही है। विज्ञान ने भी दिक् (स्पेस्), काल (Time) और पुद्गल (Matter) इन तीन तत्त्वो को विश्व का मूल आधार माना है। इन तीन तत्त्वो के बिना विश्व की सरचना सम्भव नही। आइन्सटीन ने सापेक्षवाद के द्वारा

---

६८ भगवतीसूत्र १३।५८

यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दिक् और काल ये गतिसापेक्ष हैं। गतिसहायक द्रव्य, जिसे धर्मद्रव्य कहा गया है; विज्ञान ने उसे 'ईथर' कहा है। आधुनिक अनुसधान के पश्चात् ईथर का स्वरूप भी बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। अब ईथर भौतिक नही, अभौतिक तत्त्व बन गया है, जो धर्मद्रव्य की अवधारणा के अत्यधिक सन्निकट है। पुद्गल तो विश्व का मूल आधार है ही, भले ही वैज्ञानिक उसे स्वतत्र द्रव्य न मानते हो किन्तु वैज्ञानिक धीरे-धीरे नित्य नूतन अन्वेषणा कर रहे हैं। सम्भव है, निकट भविष्य में पुद्गल और जीव का स्वतंत्र अस्तित्व मान्य करें।

सिद्ध : एक चिन्तन

प्रज्ञापना के प्रथम पद मे अजीवप्रज्ञापना के पश्चात् जीवप्रज्ञापना के सम्बन्ध मे चिन्तन किया है। जीव के ससारी और सिद्ध ये दो मुख्य भेद किये हैं। जो जीते हैं, प्राणो को धारण करते हैं वे जीव हैं। प्राण के द्रव्यप्राण और भावप्राण ये दो प्रकार हैं। पाच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल और कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य, ये दस द्रव्यप्राण हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ये चार भावप्राण हैं। ससारी जीव द्रव्य और भाव प्राणों से युक्त होता है और सिद्ध जीव केवल भावप्राणो से युक्त होते हैं।[६९]

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियो मे परिभ्रमण करने वाले ससारसमापन्न हैं। वे ससारवर्ती जीव हैं। जो ससारपरिभ्रमण से रहित हैं, वे असंसारसमापन्न—सिद्ध जीव हैं। वे जन्म-मरण रूप समस्त दु खो से मुक्त होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। सिद्धो के पन्द्रह भेद यहाँ पर प्रतिपादित किये गये हैं। ये पन्द्रह भेद समय, लिंग, वेश और परिस्थिति आदि दृष्टि से किये गये हैं।

तीर्थ की सस्थापना के पश्चात् जो जीव सिद्ध होते हैं, वे "तीर्थसिद्ध" हैं। तीर्थ की सस्थापना के पूर्व या तीर्थ का विच्छेद होने के पश्चात् जो जीव सिद्ध होते हैं, वे 'अतीर्थसिद्ध' हैं। जैसे भगवान् ऋषभदेव के तीर्थ की स्थापना के पूर्व ही माता मरुदेवी सिद्ध हुईं। मरुदेवी माता का सिद्धि गमन तीर्थ की स्थापना के पूर्व हुआ था। दो तीर्थंकरो के अन्तराल काल मे यदि शासन का विच्छेद हो जाय और ऐसे समय मे कोई जीव जातिस्मरण आदि विशिष्ट ज्ञान से सिद्ध होते हैं तो वे 'तीर्थव्यवच्छेद' सिद्ध कहलाते हैं। ये दोनो प्रकार के सिद्ध अतीर्थसिद्ध की परिगणना मे आते हैं। जो तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं, वे 'तीर्थंकरसिद्ध' कहलाते हैं। सामान्य केवली 'अतीर्थंकरसिद्ध' कहलाते हैं। ससार की निस्सारता को समझ कर बिना उपदेश के जो स्वय ही सबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं वे 'स्वयबुद्धसिद्ध' हैं। नन्दीचूर्णि मे 'तीर्थंकर' और "तीर्थंकरभिन्न" ये दो प्रकार के स्वयबुद्ध बताये हैं। यहाँ पर स्वयबुद्ध से तीर्थंकर भिन्न स्वयबुद्ध ग्रहण किये गए हैं।[७०]

जो वृषभ, वृक्ष बादल प्रभृति किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं वे "प्रत्येकबुद्धसिद्ध" हैं। प्रत्येकबुद्ध समूहबद्ध गच्छ मे नही रहते। वे नियमत. एकाकी ही विचरण करते हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वयबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनो को परोपदेश की आवश्यकता नही होती, तथापि दोनो मे मुख्य अन्तर यह है कि स्वयबुद्ध मे जातिस्मरण आदि ज्ञान होता है जबकि प्रत्येकबुद्ध केवल बाह्य निमित्त से प्रबुद्ध होता है। जो बोध प्राप्त आचार्य के द्वारा बोधित होकर सिद्ध होते हैं, वे 'बुद्धबोधितसिद्ध' हैं। स्त्रीलिंग मे सिद्ध होने वाली भव्यात्माएँ 'स्त्रीलिंगसिद्ध' कहलाती हैं।

---

६९ प्रज्ञापनासूत्र, मलयगिरि वृत्ति

७०. ते दुविहा सयबुद्धा—तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्तेहिं अहिगारो। —नन्दी अध्ययनचूर्णि

श्वेताम्बर साहित्य मे स्त्री का निर्वाण माना है, जबकि दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थो मे स्त्री के निर्वाण का निषेध किया है। दिगम्बरपरम्परा मान्य षट्खण्डागम मे मनुष्य-स्त्रियो के गुणस्थान के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है कि "मनुष्यस्त्रियाँ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि सयतासयत और सयत गुणस्थानो मे नियम से पर्याप्त होती हैं।[७१] इसमे 'सजत' शब्द को सम्पादको ने टिप्पण मे दिया है, जिसका साराश यह है कि मनुष्य स्त्री को 'सयत' गुणस्थान हो सकता है और सयत गुणस्थान होने पर स्त्री मोक्ष मे जा सकती है। प्रस्तुत प्रश्न को लेकर दिगम्बर समाज मे प्रबल विरोध का वातावरण समुत्पन्न हुआ, तब ग्रन्थ के सम्पादक डॉ० हीरालालजी जैन आदि ने पुन उसका स्पष्टीकरण षट्खण्डागम के तृतीय भाग की प्रस्तावना मे किया, किन्तु जब विज्ञो ने मूडबिद्री [कर्नाटक] में षट्खण्डागम की मूल प्रति देखी तो उसमे भी 'सजद' शब्द मिला है।

वट्टकेरस्वामिविरचित मूलाचार मे आर्यिकाओ के आचार का विश्लेषण करते हुए कहा है—जो साधु अथवा आर्यिका इस प्रकार आचरण करते हैं, वे जगत मे पूजा, यश व सुख को पाकर मोक्ष को पाते हैं।[७२] इसमे भी आर्यिकाओ के मोक्ष मे जाने का उल्लेख है, यद्यपि यह स्पष्ट नही है कि वे उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करती हैं अथवा तत्पश्चात् के भव मे। बाद के दिगम्बर आचार्यों ने अपने ग्रन्थो मे और प्राचीन ग्रन्थो की टीकाओ मे स्पष्ट रूपसे स्त्रीनिर्वाण का निषेध किया है।

जो पुरुष शरीर से सिद्ध होते हैं, वे 'पुरुषलिंग सिद्ध' हैं। नपुसक शरीर से सिद्ध होने है, वे 'नपुसकलिंग सिद्ध' है। जो तीर्थंकर प्रतिपादित श्रमण पर्याय मे सिद्ध होते हैं, वे 'स्वलिंगसिद्ध' हैं। परिव्राजक आदि के वेष से सिद्ध होने वाले 'अन्यलिंगसिद्ध' हैं। जो गृहस्थ के वेष मे सिद्ध होते हैं, वे 'गृहिलिंगसिद्ध' है। एक समय मे अकेले ही सिद्ध होने वाले 'एकसिद्ध' हैं। एक ही समय मे एक से अधिक सिद्ध होने वाले 'अनेकसिद्ध' है। सिद्ध के इन पन्द्रह भेदो के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी सिद्धो के भेद प्रस्तुत किए हैं।

सिद्धो के जो पन्द्रह प्रकार प्रतिपादित किये हैं, वे सभी तीर्थसिद्ध और अतीर्थसिद्ध इन दो प्रकारो मे समाविष्ट हो जाते है। विस्तार से निरूपण करने का मूल आशय सिद्ध बनने के पूर्व उस जीव की क्या स्थिति थी, यह बतलाना है। प्रज्ञापना के टीकाकार ने भी इसे स्वीकार किया है।

जिस प्रकार जैन आगम साहित्य मे सिद्धो के प्रकार बताये है, वैसे ही बौद्ध आगम मे स्थविरवाद की दृष्टि से बोधि के तीन प्रकार बताये है—सावकबोधि [श्रावकबोधि], पच्चेकबोधि, [प्रत्येकबोधि], सम्मासबोधि [सम्यक् सबोधि]। श्रावकबोधि उपासक को अन्य के उपदेश से जो बोधि प्राप्त होती है उसे श्रावकबोधि कहा है। श्रावकसम्बुद्ध भी अन्य को उपदेश देने का अधिकारी है।[७४]

जैन दृष्टि से प्रत्येकबोधि को अन्य के उपदेश की आवश्यकता नही होती, वैसे ही पच्चेकबोधि को भी दूसरे के उपदेश की जरूरत नही होती। उसका जीवन दूसरो के लिए आदर्श होता है।

---

७१ सम्मामिच्छाइट्ठि असजदसम्माइट्ठि सजादासजद (अत्र सजद इति पाठशेष. प्रतिभाति)— ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियओ।

षट्खण्डागम भाग १ सूत्र ९३ पृ ३३२, प्रका० सेठ लक्ष्मीचन्द शितावराय जैन साहित्योद्धारक फड कार्यालय, अमरावती (बरार), सन् १९३९

७२ ते जगपुज्ज कित्ति सुह च लद्धूण सिज्झति —मूलाचार ४/१९६ पृ १६८

७४. विनयपिटक, महावग्ग १।२१

सम्मासंबोधि स्वयं के प्रबल प्रयास से बोधि प्राप्त करता है और अन्य व्यक्तियो को भी वह बोधि प्रदान कर सकता है। उसकी तुलना तीर्थंकर से की जा सकती है।[७५]

आर्य और अनार्य : एक विश्लेषण

सिद्धो के भेद-प्रभेदो की चर्चा करने के पश्चात् ससारी जीवों के विविध भेद बतलाये हैं। इन भेद-प्रभेदों का मूल आधार इन्द्रियाँ हैं। ससारी जीवो के इन्द्रियो की दृष्टि से एक, द्वि त्रि, चतु: पचइन्द्रिय इस प्रकार पाच भेद किए गए हैं, फिर एकेन्द्रिय मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय आदि के विविध भेद-प्रभेदो की प्रज्ञापना की गई है। एकेन्द्रिय के पश्चात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय का वर्णन है। पचेन्द्रिय मे भी नारक एव तिर्यञ्च पचेन्द्रियो का वर्णन करने के पश्चात् मनुष्य का वर्णन किया है। मनुष्य के समूर्च्छिम और गर्भज, ये दो भेद किए हैं। समूर्च्छिम मनुष्य औपचारिक मनुष्य हैं, वे गर्भज मनुष्य के मल, मूत्र, कफ आदि अशुचि मे ही उत्पन्न होते है, इसीलिए उन्हे मनुष्य कहा गया है। गर्भज मनुष्य के कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज, ये तीन प्रकार है।

जीवो की सूक्ष्मता, पर्याप्तक एव अपर्याप्तक दृष्टि से भी जीवो के भेद-प्रभेद प्रतिपादित हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक जितने भी जीव हैं, वे समूर्च्छिम हैं। तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और मनुष्य ये गर्भज और समूर्च्छिम दोनो प्रकार के होने है। नारक और देव का जन्म उपपात है। समूर्च्छिम और नरक के जीव एकान्त रूप मे नपुसक होते हैं। देवो मे स्त्री और पुरुष दोनो होने हैं, नपुसक नही होते। गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यञ्च मे तीनो लिंग होते है। इस तरह लिंगभेद की दृष्टि से जीवो के भेद किए गए हैं। नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति, ये भेद गति की दृष्टि से किए गये है।

पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच महाविदेह—ये पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं। यहाँ के मानव कर्म करके अपना जीवनयापन करते हैं, एतदर्थ इन भूमियो मे उत्पन्न मानव कर्मभूमिज कहलाते हैं। कर्मभूमिज मनुष्य के भी आर्य और म्लेच्छ ये दो प्रकार हैं। आर्य मनुष्य के भी ऋद्धिप्राप्त व अनृद्धिप्राप्त ये दो प्रकार हैं। प्रज्ञापना मे ऋद्धिप्राप्त आर्य के अरिहन्त, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, चारण और विद्याधर यह छ प्रकार बताये है।[७६]

तत्त्वार्थवार्तिक मे ऋद्धिप्राप्त आर्य के बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्र, ये आठ प्रकार बतलाये हैं।[७७]

प्रज्ञापना मे अनृद्धिप्राप्त आर्य के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कुलार्य, कर्मार्य, शिल्पार्य, भाषार्य, ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य, ये नौ प्रकार बतलाये हैं।[७८]

---

७५ (क) उपासकजनालकार की प्रस्तावना, पृष्ठ १६
(ख) उपासकजनालकार लोकोत्तरसम्पत्ति निर्देस, पृष्ठ ३४०
(ग) पण्णवणासुत्त द्वितीय भाग, प्रस्तावना पृष्ठ ३६ —पुण्यविजयजी

७६ प्रज्ञापना १ सूत्र १००

७७. तत्त्वार्थवार्तिक ३।३६, पृष्ठ २०१

७८. प्रज्ञापना १।१०१

तत्त्वार्थवार्तिक मे अनृद्धिप्राप्त आर्यों के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य और दर्शनार्य, ये पाच प्रकार प्ररूपित हैं।[७९]

तत्त्वार्थभाष्य मे अनृद्धिप्राप्त आर्यों के क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कुलार्य, शिल्पार्य, कर्मार्य, एव भाषार्य, ये छ प्रकार उल्लिखित हैं।[८०]

प्रज्ञापना की दृष्टि से साढे पच्चीस देशो मे रहने वाले मनुष्य क्षेत्रार्य हैं। इन देशो मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उत्पन्न हुए, इसलिए इन्हे आर्य जनपद कहा है।[८१] प्रवचनसारोद्धार मे भी आर्य की यही परिभाषा दी गई है।[८२] जिनदासगणी महत्तर ने लिखा है कि जिन प्रदेशो मे यौगलिक रहते थे, जहाँ पर हाकार आदि नीतियो का प्रवर्त्तन हुआ था, वे प्रदेश आर्य हैं और शेष अनार्य।[८३] इस दृष्टि से आर्य जनपदो की सीमा बढ जाती है। तत्त्वार्थभाष्य मे लिखा है कि चक्रवर्ती विजयो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी आर्य होते हैं।[८४] तत्त्वार्थवार्तिक मे काशी, कौशल प्रभृति जनपदो मे उत्पन्न मनुष्यो को क्षेत्रार्य कहा है।[८५] इसका अर्थ यह है कि बगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, उडीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान और पजाब तथा पश्चिमी पजाब एव सिन्ध, ये कोई पूर्ण तथा कोई अपूर्ण प्रान्त आर्यक्षेत्र मे थे और शेष प्रान्त उस सीमा मे नही थे। दक्षिणापथ आर्यक्षेत्र की सीमा मे नही था। उत्तर भारत मे आर्यों का वर्चस्व था, सभवत इसी दृष्टि से सीमानिर्धारण किया गया हो। प्रज्ञापना मे साढे पच्चीस देशो की जो सूची दी गई है उसमे अवन्ती का उल्लेख नही है जबकि अवन्ती श्रमण भगवान् महावीर के समय एक प्रसिद्ध राज्य था। वहाँ का चन्द्रप्रद्योत राजा था। भगवान् महावीर सिन्धु-सौवीर जब पधारे थे तो अवन्ती से ही पधारे थे। सिन्धुसौवीर से अवन्ती अस्सी योजन दूर था।[८६] दक्षिण मे जैनधर्म का प्रचार था फिर भी उन क्षेत्रो को आर्यक्षेत्रो की परिगणना मे नही लिया गया है। यह विज्ञो के लिए चिन्तनीय प्रश्न है। यह भी बहुत कुछ सभव है, जिन देशो को आर्य नही माना गया है सभव है वहाँ पर आर्यपूर्व जातियो का वर्चस्व रहा होगा।

प्रज्ञापना मे जाति-आर्य मनुष्यो के अम्बष्ठ, कलिन्द, विदेह, हरित, वेदक और चुचुण ये छ प्रकार बताये गये हैं।

कुलार्य मानव के भी उग्र, भोग, राजस्व, इक्ष्वाकु, ज्ञात और कौरव यह छ प्रकार बतलाये गये है।

तत्त्वार्थवार्तिक मे जाति-आर्य और कुल-आर्य इन दोनो को भिन्न नही माना है। इक्ष्वाकु, जात और भोज प्रभृति कुलो मे समुत्पन्न मानव जात्यार्य होते हैं।[८७] तत्त्वार्थभाष्य मे इक्ष्वाकु, विदेह, हरि, अम्बष्ठ, ज्ञात, कुरु,

---

७९ तत्त्वार्थवार्तिक ३।३६, पृष्ठ २००

८० तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

८१ इत्थुप्पत्ति जिणाण, चक्कीण राम कण्हाण। -प्रज्ञापना १।११७

८२ यत्र तीर्थंकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं, शेषमनार्यम्। —प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४४६

८३ जेसु केसुवि पएसेसु मिहुणगादि पइट्ठिएसु हक्काराइया नीई परूढा ते आरिया, सेसा अणारिया।

—आवश्यकचूर्णि

८४, भरतेषु अर्धषड्विंशतिजनपदेषु जाता. शेषेषु च चक्रवर्तिविजयेषु। —तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

८५ क्षेत्रार्या काशिकोशलादिषु जाता। —तत्त्वार्थवार्तिक ३।३६, पृष्ठ २००

८६ गच्छाचार, पृष्ठ १२२

८७. इक्ष्वाकुज्ञातभोजादिषु कुलेषु जाता जात्यार्या:। —तत्त्वार्थवार्तिक ३।३६ पृष्ठ २००

बुम्बु, नाल, उग्र, भोग, राजन्य आदि को जात्यार्य और कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा तीसरे, पाचवे और सातवें कुलकर से लेकर शेष कुलकरो से उत्पन्न विशुद्ध वश वाले कुल-आर्य है।[८८]

प्रज्ञापना मे दूष्यक—वस्त्र के व्यापारी, सूत के व्यापारी, कपास या रुई के व्यापारी, नाई, कुम्हार आदि आर्यकर्म करने वाले मानवो को कर्मार्य माना है। शिल्पार्य मानव के तुण्णाग (रफू करने वाले), तन्तुवाय (जुलाहे), पुस्तकार, लेप्यकार, चित्रकार आदि अनेक प्रकार हैं। तत्त्वार्थवार्तिक मे कर्मार्य और शिल्पार्य को एक ही माना है। उन्होंने कर्मार्य के सावद्य-कर्मार्य, अल्पसावद्य-कर्मार्य, असावद्य-कर्मार्य यह तीन भेद किए हैं। असि, मषि, कृषि, विद्या, शिल्प और वणिक्कर्म करने वाले सावद्य कर्मार्य है। श्रावक-श्राविकाएँ अल्पसावद्य-कर्मार्य हैं, सयमी श्रमण असावद्यकर्मार्य हैं।[८९] तत्त्वार्थभाष्य मे यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, प्रयोग, कृषि, लिपि, वाणिज्य और योनि सपोषण से आजीविका करने वाले बुनकर, कुम्हार, नाई, दर्जी और अन्य अनेक प्रकार के कारीगरो को शिल्पार्य माना है।[९०]

अर्द्धमागधी भाषा बोलने वाले तथा ब्राह्मी लिपि मे लिखने वाले को प्रज्ञापना मे भाषार्य कहा है। तत्त्वार्थवार्तिक मे भाषार्य का वर्णन नही आया है। तत्त्वार्थभाष्य मे सभ्य मानवो की भाषा के नियत वर्णो, लोकरूढ, स्पष्ट शब्दो तथा पाच प्रकार के आर्यों के सव्यवहार का सम्यक् प्रकार से उच्चारण करने वाले को भाषार्य माना है।[९१] भगवान् महावीर स्वय अर्धमागधी भाषा बोलते थे।[९२] अर्धमागधी को देववाणी माना है।[९३]

सम्यग्ज्ञानी को ज्ञानार्य, सम्यग्दृष्टि को दर्शनार्य और सम्यक्चारित्री को चारित्रार्य माना गया है। ज्ञानार्य, दर्शनार्य, चारित्रार्य इन तीनो का सम्बन्ध धार्मिक जगत् से है। जिन मानवो को यह रत्नत्रय प्राप्त है, फिर वे भले ही किसी भी जाति के या कुल के क्यो न हो, आर्य हैं। रत्नत्रय के अभाव मे वे अनार्य हैं। आर्यो का जो विभाग किया गया है वह भौगोलिक दृष्टि से, आजीविका की दृष्टि से, जाति और भाषा की दृष्टि से किया गया है। साढे पच्चीस देशो को जो आर्य माना गया है, हमारी दृष्टि से उसका कारण यही हो सकता है कि वहा पर जैनधर्म और जैनसस्कृति का अत्यधिक प्रचार रहा है, इसी दृष्टि से उन्हे आर्य जनपद कहा गया हो। वैदिक परम्परा के विज्ञो ने अग-बग आदि जनपदो के विषय मे लिखा है—

"अग-बग-कलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रा विना गच्छन् पुन सस्कारमर्हति॥"

अर्थात्—अग (मुगेर-भागलपुर), बग (बगाल), कलिंग (उडीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड) और मगध (पटना गया आदि) मे तीर्थयात्रा के सिवाय जाने से फिर से उपनयनादि सस्कार करके शुद्ध होना पडता है।

---

८८ जात्यार्या इक्ष्वाकवो विदेहा हर्यम्बष्ठा ज्ञाता कुरवो बुम्बुनाला उग्रभोगा राजन्या इत्येवमादय:। कुलार्या - कुलकराश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा। ये चान्ये आतृतीयादापचमादासप्तमाद् वा कुलकरेभ्यो वा विशुद्धान्वय-प्रकृतय। - तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

८९. तत्त्वार्थवार्तिक ३।३६, पृष्ठ २०१

९० तत्त्वार्थभाष्य, ३।१५

९१. वही, ३।१५

९२. अद्धमागहाए भासाए भासइ अरिहा धम्मं। —औपपातिक सूत्र ५६

९३. देवा ण अद्धमागहाए भासाए भासति। —भगवती ५।४।१९१

कितने ही चिन्तकों का यह भी मानना है कि प्रज्ञापना और जीवाजीवाभिगम में क्षेत्र आदि की दृष्टि से जो आर्य और अनार्य का भेद प्रतिपादित है वह विभाजन आर्य और अनार्य जातियो के घुल-मिल जाने के पश्चात् का है। इसमे वर्ण और शरीरसस्थान के आधार पर यह विभाग नही हुआ है।[९४] सूत्रकृताग में वर्ण और शरीर के संस्थान की दृष्टि से विभाग किया है। वहाँ पर कहा गया है—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, इन चारो दिशाओ मे मनुष्य होते हैं। उनमे कितने ही आर्य होते हैं, तो कितने ही अनार्य होते हैं। कितने ही उच्च गोत्र वाले होते है तो कितने ही नीच गोत्र वाले, कितने ही लम्बे होते हैं तो कितने ही नाटे होते हैं; कितने ही श्रेष्ठ वर्ण वाले होते हैं तो कितने ही अपकृष्ट वर्ण वाले अर्थात् काले होते हैं, कितने ही सुरूप होते हैं, कितने ही कुरूप होते हैं।[९५] ऋग्वेद मे भी आर्य और आर्येतर ये दो विभाग मिलते हैं। अनार्य जातियो मे भी अनेक सपन्न जातिया थी; उनकी अपनी भाषा थी, अपनी सभ्यता थी, अपनी सस्कृति थी, अपनी सपदा और अपनी धार्मिक मान्यताएँ थी।[९६]

प्रज्ञापना मे कर्मभूमिज मनुष्यो के ही आर्य और म्लेच्छ ये दो भेद किए हैं।[९७] तत्त्वार्थभाष्य[९८] और तत्त्वार्थवार्तिक[९९] मे अन्तर्द्वीपज मनुष्यो के भी दो भेद किए हैं। म्लेच्छो की भी अनेक परिभाषाएँ बतायी गई हैं। प्रवचनसारोद्धार की दृष्टि से जो हेयधर्मों से दूर हैं और उपादेय धर्मों के निकट है वे आर्य हैं।[१००] जो हेयधर्म को ग्रहण किए हुए हैं वे अनार्य है। आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापनावृत्ति मे लिखा है कि जिनका व्यवहार शिष्टसम्मत नही है वे म्लेच्छ है।[१०१] प्रवचनसारोद्धार मे लिखा है --जो पापी है, प्रचड कर्म करने वाले है, पाप के प्रति जिनके अन्तर्मानस मे घृणा नही है, अकृत्य कार्यों के प्रति जिनके मन मे पश्चात्ताप नही है। 'धर्म' यह शब्द जिनको स्वप्न मे भी स्मरण नही आता. वे अनार्य है।[१०२] प्रश्नव्याकरण मे कहा गया है -विविध प्रकार के हिंसाकर्म म्लेच्छ मानव करते हैं।[१०३] आर्य और म्लेच्छो की जो ये परिभाषाएँ हैं ये जातिपरक और क्षेत्रपरक न होकर गुण की दृष्टि से हैं। कौटिल्यअर्थशास्त्र मे आर्य शब्द स्वतन्त्र नागरिक और दास परतत्र नागरिक के अर्थ मे व्यवहृत हुआ।[१०४]

प्रज्ञापना मे कर्मभूमिज मनुष्य का एक विभाग अनार्य यानी म्लेच्छ कहा गया है। अनार्य देशो मे समुत्पन्न लोग अनार्य कहलाते हैं। प्रज्ञापना मे अनार्य देशो के नाम इस प्रकार हैं -

---

९४ अतीत का अनावरण, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ १५५
९५ सूत्रकृताग २।१
९६. ऋग्वेद ७।६।३, १।१७६।३-४; ८।७०।११
९७. प्रज्ञापना १, सूत्र ९८
९८ तत्त्वार्थभाष्य, ३।१५
९९ तत्त्वार्थवार्तिक, ३।३६
१०० प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४१५
१०१ प्रज्ञापना १, वृत्ति
१०२ पावा य चडकम्मा, अणारिया निग्घिणा निरणुतावी।
धम्मोत्ति अक्खराइ, सुमिणे वि न नज्जए जाण।। —प्रवचनसारोद्धार, गाथा १५९६
१०३ प्रश्नव्याकरण, आश्रव द्वार १
१०४ मूल्येन चायत्व गच्छेत्। —कौटिल्य अर्थशास्त्र ३।१३।२२

१. शक (पश्चिम भारत का देश), २. यवन—यूनान, ३. चिलात (किरात), ४. शबर, ५. बर्बर, ६. काय, ७. मुरुण्ड, ८. ओड, ९ भटक (भद्रक) (दिल्ली और मथुरा के बीच यमुना के पश्चिम मे स्थित प्रदेश), १०, णिण्णग (निम्नग), ११. पक्कणिय (मध्य एशिया का एक प्रदेश प्रकण्व या परगना), १२. कुलक्ष, १३. गोड, १४ सिंहल (लका), १५ पारस (ईरान), १६. गोध, १७ क्रोंच, १८ अम्बष्ठ (चिनाव नदी के निचले भाग मे स्थित एक गणराज्य), १९ दमिल (द्रविड), २०. चिल्लल, २१. पुलिन्द, २२ हारोस, २३. दोब, २४ वोक्कण (अफगानिस्तान का उत्तरी-पूर्वी छोटा प्रदेश-वखान), २५ गन्धहारग (कन्धार), २६ पहलिय, २७ अज्झल, २८ रोम, २९ पास, ३० पउस, ३१ मलय, ३२ बन्धुय (बन्धुक), ३३ सूयलि, ३४ कोकणग, ३५ मेय, ३६ पल्हव, ३७ मालव, ३८ मग्गर, ३९ आभाषिक, ४० अणक्क (अनक्र), ४१. चीण (चीन), ४२ ल्हसिय (ल्हासा), ४३ खस, ४४ खासिय, ४५ णद्दर (नेहर) ४६ मोढ, ४७ डोबिलग, ४८ लओस, ४९ कक्केय, ५० पओस, ५१ अक्खाग, ५२ हूण, ५३, रोमक, ५४ मरु, ५५ मरुक।

प्रश्नव्याकरण[105] अधर्मद्वार मे भी कुछ परिवर्तन के साथ अनार्यो के नाम प्राप्त होते है। वहां यवन के बाद चिलाय नही है, भटक के पश्चात् णिण्णग नही है, पर तित्तीय है। तुलनात्मक दृष्टि से सक्षेप मे अन्तर इस प्रकार है—

प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण	प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण
३ चिलाय	०	२३ दोब	२१ डोब
८ ओड	७ उद	२४ वोक्कण	२२ पोक्कण
०	९ तित्तिय	२५ पहलिय	२४ बहलीय
१० णिण्णग	०	२७ अज्झल	२५ जल्ल
१३ गोड	१२ गौड	२९ पास	२७ मास
१६ गोध	१६ अन्ध आन्ध्र	३० पउस	२८ बउस
१८ अम्बड	०	३२ बन्धुय	३० चचुय
२० चिल्लल	१८ बिल्लल	३३ सूयलि	३१ चुलिया
२२ हारोस	२० अरोस	३६ पल्हव	३४ पण्हव

बहुत से नामो में भिन्नता है, ये भिन्न शब्द इस प्रकार हैं—

प्रज्ञापना	प्रश्नव्याकरण
३८ मग्गर	३६ महुर
४५ णद्दर	४३ णेहर
४६ मोंढ	४४ मरहठ
४८ लओस	४५ मुठिय
४९ पओस	४६ आरब
५१ कक्केय	४९ केकभ
५२ अक्खाग	४८ कुट्टण
५४ भरु	५२ रुस

प्रवचनसारोद्धार[106] मे अनार्य देशो के नाम इस प्रकार हैं—

१ शक, २ यवन, ३ शबर, ४ ४ बर्बर, ५ काय, ६ मरुण्ड, ७ अड्ड, ८ गोपा (गौड्ड), ९ पक्कणग, १० अरबाग, ११ हूण, १२ रोमक, १३ पारस, १४ खस, १५ खासिक, १६ दुम्बिलक, २७ लकुश, १८. बोक्कस, १९ भिल्ल, २० आन्ध्र (अन्ध्र) २१ पुलिन्द, २२ क्रोच, २३ भ्रमररुच, २४ कोर्पक २५. चीन, २६ चचुक, २७ मालव, २८ द्रविड, २९ कुलार्घ, ३० केकय, ३१ किरात, ३२ हयमुख, ३३ खरमुख, ३४. गजमुख, ३५ तुरंगमुख, ३६ मिण्ढकमुख, ३७ हयकर्ण, ३८ गजकर्ण।

१०५. प्रश्नव्याकरण, अधर्मद्वार, सूत्र ४

१०६. प्रवचनसारोद्धार, गाथा १५८३-१५८५

महाभारत के उपायन-पर्व मे भी कुछ नाम इसी तरह से प्राप्त होते हैं, जो निम्नानुसार हैं—

१ म्लेच्छ २ यवन ३. बर्बर ४. आन्ध्र ५. शक ६ पुलिन्द ७. औरणिक ८. कम्बोज ९. आभीर १० पल्हव ११ दरद १२ कक १३ खस १४ केकय १५ त्रिगर्त १६ शिबि १७ भद्र १८ हस कायन १९ अम्बष्ठ २० तार्क्ष्य २१ प्रह्व २२ वसाति २३ मौलिय २४ क्षुद्रमालवक २५ शौण्डिक २६ पुण्ड्र २७ शाणवत्य २८ कायव्य २९ दार्व ३०. शूर ३१ वैयमक ३२. उदुम्बर ३३ वाल्हीक ३४. कुदमान ३५ पौरक आदि।

इस प्रकार मानव जाति एक होकर भी उसके विभिन्न भेद हो गए हैं। पशु मे जिस प्रकार जातिगत भेद हैं, वैसे ही मनुष्य मे जातिगत भेद नही है। मानव सर्वाधिक शक्तिसपन्न और बौद्धिक प्राणी है। वह सख्या की दृष्टि से अनेक है पर जाति की दृष्टि से एक है। उपर्युक्त चर्चा मे जो भेद पतिपादित किये गये हैं, वे भौगोलिक और गुणो की दृष्टि से हैं।

जीवों का निवासस्थान

ससारी और सिद्ध के भेद और प्रभेद की चर्चा करने के पश्चात् उन जीवो के निवासस्थान के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है। इस चिन्तन का मूल कारण यह है कि आत्मा के परिमाण के सम्बन्ध मे उपनिषदो मे अनेक कल्पनाएँ है। इन सभी कल्पनाओ के अन्त मे ऋषियो की विचारधारा आत्मा को व्यापक मानने की ओर विशेष रही है।[१०७] प्राय सभी वैदिक दर्शनो ने आत्मा को व्यापक माना है। हाँ, आचार्य शकर और आचार्य रामानुज आदि ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार इसमे अपवाद है। उन्होने ब्रह्मात्मा को व्यापक और जीवात्मा को अणु-परिमाण माना है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे आत्मा को चावल या जौ के दाने के परिमाण माना है।[१०८] कठोपनिषद् मे आत्मा को 'अगुष्ठपरिमाण' का लिखा है[१०९] तो छान्दोग्योपनिषद् मे आत्मा को 'वालिश्त' परिमाण का कहा है।[११०] मैत्र्युपनिषद् मे आत्मा को अणु की तरह सूक्ष्म माना है।[१११] कठोपनिषद्[११२], छान्दोग्योपनिषद्[११३] और श्वेताश्वेतरोपनिषद्[११४] मे आत्मा को अणु से अणु और महान् से महान् भी कहा है।

साख्यदर्शन मे आत्मा को कूटस्थ नित्य माना है अर्थात् आत्मा मे किसी भी प्रकार का परिमाण या विकार नही होता है। ससार और मोक्ष आत्मा का नही प्रकृति का है।[११५] सुख-दु ख-ज्ञान, ये आत्मा के नही

१०७. (क) मुण्डक-उपनिषद् १।१।६
(ख) वैशेषिकसूत्र ७।१।१२
(ग) न्यायमजरी, पृष्ठ ४६८ (विजय)
(घ) प्रकरणपजिका, पृष्ठ १५८
१०८ बृहदारण्यक-उपनिषद्, ५।६।१
१०९ कठोपनिषद् २।२।१२
११० छान्दोग्योपनिषद् ५।१८।१
१११. मैत्र्युपनिषद् ६।३८
११२ कठोपनिषद् १।२।२०
११३ छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।३
११४ श्वेताश्वेतरोपनिषद् ३।२०
११५. साख्यकारिका ६२

किन्तु प्रकृति के धर्म हैं।[११६] इस तरह वह आत्मा को सर्वथा अपरिणामी मानता है। कर्तृत्व न होने पर भी भोग आत्मा में ही माना है।[११७] इस भोग के आधार पर आत्मा मे परिणाम की सभावना है, इसलिए कितने ही साख्य भोग को आत्मा का धर्म नही मानते।[११८] उन्होंने आत्मा को कूटस्थ होने के मन्तव्य की रक्षा की है। कठोपनिषद् आदि में भी आत्मा को कूटस्थ माना है।[११९]

जैनदर्शन मे आत्मा को सर्वव्यापक नही माना है, वह शरीर-प्रमाण-व्यापी है। उसमे सकोच और विकास दोनो गुण हैं। आत्मा को कूटस्थ नित्य भी नहीं माना है किन्तु परिणामी नित्य माना गया है। इस विराट् विश्व मे वह विविध पर्यायो के रूप मे जन्म ग्रहण करता है और नियत स्थान पर ही वह आत्मा शरीर धारण करता है। कौन सा जीव किस स्थान में है, इस प्रश्न पर चिन्तन करना आवश्यक हो गया तो प्रज्ञापना के द्वितीय पद मे स्थान के सम्बन्ध मे चिंतन किया है। स्थान भी दो प्रकार का है—एक स्थायी, दूसरा प्रासगिक। जन्म ग्रहण करने के पश्चात् मृत्युपर्यन्त जीव जिस स्थान पर रहता है, वह स्थायी स्थान है, स्थायी स्थान को आगमकार ने स्व-स्थान कहा है। प्रासगिक निवास स्थान उपपात और समुद्घात के रूप मे दो प्रकार का है।

जैनदृष्टि से जीव की आयु पूर्ण होने पर वह नये स्थान पर जन्म ग्रहण करता है। एक जीव देवायु को पूर्ण कर मानव बनने वाला है; वह जीव देवस्थान से चलकर मानवलोक मे आता है। बीच की जो उसकी यात्रा है, वह यात्रा स्वस्थान नही है; वह तो प्रासगिक यात्रा है, उस यात्रा को उपपातस्थान कहा गया है। दूसरा प्रासगिक स्थान समुद्घात है। वेदना, मृत्यु, विक्रिया प्रभृति विशिष्ट प्रसंगो पर जीव के प्रदेशो का जो विस्तार होता है वह समुद्घात है। समुद्घात के समय आत्मप्रदेश शरीरस्थान मे रहते हुए भी किसी न किसी स्थान मे बाहर भी समुद्घात-काल पर्यन्त रहते हैं। इसलिए समुद्घात की दृष्टि से जीव के प्रासगिक निवास स्थान पर विचार किया गया है। इस तरह द्वितीय पद मे स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान – तीनो प्रकार के स्थानो के सम्बन्ध मे चिंतन किया है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रथम पद मे निर्दिष्ट जीवभेदो मे से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदो के स्थानो पर चिंतन नही है, केवल मुख्य मुख्य भेद-प्रभेदो के स्थानो पर ही विचार किया है।

ससारी जीवो के लिए उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की दृष्टि से चिंतन किया गया है, पर सिद्धों के लिए स्वस्थान का ही चिंतन किया गया है। सिद्धो का उपपात नही होता। अन्य ससारी जीव के नाम, गोत्र, आयु आदि कर्मों का उदय होता है जिससे वे एक गति से दूसरी गति मे जाते हैं। सिद्ध कर्मों से मुक्त होते हैं। कर्मों के अभाव के कारण वे सिद्ध रूप मे जन्म नही लेते। जैनदृष्टि से जो जीव लोकान्त तक जाते हैं वे आकाशप्रदेशो को स्पर्श नही करते,[१२०] इसलिए सिद्धो का उपपातस्थान नही है। कर्मयुक्त जीव ही समुद्घात करते हैं, सिद्ध नही। इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में सिद्धो के स्वस्थान पर ही चिन्तन किया गया है।

एकेन्द्रिय जाति के जीव समग्रलोक मे व्याप्त हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पचेन्द्रिय जीव लोक के असख्यातवें भाग मे हैं। नारक, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देव के लिए पृथक्-पृथक् स्थानो का निर्देश

---

११६. साख्यकारिका ११
११७ साख्यकारिका १७
११८. सांख्यतत्त्वकौमुदी १७
११९ कठोपनिषद् १२।१८।१९
१२०. प्रज्ञापना मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक १०८

किया गया है और सिद्ध लोक के अग्रभाग मे अवस्थित हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना होगा कि जब छद्मस्थ मनुष्य समुद्घात करता है तो वह लोक के असख्यातवें भाग को स्पर्श करता है और जब केवली समुद्घात करते हैं तो वह सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करते है। जब मनुष्य के आत्मप्रदेश सम्पूर्ण लोक मे विस्तृत हो जाते हैं, उस समय उसकी आत्मा लोकव्याप्त हो जाती है।[१२१]

अजीवो के स्थान के सम्बन्ध मे विचार नही किया गया। ऐसा ज्ञात होता है- जैसे जीवो के प्रभेदो मे अमुक निश्चित स्थान की कल्पना कर सकते हैं, वैसे पुद्गल के सम्बन्ध मे नही। परमाणु व स्कन्ध समग्र लोकाकाश मे है किन्तु उनका स्थान निश्चित नही है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय ये दोनो समग्र लोकव्यापी है, अत उनकी चर्चा यहाँ नही की गई है।

संख्या की दृष्टि से चिन्तन

तीसरे पद मे जीव और अजीव तत्त्वो का सख्या की दृष्टि से विचार किया गया है। भगवान् महावीर के समय और तत्पश्चात् भी तत्त्वो का सख्या-विचार महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। एक ओर उपनिषदो के मत से सम्पूर्ण विश्व एक ही तत्त्व का परिणाम है तो दूसरी ओर साख्य के मत से जीव अनेक हैं किन्तु अजीव एक है। बौद्धो की मान्यता अनेक चित्त और अनेक रूप की है। इस दृष्टि ने जैनमत का स्पष्टीकरण आवश्यक था। वह यहाँ पर किया गया है। अन्य दर्शनो मे सिर्फ सख्या का निरूपण है, जबकि प्रस्तुत पद मे सख्या का विचार अनेक दृष्टियो मे किया गया है। मुख्य रूप से तारतम्य का निरूपण अर्थात् कौन किससे कम या अधिक है, इसकी विचारणा इस पद मे की गई है। प्रथम, दिशा की अपेक्षा से किस दिशा मे जीव अधिक और किस दिशा मे कम, इसी तरह जीवो के भेद-प्रभेद की न्यूनाधिकता का भी दिशा की अपेक्षा से विचार किया गया है। इसी प्रकार गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि से जीवो के जो-जो प्रकार होते है, उनमे सख्या का विचार करके अन्त मे समग्र जीवो के जो विविध प्रकार होते है, उन समग्र जीवो की न्यूनाधिक सख्या का निर्देश किया गया है।

इसमे केवल जीवो का ही नही किन्तु धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यो की भी परस्पर सख्या का तारतम्य निरूपण किया गया है। वह तारतम्य द्रव्यदृष्टि और प्रदेशदृष्टि से बताया गया है। प्रारम्भ मे दिशा को मुख्य करके सख्या-विचार है और बाद मे ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् लोक की दृष्टि मे समग्र जीवो के भेदो का सख्यागत विचार है। जीवो की तरह पुद्गलो की सख्या का अल्पबहुत्व भी उन उन दिशाओ मे व उन उन लोको मे बताया है। इसके सिवाय द्रव्य, प्रदेश और द्रव्यप्रदेश दृष्टियो से भी परमाणु और सख्या का विचार है। उसके बाद पुद्गलो की अवगाहना, कालस्थिति और उनकी पर्यायो की दृष्टि से भी सख्या का निरूपण किया गया है।

इस पद मे जीवो का अनेक प्रकार से वर्गीकरण करके अल्पबहुत्व का विचार किया है। इसकी सख्या की सूची पर से यह फलित होता है कि उस काल मे भी आचार्यों ने जीवो की सख्या का तारतम्य (अल्पबहुत्व) बताने का इस प्रकार जो प्रयत्न किया है, वह प्रशस्त है। इसमे बताया गया है कि पुरुषो मे स्त्रियो की सख्या— चाहे मनुष्य हो, देव हो या तिर्यञ्च हो अधिक मानी गई है। अधोलोक मे नारको मे प्रथम से सातवी नरक मे जीवो का क्रम घटता गया है अर्थात् सबसे नीचे के सातवें नरक मे सबसे कम नारक जीव है। इसके विपरीत क्रम

---

१२१ द्रव्यसग्रह टीका, ब्रह्मदेवकृत, १०

उर्ध्वलोक के देवो मे है, नीचे के देवलोको मे सबसे अधिक जीव हैं, अर्थात् सौधर्म मे सबसे अधिक और अनुत्तर विमानो मे सबसे कम हैं। परन्तु मनुष्यलोक (तिर्यक्लोक) के नीचे भवनवासी देव हैं। उनकी सख्या सौधर्म स अधिक है और उनसे ऊपर होने पर भी व्यन्तर देवो की सख्या अधिक और उनसे भी अधिक ज्योतिष्क हैं, जो व्यन्तरो से भी ऊपर हैं।

सबसे कम सख्या मनुष्यो की है। इसलिए यह भव दुर्लभ माना जाय यह स्वाभाविक है। इन्द्रियाँ जितनी कम उतनी जीवो की सख्या अधिक। अथवा ऐसा कह सकते हैं कि विकसित जीवो की अपेक्षा अविकसित जीवो की सख्या अधिक है। अनादिकाल से आज तक जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली है, ऐसे सिद्ध जीवो की सख्या भी एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा से कम ही है। ससारी जीवो की सख्या सिद्धों से अधिक ही रहती है। इसलिए यह लोक ससारी जीवो से कभी शून्य नही होगा, क्योकि प्रस्तुत पद मे जो सख्याएँ दी हैं उनमे कभी परिवर्तन नही होगा, ये ध्रुवसख्याएँ हैं।

सातवे नरक मे अन्य नरको की अपेक्षा सबसे कम नारक जीव हैं तो सबसे ऊपर देवलोक—अनुत्तर मे भी अन्य देवलोको की अपेक्षा सबसे कम जीव हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे अन्यन्त पुण्यशाली होना दुष्कर है, वैसे ही अन्यन्त पापी होना भी दुष्कर है। जीवो का जो क्रमिक विकास माना गया है उनके अनुसार तो निकृष्ट कोटि के जीव एकेन्द्रिय है। एकेन्द्रिय मे से ही आगे बढकर जीव क्रमश विकास को प्राप्त होते हैं।

एकेन्द्रियों और सिद्धो की सख्या अनन्त की गणना मे पहुँचती है। अभव्य भी अनन्त हैं और सिद्धो की अपेक्षा समग्र रूप मे ससारी जीवो की सख्या भी अधिक है और यह बिल्कुल सगत है, क्योकि भविष्य मे—अनागत काल मे—ससारी जीवो मे से ही सिद्ध होने वाले हैं। इसलिए वे कम हो तो ससार खाली हो जायेगा, ऐसा मानना पडेगा।

एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक क्रम से जीवो की सख्या घटती जाती है। यह क्रम अपर्याप्त जीवो मे तो बराबर बना रहता है किन्तु पर्याप्त अवस्था मे व्युत्क्रम मालूम पडता है। ऐसा क्यो हुआ है, यह विज्ञो के लिए विचारणीय और सशोधन का विषय है।

स्थितिचिन्तन

चौथे पद मे जीवो की स्थिति अर्थात् आयु का विचार है। जीवो की नारकादि रूप मे स्थिति-अवस्थिति कितने समय तक रहती है, उसकी विचारणा इसमे होने से इस का नाम 'स्थिति' पद दिया है।

जीव द्रव्य तो नित्य है परन्तु वह जो अनेक प्रकार के रूप—पर्याय—नानाविध जन्म धारण करता है, वे अनित्य हैं। इसलिए पर्यायें कभी तो नष्ट होती ही हैं। अतएव उनकी स्थिति का विचार करना आवश्यक है। वह प्रस्तुत पद मे किया गया है। जघन्य आयु कितनी और उत्कृष्ट आयु कितनी—इस तरह दो प्रकार से उसका विचार केवल ससारी जीवो और उनके भेदो को लेकर किया है। सिद्ध तो 'सादीया अपज्जवसिता' सादि-अनन्त होने से उनकी आयु का विचार नही किया गया है। अजीव द्रव्य की पर्यायो की स्थिति का विचार भी इसमे नही है। क्योकि उनकी पर्याय जीव की आयु की तरह मर्यादित काल मे रखी नही जा सकती है, इसलिए उसे छोड देना स्वाभाविक है।

प्रस्तुत पद मे प्रथम जीवो के सामान्य भेदो को लेकर उनकी आयु का निर्देश है। बाद मे उनके अपर्याप्त और पर्याप्त भेदो का निर्देश है। उदाहरणार्थ—पहले तो सामान्य नारक की आयु और उसके पश्चात् नारक के

अपर्याप्त और उसके बाद पर्याप्त की आयु का वर्णन है। इसी क्रम से प्रत्येक नारक आदि को लेकर सर्व प्रकार के आयुष्य का विचार किया गया है।

स्थिति की सूची के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पुरुष से स्त्री की आयु कम है। नारको और देवो का आयुष्य मनुष्यो और तिर्यंचो से अधिक है। एकेन्द्रिय जीवो मे अग्निकाय का आयुष्य सबसे न्यून है। यह प्रत्यक्ष है, क्योकि अग्नि अन्य जीवो की अपेक्षा शीघ्र बुझ जाती है। एकेन्द्रियो मे पृथ्वीकाय का आयुष्य सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय जीवो का आयुष्य कम मानने का 'क्या कारण है, यह विचारणीय है। फिर चतुरिन्द्रिय का आयुष्य अधिक है, परन्तु द्वीन्द्रिय से कम है, यह भी एक रहस्य है और शोध का विषय है।

प्रस्तुत पद मे अजीव की स्थिति का विचार नही है। उसका कारण यह प्रतीत होता है कि धर्म, अधर्म और आकाश तो नित्य है और पुद्गलो की स्थिति भी एक समय से लेकर असख्यात समय की है, जिसका वर्णन पाचवें पद मे है। इसलिए अलग से इसका निर्देश आवश्यक नही था। फिर, प्रस्तुत पद मे तो आयुकर्मकृत स्थिति का विचार है और वह अजीव मे अप्रस्तुत है।[१२२]

पर्याय : एक चिन्तन

पाचवें पद का नाम विशेषपद है। विशेष शब्द के दो अर्थ हैं—(१) प्रकार और (२) पर्याय। प्रथम पद में जीव और अजीव इन दो द्रव्यो के प्रकार—भेद-प्रभेदो का वर्णन किया है, तो इनमे इन द्रव्यो की अनन्त पर्यायो का वर्णन है। वहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्याये हैं तो समग्र की भी अनन्त पर्याये ही होगी और द्रव्य की पर्यायें—परिणाम होते हैं तो वह द्रव्य कूटस्थनित्य नही हो सकता, किन्तु उसे परिणामीनित्य मानना पडेगा। इस सूचन से यह भी फलित होता है कि वस्तु का स्वरूप द्रव्य और पर्याय-रूप है। इस पद का 'विसेस' नाम दिया है, परन्तु इस शब्द का उपयोग सूत्र मे नही किया गया है। समग्र पद मे पर्याय शब्द का ही प्रयोग हुआ है। जैनशास्त्रो मे इस पर्याय शब्द का विशेष महत्त्व है, इसलिए पर्याय या विशेष मे कोई भेद नही है। यहाँ पर्याय शब्द प्रकार या भेद और अवस्था या परिणाम, इन अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। जैन आगमो मे पर्याय शब्द प्रचलित था परन्तु वैशेषिक दर्शन मे 'विशेष' शब्द का प्रयोग होने से उस शब्द का प्रयोग पर्याय अर्थ मे और वस्तु के—द्रव्य के भेद अर्थ मे भी हो सकता है—यह बताने के लिए आचार्य ने इस प्रकरण का 'विसेस' नाम दिया हो ऐसा ज्ञात होता है।

प्रस्तुत पद मे जीव और अजीव द्रव्यो मे भेदो और पर्यायो का निरूपण है। भेदो का निरूपण तो प्रथम पद मे था परन्तु प्रत्येक भेद मे अनन्त पर्याये हैं, इस तथ्य का सूचन करना इस पद की विशेषता है। इसमे २४ दडक और २५ वें सिद्ध इस प्रकार उनकी सख्या और पर्यायो का विचार किया गया है।

जीव द्रव्य के नारकादि भेदो की पर्यायो का विचार अनेक प्रकार--अनेक दृष्टियो से किया गया है। इसमे जैनसम्मत अनेकान्तदृष्टि का प्रयोग हुआ है। जीव के नारकादि के जिन भेदो की पर्यायो का निरूपण है उसमे द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता, अवगाहनार्थता, स्थिति, कृष्णादि वर्ण, गध, रस, स्पर्श, ज्ञान और दर्शन इन दश दृष्टियो से विचारणा की गई है। विचारणा का क्रम इस प्रकार है--प्रश्न किया गया कि नारक जीवो की कितनी पर्यायें हैं ? उत्तर मे कहा कि नारक जीवो की अनन्त पर्यायें हैं। इसमे सख्यात, असख्यात और अनन्त के भेद

---

१२२ पन्नवणासूत्र— प्रस्तावना पुण्यविजयजी महाराज, पृ ६०

भिन्न भिन्न दृष्टियो की अपेक्षा से हैं । द्रव्यदृष्टि से नारक सख्यात हैं, प्रदेशदृष्टि से असंख्यात प्रदेश होने मे असख्यात हैं और वर्ण, गधादि व ज्ञान, दर्शन आदि दृष्टियो से उनकी पर्यायें अनन्त है । इस प्रकार सभी दडकों और सिद्धों की पर्यायो का स्पष्ट निरूपण इस पद मे किया है ।

आचार्य मलयगिरि ने प्रस्तुत दश दृष्टियो को सक्षेप में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार दृष्टियो मे विभक्त किया है । द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता को द्रव्य मे, अवगाहना को क्षेत्र मे, स्थिति को काल मे और वर्णादि व ज्ञानादि को भाव में समाविष्ट किया है ।[१२३]

द्रव्य की दृष्टि से वनस्पति के अतिरिक्त शेष २३ दडक के जीव असख्य हैं और वनस्पति के अनन्त । पर्याय की दृष्टि से सभी २४ दडक के जीव अनन्त है । सिद्ध द्रव्य की दृष्टि से अनन्त हैं ।

प्रथम पद मे अजीव के जो भेद किए हैं, वे प्रस्तुत पद मे भी हैं । अन्तर यह है कि वहाँ प्रज्ञापना के नाम से हैं और यहा पर्याय के नाम से । पुद्गल के यहाँ पर परमाणु और स्कन्ध ये दो भेद किये हैं । स्कन्धदेश और स्कन्धप्रदेश को स्कन्ध के अन्तर्गत ही ले लिया है । रूपी अजीव की पर्यायें अनन्त है । उनका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की दृष्टि से इसमे विचार किया है । परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध और सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की पर्यायें अनन्त हैं । स्थिति की अपेक्षा परमाणु और स्कन्ध दोनो एक समय की, दो समय की स्थिति मे लेकर असख्यातकाल तक की स्थिति वाले होते हैं । स्वतत्र परमाणु अनतकाल की स्थिति वाला नही होता परन्तु स्कन्ध अनन्तकाल की स्थिति वाला हो सकता है । एक परमाणु अन्य परमाणु से स्थिति की दृष्टि से हीन, तुल्य या अधिक होता है । अवगाहना की दृष्टि से द्विप्रदेशी से लेकर यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश से लेकर असख्यातप्रदेश तक का क्षेत्र रोक सकते हैं परन्तु अनन्तप्रदेश नही, क्योंकि पुद्गल द्रव्य लोकाकाश मे ही है और लोकाकाश के प्रदेश असख्यात ही हैं । अलोकाकाश अनन्त है पर वहा पुद्गल या अन्य किसी द्रव्य की अवस्थिति नही है ।

परमाणुवादी न्याय-वैशेषिक परमाणु को नित्य मानते है और उसके परिणाम-पर्याय नही मानते । जबकि जैन परमाणु को भी परिणामीनित्य मानते हैं । परमाणु स्वतत्र होने पर भी उसमे परिणाम होते हैं, यह प्रस्तुत पद से स्पष्ट होता है । परमाणु स्कन्ध रूप मे और स्कन्ध परमाणु रूप मे परिणत होते हैं, ऐसी प्रक्रिया जैनाभिमत है ।

गति और आगति चिन्तन

छठा व्युत्क्रातिपद है । इसमें जीवो की गति और आगति पर विचार किया गया है । सामान्यत चारो गतियो मे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त उपपात-विरहकाल और उद्वर्तना-विरहकाल है । उन गतियो के प्रभेदो पर चिन्तन करते हैं तो उपपात-विरहकाल और उद्वर्तना-विरहकाल प्रथम नरक मे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त का है । सिद्धगति मे उपपात है, उद्वर्तना नही है । इसी प्रकार अन्य गतियो मे भी जानना चाहिए ।[१२४] पाच स्थावरो मे निरन्तर उपपात और उद्वर्तना है । इसमे सान्तर विकल्प नही है । इसके पश्चात् एक समय मे नरक से लेकर सिद्ध तक कितने जीवो का उपपात और उद्वर्तन है, इस पर चिन्तन किया गया है । साथ ही नारकादि के भेद-प्रभेदो मे जीव किस किस भव से आकर पैदा होता है और मरकर कहाँ-कहाँ जाता है, उसके पश्चात् पर-भव का आयुष्य जीव कब बाँधता है, इसकी चर्चा है । जीव ने जिस प्रकार

---

१२३ प्रज्ञापना टीका, पत्र १८१ अ.

१२४ प्रज्ञापना टीका, पत्र २०५

का आयुष्य बाधा है उसी प्रकार का नवीन भव धारण करना है। आयु के सोपक्रम और निरुपक्रम ये दो भेद हैं। इनमे देवो और नारको मे तो निरुपक्रम आयु है, क्योकि उनकी आकस्मिक मृत्यु नही होती और आयु के छह माह शेष रहने पर वे नवीन आगामी भव का आयुष्य बाधते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवो मे दोनो प्रकार की आयु है। निरुपक्रम हो तो आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर पर-भव का आयुष्य बाधते हैं और सोपक्रम हो तो त्रिभाग मे अथवा त्रिभाग का भी त्रिभाग करते करते एक आवली मात्र आयु शेष रहने पर पर-भव का आयुष्य बाधते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य मे असख्यात वर्ष की आयु वाला हो तो नियम से आयु के छह माह शेष रहने पर और सख्यात वर्ष की आयु वाले यदि निरुपक्रम आयु वाले हो तो आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर आयुष्य बाधते है। सोपक्रम आयु वाले हो तो एकेन्द्रिय के समान जानना चाहिये। आयुष्यबध के छह प्रकार हैं--जातिनाम निधत्त-आयुनाम, गतिनाम, स्थितिनाम, अवगाहनानाम, प्रदेशनाम और अनुभावनानाम-निधत्त। इन सभी मे आयुकर्म का प्राधान्य है और उसके उदय होने से तत्सम्बन्धी उन उन जाति आदि कर्म का उदय होना है।

सिद्धो के श्वासोच्छ्वास नही होना है, अतः सातवे पद मे ससारी जीवो के श्वासोच्छ्वास के काल की चर्चा है। आचार्य मलयगिरि ने लिखा है कि जितना दुःख अधिक उतने श्वासोच्छ्वास अधिक होते है और अत्यन्त दुःखी की तो निरन्तर श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया चालू रहती है।[125] ज्यो-ज्यो अधिक सुख होता है त्यो-त्यो श्वासोच्छ्वास लम्बे समय के बाद लिये जाते हैं, यह अनुभव की बात है।[126] श्वासोच्छ्वास की क्रिया भी दुःख है। देवो मे जिनकी जितनी अधिक स्थिति है उतने ही पक्ष के पश्चात् उनकी श्वासोच्छ्वास की क्रिया होती है इत्यादि का विस्तार से निरूपण है।[127]

आठवे सज्ञापद मे जीवो की सज्ञा के सम्बन्ध मे चिंतन किया है। सज्ञा दश प्रकार की है आहार, भय, मैथुन, परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ। इन सज्ञाओं का २४ दण्डको की अपेक्षा से विचार किया है और सज्ञा-सम्पन्न जीवो के अल्पबहुत्व का भी विचार किया है। नारक मे भयसज्ञा का, तिर्यच मे आहार-सज्ञा का, मनुष्य मे मैथुनसज्ञा का और देवो मे परिग्रहसज्ञा का बाहुल्य है।

नवे पद का नाम योनिपद है। एक भव मे से आयु पूर्ण होने पर जीव अपने साथ कार्मण और तैजस शरीर लेकर गमन करता है। जन्म लेने के स्थान मे नये जन्म के योग्य औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। उस स्थान को योनि अथवा उद्गमस्थान कहते है। प्रस्तुत पद मे योनि का अनेक दृष्टियो से विचार किया गया है। शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त, मिश्र सवृत, विवृत और सवृतविवृत, इस प्रकार जीवो के ९ प्रकार के योनि-स्थान अर्थात् उत्पत्तिस्थान हैं। इन सभी का विस्तार से निरूपण है।

दसवे पद मे द्रव्यो चरम और अचरम का विवेचन है। जगत् की रचना मे कोई चरम के अन्त मे होता है तो कोई अचरम के अन्त मे नही किन्तु मध्य मे होता है। प्रस्तुत पद मे विभिन्न द्रव्यो के लोक-अलोक आश्रित चरम और अचरम के सम्बन्ध मे विचारणा की गई है। चरम-अचरम की कल्पना किसी अन्य की अपेक्षा से ही सभव है। प्रस्तुत पद मे छह प्रकार के प्रश्न पूछे गये है— १ चरम है, २ अचरम है, ३ चरम हैं (बहुवचन),

---

१२५ अतिदुःखिता हि नैरयिका, दुःखितानां च निरन्तर उच्छ्वासनिःश्वासौ, तथा लोके दर्शनात्।

—प्रज्ञापना टीका, पत्र २२०

१२६ सुखितानां च यथोत्तर महानुच्छ्वास-निःश्वासक्रियाविरहकाल। - प्रज्ञापना टीका पत्र २२१

१२७ यथा-यथाऽऽयुषः सागरोपमवृद्धिस्तथा-तथोच्छ्वास-निःश्वासक्रियाविरहप्रमाणस्यापि पक्षवृद्धिः।

४ अचरम हैं, ५. चरमान्त प्रदेश हैं, ६ अचरमान्त प्रदेश हैं। इन छह विकल्पो को लेकर २४ दण्डको मे जीवो का अल्पादि दृष्टि से विचार किया गया है । उदाहरणार्थ, गति की अपेक्षा से चरम उसे कहते हैं कि जो अब अन्य किसी गति में न जाकर मनुष्य गति मे से सीधा मोक्ष मे जाने वाला है। किन्तु मनुष्य गति मे से सभी मोक्ष मे जाने वाले नही हैं, इसलिए जिनके भव शेष हैं वे सभी जीव गति की अपेक्षा से अचरम है। इसी प्रकार स्थिति आदि से भी चरम-अचरम का विचार किया गया है।

भाषा : एक चिन्तन

ग्यारहवें पद मे भाषा के सम्बन्ध मे चिंतन करते हुए बताया है कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है, कहाँ रहती है, उसकी आकृति क्या है ? साथ ही उसके स्वरूप-भेद-प्रभेद, बोलने वाला व्यक्ति प्रभृति विविध महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर प्रकाश डाला गया है। जो बोली जाय वह भाषा है।[१२८] दूसरे शब्दो मे जो दूसरो के अवबोध—समझने मे कारण हो वह भाषा है।[१२९] मानव जाति के सांस्कृतिक विकास मे भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाषा विचारो के आदान-प्रदान का असाधारण माध्यम है। भाषा शब्दो से बनती है और शब्द वर्णात्मक हैं। इसलिए भाषा के मौलिक विचार के लिए वर्णविचार आवश्यक है, क्योकि भाषा, वर्ण और शब्द से अभिन्न है।

भारतीय दार्शनिको ने शब्द के सम्बन्ध मे गभीर चितन किया है शब्द क्या है ? उसका मूल उपादान क्या है ? वह किस प्रकार उत्पन्न होता है ? अभिव्यक्त होता ? और किस प्रकार श्रोताओ के कर्ण-कुहरो मे पहुँचता है ?

कणाद आदि कितने ही दार्शनिक शब्द को द्रव्य न मानकर आकाश का गुण मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि शब्द पौद्गलिक नही है चू कि उसके आधार मे स्पर्श का अभाव है। शब्द आकाश का गुण है इसलिए शब्द का आधार भी आकाश ही माना जा सकता है। आकाश स्पर्श मे रहित है इसलिए उसका गुण शब्द भी स्पर्शरहित है और जो स्पर्शरहित है वह पुद्गल नही है। दूसरी बात पुद्गल रूपी होना है। रूपी होने से वह स्थूल है, स्थूल वस्तु न तो किसी सघन वस्तु मे प्रविष्ट हो सकती हैं और न निकल ही सकती है। शब्द यदि पुद्गल होता तो वह स्थूल भी होता पर शब्द दीवाल को भेद कर बाहर निकलता है। इसलिए वह रूपी नही है और रूपी नही होने मे वह पुद्गल भी नही है। तीसरा कारण यह है पौद्गलिक पदार्थ उत्पन्न होने के पूर्व भी दिखाई देता है और नष्ट होने के पश्चात् भी। उदाहरण के रूप मे घडा बनने के पूर्व मिट्टी दिखाई देती है और घडा नष्ट होने पर उसके टुकडे भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पौद्गलिक पदार्थ के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती रूप दृग्गोचर होते है। पर शब्द का न तो कोई पूर्वकालीन रूप दिखाई देता है और न उत्तरकालीन ही। ऐसी स्थिति मे शब्द को पुद्गल नही मानना चाहिए। चौथी बात यह है कि पौद्गलिक पदार्थ दूसरे पौद्गलिक पदार्थों को प्रेरित करते हैं। यदि शब्द पुद्गल होता तो वह भी अन्य पुद्गलो को प्रेरित करता। पर वह अन्य पुद्गलो को प्रेरित नही करता है, इसलिए शब्द को पौद्गलिक नही मान सकते। पाचवाँ कारण—शब्द आकाश का गुण है, आकाश स्वय पुद्गल नही है, इसलिए उसका गुण—शब्द पुद्गल नही हो सकता।

प्रस्तुत युक्तियो के सम्बन्ध मे हम जैनदृष्टि मे चिंतन करेंगे। मीमासा दर्शन मे शब्द के आधार को स्पर्शरहित माना है किन्तु वस्तुत शब्द का आधार स्पर्शरहित नही किन्तु स्पर्शवान् है। शब्द का आधार भाषावर्गणा है और भाषावर्गणा मे स्पर्श अवश्य होता है। अत शब्द का आधार स्पर्श वाला होने से शब्द भी स्पर्श वाला है और स्पर्श वाला होने से पुद्गल है। यहाँ पर यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि शब्द मे यदि

---

१२८. भाष्यते इति भाषा —प्रज्ञापना टीका २४६.
१२९. भाषा अवबोधबीजभूता। —प्रज्ञापना टीका २५६

स्पर्श होता तो हमे स्पर्श की प्रतीति होनी चाहिए, हम शब्द सुनते हैं किन्तु शब्द स्पर्श नही होता, ऐसी स्थिति मे शब्द को स्पर्शवान् कैसे माना जाय ? उत्तर मे निवेदन है कि जिस वस्तु का हमे अनुभव हो उसका अभाव हो, ऐसा नियम नही बनाया जा सकता। ऐसी अनेक वस्तुए हैं जिनका हमे अनुभव नही होता तथापि अनुमानादि प्रमाणो से उनका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ परमाणु प्रत्यक्ष दिखाई नही देता तथापि उसका अस्तित्व है।

द्वितीय जिज्ञासा यह हो सकती है कि शब्द मे स्पर्श है तो उसकी प्रतीति क्यो नही होती ? इसका समाधान यह है शब्द मे स्पर्श तो है पर वह अव्यक्त है। जैसे सुगन्धित पदार्थ से गन्ध की अनुभूति तो होती है पर उसमे स्पर्श का अनुभव नही होता चू कि वह अव्यक्त है। इसी तरह शब्द का स्पर्श भी अव्यक्त है। पुन: जिज्ञासा हो सकती है कि शब्द मे स्पर्श होने का निश्चय कैसे करे ? समाधान मे कहा जा सकता है कि अनुकूल पवन चलता हो तब दूर तक भी ध्वनि सुनाई देती है। प्रतिकूल पवन के चलने पर सन्निकट रहे हुए भी शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई नही देते। इससे स्पष्ट है कि अनुकूल पवन शब्द के सचार मे सहायक होता है, प्रतिकूल पवन प्रतिरोध करता है। यदि शब्द स्पर्शहीन होता तो उस पर पवन का कोई भी प्रभाव नही पडता। इसलिए शब्द रूपी है, स्पर्श वाला है और स्पर्श वाला होने से वह पौद्गलिक है।

दूसरा तर्क था कि शब्द दीवाल को उल्लघ कर बाहर आ जाता है इसलिए पुद्गल नही है। उत्तर यह है कि द्वार और खिडकियो मे लघु छिद्र होते है, जिसके कारण उन छिद्रो मे से शब्द बाहर आता है। यदि बिल्कुल ही छिद्र न हो तो शब्द बाहर नही आता। द्वार खुला है तो स्पष्ट सुनाई देता है और द्वार बन्द होने पर अस्पष्ट। इसलिए शब्द गन्ध की तरह ही स्थूल है और स्थूल होने के कारण वह पौद्गलिक है।

उत्पत्ति होने के पहले और नष्ट होने के बाद पुद्गल दिखाई न देने के तर्क का उत्तर यह है जैसे विद्युत उत्पन्न होन के पहले दिखलाई नही देती और नष्ट होने के बाद भी उसका उत्तरकालीन रूप दिखाई नही देता फिर भी विद्युत पौद्लिक ही है तो शब्द को पौद्गलिक मानने मे क्या बाधा है ?

एक युक्ति यह दी गई है कि शब्द यदि पुद्गल होता तो वह अवश्य ही अन्य पुद्गलो को प्रेरित करता। इसके उत्तर मे कहना चाहेगे कि सूक्ष्म रज, धूम, आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो पौद्गलिक होने पर भी दूसरो को प्रेरणा नही करते। इससे उनके पुद्गल होने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती, वैसी ही स्थिति शब्द की भी है।

शब्द आकाश का गुण भी नही है किन्तु पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। यदि शब्द आकाश का गुण होता तो वह प्रत्यक्ष नही हो सकता था। चू कि आकाश प्रत्यक्ष नही है तो उसका गुण कैसे प्रत्यक्ष हो सकता है ? परन्तु शब्द श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष होता है, इसलिए वह आकाश का गुण नही है। जो पदार्थ इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक होता है, जैसे घट, पट, आदि पदाथ। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शब्द पुद्गल है इस पुद्गलरूप शब्द मे एक स्वाभाविक शक्ति है जिसके कारण पदार्थों का बोध होता है। प्रत्येक शब्द मे ससार के सभी पदार्थों का बोध कराने की शक्ति रही हुई है। घट शब्द घडे का बोधक है किन्तु वह पट आदि का भी बोधक हो सकता है। पर मानव ने विभिन्न सकेतो की कल्पना करके उसकी विराट् वाचकशक्ति केन्द्रित कर दी है। अत जिस देश और जिस काल मे जिस पदार्थ के लिए जो शब्द नियत है वह उसी का बोध कराता है। उदाहरण के रूप मे 'गौ' शब्द को ले, 'गौ' का अर्थ यदि ससार के सभी पदार्थों को मान लिया लिया जाय तो व्यक्ति उसमे मन चाहा कोई भी पदार्थ समझ लेगा। इस गडबडी से बचने के लिए शब्द की व्यापक

वाचकशक्ति को किसी एक पदार्थ तक सीमित करना आवश्यक है, जिससे वह नियत एक अर्थ का ही परिज्ञान करा सके।

भाषा शब्दवर्गणा के पुद्‌गलो से निर्मित होती है। शब्दवर्गणा के परमाणु समस्त लोकाकाश मे व्याप्त हैं। जब वक्ता बोलना चाहता है तो उन पुद्‌गलो को ग्रहण करता है, वे पुद्‌गल शब्दरूप मे परिणत हो जाते हैं और बोलते हुए एक समय मे लोकान्त तक पहुँच जाते हैं। उसकी गति का वेग तीव्रतर होता है। आकाश द्रव्य के प्रदेशो की श्रेणियाँ हैं। वे श्रेणियाँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे इस प्रकार छहो दिशाओ मे विद्यमान हैं। जब वक्ता भाषा का प्रयोग करता है तो शब्द उन श्रेणियो से प्रसरित होता है। चार समय जितने सूक्ष्म काल मे शब्द सम्पूर्ण लोकाकाश मे फैल जाता है। यदि श्रोता भाषा की समश्रेणी मे अवस्थित होता है तो वक्ता द्वारा जो भाषा बोली जाती है या भेरी आदि वाद्य का जो शब्द होता है उसे वह मिश्र रूप मे सुनता है। यदि श्रोता विश्रेणी मे स्थित है तो वासित शब्द सुनता है।

श्रोता वक्ता द्वारा बोले हुए शब्द ही नही सुनता परन्तु बोले हुए शब्दद्रव्य तथा उन शब्दद्रव्यो से वासित हुए बीच के शब्दद्रव्य मिलकर मिश्रशब्द होते है। उन्ही मिश्रशब्दद्रव्यो को समश्रेणी स्थित श्रोता श्रवण करता है। विश्रेणी स्थित श्रोता मिश्रशब्द को भी श्रवण नही करता। वह केवल उच्चारित मूल शब्दो द्वारा वासित शब्दो को ही श्रवण करता है। वासित शब्द का अर्थ है वक्ता द्वारा शब्द रूप से त्यागे हुए द्रव्यो से अथवा भेरी आदि की ध्वनि से, मध्य मे स्थित शब्दवर्गणा के पुद्‌गल शब्द रूप मे परिणत हो जाते है। शब्द श्रेणी के अनुसार ही फैलना है, वह विश्रेणी मे नही जाता। शब्दद्रव्य इतना सूक्ष्म है कि दीवाल प्रभृति का प्रतिघात भी उसे विश्रेणी मे नही ले जा सकता।

जिज्ञासा होती है कि शब्द एक समय मे श्रेणी के अनुसार लोकान्त तक पहुँच जाता है। द्वितीय समय मे विदिशा मे भी जाता है और चार समय मे समस्त लोक मे फैल जाता है। ऐसी स्थिति मे जब श्रोता विदिशा मे होता है तो मिश्रशब्द श्रवण क्यो नही करता ? उत्तर यह है कि लोकान्त भाषा को पहुँचने मे केवल एक समय लगता है और दूसरे समय मे भाषा, भाषा नही रहती। क्योकि कहा गया है, जिस समय मे वह भाषा बोली जाती हो उसी समय मे वह भाषा कहलाती है, दूसरे समय मे भाषा अभाषा हो जाती है।[130] इसलिए विदिशा मे जो शब्द सुनाई पडता है वह दो, तीन, चार आदि समयवर्ती हो जाता है जिससे वह श्राव्य शक्ति से शून्य हो जाता है। वह मूल शब्द अन्य शब्दवर्गणा के पुद्‌गलो को भाषारूप मे परिणत कर देता है। इसलिए वह वासित शब्द है और वासित शब्द विदिशा मे सुनाई नही देते। उदाहरण के रूप मे तालाब मे जहाँ पर पत्थर गिरता है उसके चारो ओर एक लहर व्याप्त हो जाती है। वह लहर अन्य लहरो को उत्पन्न करती हुई जलाशय के अन्त तक पहुँच जाती है। उसी तरह वक्ता द्वारा प्रयुक्त भाषाद्रव्य आगे बढता हुआ आकाश मे अवस्थित अन्यान्य भाषा योग्य द्रव्यो को भाषा रूप मे परिणत करता हुआ लोक के अन्त तक जाता है। लोक के अन्त तक पहुँच कर उसमे जो श्रव्यशक्ति है वह समाप्त हो जाती है। उससे अन्यान्य भाषावर्गणा के पुद्‌गलो मे शब्दरूप परिणति समुत्पन्न होती है और वे शब्द मूल और बीच के शब्दो द्वारा सम्प्रेरित होकर गतिमान् होते हैं। इस तरह चार समय मे सम्पूर्ण लोकाकाश उन शब्दो से व्याप्त हो जाता है।

काययोग के द्वारा जीव भाषावर्गणा के पुद्‌गलो को ग्रहण करता है और वचनयोग के द्वारा उनका परित्याग करता है।[131] ग्रहण करने और त्याग करने का क्रम चलता रहता है। कभी कभी जीव प्रतिपल प्रतिक्षण

१३० भाष्यमाणैव भाषा, भाषासमयानन्तर भाषाऽभाषा।
१३१ (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७ (ख) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३५३

भाषाद्रव्य को ग्रहण करता है और साथ ही कभी-कभी प्रतिपल प्रतिक्षण भाषाद्रव्य का त्याग करता है। प्रथम समय में ग्रहण किए हुए भाषाद्रव्यो को द्वितीय समय मे त्याग करता है और द्वितीय समय मे ग्रहण किए हुए द्रव्यो को तृतीय समय मे त्याग करता है। औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर वाला जीव ही भाषाद्रव्य को ग्रहण करता है।

कितने ही चिन्तको का मत है कि ब्रह्म शब्दात्मक है। समस्त विराट् विश्व शब्दात्मक है, शब्द के अतिरिक्त घट-पट आदि बाह्य पदार्थों एव ज्ञान प्रभृति आन्तरिक पदार्थों की सत्ता का अभाव है। शब्द ही विभिन्न वस्तुओ के रूप मे प्रतिभासित होता है। पर यह चिंतन प्रमाणबाधित है। हम पूर्व के शब्द की पौद्गलिकता का समर्थन कर चुके हैं। आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रो के माध्यम से भी यह सत्य तथ्य उजागर हो चुका है। यन्त्र स्वय पुद्गल रूप है इसीलिए वह पुद्गल को पकडने में समर्थ है। पौद्गलिक वस्तु ही पौद्गलिक वस्तु को पकड सकती है।

भाषा के पुद्गल जब भाषा के रूप मे बाहर निकलते हैं तब सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त होते हैं। लोक का आकार वज्राकार है इसलिए भाषा का आकार भी वज्राकार बतलाया गया है। लोक के आगे भाषा के पुद्गल नही जाते, क्योकि गमन क्रिया मे सहायभूय धर्मास्तिकाय लोक में ही है।

पुद्गल, परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध रूप होते हैं। जो स्कन्ध अनन्तप्रदेशी हैं उन्ही का ग्रहण भाषा के लिए उपयोगी होता है। क्षेत्र की दृष्टि से असख्यात प्रदेशो में स्थित स्कन्ध, काल की दृष्टि से एक समय से लेकर असख्यात समय तक की स्थिति वाले होते हैं। रूप-रस-गध और स्पर्श की दृष्टि से भाषा के पुद्गल एक समान नही होते परन्तु सभी रूपादि परिणाम वाले तो होते ही हैं। स्पर्श की दृष्टि से चार स्पर्श वाले पुद्गलो का ही ग्रहण किया जाता है। आत्मा आकाश के जितने प्रदेशों का अवगाहन कर रहता है, उतने ही प्रदेशो मे रहे हुए भाषा के पुद्गलो को वह ग्रहण करता है।

प्रस्तुत पद मे भाषा के भेदों का अनेक दृष्टियो से वर्णन किया गया है। भाषा के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद हैं। पर्याप्त के सत्यभाषा और मृषाभाषा दो भेद हैं तथा सत्यभाषा के जनपदसत्य, सम्मतसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, भावसत्य, योगसत्य, औपम्यसत्य, ये दस भेद हैं। असत्य भाषा बोलने के अनेक कारण हैं। असत्यभाषा के दस भेद हैं—क्रोधनि सृत, मानिनि सृत, माया-नि.सृत, लोभनि सृत, प्रेमनि सृत, द्वेषनि सृत, हास्यनि सृत, भयनि सृत, आख्यानिकानि सृत, उपघात-नि.सृत।

अपर्याप्तक भाषा के सत्यामृषा और असत्यामृषा ये दो प्रकार हैं। उनमे सत्यामृषा के दस और असत्यामृषा के बारह भेद बताये गये हैं। सत्यामृषा भाषा वह है जो अर्द्ध सत्य हो और असत्यामृषा वह है जिसमे सत्य और मिथ्या का व्यवहार नही होता। अन्य दृष्टि से लिंग, सख्या, काल, वचन आदि की दृष्टि से भाषा के सोलह प्रकार बताये हैं।

शरीर : एक चिंतन

बारहवें पद मे जीवो के शरीर के सम्बन्ध मे चिंतन किया गया है। शरीर के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाच भेद हैं।[१३२] उपनिषदो मे आत्मा के पाच कोषो की चर्चा है

१३२ भगवतीसूत्र १७।१ सूत्र ५९२

१ अन्नमयकोष (स्थूल शरीर, जो अन्न से बनता है) २. प्राणमयकोष (शरीर के अन्तर्गत वायुतत्त्व) ३ मनोमय-कोष (मन की संकल्प-विकल्पात्मक क्रिया) ४ विज्ञानमयकोष (बुद्धि की विवेचनात्मक क्रिया) ५ आनन्दमयकोष (आनन्द की स्थिति)।[133] इन पांच कोषो मे केवल अन्नमयकोष के साथ औदारिक शरीर की तुलना की जा सकती है।[134] औदारिक आदि शरीर स्थूल हैं तो कार्मणशरीर सूक्ष्म शरीर है। कार्मणशरीर के कारण ही स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है। नैरयिको ने कार्मणशरीर को अव्यक्त शरीर भी कहा है।[135] साख्य प्रभृति दर्शनो मे अव्यक्त सूक्ष्म और लिंग शरीर जिन्हे माना गया है उनकी तुलना कार्मणशरीर के साथ की जा सकती है।[136]

चौबीस दडको मे कितने कितने शरीर हैं, इस पर चितन कर यह बताया है कि औदारिक से वैक्रिय और वैक्रिय से आहारक आदि शरीरों के प्रदेशो की संख्या अधिक होने पर भी वे अधिकाधिक सूक्ष्म है। सक्षेप मे औदारिक शरीर स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न रसादि धातुमय शरीर है। यह शरीर मनुष्य और तिर्यञ्चो मे होता है। वैक्रिय शरीर वह है जो विविध रूप करने मे समर्थ हो, यह शरीर नैरयिक तथा देवो का होता है। वैक्रियलब्धि से सम्पन्न मनुष्यो और तिर्यञ्चो तथा वायुकाय मे भी होता है। आहारक शरीर वह है जो आहारक नामक लब्धिविशेष से निष्पन्न हो। तैजस शरीर वह है जिससे तेजोलब्धि प्राप्त हो, जिससे उपघात या अनुग्रह किया जा सके, जिससे दीप्ति और पाचन हो। कार्मण शरीर वह है जो कर्मसमूह से निष्पन्न है, दूसरे शब्दो मे कर्मविकार को कार्मण शरीर कह सकते हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी सासारिक जीवो मे होता है।

भावपरिणमन : एक चिन्तन

तेरहवें परिणामपद मे परिणाम के सबध मे चितन है। भारतीय दर्शनों मे साख्य आदि दर्शन परिणामवादी है तो न्याय आदि कुछ दर्शन परिणामवाद को स्वीकार नही करते। जिन दर्शनो ने धर्म और धर्मी का अभेद स्वीकार किया है वे परिणामवादी हैं और जिन दर्शनो ने धर्म और धर्मी मे अत्यन्त भेद माना है, वे अपरि-णामवादी हैं। नित्यता के सबध मे भारतीय दर्शनो मे तीन प्रकार के विचार हैं—साख्य, जैन और वेदान्तियो मे रामानुज। इन तीनो ने परिणामी-नित्यता स्वीकार की है। पर साख्यदर्शन ने प्रकृति मे परिणामीनित्यता मानी है, पुरुष मे कूटस्थनित्यता स्वीकार की है।[137] नैरयिको ने सभी प्रकार की नित्य वस्तुओ मे कूटस्थनित्यता मानी है। धर्म और धर्मी मे अत्यन्त भेद स्वीकार करने के कारण परिणामीनित्यता के सिद्धान्त को उन्होने मान्य

---

१३३ (क) पचदशी ३. १।११
(ख) हिन्दुधर्मकोश—डॉ राजबलि पाण्डेय

१३४. तैत्तिरीय-उपनिषद्, भृगुवल्ली, बेलवलकर और रानाडे,
—History of Indian Philosophy, 250

१३५. द्वे शरीरस्य प्रकृती व्यक्ता च अव्यक्ता च। तत्र अव्यक्ताया कर्मसमाख्याताया: प्रकृतेरुपभोगात् प्रक्षय। प्रक्षीणे च कर्मणि विद्यमानानि भूतानि न शरीरमुत्पादयन्ति इति उपपन्नोऽपवर्ग।
—न्यायवार्तिक ३।२।६८

१३६. साख्यकारिका ३९-४०, बेलवलकर और रानाडे
—History of Indian Philosophy 358, 430 & 370

१३७ द्वयी चेय नित्यता कूटस्थनित्यता परिणामिनित्यता च। तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य। परिणामिनित्यता गुणानाम्। —पातञ्जलभाष्य ४, ३३

नहीं किया। बौद्धो ने क्षणिकवाद स्वीकार किया है । क्षणिकवाद स्वीकार करने पर भी उन्होने पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। उन्होने सन्तति-नित्यता के रूप के नित्यता का तृतीय प्रकार स्वीकार किया है।

प्रज्ञापना के प्रस्तुत पद मे जैनदृष्टि से जीव और अजीवो दोनो के परिणाम प्रतिपादित किए हैं। जिससे स्पष्ट है कि साख्यदर्शन मान्य पुरुषकूटस्थवाद जैनों को अमान्य है। पहले जीव के परिणामो के भेद-प्रभेदो को प्रतिपादित कर नरक आदि चौवीस दण्डको मे परिणामो का विचार किया गया है। उसके पश्चात् अजीव के परिणामों की परिगणना की गई है। यहाँ पर विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि अजीव मे केवल पुद्‌गल के परिणामो की ही चर्चा की गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अरूपी अजीव द्रव्यो के परिणामो की चर्चा नही है। आगमप्रभावक पुण्यविजयजी महाराज व पडित दलसुख मालवणिया आदि ने प्रज्ञापना (श्री महावीर विद्यालय, बबई प्रकाशन) की प्रस्तावना मे इस सम्बन्ध मे विशेष चर्चा की है, वह चर्चा ज्ञानवर्द्धक है, अत हम जिज्ञासुओ को उसके पढने का सूचन करते हैं । यहाँ पर परिणाम का अर्थ पर्याय अथवा भावो का परिणमन है।

कषाय : एक चिंतन

चौदहवे पद का नाम कषायपद है। कषाय जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जो जीव के शुद्धोपयोग मे मलीनता उत्पन्न करता है, वह कषाय है।[१३८] कष का अर्थ है कुरेदना, खोदना और कृषि करना । जिससे कर्मों की कृषि लहलहाती हो वह कषाय है। कषाय के पकते ही सुख और दुख रूपी फल निकल आते हैं। कषाय शब्द कषैले रस का भी द्योतक है। जिस प्रकार कषाय रसप्रधान वस्तु के सेवन से अन्नरुचि न्यून होती है वैसे ही कषायप्रधान जीवो मे मोक्षाभिलाषा क्रमश कम हो जाती है। कषाय वह है जिससे समता, शान्ति और सन्तुलन नष्ट हो जाता है।[१३९] कषाय एक प्रकार का प्रकम्पन है, उत्ताप है और आवर्त्त है, जो चैतन्योपयोग में विमोक्ष उत्पन्न करता रहता है। क्रोध-मान-माया-लोभ इन चारो को एक शब्द मे कहा जाए तो वह कषाय है। कषाय मन की मादकता है। कषाय की तुलना आवर्त से की गई है पर क्रोध के आवर्त से मान का आवर्त भिन्न है और मान के आवर्त से माया का आवर्त भिन्न है। क्रोध का आवर्त खरावर्त है। खरावर्त सागर मे होने वाले तीक्ष्ण आवर्त के सदृश है। मान का आवर्त उन्नतावर्त है। इस आवर्त से उप्रेरित मनोदशा पहाड की चोटी को अपने बहाव मे उडा ले जाने वाली तेज पवन के सदृश है। अभिमानी दूसरो को मिटाकर अपने-आपके अस्तित्व का अनुभव करता है। माया गूढावर्त के सदृश है। मायावी का मन घुमावदार होता है । इसके विचार गूढ होते हैं, वह विचारो को छुपाए रखता है । लोभ अभिषावावर्त है, लोभी का मानस किसी एक केन्द्र को मानकर उसके चारो ओर घूमना है, जैसे चील आदि पक्षी माँस के चारो ओर घूमते हैं उसके प्राप्त नही होने तक उनके मन मे शान्ति नही होती। इसी प्रकार कषाय चक्राकार है जो चेतना को घुमाती रहती है।

प्रस्तुत पद मे क्रोध-मान-माया-लोभ ये चारो कषाय चौबीस दण्डको मे बताये गये हैं। क्षेत्र, वस्तु, शरीर और उपधि को लेकर सम्पूर्ण सासारिक जीवो मे कषाय उत्पन्न होता है। कितनी बार जीव को कषाय का निमित्त मिलता है और कितनी बार बिना निमित्त के भी कषाय उत्पन्न हो जाता है।

---

१३८. प्रज्ञापना पद १४ टीका

१३९. अन्नरुचिस्तम्भनकृत् कषाय.। —स्थानाग टीका

चारो ही कषायो के तरतमता की दृष्टि से अनन्त स्तर होते हैं, तथापि आत्मविकास के घात की दृष्टि से उनमें से प्रत्येक के चार-चार स्तर हैं—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन। अनन्तानुबधी कषाय के उदयकाल मे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही होता। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयकाल मे अणुव्रत की योग्यता, प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयकाल मे महाव्रत की योग्यता प्राप्त नही होती और सज्वलन कषाय के उदयकाल मे वीतरागता उत्पन्न नही होती। ये चारो प्रकार के कषाय उत्तरोत्तर, मद-मदतर होते हैं, साथ ही आभोगनिर्वर्तित, और अनाभोगनिर्वर्तित, उपशान्त और अनुपशान्त, इस प्रकार के भेद भी किए गए हैं। आभोगनिर्वर्तित कषाय कारण उपस्थित होने पर होता है तथा जो बिना कारण होता है वह अनाभोगनिर्वर्तित कहलाता है।

कर्मबधन का कारण मुख्य रूप से कषाय है। तीनो कालों में आठो कर्मप्रकृतियों के चयन के स्थान और प्रकार, २४ दडक के जीवो में कषाय को ही माना गया है। साथ ही उपचय, बध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा में चारो कषाय ही मुख्य रूप से कारण बताये हैं।

इन्द्रिय : एक चिंतन

पन्द्रहवें पद मे इन्द्रियो के सम्बन्ध मे दो उद्देशको मे चिंतन किया गया है। प्राणी और अप्राणी मे भेद-रेखा खीचने वाला चिह्न इन्द्रिय है। आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि मे इन्द्रिय शब्द की परिभाषा करते हुए लिखा है—परम् ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले आत्मा को इन्द्र और उस इन्द्र के लिंग या चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं अथवा जो जीव को अर्थ की उपलब्धि मे निमित्त होता है वह इन्द्रिय है अथवा जो इन्द्रियातीत आत्मा के सद्भाव की सिद्धि का हेतु है वह इन्द्रिय है। अथवा इन्द्र अर्थात् नामकर्म के द्वारा निर्मित स्पर्शन आदि को इन्द्रिय कहा है।[१४०] तत्त्वार्थभाष्य,[१४१] तत्त्वार्थवार्तिक,[१४२] आवश्यकनिर्युक्ति[१४३] आदि अनेक ग्रन्थो मे इससे मिलती-जुलती परिभाषाएँ हैं। तात्पर्य यह है कि आत्मा की स्वाभाविक शक्ति पर कर्म का आवरण होने के कारण सीधा आत्मा से ज्ञान नही हो सकता, इसलिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है और वह माध्यम इन्द्रिय है। अतएव जिसकी सहायता से ज्ञान लाभ हो सके वह इन्द्रिय है। इन्द्रियाँ पांच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। इनके विषय भी पाच हैं—स्पर्श, रस, गध, रूप और शब्द। इसीलिए इन्द्रिय को प्रतिनियत-अर्थग्राही कहा जाता है।[१४४]

प्रत्येक इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय रूप से दो-दो प्रकार की है।[१४५] पुद्गल की आकृतिविशेष द्रव्येन्द्रिय है और आत्मा का परिणाम भावेन्द्रिय है। द्रव्येन्द्रिय के निर्वृत्ति और उपकरण ये दो भेद हैं।[१४६]

---

१४० इन्दतीति इन्द्र आत्मा, तस्य ज्ञस्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य तदर्थोपलब्धि-निमित्त लिङ्ग तदिन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमित्युच्यते। अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्। आत्मन सूक्ष्मस्या-स्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम्। अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते, तेन सृष्टमिन्द्रियमिति। —सर्वार्थसिद्धि १-१४

१४१. तत्त्वार्थभाष्य २-१५

१४२. तत्त्वार्थवार्तिक २।१५।१-२

१४३ आवश्यकनिर्युक्ति, हरिभद्रीया वृत्ति ९१८, पृष्ठ ३९८

१४४. प्रमाणमीमांसा १।२।२१-२३

१४५ सर्वार्थसिद्धि २/१६/१७९

१४६. निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्। —तत्त्वार्थसूत्र २/१७

इन्द्रियों की विशेष आकृतियाँ निर्वृत्ति-द्रव्येन्द्रिय हैं। निर्वृत्ति-द्रव्येन्द्रिय की बाह्य और आभ्यन्तरिक पौद्गलिक शक्ति है, जिसके अभाव मे आकृति के होने पर भी ज्ञान होना सभव नही है; वह उपकरण द्रव्येन्द्रिय है। भावेन्द्रिय भी लब्धि और उपयोग रूप से दो प्रकार की है।[१४७] ज्ञानावरणकर्म आदि के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली जो आत्मिक शक्तिविशेष है, वह लब्धि है। लब्धि प्राप्त होने पर आत्मा एक विशेष प्रकार का व्यापार करती है, वह व्यापार उपयोग है।

प्रथम उद्देशक मे चौबीस द्वार और दूसरे मे बारह द्वार हैं। इन्द्रियो की चर्चा चौबीस दण्डको मे की गई है। जीवो मे इन्द्रियो के द्वारा अवग्रहण-परिच्छेद, अवाय, ईहा और अवग्रह- अर्थ और व्यजन दोनो प्रकार से चौबीस दण्डको मे निरूपण किया गया है। चक्षुरिन्द्रिय को छोडकर शेष चार इन्द्रियो से व्यजनावग्रह होता है। अर्थावग्रह छ प्रकार का है। वह पाच इन्द्रिय और छठे नोइन्द्रिय-मन से होता है। इस प्रकार इन्द्रियो के द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय दो भेद किए हैं। द्रव्येन्द्रिय पुद्गलजन्य होने से जड रूप है और भावेन्द्रिय ज्ञान रूप है। इसलिए वह चेतना शक्ति का पर्याय है। द्रव्येन्द्रिय अगोपाग और निर्माण नामकर्म के उदय से प्राप्त है। इन्द्रियों के आकार का नाम निर्वृत्ति है। वह निर्वृत्ति भी बाह्य और आभ्यन्तर रूप से दो प्रकार की है। इन्द्रिय के बाह्य आकार को बाह्य-निर्वृत्ति और आभ्यन्तर आकृति को आभ्यन्तरनिर्वृत्ति कहते हैं। बाह्य भाग तलवार के सदृश है और आभ्यन्तर भाग तलवार की तेज धार के सदृश है जो बहुत ही स्वच्छ परमाणुओ से निर्मित है। प्रज्ञापना की टीका में आभ्यन्तर निर्वृत्ति का स्वरूप पुद्गलमय बताया है[१४८] तो आचाराग-वृत्ति मे उसका स्वरूप चेतनामय बताया है।[१४९]

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि त्वचा की आकृति विभिन्न प्रकार की होती है किन्तु उसके बाह्य और आभ्यन्तर आकार मे पृथक्ता नही है। प्राणी की त्वचा का जिस प्रकार का बाह्य आकार होता है वैसा ही आभ्यन्तर आकार भी होता है, पर अन्य चार इन्द्रियो के सम्बन्ध में ऐसा नही है। उन इन्द्रियो का बाह्य आकार और आभ्यन्तर आकार अलग-अलग है। जैसे —कान की आभ्यन्तर आकृति कदम्बपुष्प के सदृश, आख की आभ्यन्तर आकृति मसूर के दाने के सदृश, नाक की आभ्यन्तर आकृति अतिमुक्तक के फूल के सदृश तथा जीभ की आकृति छूरे के समान होती है। पर बाह्याकार सभी मे पृथक्-पृथक् दृग्गोचर होते हैं। मनुष्य, हाथी, घोडे, पक्षी आदि के कान, आख, नाक, जीभ आदि को देख सकते हैं।

आभ्यन्तरनिर्वृत्ति की विषयग्रहणशक्ति उपकरणेन्द्रिय हैं। तत्त्वार्थसूत्र,[१५०] विशेषावश्यकभाष्य,[१५१] लोकप्रकाश[१५२] प्रभृति ग्रन्थो मे इन्द्रियो पर विशेषरूप से विचार किया गया है। प्रज्ञापना मे इन्द्रियोपचय, इन्द्रिय-निर्वर्तन, इन्द्रियलब्धि, इन्द्रियोपयोग आदि द्वारो से द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय की चौबीस दण्डको मे विचारणा की गई है।

---

१४७ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। —तत्त्वार्थसूत्र २/१८
१४८. प्रज्ञापनासूत्र, इन्द्रियपद, टीका पृष्ठ २९४/१
१४९. आचारागवृत्ति, पृष्ठ १०४
१५० तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय २, सूत्र १७/१८ तथा विभिन्न वृत्तियाँ
१५१. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २९९३-३००३
१५२ लोकप्रकाश, सर्ग ३, श्लोक ४६४ से आगे

प्रयोग : एक चिन्तन

सोलहवाँ प्रयोगपद है। मन, वचन, काया के द्वारा आत्मा के व्यापार को योग कहा गया है तथा उसी योग का वर्णन प्रस्तुत पद में प्रयोग शब्द से किया गया है, यह आत्मव्यापार इसलिए कहा जाता है कि आत्मा के अभाव मे तीनों की क्रिया नहीं हो सकती। आचार्य अकलंकदेव ने तीनों योगो के बाह्य और आभ्यन्तर कारण बताकर उसकी व्याख्या की है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—बाह्य और आभ्यन्तर कारणो से मनन के अभिमुख आत्मा का जो प्रदेशपरिस्पन्दन है वह मनोयोग कहलाता है। मनोवर्गणा का आलम्बन बाह्य कारण है। वीर्यान्तरायकर्म का क्षय, क्षयोपशम तथा नोइन्द्रियावरणकर्म का क्षय-क्षयोपशम इसका आभ्यन्तर कारण है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारण-जन्य भाषाभिमुख आत्मा का प्रदेशपरिस्पन्द वचनयोग है। वचनवर्गणा का आलम्बन बाह्य कारण है और वीर्यान्तरायकर्म का क्षय-क्षयोपशम तथा मतिज्ञानावरण और अक्षरश्रुतज्ञानावरण आदि कर्म का क्षयोपशम आभ्यन्तर कारण है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारण से उत्पन्न गमन आदि विषयक आत्मा का प्रदेशपरिस्पन्दन काययोग है। किसी भी प्रकार का शरीरवर्गणा का आलम्बन इसका बाह्य कारण है। वीर्यान्तरायकर्म का क्षय-क्षयोपशम इसका आभ्यन्तर कारण है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान मे वीर्यान्तिरायकर्म का क्षय, जो आभ्यन्तर कारण है वह दोनो ही गुणस्थानो में समान है किन्तु वर्गणा का आलम्बनरूप बाह्य कारण समान नही होने से तेरहवें गुणस्थान में योगविधि होती है किन्तु चौदहवें में नही।[१५३] यहाँ एक प्रश्न यह भी उद्बुद्ध होता है कि मनोयोग और वचनयोग में किसी न किसी प्रकार का काययोग का आलम्बन होता ही है। इसलिए केवल एक काययोग का मानना पर्याप्त है। उत्तर में निवेदन है—मनोयोग और वचनयोग मे काययोग की प्रधानता है। जब काययोग मनन करने मे सहायक बनाता है, तब मनोयोग है और जब काययोग भाषा बोलने मे सहयोगी बनाता है, तब वह वचनयोग कहलाता है। व्यवहार की दृष्टि से काययोग के ही ये तीन प्रकार हैं। जो पुद्गल मन बनने के योग्य हैं, जिन्हें मनोवर्गणा के पुद्गल कहा गया है, जब वे मन के रूप में परिणत हो जाते हैं तब उन्हे द्रव्य-मन कहते हैं। श्वेताम्बरपरम्परा के अनुसार द्रव्यमन का शरीर मे कोई स्थानविशेष नही है, वह सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त है। दिगम्बरपरम्परा की दृष्टि से द्रव्यमन का स्थान हृदय है और उसका आकार कमल के सदृश है। भाषावर्गणा के पुद्गल जब वचन रूप में परिणत होते हैं तो वे वचन कहलाते हैं। औदारिक और वैक्रिय आदि शरीर वर्गणाओ के पुद्गलो से जो योग प्रवर्तमान होता है, वह काययोग है।[१५४] इस प्रकार आलम्बनभेद से योग के तीन प्रकार हैं। जैनदृष्टि से मन, वचन और काया ये तीनो पुद्गल-मय हैं और पुद्गल की जो स्वाभाविक गति है वह आत्मा के बिना भी उसमे हो सकती है पर जब पुद्गल मन, वचन और काया के रूप में परिणत हो तब आत्मा के सहयोग से जो विशिष्ट प्रकार का व्यापार होता है वह अपरिणत में असंभव है। पुद्गल का मन आदि रूप मे परिणमन होना भी आत्मा के कर्माधीन ही है। इसलिए उसके व्यापार को आत्मव्यापार कहा है। मन, वचन और काया के प्रयोग के पन्द्रह प्रकार बताये हैं, जो निम्नलि-खित हैं—

---

१५३. तत्त्वार्थसूत्र राजवार्तिक ६/१/१०.

१५४. दर्शन और चिंतन (हिन्दी) पृष्ठ ३०९-३११—पंडित सुखलालजी

१. सत्यमन:प्रयोग २. असत्यामन प्रयोग ३. सत्यमृषामन:प्रयोग ४. असत्यामृषामन प्रयोग ५ सत्यवचनप्रयोग ६. असत्यवचनप्रयोग ७ सत्यमृषावचनप्रयोग ८. असत्यमृषावचनप्रयोग ९ औदारिककायप्रयोग १०. औदारिकमिश्र-कायप्रयोग ११ वैक्रियकायप्रयोग १२ वैक्रियमिश्रकायप्रयोग १३ आहारककायप्रयोग १४ आहारकमिश्रकायप्रयोग १५. कार्मणकायप्रयोग ।

प्रज्ञापना की टीका मे आचार्य मलयगिरि ने इन पन्द्रह प्रयोग के भेदो मे तेजसकायप्रयोग का निर्देश न होने से कार्मण के साथ तैजस को मिलाकर तैजसकार्मणशरीरप्रयोग की चर्चा की है।[१५५]

इन पन्द्रह प्रयोगो की जीव मे और विशेष रूप से चौवीस दण्डको में योजना बताई है। प्रयोग के विवेचन के पश्चात् इस पद मे गतिप्रपात का भी निरूपण है। उसके पाच प्रकार बताये हैं—प्रयोगगति, ततगति, बन्धन-छेदनगति, उपपातगति और विहायोगति। इनके भी अवान्तर अनेक भेद-प्रभेद हैं।

लेश्या : एक विश्लेषण

सत्रहवा लेश्यापद है। लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलो के अनेक समूह हैं। उनमे से एक समूह का नाम लेश्या है। उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति मे लेश्या का अर्थ आणविक आभा, कान्ति, प्रभा या छाया किया है।[१५६] दिगम्बरपरम्परा के आचार्य शिवार्य ने लेश्या उसे कहा है जो जीव का परिणाम छायापुद्गलो से प्रभावित होता हो।[१५७] प्राचीन जैन वाङ्मय मे शरीर के वर्ण, आणविक और उससे प्रभावित होने वाले विचार इन तीनो अर्थों मे लेश्या शब्द व्यवहृत हुआ है। शरीर के वर्ण और आणविक आभा द्रव्यलेश्या है[१५८] तो विचार भावलेश्या हैं।[१५९]

विभिन्न ग्रन्थो मे लेश्या की विभिन्न परिभाषायें प्राप्त होती हैं। प्राचीन पचसग्रह,[१६०] धवला,[१६१] गोम्मटसार,[१६२] आदि मे लिखा है कि जीव जिसके द्वारा अपने को पुण्य-पाप से लिप्त करता है वह लेश्या है। तत्त्वार्थवार्तिक,[१६३] पचास्तिकाय,[१६४] आदि ग्रन्थो के अनुसार कषाय के उदय से अनुरजित योगो की प्रवृत्ति लेश्या है। स्थानाग-अभयदेववृत्ति,[१६५] ध्यानशतक,[१६६] प्रभृति ग्रन्थो मे लिखा है—जिसके द्वारा प्राणी कर्म

---

१५५ प्रज्ञापनाटीका पत्र ३२९ —आचार्य मलयगिरि

१५६. लेशयति—श्लेषयतीवात्मनि जननयनानीति लेश्या—अतीव चक्षुराक्षेपिका स्निग्धदीप्तरूपा छाया।
- बृहद्वृत्ति, पत्र ६५०

१५७ जह बाहिरलेस्साओ, किण्हादीओ हवति पुरिसस्स।
अब्भन्तरलेस्साओ, तह किण्हादीय पुरिसस्स ॥ मूलाराधना, ७।१९०७

१५८ (क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड गाथा, गाथा ४९४
(ख) उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा ५३९

१५९ उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा ५४०

१६० प्राचीन पचसग्रह १-१४२

१६१ धवला, पु १, पृ १५०

१६२ गोम्मटसार, जीवकाण्ड ४८९

१६३ तत्त्वार्थवार्तिक २, ६, ८

१६४ पचास्तिकाय जयसेनाचार्य वृत्ति १४०

१६५ लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या। —स्थानाग अभयदेववृत्ति ५१, पृष्ठ ३१

१६६ कृष्णादि द्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मन.।
स्फटिकस्येव तत्राय लेश्याशब्द प्रयुज्यते ॥ —ध्यानशतक हरिभद्रीयावृत्ति १४

से संश्लिष्ट होता है उसका नाम लेश्या है। कृष्ण आदि द्रव्य की सहायता से जो जीव का परिणाम होता है वह लेश्या है। योग परिणाम लेश्या है।[167]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म के पुद्गलो का सम्बन्ध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या का सम्बन्ध है। पौद्गलिक लेश्या का मन की विचारधारा पर प्रभाव पडता है और मन की विचारधारा का लेश्या पर प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार की लेश्या होगी वैसी ही मानसिक परिणति होगी। कितने ही मूर्धन्य मनीषियो का यह मन्तव्य है कि कषाय की मदता से अध्यवसाय मे विशुद्धि होती है और अध्यवसाय की विशुद्धि से लेश्या की शुद्धि होती है।[168]

जिस परिभाषा के अनुसार योगप्रवृत्ति लेश्या है, उस दृष्टि से तेरहवें गुणस्थान तक भावलेश्या का सद्भाव है और जिस परिभाषा के अनुसार कषायोदय-अनुरजित योगप्रवृत्ति लेश्या है, उस दृष्टि से दसवें गुण-स्थान पर्यन्त ही लेश्या है। ये दोनों परिभाषाएँ अपेक्षाकृत होने से एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं। जहाँ योगप्रवृत्ति को लेश्या कहा है, वहाँ पर प्रकृति और प्रदेशबन्ध के निमित्तभूत परिणाम लेश्या के रूप मे विवक्षित हैं और जहाँ कषायोदय से अनुरजित योग की प्रवृति को लेश्या कहा है, वहा स्थिति, अनुभाग आदि चारों बन्ध के निमित्तभूत परिणाम लेश्या रूप मे विवक्षित हैं।[169]

प्रस्तुत पद में छः उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक मे नारक आदि चौबीस दण्डको के सम्बन्ध मे आहार, शरीर, श्वासोच्छ्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया आयु आदि का वर्णन है। जिन नारक जीवो के शरीर की अवगाहना बडी है उनमे आहार आदि भी अधिक है। नारको मे उत्तरोत्तर अवगाहना बढ़ती है। प्रथम नरक की अपेक्षा द्वितीय मे और द्वितीय से तृतीय मे, पर देवों मे इससे उल्टा क्रम है। वहा पर उत्तरोत्तर अवगाहना कम होती है और आहार की मात्रा भी। आहार की मात्रा अधिक होना दु.ख का ही कारण है। दु खी व्यक्ति अधिक खाता है, सुखी कम। सलेश्य जीवो की अपेक्षा नारक आदि चौबीस दण्डको मे सम-विषम आहार आदि की चर्चा है। द्वितीय उद्देशक मे लेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्ल, ये छ. भेद बताकर नरक आदि चार गतियो के जीवो में कितनी-कितनी लेश्यायें होती हैं इसका विस्तार से निरूपण है। अपेक्षा दृष्टि से लेश्या अल्पबहुत्व का भी चिन्तन इसमे किया गया है। साथ ही २४ दण्डक के जीवो को लेकर लेश्या की अपेक्षा से ऋद्धि के अल्प और बहुत्व के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला है। तृतीय उद्देशक मे जन्म और मृत्यु काल की लेश्या सम्बन्धी चर्चा है। अमुक-अमुक लेश्या वाले जीवो के अवधिज्ञान की विषय-मर्यादा पर भी प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ उद्देशक मे एक लेश्या का दूसरी लेश्या मे परिणमन होने पर उसके वर्ण, रस, गध, स्पर्श किस प्रकार परिवर्तित होते हैं, इसकी विस्तृत चर्चा है। लेश्याओ के विविध परिणाम, उनके प्रदेश, अवगाहना, क्षेत्र और स्थान की

---

१६७. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र ६५०

१६८ (क) लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधिए होइ जनस्स।
अज्झवसाणविसोधी, मंदलेसायस्य णादव्वा॥ —मूलाराधना १।१९११

(ख) अन्तर्विशुद्धितो जन्तो: शुद्धिः सम्पद्यते बहि:।
बाह्यो हि शुध्यते दोष. सर्वमन्तरदोषत:॥ —मूलाराधना (अमितगति), ७।१९६७

१६९. जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरजिया होइ।
तत्तो दोण्णं कज्जं,, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं॥ ४८९॥ —गो. जीवकाण्ड

अपेक्षा से अल्पबहुत्व द्रव्य और प्रदेश को लेकर किया गया है। पांचवें उद्देशक में एक लेश्या का दूसरी लेश्या में देव-नारक की अपेक्षा से परिणमन नहीं होता, यह बताया है। छठे उद्देशक में विविध क्षेत्रों में रहे हुए मनुष्य और मनुष्यनी की अपेक्षा से चिन्तन किया गया है। यह स्मरण रखना होगा कि जो लेश्या माता-पिता में होती है वही लेश्या पुत्र और पुत्री में भी हो, यह नियम नही है।

जीव को लेश्या की प्राप्ति के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर तथा अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर जीव परलोक में जन्म ग्रहण करता है, क्योंकि मृत्युकाल मे आगामी भव की और उत्पत्तिकाल मे उसी लेश्या का अन्तर्मुहूर्त काल तक होना आवश्यक है। जीव जिस लेश्या मे मरता है, अगले भव मे उसी लेश्या में जन्म लेता है।[१७०]

उत्तराध्ययन मे किस किस लेश्या वाले जीव के किस किस प्रकार के अध्यवसाय होते हैं तथा भगवती में लेश्याओ के द्रव्य और भाव ये भेद किए गए हैं। पर प्रज्ञापना का लेश्यापद बहुत ही विस्तृत होने पर भी उसमें उसकी परिभाषा एव द्रव्य और भाव आदि बातो की कमी है। इस कमी के सम्बन्ध मे आगमप्रभावक पुण्यविजयजी महाराज का यह मानना है कि यह इस आगम की प्राचीनता का प्रतीक है।

कायस्थिति : एक विवेचन

अठारहवे पद का नाम कायस्थिति है। इसमे जीव और अजीव दोनों अपनी अपनी पर्याय में कितने काल तक रहते हैं, इस पर चिन्तन किया गया है। चतुर्थ स्थितिपद और इस पद मे अन्तर यह है कि स्थितिपद मे तो २४ दण्डको मे जीवो की भवस्थिति अर्थात् एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है जबकि इस पद में एक जीव मरकर सतत उसी पर्याय मे जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवो की परम्परा की काल-मर्यादा अथवा उन सभी भवो मे आयुष्य का कुल जोड कितना होगा ? स्थितिपद मे तो केवल एक भव की आयु का ही विचार है जबकि प्रस्तुत पद मे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय आदि अजीव द्रव्य, जो काय के रूप मे जाने जाते हैं, उनका उस रूप मे रहने के काल का अर्थात् स्थिति का भी विचार किया गया है।

इसमे जीव, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग, आहार, भाषक, परित्त, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव (सिद्धि), अस्ति (काय), चरिम की अपेक्षा से कायस्थिति का वर्णन है। वनस्पति की कायस्थिति 'असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा' बताई है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी वनस्पति का जीव अनादि काल से वनस्पतिरूप मे नही रह सकता। उस जीव ने वनस्पति के अतिरिक्त अन्य भव किये होने चाहिये। इससे यह स्पष्ट है प्रज्ञापना के रचयिता आचार्य श्याम के समय तक व्यवहारराशि-अव्यवहारराशि की कल्पना पैदा नही हुई थी। व्यवहारराशि-अव्यवहारराशि की कल्पना दार्शनिक युग की देन है। यही कारण है कि प्रज्ञापना की टीका मे व्यवहारराशि और अव्यवहारराशि, ये दो भेद वनस्पति के किए गये हैं और निगोद के जीवो के स्वरूप का वर्णन है। माता मरुदेवी का जीव अनादि काल से वनस्पति मे था, इसका उल्लेख टीका मे किया गया है।[१७१]

इस पद मे अनेक ज्ञातव्य विषयो पर चर्चा की गई है। टीकाकार मलयगिरि ने मूल सूत्र मे आई हुई अनेक बातो का स्पष्टीकरण टीका मे किया है।

---

१७०. जल्लेसाइं दव्वाइ आयइत्ता काल करेइ, तल्लेसेसु उववज्जइ।
१७१. प्रज्ञापना टीका पत्र ३७९।३८५

उन्नीसवाँ सम्यक्त्वपद है। इसमें जीवों के चौबीस दण्डकों में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि के सम्बन्ध मे विचार करते हुए बताया है कि सम्यग्-मिथ्यादृष्टि केवल पंचेन्द्रिय होता है और एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि ही होता है। द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। षट्खण्डागम मे असंज्ञी पंचेन्द्रिय को मिथ्यादृष्टि ही कहा है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक होते हैं। सम्यक्त्व से तात्पर्य है—व्यवहार से जीवादि का श्रद्धान और निश्चय से आत्मा का श्रद्धान है।[172] जीव-अजीव आदि नौ पदार्थ हैं। उन परमार्थभूत पदार्थों के सद्भाव का उपदेश से अथवा निसर्ग से होने वाले श्रद्धान को सम्यक्त्व जानना चाहिए।[173]

अन्तक्रिया : एक चिन्तन

बीसवें पद का नाम अन्तक्रिया है। मृत्यु होने पर जीव का स्थूल शरीर यहीं पर रह जाता है पर तैजस और कार्मण, जो सूक्ष्म शरीर हैं, उसके साथ रहते हैं। कार्मणशरीर के द्वारा ही फिर स्थूल शरीर निष्पन्न होता है। अतः स्थूल शरीर के एक बार छूट जाने के बाद भी सूक्ष्म शरीर रहने के कारण जन्म-मरण की परम्परा का अन्त नही होता। जब सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जाते हैं तो भवपरम्परा का भी अन्त हो जाता है। अन्तक्रिया का अर्थ है जन्म-मरण की परम्परा का अन्त करना। भव का अन्त करने वाली क्रिया अन्तक्रिया है। यह क्रिया दो अर्थों में व्यवहृत हुई है—नवीन भव अथवा मोक्ष, दूसरे शब्दो में यहाँ पर मोक्ष और मरण इन दोनो अर्थों मे अन्तक्रिया शब्द का प्रयोग हुआ है। स्थानांग में भरत, गजसुकुमाल, सनत्कुमार और माता मरुदेवी की जो अन्तक्रिया बताई गई है, वह जन्म-मरण का अन्त कर मोक्ष प्राप्त करने की क्रिया है। वे आत्मा एवं शरीर आदि से उत्पन्न क्रियाओं का अन्त कर अक्रिय बन गए।[174] प्रस्तुत पद में अन्तक्रिया का विचार जीवों के नरक आदि चौबीस दण्डको मे किया गया है। यह भी बताया है कि सिर्फ मानव ही अन्तक्रिया यानी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसका वर्णन दस द्वारो के द्वारा किया गया है।

अवगाहना-संस्थान : एक चिन्तन

इक्कीसवाँ 'अवगाहनासंस्थान' पद है। इस पद में जीवो के शरीर के भेद, संस्थान-आकृति, प्रमाण-शरीर का माप, शरीरनिर्माण के लिए पुद्गलो का चयन, जीव में एक साथ कौनसे शरीर होते हैं? शरीरो के द्रव्यो और प्रदेशो का अल्प-बहुत्व और अवगाहना का अल्प-बहुत्व इन सात द्वारो से शरीर के सम्बन्ध मे विचारणा की गई है। गति आदि अनेक द्वारो से पूर्व में जीवों की विचारणा हुई है, पर उनमे शरीरद्वार नही है। यहाँ पर प्रथम विधिद्वार मे शरीर के पांच भेदो—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण का वर्णन करने के पश्चात् औदारिक आदि शरीरो के भेदो की चर्चा है। औदारिकशरीरधारी एकेन्द्रिय आदि मे कौनसा संस्थान है, उनकी अवगाहना कितनी है? एक जीव में एक साथ कितने-कितने शरीर सम्भव हैं? शरीर के द्रव्य-प्रदेशों का अल्पबहुत्व, शरीर की अवगाहना का अल्पबहुत्व आदि के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा है।

---

१७२. जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥ —दर्शनाप्राभृत, २०

१७३. जीवाऽजीवा य बंधो य, पुन्न-पावाऽऽसवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव॥
तहियाणं तु भावाण सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्त तं वियाहियं॥ —उत्तराध्ययन २८।१४-१५

१७४. स्थानांग, स्थान ४।१

क्रिया : एक चिन्तन

बाईसवाँ क्रियापद है। प्राचीन युग में सुकृत-दुष्कृत, पुण्य-पाप, कुशल-अकुशल कर्म के लिए क्रिया शब्द व्यवहृत होता था और क्रिया करने वालों के लिए क्रियावादी शब्द का प्रयोग किया जाता था। आगम व पाली-पिटको मे प्रस्तुत अर्थ में क्रिया का प्रयोग अनेक स्थलो पर हुआ है।[१७६] प्रस्तुत पद मे क्रिया-कर्म की विचारणा की गई है। कर्म अर्थात् वासना या सस्कार, जिनके कारण पुनर्जन्म होता है। जब हम आत्मा के जन्म-जन्मान्तर की कल्पना करते हैं तब उसके कारण-रूप कर्म की विचारणा अनिवार्य हो जाती है। महावीर और बुद्ध के समय क्रियावाद शब्द कर्म को मानने वालो के लिए प्रचलित था। इसलिए क्रियावाद और कर्मवाद दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हो गए थे। उसके बाद कालक्रम से क्रियावाद शब्द के स्थान पर कर्मवाद ही प्रचलित हो गया। इसका एक कारण यह भी है कर्म-विचार की सूक्ष्मता ज्यो-ज्यो बढती गई त्यो-त्यों वह क्रिया-विचार से दूर भी होता गया। यह क्रियाविचार कर्मविचार की पूर्वभूमिका के रूप मे हमारे समक्ष उपस्थित है। प्रज्ञापना में क्रियापद, सूत्रकृताङ्ग मे क्रियास्थान[१७७] और भगवती[१७८] में अनेक प्रसगो पर क्रिया और क्रियावाद की चर्चा की गई है। इससे ज्ञात होता है उस समय क्रिया की चर्चा का कितना महत्त्व था।

प्रस्तुत पद मे विभिन्न दृष्टियो से क्रिया पर चिन्तन है। क्रिया का सामान्य अर्थ प्रवृत्ति है, पर यहाँ विशेष प्रवृत्ति के अर्थ मे क्रिया शब्द व्यवहृत हुआ है। क्योकि विश्व मे ऐसी कोई वस्तु नही जिसमे क्रियाकारित्व न हो। वस्तु वही है जिसमें अर्थ-क्रिया की क्षमता हो, जिसमे अर्थ-क्रिया की क्षमता नही वह अवस्तु है। इसलिए हर एक वस्तु मे प्रवृत्ति तो है ही, पर यहाँ विशेष प्रवृत्ति को लेकर ही क्रिया शब्द का प्रयोग हुआ है। क्रिया के कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातकी, ये पाच प्रकार बताए है। क्रिया के जो ये पाच विभाग किए गए हैं वे हिंसा और अहिंसा को लक्ष्य मे रखकर किए गए हैं। इन पाचो क्रियाओ मे अठारह पापस्थान—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान आदि समाविष्ट हो जाते हैं। तीसरे रूप मे क्रिया के पाच प्रकार इस प्रकार बताए हैं—आरंभिया, पारिग्गहिया, मातावत्तिया, अपच्चक्खान तथा मिच्छादसणवत्तिया। ये पाच क्रियाए भी अठारह पापस्थानो मे समाविष्ट हो जाती हैं। यहाँ पर किसके द्वारा कौनसी क्रिया होती है, यह भी बताया है। उदाहरण के रूप मे—प्राणातिपात से होने वाली क्रिया षट्जीवनिकाय के सम्बन्ध मे होती है। नरक आदि चौबीस दण्डको के जीव छह प्रकार का प्राणातिपात करते हैं। मृषावाद सभी द्रव्यो के सम्बन्ध मे किया जाता है। जो द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसके सम्बन्ध मे अदत्तादान होता है। रूप और रूप वाले द्रव्यो के सम्बन्ध मे मैथुन होता है। परिग्रह सर्वद्रव्यो के विषय मे होता है। प्राणातिपात आदि क्रियाओ के द्वारा कर्म की कितनी प्रकृतियो का बन्ध होता है, इस सबन्ध मे भी चर्चा-विचारणा की गई है।

स्थानांग[१७९] मे विस्तार के साथ क्रियाओ के भेद-प्रभेदों की चर्चा है। वहाँ जीवक्रिया, अजीवक्रिया और फिर उनके भेद, उपभेद—कुल बहत्तर कहे गए हैं। सूत्रकृताङ्ग[१८०] मे तेरह क्रियास्थान बताए हैं तो

---

१७६ दीघनिकाय सामञ्जफलसुत्त

१७७. सूत्रकृताङ्ग १।१२।१

१७८ भगवती ३०-१

१७९. स्थानाङ्ग, पहला स्थान, सूत्र ४, द्वितीय स्थान, सूत्र २-३७

१८० सूत्रकृताङ्ग २।२।२

तत्त्वार्थसूत्र[181] मे पच्चीस क्रियाओं का निर्देश है। भगवती[182] में भी अनेक स्थलों में क्रियाओ का वर्णन मिलता है। उन सभी के साथ प्रज्ञापना के प्रस्तुत क्रियापद की तुलना की जा सकती है।

कर्मसिद्धान्त : एक चिन्तन

तेईस से लेकर सत्ताईसवें पद तक के कर्मप्रकृति, कर्मबन्ध, कर्मबन्ध-वेद, कर्मवेद-बन्ध, कर्मवेदवेदक, इन पाच पदो में कर्म सम्बन्धी विचारणा की गई है। कर्मसिद्धान्त भारतीय चिन्तको के चिन्तन का नवनीत है। वस्तुत · आस्तिक दर्शनों का भव्य-भवन कर्मसिद्धान्त पर ही आधृत है। भले ही कर्म के स्वरूप-निर्णय के सम्बन्ध मे मतैक्य न हो, पर सभी चिन्तको ने आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए कर्म-मुक्ति आवश्यक मानी है। यही कारण है कि सभी दार्शनिको ने कर्म के सम्बन्ध में चिंतन किया है। परन्तु जैनदर्शन का कर्म सबंधी चिन्तन बहुत ही सूक्ष्मता को लिए हुए है। इस विराट् विश्व मे विविध प्रकार के प्राणियो मे दृग्गोचर विषमताओ का मूल कर्म है।

जैनदर्शन ने कर्म को केवल संस्कारमात्र ही नही माना अपितु वह एक वस्तुभूत पदार्थ है जो राग-द्वेप का क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ बँध जाता है। वह पदार्थ जीवप्रदेश के क्षेत्र में स्थित, सूक्ष्म, कर्म-प्रायोग्य अनन्तानन्त परमाणुओ से बना होता है। आत्मा अपने सभी प्रदेशो—सर्वांग से कर्मों को आकृष्ट करता है। वे कर्मस्कन्ध ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय प्रभृति विभिन्न प्रकृतियो या रूपो मे परिणत होते हैं। प्रत्येक आत्मप्रदेश पर अनन्तानन्त कर्मपुद्गलस्कन्ध चिपके रहते हैं।

राग-द्वेषमय आत्म-परिणति भावकर्म है और उससे आकृष्ट-संश्लिष्ट होने वाले पुद्गल द्रव्यकर्म हैं। कार्मणवर्गणा, जो पुद्गलद्रव्य का एक प्रकार है, सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त है। वह कार्मणवर्गणा ही जीव के भावो का निमित्त पाकर कर्म रूप मे परिणत होती है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि आत्मा अमूर्त और कर्मद्रव्य मूर्त्त है तो अमूर्त्त के साथ मूर्त्त का बन्ध कैसे सभव है? समाधान इस प्रकार है—जैनदर्शन ने जीव और कर्म को प्रवाह की दृष्टि से अनादि माना है। उसका यह मतव्य नहीं है कि जीव पहले पूर्ण शुद्ध था, उसके पश्चात् कर्मों से आबद्ध हुआ। जो जीव ससार मे अवस्थित है, जन्म-मरण के चक्र मे पडा हुआ है, उसके प्रतिपल-प्रतिक्षण राग-द्वेषरूप परिणाम होते हैं। उन परिणामो के फलस्वरूप निरन्तर कर्म बँधते रहते हैं। उन कर्मों के बन्ध से उसे विविध गतियो मे जन्म लेना पडता है। जन्म लेने पर शरीर होता है, शरीर में इन्द्रियाँ होती है और इन्द्रियो से वह आत्मा विषय ग्रहण करता है। विषयो को ग्रहण करने से राग-द्वेष के भाव उद्बुद्ध होते हैं। इस प्रकार भावो से कर्म और कर्मों से भाव उत्पन्न होते रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि जो जीव मूर्त्त कर्मों से बँधा हुआ है अर्थात् स्वरूपत. अमूर्त्त होने से पर भी कर्मबद्ध होने से मूर्त्त बना हुआ है, उसी के नूतन कर्म बँधते है। इस तरह मूर्त्त का मूर्त्त के साथ सयोग होता है और मूर्त्त का मूर्त्त के साथ बन्ध भी होता है। आत्मा मे अवस्थित पुराने कर्मों के कारण ही नूतन कर्म बँधते हैं।

आत्मा के साथ कर्मबन्ध की प्रक्रिया चार प्रकार की है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध। जब आत्मा कर्मपुद्गलो को ग्रहण करता है, उस समय वे पुद्गल एकरूपी होते हैं। परन्तु बन्धकाल में वे विभिन्न प्रकृतियो-स्वभाव वाले हो जाते हैं। यह प्रकृतिबन्ध कहलाता है। बद्ध कर्मों में समय की मर्यादा

---

१८१. अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाः पञ्चचतु पञ्चपंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः। —तत्त्वार्थसूत्र ६।६

१८२. भगवती शतक १, उद्देशक २; शतक ८, उद्देशक ४; शतक ३, उद्देशक ३

का होना स्थितिबन्ध है। आत्मपरिणामों की तीव्रता और मंदता के कारण कर्मफल में तीव्रता या मंदता होना अनुभागबन्ध है और पुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक होना प्रदेशबन्ध है। योग के कारण प्रकृति और प्रदेशबन्ध होता है और कषाय के कारण स्थिति और अनुभागबन्ध होता है।

प्रस्तुत पदों में विभिन्न प्रकृतियों के आधार पर कर्म के मूल आठ पद कहे गये हैं। कर्म की आठों मूल प्रकृतियाँ नैरयिक आदि सभी जीवों में होती है। ज्ञानावरण आदि कर्मों के बन्ध का मूल कारण राग और द्वेष है। राग में माया और लोभ का तथा द्वेष में क्रोध और मान का समावेश किया गया है। कर्मों के वेदन—अनुभव के सम्बन्ध में बताते हुए कहा है—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म तो चौबीसों दण्डकों के जीव वेदते ही हैं परन्तु ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों को कोई जीव वेदते भी हैं और नहीं भी वेदते। यहाँ पर वेदना के लिए 'अनुभाव' शब्द का प्रयोग किया गया है।

आहार : एक चिन्तन

अट्ठाइसवें पद का नाम आहारपद है। इनमें जीवों की आहार संबंधी विचारणा दो उद्देशकों द्वारा की गई है। प्रथम उद्देशक में ग्यारह द्वारों से और दूसरे उद्देशक में तेरह द्वारों से आहार के सम्बन्ध में विचार किया गया है। चौबीस दण्डकों में जीवों का आहार सचित्त होता है, अचित्त होता है या मिश्र होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि वैक्रियशरीरधारी जीवों का आहार सचित्त ही होता है परन्तु औदारिक-शरीरधारी जीव तीनों प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं। नारकादि चौबीस दण्डकों में सात द्वारों से अर्थात् नारक आदि जीव आहारार्थी हैं या नहीं ? कितने समय के पश्चात् ये आहारार्थी होते हैं ? आहार में वे क्या लेते हैं ? सभी दिशाओं में से आहार ग्रहण कर क्या सम्पूर्ण आहार को परिणित करते हैं ? जो आहार के पुद्गल वे लेते हैं, वे सर्वभाव से लेते हैं या अमुक भाग का ही आहार लेते हैं ? क्या ग्रहण किए हुए सभी पुद्गलों का आहार करते हैं ? आहार में लिए हुए पुद्लों का क्या होता है ? इन सात द्वारों से आहार सम्बन्धी विचारणा की गई है। जीव जो आहार लेते हैं वह आभोगनिर्वर्तित—स्वयं की इच्छा होने पर आहार लेना और अनाभोगनिर्वर्तित --बिना इच्छा के आहार लेना, इस तरह दो प्रकार का है। इच्छा होने पर आहार लेने में जीवों की भिन्न-भिन्न कालस्थिति है परन्तु बिना इच्छा लिया जाने वाला आहार निरन्तर लिया जाता है। वर्ण-रस आदि से सम्पन्न अनन्त प्रदेशी स्कन्ध वाला और असख्यातप्रदेशी क्षेत्र में अवगाढ और आत्मप्रदेशों से स्पृष्ट ऐसे पुद्गल ही आहार के लिए उपयोगी होते हैं।

प्रस्तुत पद के दूसरे उद्देशक में आहार, भव्य, सज्ञी, लेश्या, दृष्टि, सयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति इन तेरह द्वारों के माध्यम से जीवों के आहारक और अनाहारक विकल्पों की चर्चा की गई है। प्रथम उद्देशक में जो आहार के भेदों की चर्चा है, उसकी यहाँ पर कोई चर्चा नहीं है। आहारक और अनाहारक इन दो पदों के आधार से यह भगों की रचना की है और किन-किन जीवों में कितने भग (विकल्प) प्राप्त होने हैं, इस सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है।

आचार्य मलयगिरि ने तीसरे सज्ञी द्वार में यह प्रश्न उत्पन्न किया है—संज्ञी का अर्थ समनस्क है। जब जीव विग्रहगति करता है उस समय जीव अनाहारक होता है। विग्रहगति में मन नहीं होता। फिर उन्हें सज्ञी कैसे कहा है ? आचार्य ने इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है—जब जीव विग्रहगति करता है तब वह सज्ञी जीव सम्बन्धी आयुकर्म का वेदन करता है, इस कारण उसे संज्ञी कहा है, भले ही उस समय उसके

मन न हो। दूसरा प्रश्न यह है—नारक, भवनपति और वाणव्यन्तर को असंज्ञी क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि इन तीनो मे असंज्ञी जीव उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से उन्हे असंज्ञी कहा है।

उपयोग और पश्यता

उनतीसवें, तीसवें और तेतीसवें, इन तीन पदों में क्रमशः उपयोग, पश्यता और अवधि की चर्चा है। प्रज्ञापना में जीवों के बोध-व्यापार अथवा ज्ञान-व्यापार के सम्बन्ध मे इन पदो मे चर्चा-विचारणा की गई है, अतएव हमने यहाँ पर तीनों को एक साथ लिया है।

जैन दृष्टि से आत्मा विज्ञाता है,[१८३] उसमे न रूप है, न रस है, न गन्ध है। वह अरूपी है, लोक-प्रमाण असख्यप्रदेशी है, नित्य है, उपयोग उसका विशिष्ट गुण है।[१८४] सख्या की दृष्टि से वह अनन्त है। उपयोग आत्मा का लक्षण भी है और गुण भी,[१८५] उपयोग मे अवधि का समावेश होने पर भी इनके लिए अलग पद देने का कारण यह है कि उस काल में अवधि का विशेष विचार हुआ था। प्रस्तुत पद मे उपयोग और पश्यता के दो-दो भेद किए हैं—साकारापयोग (ज्ञान) और अनाकारोपयोग (दर्शन), साकारपश्यता और अनाकारपश्यता।

आचार्य अभयदेव ने पश्यता को उपयोग-विशेष ही कहा है। अधिक स्पष्टीकरण करते हुए यह भी बताया है कि जिस बोध में केवल त्रैकालिक अवबोध होता हो वह पश्यता है परन्तु जिस बोध मे वर्तमानकालिक बोध होता है वह उपयोग है। यही कारण है कि मतिज्ञान और मति-अज्ञान को साकारपश्यता मे भेदो मे नही लिया है, क्योकि मतिज्ञान और मति-अज्ञान का विषय वर्तमान काल मे जो पदार्थ है वह बनता है। अनाकार-पश्यता मे अचक्षुदर्शन क्यो नही लिया गया है ? इस प्रश्न का समाधान आचार्य ने इस प्रकार किया है कि पश्यता प्रकृष्ट ईक्षण है और प्रेक्षण तो केवल चक्षुदर्शन में ही सम्भव है, अन्य इन्द्रियो द्वारा होने वाले दर्शन मे नही। अन्य इन्द्रियो की अपेक्षा चक्षु का उपयोग स्वल्पकालीन होता है और जहाँ पर स्वल्पकालीन उपयोग होता है वहाँ बोधक्रिया मे अत्यन्त शीघ्रता होती है। यही इस प्रकृष्टता का कारण है।[१८६]

आचार्य मलयगिरी ने लिखा है कि पश्यता शब्द रूढि के कारण उपयोग शब्द की तरह साकार और अनाकार बोध का प्रतिपादन करने वाला है, तथापि यह समझना आवश्यक है कि जहाँ पर लम्बे समय तक उपयोग होता है वहीं पर तीनो काल का बोध सम्भव है। मतिज्ञान मे दीर्घकाल का उपयोग नही है। इसलिए उसमें त्रैकालिक बोध नही होता, जिससे उसे पश्यता मे स्थान नही दिया गया है।[१८७] यही है उपयोग और पश्यता में अन्तर।

उपयोग और पश्यता इन दोनो की प्ररूपणा चौबीस दण्डकवर्ती जीवो मे की गई है। वस्तुतः इनमे विशेष कोई अन्तर नही है। पश्यतापद मे केवलज्ञानी का ज्ञान और दर्शन का उपयोग युगपत् है या क्रमश इस सम्बन्ध मे भी चर्चा करते हुए तर्क दिया है कि ज्ञान साकार है और दर्शन अनाकार। इसलिए एक ही समय में दोनों उपयोग कैसे हो सकते हैं ? साकार का अर्थ सविकल्प है और अनाकार का अर्थ निर्विकल्प। जो

---

१८३ आचारांग ५।५ सूत्र १६५

१८४ आचारांग ५।६ सूत्र १७०-१७१

१८५. गुणाओ उवओगगुणे। —भगवती २।१०।११८

१८६. भगवती सूत्र, अभयदेव वृत्ति पृष्ठ ७१४

१८७ प्रज्ञापना, मलयगिरि वृत्ति पृष्ठ ७३०

उपयोग वस्तु के विशेष अंश को ग्रहण करता है वह सविकल्प और जो उपयोग सामान्य अंश को ग्रहण करता है वह निर्विकल्प है।[१८८]

ज्ञान दर्शन : एक चिन्तन

ज्ञान और दर्शन की मान्यता जैन-साहित्य में अत्यधिक प्राचीन है। ज्ञान को आवृत करने वाले कर्म का नाम ज्ञानावरण है और दर्शन को आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है। इन कर्मों के क्षय अथवा क्षयोपशम से ज्ञान और दर्शन गुण प्रकट होते हैं। आगम-साहित्य मे यत्र-तत्र ज्ञान के लिए 'जाणइ' और दर्शन के लिए 'पासइ' शब्द व्यवहृत हुआ है।

दिगम्बर आचार्यों का अभिमत है कि बहिर्मुख उपयोग ज्ञान है और अन्तर्मुख उपयोग दर्शन है। आचार्य वीरसेन षट्खण्डागम की धवलाटीका मे लिखते हैं कि सामान्य—विशेषात्मक बाह्यार्थ का ग्रहण ज्ञान है और तदात्मक आत्मा का ग्रहण दर्शन है।[१८९] दर्शन और ज्ञान मे यही अन्तर है कि दर्शन सामान्य-विशेषात्मक आत्मा का उपयोग है—स्वरूप-दर्शन है, जबकि ज्ञान आत्मा से इतर प्रमेय का ग्रहण करता है। जिनका यह मन्तव्य है कि सामान्य का ग्रहण दर्शन है और विशेष का ग्रहण ज्ञान है, वे प्रस्तुत मत के अनुसार दर्शन और ज्ञान के विषय से अनभिज्ञ हैं। सामान्य और विशेष ये दोनो पदार्थ के धर्म हैं। एक के अभाव मे दूसरे का अस्तित्व नही है। केवल सामान्य और केवल विशेष का ग्रहण करने वाला ज्ञान अप्रमाण है। इसी तरह विशेष व्यतिरिक्त सामान्य का ग्रहण करने वाला दर्शन मिथ्या है।[१९०] प्रस्तुत मत का प्रतिपादन करते हुए द्रव्य-सग्रह की वृत्ति मे ब्रह्मदेव ने लिखा है ज्ञान और दर्शन का दो दृष्टियो से चिन्तन करना चाहिए—तर्कदृष्टि से और सिद्धान्तदृष्टि से। दर्शन को सामान्यग्राही मानना तर्कदृष्टि से उचित है किन्तु सिद्धान्तदृष्टि से आत्मा का सही उपयोग दर्शन है और बाह्य अर्थ का ग्रहण ज्ञान है।[१९१] व्यावहारिक दृष्टि से ज्ञान और दर्शन मे भिन्नता है पर नैश्चयिक दृष्टि से ज्ञान और दर्शन मे किसी भी प्रकार की भिन्नता नही है।[१९२] सामान्य और विशेष के आधार से ज्ञान और दर्शन का जो भेद किया गया है उसका निराकरण अन्य प्रकार से भी किया गया है। यह अन्य दार्शनिको को समझाने के लिए सामान्य और विशेष का प्रयोग किया गया है किन्तु जो जैन तत्त्वज्ञान के ज्ञाता हैं उनके लिए आगमिक व्याख्यान ही ग्राह्य है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार आत्मा और इतर का भेद ही वस्तुत सारपूर्ण है।[१९३]

उल्लिखित विचारधारा को मानने वाले आचार्यों की सख्या अधिक नही है, अधिकाशत दार्शनिक आचार्यों ने साकार और अनाकार के भेद को स्वीकार किया है। दर्शन को सामान्यग्राही मानने का तात्पर्य इतना ही है कि उस उपयोग मे सामान्य धर्म प्रतिबिम्बित होता है और ज्ञानोपयोग मे विशेष धर्म झलकता है। वस्तु मे दोनो धर्म हैं पर उपयोग किसी एक धर्म को मुख्य रूप से ग्रहण कर पाता है। उपयोग मे सामान्य और विशेष का भेद होता है किन्तु वस्तु मे नही।

१८८. तत्त्वार्थसूत्र भाष्य १।९
१८९. षट्खण्डागम, धवला टीका १।१।४
१९० षट्खण्डागम, धवला वृत्ति १।१।४
१९१. द्रव्यसग्रहवृत्ति गाथा ४४
१९२. द्रव्यसग्रहवृत्ति गाथा ४४
१९३. द्रव्यसग्रहवृत्ति गाथा ४४

काल की दृष्टि से दर्शन और ज्ञान का क्या सम्बन्ध है ? इस प्रश्न पर भी चिन्तन करना आवश्यक है। छद्मस्थों के लिए सभी आचार्यों का एक मत है कि छद्मस्थो को दर्शन और ज्ञान क्रमशः होता है, युगपत् नहीं। केवली में दर्शन और ज्ञान का उपयोग किस प्रकार होता है, इस सम्बन्ध में आचार्यों के तीन मत हैं। प्रथम मत—ज्ञान और दर्शन क्रमशः होते हैं। द्वितीय मान्यता—दर्शन और ज्ञान युगपत् होते हैं। तृतीय मान्यता—ज्ञान और दर्शन में अभेद है अर्थात् दोनों एक हैं।

आवश्यकनिर्युक्ति,[१९४] विशेषावश्यकभाष्य[१९५] आदि में कहा गया है कि केवली के भी दो उपयोग एक साथ नहीं हो सकते। श्वेताम्बर परम्परा के आगम केवली के दर्शन और ज्ञान को युगपत् नहीं मानते।[१९६] दिगम्बर परम्परा के अनुसार केवलदर्शन और केवलज्ञान युगपत् होते हैं।[१९७] आचार्य उमास्वाति का भी यही अभिमत रहा है। मति-श्रुत आदि का उपयोग क्रम से होता है, युगपत् नहीं। केवली मे दर्शन और ज्ञानात्मक उपयोग प्रत्येक क्षण में युगपत् होता है।[१९८] नियमसार मे आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट लिखा है कि जैसे सूर्य मे प्रकाश और आतप एक साथ रहता है उसी प्रकार केवली मे दर्शन और ज्ञान एक साथ रहते हैं।[१९९]

तीसरी परम्परा चतुर्थ शताब्दी के महान् दार्शनिक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की है। उन्होंने सन्मति-तर्कप्रकरण ग्रन्थ में लिखा है—मन पर्याय तक तो ज्ञान और दर्शन का भेद सिद्ध कर सकते हैं किन्तु केवलज्ञान-केवलदर्शन में भेद सिद्ध करना सभव नहीं।[२००] दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय युगपत् होता है। उस क्षय से होने वाले उपयोग में 'यह प्रथम होता है, यह बाद में होता है' इस प्रकार का भेद किस प्रकार से किया जा सकता है ?[२०१] कैवल्य की प्राप्ति जिस समय होती है उस समय सर्वप्रथम मोहनीयकर्म का क्षय होता है। उसके पश्चात् ज्ञानावरण और दर्शनावरण तथा अन्तराय का युगपत् क्षय होता है। जब दर्शनावरण और ज्ञानावरण दोनो के क्षय मे काल का भेद नहीं है, तब यह किस आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम केवलदर्शन होता है, बाद मे केवलज्ञान। इस समस्या के समाधान के लिए कोई यह माने कि दोनो का युगपत् सद्भाव है तो यह भी उचित नही, क्योंकि एक साथ दो उपयोग नहीं हो सकते। इस समस्या का सबसे सरल और तर्कसगत समाधान यह है कि केवली अवस्था मे दर्शन और ज्ञान मे भेद नही होता। दर्शन और ज्ञान को पृथक्-पृथक् मानने से एक समस्या और उत्पन्न होती है कि यदि केवली एक ही क्षण मे सभी कुछ जान लेता है तो उसे सदा के लिए सब कुछ जानते रहना चाहिए। यदि उसका ज्ञान सदा पूर्ण नही है तो वह सर्वज्ञ कैसा ?[२०२]

---

१९४. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ९७७-९७९
१९५. विशेषावश्यकभाष्य गाथा ३०८८-३१३५
१९६ भगवतीसूत्र १८/८ तथा भगवती, शतक १४, उद्देशक १०
१९७. गोम्मटसार, जीवकाण्ड ७३० और द्रव्यसंग्रह ४४
१९८. तत्त्वार्थसूत्र भाष्य १/३१
१९९. नियमसार, गाथा १५९
२००. सम्मति० प्रकरण २/३
२०१. सम्मति० प्रकरण २/९
२०२. सम्मति० प्रकरण २/१०

यदि उसका ज्ञान सदा पूर्ण है तो क्रम और अक्रम का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। वह सदा एकरूप है। वहाँ पर दर्शन और ज्ञान मे किसी भी प्रकार का कोई अन्तर नही है। ज्ञान सविकल्प है और दर्शन निर्विकल्प है, इस प्रकार का भेद आवरण रूप कर्म के क्षय के पश्चात् नही रहता।[२०३] जहाँ पर उपयोग की अपूर्णता है, वही पर सविकल्पक और निर्विकल्पक का भेद होता है। पूर्ण उपयोग होने पर किसी प्रकार का भेद नहीं होता। एक समस्या और है, और वह यह है कि ज्ञान हमेशा दर्शनपूर्वक होता है किन्तु दर्शन ज्ञानपूर्वक नही होता।[२०४] केवली को एक बार जब सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब फिर दर्शन नही हो सकता, क्योकि दर्शन ज्ञानपूर्वक नहीं होता। एतदर्थ ज्ञान और दर्शन का क्रमभाव नही घट सकता।

दिगम्बरपरम्परा मे केवल युगपत् पक्ष ही मान्य रहा है। श्वेताम्बरपरम्परा मे इसकी क्रम, युगपत् और अभेद ये तीन धाराएँ बनी। इन तीनो धाराओ का विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के महान् तार्किक यशोविजयजी ने नई दृष्टि से समन्वय किया है।[२०५] ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से क्रमिक पक्ष सगत है। यह दृष्टि वर्तमान समय को ग्रहण करती है। प्रथम समय का ज्ञान कारण है और द्वितीय समय का दर्शन उसका कार्य है। ज्ञान और दर्शन मे कारण और कार्य का क्रम है। व्यवहारनय भेदस्पर्शी है। उसकी दृष्टि से युगपत् पक्ष भी सगत हैं। सग्रहनय अभेदस्पर्शी है, उसकी दृष्टि से अभेद पक्ष भी सगत है। तर्कदृष्टि से देखने पर इन तीन धाराओ मे अभेद पक्ष अधिक युक्तिसगत लगता है।

दूसरा दृष्टिकोण आगमिक है। उसका प्रतिपादन स्वभावस्पर्शी है। प्रथम समय मे वस्तुगत भिन्नताओ को जानना और दूसरे समय मे भिन्नतागत अभिन्नता को जानना स्वभावसिद्ध है। ज्ञान का स्वभाव ही इस प्रकार का है कि भेद मे अभेद और अभेद मे भेद समाया हुआ है, तथापि भेदप्रधान ज्ञान और अभेदप्रधान दर्शन का समय एक नही होता।[२०६]

प्रज्ञापना मे उपयोग और पश्यता के सम्बन्ध मे अन्य चर्चा नही हे। अवधिपद मे अवधिज्ञान के सम्बन्ध मे भेद, विषय, सस्थान, आभ्यन्तर और बाह्य अवधि, देशावधि, अवधि की क्षय-वृद्धि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति, इन सात विषयो की विस्तृत चर्चा है। अवधिज्ञान के दो भेद हैं—एक तो जन्म से प्राप्त होता है, दूसरा कर्म के क्षयोपशम से। देवो नारको में जन्म से ही अवधिज्ञान होता है, किन्तु मनुष्यो और तिर्यंच पचेन्द्रियो का अवधिज्ञान क्षयोपशमिक है। यद्यपि दोनो प्रकार के ज्ञान क्षयोपशमजन्य ही हैं तथापि देव-नारको को वह क्षयोपशम भव के निमित्त से होता है और मनुष्यो एव तिर्यंचो को तपोनुष्ठान आदि बाह्य निमित्तो से होता है। अवधिज्ञान किसमे कितना होता है ? इसकी भी विस्तृत चर्चा है। परमावधिज्ञान केवल मनुष्य मे ही होता है। प्रज्ञापना के मूल पाठ मे अवधिज्ञान का निरूपण तो है पर परिभाषा नही दी है। अवधिज्ञान का तात्पर्य यह है-- इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही आत्मा से जो रूपी पदार्थ का सीमित ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है।

---

२०३ सन्मति० प्रकरण २/११

२०४ सन्मति० प्रकरण २/२२

२०५ ज्ञानबिन्दु, पृष्ठ १५४-१६४

२०६ (क) विशेष विवरण के लिए देखिए धर्मसग्रहणी गाथा १३३६-१३५९

(ख) तत्त्वार्थसूत्र, सिद्धसेन गणी टीका, अध्याय १, सू ३१, पृ ७७/१

(ग) नन्दीसूत्र, मलयगिरि वृत्ति पृ १३४-१३८

संज्ञा : एक चिन्तन

इकतीसवें संज्ञीपद मे सिद्धो सहित सम्पूर्ण जीवो को संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी इन तीन भेदो मे विभक्त करके विचार किया गया है। सिद्ध न तो संज्ञी हैं और न असंज्ञी, इसलिए उनको नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी कहा है। मनुष्य मे भी जो केवली हैं वे भी सिद्ध समान हैं और इसी संज्ञा वाले हैं। क्योकि मन होने पर भी वे उसके व्यापार से ज्ञान प्राप्त नही करते। जीव संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीव असंज्ञी ही होते हैं। नारक, भवनपति, वाणव्यंतर और पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी दोनो प्रकार के हैं। ज्योतिष्क और वैमानिक सिर्फ संज्ञी हैं।

यहाँ पर संज्ञा का क्या अर्थ लेना चाहिए ? यह स्पष्ट नही है, क्योकि मनुष्यों, नारको, भवनपतियो और वाणव्यंतर देवो को असंज्ञी कहा है। इसलिए जिसके मन होता है वह संज्ञी है, यह अर्थ यहाँ पर घटित नही होता। अतएव आचार्य मलयगिरि ने संज्ञा शब्द के दो अर्थ किए हैं, तथापि पूरा समाधान नही हो पाता। नारक, भवनपति, वाणव्यंतर आदि को संज्ञी और असंज्ञी कहा है, वे जीव पूर्व भव मे संज्ञी और असंज्ञी थे इस दृष्टि से उनको संज्ञी और असंज्ञी कहा है।[२०७]

आगमप्रभावक पुण्यविजय जी महाराज[२०८] का अभिमत है कि यहाँ पर जो संज्ञी-असंज्ञी शब्द आया है वह किस अर्थ का सही द्योतक है ? अन्वेषणीय है। संज्ञा शब्द का प्रयोग आगमसाहित्य मे विभिन्न अर्थों को लेकर हुआ है। आचाराग मे[२०९] संज्ञा शब्द पूर्वभव के जातिस्मरण ज्ञान के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। दशाश्रुतस्कन्ध[२१०] मे दत्तचित्त समाधि का उल्लेख है, वहाँ भी जातिस्मृति के अर्थ मे ही 'सण्णिनाण' शब्द का उपयोग हुआ है। स्थानाग[२११] मे प्रथम स्थान मे एक संज्ञा का उल्लेख है तो चतुर्थ स्थान मे आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा, इन चार संज्ञाओ का उल्लेख है[२१२] तो दसवें स्थान[२१३] मे दस संज्ञाओ का वर्णन है, उपर्युक्त चार संज्ञाओ के अतिरिक्त क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ इन संज्ञाओ का उल्लेख है।

इस प्रकार संज्ञा के दो अर्थ हैं—प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति। इन्ही मे मतिज्ञान का एक नाम संज्ञा निर्दिष्ट है।[२१४] तत्त्वार्थसूत्र मे उमास्वाति ने मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध, इन्हे एकार्थक माना है।[२१५] मलयगिरि[२१६] और अभयदेव[२१७] दोनों ने संज्ञा का अर्थ व्यंजनावग्रह के पश्चात् होने वाली एक

---

२०७ प्रज्ञापनासूत्र भाग २, पुण्यविजय जी म की प्रस्तावना पृष्ठ १४२

२०८ प्रज्ञापना, प्रस्तावना, पृष्ठ १४२

२०९ आचाराग १-१

२१०. दशाश्रुतस्कन्ध, ५ वी दशा

२११ स्थानाग, प्रथम स्थान, सूत्र ३०

२१२ स्थानाग, चतुर्थ स्थान, सूत्र ३५६

२१३. स्थानाग, दसवा स्थान, सूत्र १०५

२१४. ईहाअपोहवीमसा, मग्गणा य गवेषणा।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्व आभिणिबोहिय ॥ —नंदीसूत्र ५४, गा ६

२१५. मतिः स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्। —तत्त्वार्थसूत्र १/१३

२१६. संज्ञान संज्ञा व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थ। —नंदीवृत्ति, पत्र १८७

२१७ संज्ञान संज्ञा व्यंजनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेषः। —स्थानागवृत्ति, पत्र १९

प्रकार की मति किया है। आचार्य अभयदेव ने दूसरा अर्थ संज्ञा का अनुभूति भी किया है।[२१८] संज्ञा के जो दस प्रकार स्थानांग मे बताए हैं उनमें अनुभूति ही घटित होता है।[२१९] आचार्य उमास्वाति ने सज्ञी-असज्ञी का समाधान करते हुए लिखा है कि संज्ञी वह है जो मन वाला है[२२०] और भाष्य में उसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि सज्ञी शब्द से वे ही जीव अभिप्रेत हैं जिनमे संप्रधारण संज्ञा होती है[२२१] क्योंकि संप्रधारण संज्ञा वाले को ही मन होता है। आहार आदि संज्ञा के कारण जो सज्ञी कहलाते हैं, वे जीव यहाँ अभिप्रेत नहीं हैं।

बत्तीसवें पद का नाम सयत है। इसमे संयत, असयत, सयतासयत और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयता-संयत इस प्रकार सयत के चार भेदो को लेकर समस्त जीवो का विचार किया गया है। नारक, एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवो तक, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये असंयत होते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यंच असयत और संयतासंयत होते हैं। मनुष्य मे प्रथम के तीन प्रकार होते हैं और सिद्धों में संयत का चौथा प्रकार नोसयत-नोअसयत-नोसंयतासंयत है। संयम के आधार से जीवों के विचार करने की पद्धति महत्त्वपूर्ण है।

प्रविचारणा : एक चिन्तन

चौंतीसवें पद का नाम प्रविचारणा है। प्रस्तुत पद मे 'पवियारण' (प्रविचारण) शब्द का जो प्रयोग हुआ है उसका मूल 'प्रविचार' शब्द में है।[२२२] पद के प्रारम्भ मे जहाँ द्वारो का निरूपण है वहाँ 'परियारणा' और मूल मे 'परियारणया' ऐसा पाठ है। क्रीडा, रति, इन्द्रियो के कामभोग और मैथुन के लिए सस्कृत में प्रविचार अथवा प्रविचारणा और प्राकृत मे परियारणा अथवा पवियारणा शब्द का प्रयोग हुआ है। परिचारणा कब, किसको और किस प्रकार की सम्भव है, इस विषय की चर्चा प्रस्तुत पद मे २४ दण्डको के आधार से की गई है। नारको के सम्बन्ध में कहा है कि वे उपपात क्षेत्र मे आकर तुरन्त ही आहार के पुद्गल ग्रहण करना आरम्भ कर देते हैं। इससे उनके शरीर की निष्पत्ति होती है और पुद्गल अगोपाग, इन्द्रियादि रूप से परिणत होने के पश्चात् वे परिचारण प्रारम्भ करते हैं अर्थात् शब्दादि सभी विषयो का उपभोग करना शुरू करते हैं। परिचारण के बाद विकुर्वणा—अनेक प्रकार के रूप धारण करने की प्रक्रिया करते हैं। देवो मे इस क्रम मे यह अन्तर है कि उनकी विकुर्वणा करने के बाद परिचारणा होती है। एकेन्द्रिय जीवो मे परिचारणा नारक की तरह है किन्तु उसमे विकुर्वणा नही है, सिर्फ वायुकाय मे विकुर्वणा है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मे एकेन्द्रिय की तरह, पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य मे नारक की तरह परिचारणा है।

प्रस्तुत पद मे जीवो के आहारग्रहण के दो भेद—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित—बताकर भी चर्चा की गई। एकेन्द्रिय के अतिरिक्त सभी जीव आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित आहार लेते हैं परन्तु एकेन्द्रिय मे सिर्फ अनाभोगनिर्वर्तित आहार ही होता है। जीव अपनी इच्छा से उपयोगपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं। वह आभोगनिर्वर्तित है और इच्छा न होते हुए भी जो लोमाहार आदि के द्वारा सतत आहार का ग्रहण होता रहता है वह अनाभोगनिर्वर्तित है।

---

२१८ आहारभयाद्युपाधिका वा चेतना सज्ञा। —स्थानांग वृत्ति, पत्र ४७
२१९ स्थानाग १०/१०५
२२० सज्ञिनः समनस्काः। —तत्त्वार्थसूत्र २/२५
२२१. ईहापोहयुक्ता गुणदोषविचारणात्मिका सम्प्रधारणसज्ञा। —तत्त्वार्थभाष्य २/२५
२२२ (क) कायप्रविचारो नाम मैथुनविषयोपसेवनम्। —तत्त्वार्थभाष्य ४-८
(ख) प्रवीचारो मैथुनोपसेवनम्। —सर्वार्थसिद्धि ४-७

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना की टीका में लिखा है कि एकेन्द्रिय में भी अपटु मन है क्योंकि मनोलब्धि सभी जीवो में है। द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक अपटु मन है तो फिर एकेन्द्रिय में ही अनाभोगनिर्वर्तित आहार कहा है और शेष मे क्यों नहीं ? इस प्रश्न का सम्यक् समाधान नही है। आगमप्रभावक पुण्यविजय जी महाराज का ऐसा मन्तव्य है कि संभवतः रसेन्द्रिय वाले प्राणी के मुख होता है इसलिए उसे खाने की इच्छा होती है। अतएव उसमें आभोगनिर्वर्तित आहार माना गया हो और जिसमे रसेन्द्रिय का अभाव है उसमें अनाभोगनिर्वर्तित माना हो। इस प्रकरण में आहार ग्रहण करने वाला व्यक्ति आहार के पुद्गलो को जानता है, देखता है और जानता भी नहीं, देखता भी नहीं, आदि विकल्प कर उस पर चिन्तन किया है। अध्यवसाय के सम्बन्ध मे भी प्रासगिक चर्चा की गई है। मुख्य रूप से अध्यवसाय दो प्रकार के होते हैं—१. प्रशस्त २. अप्रशस्त। तरतमता की दृष्टि से उन अध्यवसायो के असंख्यात भेद होते हैं। चौबीसों दण्डकों के जीवों के अध्यवसायो की चर्चा की गई है।

देवों की परिचारणा के सम्बन्ध मे चार विकल्प बताए गए हैं--

१.	देव	सदेवी	सपरिचार
२.	देव	सदेवी	अपरिचार
३.	देव	अदेवी	सपरिचार
४	देव	अदेवी	अपरिचार

भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान, इनमे देवियां हैं। इसलिए प्रथम विकल्प है। यहाँ पर देव और देवियो मे कायिक परिचारणा है। सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक केवल देव ही होते हैं, देविया नहीं होती। तथापि उनमे देवियो के अभाव मे भी परिचारणा है। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानो में देव हैं, देविया नही हैं और परिचारणा भी नही है। द्वितीय विकल्प देव हैं, देविया हैं और अपरिचारक हैं यह विकल्प कही सभव नहीं है।

देवी नही है तथापि परिचारणा किस प्रकार सभव है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है (१) सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प में स्पर्शपरिचारणा है (२) ब्रह्मलोक-लान्तक कल्प में रूपपरिचारणा है (३) महाशुक्र-सहस्रार मे शब्दपरिचारणा है। (४) आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प में मन:परिचारणा है।

कायपरिचारणा मे मनुष्य की तरह देव देवी के साथ मैथुन सेवन करता है। देवो में शुक्र के पुद्गल यहाँ बताये हैं और वे शुक्रपुद्गल देवियों में जाकर पांच इन्द्रियों के रूप मे परिणत होते हैं। उस शुक्र से गर्भाधान नहीं होता[२२३] क्योंकि देवों मे वैक्रिय शरीर है। यह शुक्र वैक्रियवर्गणाओ से निर्मित होता है। जहाँ पर स्पर्श आदि परिचारणा बताई गई है उन देवलोकों मे देविया नही होती, पर जब उन देवों की इच्छा होती है तब सहस्रार देवलोक तक देवियां विकुर्वणा करके वहाँ उपस्थित होती हैं और देव अनुक्रम से उनके स्पर्श, रूप, शब्द से संतुष्ट होते हैं।[२२४] टीकाकार ने यहाँ बताया है—उन देवों मे भी शुक्रविसर्जन होता है अर्थात् देव और देवियों में सम्पर्क नहीं होता तथापि शुक्र-सक्रमण होता है और उसके परिणमन से उनके रूप-लावण्य मे वृद्धि होती है।

---

२२३. केवलं ते वैक्रियशरीरान्तर्गता इति न गर्भाधानहेतवः। —प्रज्ञापनावृत्ति पत्र ५५०

२२४. पुद्गलसंक्रमो दिव्यप्रभावादवसेयः। —प्रज्ञापनावृत्ति पत्र ५५१

आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प मे जब देवो की इच्छा मन परिचारणा की होती है तब देवी अपने स्थान पर रहकर ही दिव्य रूप और शृंगार सजाती है और वे देव स्वस्थान पर रहकर ही सतुष्ट होते हैं और देवी भी अपने स्थान पर रहकर ही रूप-लावण्यवती बन जाती है। यहा यह स्मरण रखना होगा कि कायपरिचारणा आदि में पूर्व को अपेक्षा उत्तर की परिचारणा मे क्रमश अधिक सुख है और अपरिचारणा वाले देवों में उससे भी अधिक सुख है। इससे स्पष्ट है कि परिचारणा मे सुख का अभाव है पर प्राणी चारित्रमोहनीय की प्रबलता के कारण उसमे सुख की अनुभूति करता है।[२२५]

वेदना : एक चिन्तन

पैंतीसवाँ पद वेदनापद है। चौबीस दण्डको मे जीवो को अनेक प्रकार की वेदना का जो अनुभव होता है, उसकी विचारणा इस पद मे की गई है। वेदना के अनेक प्रकार बताये गये हैं, जैसे कि (१) शीत, उष्ण, शीतोष्ण (२) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (३) शारीरिक, मानसिक और उभय (४) साता, असाता, सातासाता (५) दु खा, सुखा, अदु खा-असुखा (६) आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी (७) निदा-अनिदा आदि। सज्ञी की वेदना निदा है और असज्ञी की वेदना को अनिदा कहा है।

शीतोष्ण वेदना के सम्बन्ध मे आचार्य मलयगिरि ने यह प्रश्न उपस्थित किया है कि उपयोग क्रमिक है तो फिर शीत और उष्ण इन दोनो का युगपत् अनुभव किस प्रकार हो सकता है ? प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है—उपयोग क्रमिक है परन्तु शीघ्र सचारण के कारण अनुभव करते समय क्रम का अनुभव नही होता, इसी कारण आगम मे शीतोष्ण वेदना का युगपत् अनुभव कहा है।[२२६] यही बात शारीरिक-मानसिक, साता-असाता के सम्बन्ध मे है।[२२७]

आचार्य मलयगिरि ने अदु खा-असुखा वेदना का अर्थ सुख-दु खात्मिका किया है अर्थात् जिसे सुख सज्ञा न दी जा सके, क्योकि उसमे दु ख का भी अनुभव है। दु ख सज्ञा नही दी जा सकती क्योकि उसमे सुख का भी अनुभव है।[२२८] साता-असाता तथा सुख और दु ख मे क्या भेद है ? इस प्रश्न का उत्तर भी आचार्य ने यह दिया है कि वेदनीयकर्म के पुद्गलो का क्रम-प्राप्त उदय होने से जो वेदना होती है वह साता-असाता है पर जब कोई दूसरा व्यक्ति उदीरणा करता है, उस समय जो साता-असाता का अनुभव होता है वह सुख-दु ख कहलाता है।[२२९]

वेदना के आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी ये दो प्रकार हैं। अभ्युपगम का अर्थ अगीकार है। हम कितनी ही बातो को स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। तपस्या किसी कर्म के उदय से नही होती, वह अभ्युपगम के कारण की जाती है। तप मे जो वेदना होती है वह आभ्युपगमिकी वेदना है। उपक्रम का अर्थ कर्म की उदीरणा

---

२२५ प्रज्ञापनाटीका, पत्र २५२

२२६ प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५५

२२७ प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

२२८ प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

२२९. प्रज्ञापनाटीका, पत्र ५५६

का हेतु है। शरीर मे जब रोग होता है तो उससे कर्म की उदीरणा होती है इसलिए वह कर्म की उदीरणा का उपक्रम है। उपक्रम के निमित्त से होने वाली वेदना औपक्रमिकी वेदना है।[२३०]

समुद्घात : एक चिन्तन

छत्तीसवें पद का नाम समुद्घातपद है। शरीर से बाहर आत्मप्रदेशों के प्रक्षेप को समुद्घात कहते है।[२३१] दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि सम्भूत होकर आत्मप्रदेशो के शरीर से बाहर जाने का नाम समुद्घात है।[२३२] समुद्घात के सात प्रकार बताये हैं—वेदना समुद्घात, असातावेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। २. कषायसमुद्घात, कषायमोहकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ३ मारणान्तिकसमुद्घात, आयुष्य के अन्तर्मुहूर्त्त अवशिष्ट रह जाने पर उसके आश्रित होने वाला समुद्घात। ४ वैक्रियसमुद्घात, वैक्रियशरीर नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ५ तैजससमुद्घात तैजसशरीरनामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात ६. आहारकसमुद्घात, आहारकशरीरनामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात। ७ केवलिसमुद्घात, वेदनीय, नाम गोत्र और आयुष्यकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

इन सात समुद्घातो मे से किस जीव मे कितने समुद्घात पाए जा सकते है, इस पर विचार करते हुए लिखा है—नरक के प्रथम चार समुद्घात हैं। देवो मे और तिर्यञ्च पचेन्द्रियो मे प्रथम पाँच समुद्घात हैं। वायु के अतिरिक्त शेष एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मे प्रथम तीन समुद्घात हैं। वायुकाय मे प्रथम चार समुद्घात हैं। मनुष्य मे सातो ही समुद्घात हो सकते हैं। जीवो की दृष्टि से समुद्घात की अपेक्षा से अल्प-बहुत्व पर चिन्तन करते हुए बताया है कि जघन्य सख्या आहारकसमुद्घात करने वाले की है और सबसे अधिक सख्या वेदनासमुद्घात करने वाले की है। उनसे अधिक जीव ऐसे हैं जो समुद्घात नही करते। इसी तरह दण्डको के सम्बन्ध मे भी अल्पबहुत्व की दृष्टि से चिन्तन किया है। कषायसमुद्घात के चार प्रकार किए गये हैं और दण्डको के आधार पर विचार किया गया है। पूर्व के छहो समुद्घात छाद्मस्थिक हैं। इन समुद्घातो मे अवगाहना और स्पर्श कितने होते हैं तथा कितने काल तक ये रहते हैं ? समुद्घात के समय जीव की कितनी क्रियाएँ होती हैं ? इन सभी प्रश्नो पर विचार किया है।

केवलिसमुद्घात के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा है। केवलिसमुद्घात करने के पूर्व एक विशेष क्रिया होती है जो शुभ योग रूप है। उसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है। उसका कार्य है उदयावलिका मे कर्मदलिको का निक्षेप करना। यह क्रिया आवर्जीकरण कहलाती है। मोक्ष की ओर आत्मा आवर्जित यानी झुकी हुई होने से इसे आवर्जितकरण भी कहते हैं। केवलज्ञानियो के द्वारा अवश्य किये जाने के कारण इसे आवश्यककरण भी कहते हैं। विशेषावश्यकभाष्य, पचसग्रह आदि मे ये तीनो नाम प्राप्त होते हैं।[२३३] दिगम्बर परम्परा के साहित्य मे केवल आवर्जितकरण नाम ही मिलता है।[२३४]

---

२३०. अभ्युपगमेन—अङ्गीकारेण निवृत्ता तत्र वा भवा आभ्युपगमिकी तया—शिरोलोचतपश्चरणादिकया वेदया—पीडया उपक्रमेण—कर्मोदीरणकारणेन निर्वृत्ता तत्र वा भवा औपक्रमिकी तया—ज्वरातीसारादिजन्यया। —स्थानाग वृत्ति पत्र ८४

२३१. समुद्घनन समुद्घात शरीराद् बहिर्जीवप्रदेशप्रक्षेप:। —स्थानांग अभयदेव वृत्ति ३८०

२३२ हन्तर्गमिक्रियात्वात् सम्भूयात्मप्रदेशाना च बहिरुद्हनन समुद्घात:। — तत्त्वार्थवार्तिक १, २०, १२

२३३. (क) विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३०५०-५१ (ख) पंचसग्रह, द्वार १, गाथा १६ की टीका

२३४ लब्धिसार, गा. ६१७

जब वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति और दलिक आयुकर्म की स्थिति और दलिको से अधिक हों तब उन सभी को बराबर करने के लिए केवलिसमुद्घात होता है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु अवशेष रहने पर यह समुद्घात होता है। केवलिसमुद्घात का कालप्रमाण आठ समय का है। प्रथम समय में आत्मा के प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। उस समय उनका आकार दण्ड सदृश होता है। आत्मप्रदेशो का यह दण्ड-रूप ऊँचाई में लोक के ऊपर से नीचे तक अर्थात् चौदह रज्जु लम्बा होता है। उसकी मोटाई केवल स्वय के शरीर के बराबर होती हैं। दूसरे समय में उस दण्ड को पूर्व, पश्चिम या उत्तर, दक्षिण मे विस्तीर्ण कर उसका आकार कपाट के सदृश बनाया जाता है। तृतीय समय मे कपाट के आकार के आत्मप्रदेशो को मथाकार बनाया जाता है अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों तरफ फैलाने से उसका आकार मथनी का सा बन जाता है। चतुर्थ-समय में विदिशाओं के खाली भागो को आत्मप्रदेशों से पूर्ण करके उन्हे सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त किया जाता है। पाँचवें समय मे आत्मा के लोकव्यापी आत्मप्रदेशो को सहरण के द्वारा फिर मथाकार, छठे समय मे मथाकार से कपाटाकार बना लिया जाता है। सातवें समय मे आत्मप्रदेश फिर दण्ड रूप मे परिणत होते हैं और आठवें समय में पुन. वे अपनी असली स्थिति मे आ जाते हैं।

वैदिक परम्परा[२३५] के ग्रन्थो में आत्मा की व्यापकता के सम्बन्ध मे जो चिन्तन किया गया है, उसकी तुलना हम केवलिसमुद्घात के चतुर्थ समय मे जब आत्मा लोकव्यापी बन जाता है, उससे कर सकते हैं।

व्याख्यासाहित्य

इस प्रकार प्रज्ञापना के छत्तीस पदों में विपुल द्रव्यानुयोग सम्बन्धी सामग्री का सकलन है। इस प्रकार का सकलन अन्यत्र दुर्लभ है। प्रज्ञापना का विषय गम्भीरता को लिए हुए है। आगमो के गम्भीर रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए मूर्धन्य मनीषियों के द्वारा व्याख्यासाहित्य का निर्माण किया गया। प्रज्ञापना पर निरुक्ति और भाष्य नही लिखे गए। किन्तु आचार्य हरिभद्र ने प्रज्ञापना की प्रदेश-व्याख्या में प्रज्ञापना की अवचूर्णि का उल्लेख किया है।[२३६] इससे यह स्पष्ट है आचार्य हरिभद्र के पूर्व इस पर कोई न कोई अवचूर्णि अवश्य रही होगी, क्योंकि व्याख्या मे यत्र-तत्र 'एतदुक्त भवति', 'किमुक्त भवति' 'अयमत्र भावार्थ', 'इदमत्र हृदयम्,' 'एतेसि भावणा' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आचार्य मलयगिरि[२३७] ने भी अपनी वृत्ति मे चूर्णि का उल्लेख किया है। यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अवचूर्णि या चूर्णि का रचयिता कौन था? मुनिश्री पुण्यविजय जी महाराज का अभिमत है कि चूर्णि के रचयिता आचार्य हरिभद्र के गुरु ही होने चाहिए, क्योंकि व्याख्या मे ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं—'एक तावत् पूज्यपादा व्याचक्षते,' 'गुरवस्तु', 'इह तु पूज्या', 'अत्र गुरवो व्याचक्षते'। पुण्यविजय जी महाराज का यह भी मन्तव्य है कि प्रज्ञापना पर आचार्य हरिभद्र के गुरु जिनभट्ट के अतिरिक्त अन्य आचार्यों की व्याख्याएँ भी होनी चाहिए।[२३८] पर उपलब्ध नही होने से इसका क्या रूप था, यह नही कहा जा सकता।

---

२३५. (क) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वत पात्। —श्वेताश्वतरोपनिषद् ३-३, १११-५
(ख) सर्वत पाणिपाद तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ —भगवद्गीता, १३, १३

२३६ अलमतिप्रसङ्गेन अवचूर्णिकामात्रमेतदिति। —प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या, पृ २८, ११३

२३७. प्रज्ञापना मलयगिरि वृत्ति, पत्र २६९-२७१

२३८. प्रज्ञापना, प्रस्तावना पृ. १५२

प्रज्ञापना पर वर्तमान में जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें सर्वप्रथम आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या है। हरिभद्र जैन आगमों के प्राचीन टीकाकार हैं। उन्होने आवश्यक, दशवैकालिक, जीवाजीवाभिगम, नन्दी, अनुयोगद्वार, पिण्डनिर्युक्ति प्रभृति पर महत्त्वपूर्ण टीकाए लिखी हैं। प्रज्ञापना की टीका में सर्वप्रथम जैनप्रवचन की महिमा गाई है।[239] उसके पश्चात् मंगल का विश्लेषण किया है और साथ में यह भी सूचित किया है कि मंगल की विशेष व्याख्या आवश्यक टीका में की गई है। भव्य-अभव्य का विवेचन करते हुए आचार्य ने वादिमुख्य कृत अभव्य-स्वभाव के सूचक श्लोक को भी उद्धृत किया है।[240]

प्रज्ञापना पर दूसरी वृत्ति नवागी टीकाकार आचार्य अभयदेव की है। पर यह वृत्ति सम्पूर्ण प्रज्ञापना पर नही है केवल प्रज्ञापना के तीसरे पद —जीवो के अल्पबहुत्व—पर है। आचार्य ने १३३ गाथाओं के द्वारा इस पद पर प्रकाश डाला है। स्वय आचार्य ने उसे 'सग्रह' की अभिधा प्रदान की है। यह व्याख्या धर्मरत्नसग्रहणी और प्रज्ञापनोद्धार नाम से भी विश्रुत है।

इस सग्रहणी पर कुलमण्डनगणी ने सवत् १४४१ मे एक अवचूर्णि का निर्माण किया है। आत्मानन्द जैन सभा भावनगर से प्रज्ञापना तृतीय पद सग्रहणी पर एक अवचूर्णि प्रकाशित हुई है। पर उस अवचूर्णि के रचयिता का नाम ज्ञात नही है। यह अवचूर्णि कुलमण्डनगणी विरचित अवचूर्णि से कुछ विस्तृत है। पुण्यविजय जी महाराज का यह अभिमत है कि कुलमण्डनकृत अवचूर्णि को ही अधिक स्पष्ट करने के लिए किसी विज्ञ ने इसकी रचना की है।

प्रज्ञापना पर विस्तृत व्याख्या मलयगिरि की है। आचार्य मलयगिरि सुप्रसिद्ध टीकाकार हैं। उनकी टीकाओ मे विषय की विशदता, भाषा की प्राजलता, शैली की प्रौढ़ता एक साथ देखी जा सकती है। कहा जाता है कि उन्होने छब्बीस ग्रन्थो पर वृत्तियाँ लिखी हैं, उनमे से बीस ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। मलयगिरि ने स्वतन्त्र ग्रन्थ न लिखकर टीकाएँ ही लिखी हैं पर उनकी टीकाओं मे प्रकाण्ड पाण्डित्य मुखरित हुआ है। वे सर्वप्रथम मूल सूत्र के शब्दार्थ की व्याख्या करते हैं, अर्थ का स्पष्ट निर्देश करते हैं, उसके पश्चात् विस्तृत विवेचन करते हैं। विषय से सम्बन्धित प्रासगिक विषयो को भी वे छूते चले जाते हैं। विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए प्राचीन ग्रन्थो के उद्धरण भी देते हैं। प्रज्ञापनावृत्ति उनकी महत्त्वपूर्ण वृत्ति है। यह वृत्ति आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या से चार गुणी अधिक विस्तृत है। प्रज्ञापना के गुरु गम्भीर रहस्यो को समझने से लिए यह वृत्ति अत्यन्त उपयोगी है। वृत्ति के प्रारम्भ में आचार्य ने मगलसूचक चार श्लोक दिए हैं। प्रथम श्लोक मे भगवान् महावीर की स्तुति है, द्वितीय मे जिनप्रवचन को नमस्कार किया गया है, तृतीय श्लोक मे गुरु को नमन किया गया है और चतुर्थ श्लोक मे प्रज्ञापना पर वृत्ति लिखने की प्रतिज्ञा की है।[241]

---

२३९ रागादिवध्यपटह सुरलोकसेतुरानन्ददुन्दुभिरसत्कृतिवचितानाम्।
ससारचारकपलायनफालघटा, जैन वचस्तदिह को न भजेत विद्वान् ॥१॥ —प्रज्ञापना प्रदेशव्याख्या

२४० सद्धर्म्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबान्धव! तवापि खिलान्यभूवन्।
तन्नाद्भुत खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाता ॥१॥ प्रज्ञापना प्रदेशव्याख्या

२४१ जयति नमदमरमुकुटप्रतिबिम्बच्छद्मविहितबहुरूप.।
उद्धर्तुमिव समस्तं विश्वं भवपङ्कतो वीर.॥१॥
जिनवचनामृतजलधिं वन्दे यद्बिन्दुमात्रमादाय।
अभवन्नूनं सत्त्वा जन्म-जरा-व्याधिपारिहीना ॥२॥
प्रणमत गुरुपदपङ्कजमधरीकृतकामधेनुकल्पलतम्।
यदुपास्तिवशान्निरुपममश्नुवते ब्रह्म तनुभाज.॥३॥
जडमतिरपि गुरुचरणोपास्तिसमुद्भूतविपुलमतिविभव.।
समयानुसारतोऽहं विदधे प्रज्ञापनाविवृतिम् ॥४॥ —प्रज्ञापना टीका

आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना का शब्दार्थ करते हुए लिखा है कि 'प्रकर्षेण ज्ञाप्यन्ते अनयेति प्रज्ञापना' अर्थात् जिसके द्वारा जीव-अजीव आदि पदार्थों का ज्ञान किया जाय वह प्रज्ञापना है। आचार्य हरिभद्र ने अपनी वृत्ति में प्रज्ञापना को उपांग के रूप मे उल्लिखित किया है पर आचार्य मलयगिरि ने उनसे आगे बढ़कर समवायाङ्ग का उपांग प्रज्ञापना को बताया है। उनका यह स्पष्ट अभिमत है कि समवायाङ्ग में निरूपति अर्थ का प्रतिपादन प्रज्ञापना में हुआ है। उन्होंने यह भी लिखा है कि कहा जा सकता है कि समवायाङ्ग निरूपित अर्थ का प्रज्ञापना मे प्रतिपादन करना उचित नही, पर यह कथन उपयुक्त नही है, क्योंकि प्रज्ञापना मे समवायाङ्ग प्रतिपादित अर्थ का ही विस्तार है और यह विस्तार मंदमति शिष्य के विशेष उपकार के लिए किया गया है। इसलिए इसकी रचना पूर्ण सार्थक है। विज्ञो का यह मानना है कि अमुक अंग का अमुक उपाग है, इस प्रकार की व्यवस्था आचार्य हरिभद्र के पश्चात् और आचार्य मलयगिरि के पूर्व हुई है।

मलयगिरि की वृत्ति का मूलाधार आचार्य हरिभद्र की प्रदेशव्याख्या रही है तथापि आचार्य मलयगिरि ने अन्य अनेक ग्रन्थो का उपयोग किया है।[२४२] उदाहरण के रूप मे आचार्य हरिभद्र ने स्त्री तीर्थकर बन सकती है या नही ? इसके लिए सिद्धप्राभृत का सकेत किया है जबकि आचार्य मलयगिरि ने स्त्रीमुक्त होती है या नही ? इस सम्बन्ध मे पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की रचना कर विस्तार से विश्लेषण किया है।[२४३]

इसी प्रकार सिद्ध के स्वरूप के सम्बन्ध मे विभिन्न दार्शनिको के मन्तव्य की चर्चा करके अन्त मे जैनदर्शन की दृष्टि के सिद्ध के स्वरूप की सस्थापना की है।[२४४] सामान्य रूप से आचार्य मलयगिरि ने व्याख्या के सम्बन्ध मे विभिन्न चिन्तको के मतभेद का सूचन किया है पर कुछ स्थलों पर उन्होने अपना स्वतन्त्र मत भी प्रकट किया है और जहाँ उन्हे लगा कि यह उलझन भरा है वहाँ उन्होंने अपना मत न देकर केवलिगम्य कहकर सन्तोष किया है। यह कथन उनकी भवभीरुता का द्योतक है। आज जिन विषयो मे कुछ भी नही जानते उस विषय मे भी जो लोग अधिकार के साथ अपना मत दे देते हैं, उन्हे इस महान आचार्य से प्रेरणा लेनी चाहिए।

आचार्य मलयगिरि ने कितने ही विषयो की चर्चा तर्क और श्रद्धा दोनो ही दृष्टि से की है। जैसे - प्रज्ञापना की रचना श्यामाचार्य ने की तथापि इसमे श्रमण भगवान् महावीर और गणधर गौतम का सवाद कैसे ? भगवान् महावीर और गौतम का सवाद होने पर भी इसमे अनेक मतभेदो का उल्लेख कैसे ? सिद्ध के पन्द्रह भेदों की व्याख्या के साथ उनकी समीक्षा भी की है। स्त्रियाँ मोक्ष पा सकती हैं, वे षडावश्यक, कालिक और उत्कालिक सूत्रो का अध्ययन कर सकती हैं, निगोद की चर्चा, म्लेच्छ की व्याख्या, असख्यात आकाश प्रदेशो मे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार होता है ? भाषा के पुद्गलो के ग्रहण और निसर्ग की चर्चा, अनन्त जीव होने पर भी शरीर असख्यात कैसे ? आदि विविध विषयो पर कलम चलाकर आचार्य ने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय दिया है। अनेक विषयो की सगति बिठाने हेतु आचार्य ने नयदृष्टि का अवलम्ब लेकर व्याख्या की है और अनेक स्थलो पर पूर्वाचार्यों का और पूर्व सम्प्रदायो की मान्यताओ का उल्लेख किया है। प्रस्तुत वृत्ति का ग्रन्थमान १६००० श्लोक प्रमाण है।

---

२४२. (क) पाणिनि स्वप्राकृतव्याकरणे—पत्र ५, पत्रा ३६५ (ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा—पत्र १२। जीवाभिगमचूर्णि प. ३०८ आदि।

२४३. पण्णवणासुत्त-प्रस्तावना भाग २, पृ. १५४-१५७

२४४. देखिए—पण्णवणासुत्तं-प्रस्तावना, २, १५७

आचार्य मलयगिरि की व्याख्या के पश्चात् अन्य कुछ आचार्यों ने भी व्याख्याएँ लिखी हैं, पर वे व्याख्याएँ पूर्ण आगम पर नही हैं और न इतनी विस्तृत ही हैं। मुनि चन्द्रसूरि ने प्रज्ञापना के वनस्पति के विषय को लेकर वनस्पतिसप्ततिका ग्रन्थ लिखा है जिसमे ७१ गाथाएं हैं। इस पर एक अज्ञात लेखक की एक अवचूरि भी है। यह अप्रकाशित है और इसकी प्रति लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर ग्रन्थागार में है।

प्रज्ञापनाबीजक—यह हर्षकुलगणी की रचना है, ऐसा विज्ञों का मत है। क्योंकि ग्रन्थ के प्रारम्भ मे और अन्त मे कही पर भी कोई सूचना नही है। इसमें प्रज्ञापना के छत्तीस पदो की विषयसूची सस्कृत भाषा मे दी गई है। यह प्रति भी अप्रकाशित है और लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर ग्रन्थागार के सग्रह मे है।

पद्मसुन्दरकृत अवचूरि—यह भी एक अप्रकाशित रचना है, जिसका संकेत आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका में किया है। इसकी प्रति भी उपर्युक्त ग्रन्थागार में उपलब्ध है।

धनविमलकृत बालावबोध भी अप्रकाशित रचना है। सर्वप्रथम भाषानुवाद इसमे हुआ है जिसे टबा कहते हैं। इस टबे की रचना सवत् १७६७ से पहले की है। श्री जीवविजयकृत दूसरा टबा यानी बालावबोध भी प्राप्त होता है। यह टबा सवत् १७६४ मे रचित है। परमानन्दकृत स्तवक अर्थात् बालावबोध प्राप्त है, जो सवत् १८७६ की रचना है। यह टबा रायधनपतसिंह बहादुर की प्रज्ञापना की आवृत्ति मे प्रकाशित है। श्री नानकचदकृत सस्कृतछाया भी प्राप्त है, जो रायधनपतसिंह बहादुर ने प्रकाशित की है (प्रज्ञापना के साथ)। पण्डित भगवानदास हरकचन्द ने प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद भी तैयार किया था, जो विक्रम संवत् १९९१ में प्रकाशित हुआ। आचार्य अमोलक ऋषि जी महाराज ने भी हिन्दी अनुवाद सहित प्रज्ञापना का एक सस्करण प्रकाशित किया था। इस प्रकार समय-समय पर प्रज्ञापना पर विविध व्याख्या साहित्य लिखा गया है।

सर्वप्रथम सन् १८८४ मे *मलयगिरिविहित विवरण, रामचन्द्रकृत सस्कृतछाया व परमानन्दर्षिकृत स्तवक* के साथ प्रज्ञापना का धनपतसिंह ने बनारस से सस्करण प्रकाशित किया। उसके पश्चात् सन् १९१८-१९१९ में आगमोदय समिति बम्बई ने *मलयगिरि टीका के साथ प्रज्ञापना* का सस्करण प्रकाशित किया। विक्रम सवत् १९९१ मे भगवानदास हर्षचन्द्र जैन सोसायटी अहमदाबाद से मलयगिरि टीका के अनुवाद के साथ प्रज्ञापना का सस्करण निकला। सन् १९४७-१९४९ मे ऋषभदेवजी केसरीमलजी श्वेताम्बर सस्था रतलाम, जैन पुस्तक प्रचार सस्था, सूरत से हरिभद्रविहित प्रदेशव्याख्या सहित प्रज्ञापना का सस्करण निकला। सन् १९७१ में श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से पण्णवणासुत्त मूल पाठ और विस्तृत प्रस्तावना के साथ, पुण्यविजयजी महाराज द्वारा सम्पादित प्रकाशित हुआ है। विक्रम सम्वत् १९७५ मे श्री अमोलक ऋषिजी महाराज कृत हिन्दी अनुवाद सहित हैदराबाद से एक प्रकाशन निकला है। वि. सम्वत् २०११ मे सूत्रागमसमिति गुडगाव छावनी से श्री पुप्फभिक्खु द्वारा सम्पादित प्रज्ञापना का मूल पाठ प्रकाशित हुआ है। इस तरह समय-समय पर आज तक प्रज्ञापना के विविध सस्करण निकले हैं।

प्रस्तुत संस्करण

प्रज्ञापना के अनेक संस्करण प्रकाशित होने पर भी एक ऐसे सस्करण की आवश्यकता थी जिसमे शुद्ध मूल पाठ हो, अर्थ हो और मुख्य स्थलो पर विवेचन भी हो, जिससे विषय सहज रूप से समझा जा सके। इसी दृष्टि से प्रस्तुत आगम का प्रकाशन हो रहा है। श्रमणसघ के युवाचार्य महामहिम मधुकर मुनिजी महाराज ने आगमो के अभिनव सस्करण निकालने की योजना बनाई। यह योजना युवाचार्यश्री की दूरदर्शिता, दृढसकल्प, शक्ति और आगम-साहित्य के प्रति अगाध भक्ति का पावन प्रतीक है। युवाचार्यश्री के प्रबल पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही स्वल्पकाल मे

अनेक आगम प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक आगम शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं। अनेक मनीषियो के सहयोग के कारण यह गुरुतर कार्य सहज और सुगम हो गया है।

प्रस्तुत प्रज्ञापना के संस्करण की अपनी विशेषता है। इसमें शुद्ध मूलपाठ, भावार्थ और विवेचन है। विवेचन न बहुत अधिक लम्बा है और न बहुत संक्षिप्त ही। विषय को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन टीकाओं का भी उपयोग किया है। विषय बहुत ही गम्भीर होने पर भी विवेचनकार ने उसे सहज, सरल और सरस बनाने का भरसक प्रयास किया है। यह कहा जाय कि विवेचन मे गागर मे सागर भर दिया गया है तो अतिशयोक्ति नही होगी।

प्रज्ञापना जैन-तत्त्व-ज्ञान का बृहत् कोष है। इसमे जैनसिद्धान्त के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो का संकलन है। उपागो मे यह सबसे अधिक विशाल है। अगो मे जो स्थान व्याख्याप्रज्ञप्ति का है वही स्थान उपांगों में प्रज्ञापना का है। इसका सम्पादनकार्य सरल नहीं अपितु कठिन और कठिनतर है पर परम आह्लाद है कि वाग् देवता के वरद पुत्र श्री ज्ञानमुनिजी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न किया है। मुनिश्री का प्रकाण्ड पाण्डित्य यत्र-तत्र मुखरित हुआ है। उन्होने गम्भीर और सूक्ष्म विषय को अपने चिन्तन की सूक्ष्मता और तीक्ष्णता से स्पर्श किया है। जिससे विषय विद्वानो के लिए ही नही, सामान्य जिज्ञासुओ के लिए भी हस्तामलकवत् हो गया है। उन्होने प्रज्ञापना का सम्पादन और विवेचन कर भारती के भडार मे एक अनमोल भेंट समर्पित की है। तदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। साथ ही इसमे पण्डित शोभाचद्रजी भारिल्ल का श्रम भी मुखरित हो रहा है।

प्रज्ञापना की प्रस्तावना मैं बहुत ही विस्तार के साथ लिखना चाहता था, क्योकि प्रज्ञापना मे ऐसे अनेक मौलिक विषय हैं जिन पर तुलनात्मक दृष्टि से चिंतन करना आवश्यक था, पर अस्वस्थ हो जाने के कारण चाहते हुए भी नही लिख सका। परमश्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्करमुनि महाराज का मार्गदर्शन भी मेरे लिए अतीव उपयोगी रहा है।

मुझे आशा और दृढ विश्वास है कि प्रज्ञापना का यह सस्करण प्रबुद्ध पाठको के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। वे इसका स्वाध्याय कर अपने ज्ञान मे अभिवृद्धि करेगे। अन्य आगमो की तरह यह आगम भी जन-जन के मन को मुग्ध करेगा।

जैन स्थानक
मदनगज-किशनगढ
बिजयदशमी
१३ अक्तूबर १९८३

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय स्थानपद : ११७-२००

तृतीय बहुवक्तव्यता (अल्प-बहुत्व) पद : १९८-२९३

चतुर्थ स्थितिपद : २९४-३५३

पंचम विशेषपद (पर्यायपद) : ३५४-४३९

अजीव-पर्याय

छठा व्युत्क्रान्तिपद : ४४०-४९४

सप्तम उच्छ्वासपद : ४९५-५०४

अष्टम संज्ञापद : ५०५-५१२

नवम योनिपद : ५१४-५२५

सिरिसामज्जवायग-विरइयं

चउत्थं उवंगं

पण्णवणासुत्तं

श्रीमत्-श्यामार्य वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

प्रज्ञापनासूत्र

ॐ नमो वीतरागाय
श्रीमत्-श्यामार्य-वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

पण्णवणासुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

विषय-परिचय

☐ प्रज्ञापना जैन आगम वाङ्मय का चतुर्थ उपाग एवं अगबाह्यश्रुत है। इसमें ३६ पद हैं। उनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

☐ प्रज्ञापना का प्रथम पद 'प्रज्ञापना' है। इस पद में सर्वप्रथम प्रज्ञापना के दो भेद बतला कर अजीव-प्रज्ञापना का सर्वप्रथम निरूपण किया है, तदनन्तर जीव-प्रज्ञापना का। अजीव-प्रज्ञापना मे अरूपी अजीव और रूपी अजीव के भेद-प्रभेद बताए हैं। जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो भेद ससारी और सिद्ध बताकर सिद्धो के १५ प्रकार और समय की अपेक्षा से भेद बताए हैं। फिर ससारी जीवो के भेद-प्रभेद बताए हैं। इन्द्रियो के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक में सब ससारी जीवो का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदों का नियामक तत्त्व इन्द्रियों की क्रमश वृद्धि है।

☐ दूसरे स्थानपद मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यच, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध जीवो के वासस्थान का वर्णन किया गया है। जीवो के निवासस्थान दो प्रकार के हैं—(१) जीव जहाँ जन्म लेकर मरणपर्यन्त रहता है, वह स्वस्थान और (२) प्रासगिक वासस्थान (उपपात और समुद्घात)।

☐ तृतीय अल्पबहुत्वपद है। इसमें दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग, आहार, भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, बन्ध, पुद्गल और महादण्डक, इन २७ द्वारों की अपेक्षा से जीवो के अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है।

☐ चतुर्थ स्थितिपद में नैरयिक, भवनवासी, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वि-त्रि-चतु:-पंचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवों की स्थिति का वर्णन है।

☐ पचम विशेषपद या पर्यायपद में चौबीस दण्डको के क्रम से प्रथम जीवों के नैरयिक आदि विभिन्न भेद-प्रभेदों को लेकर वैमानिक देवों तक के पर्यायो की विचारणा की गई है। तत्पश्चात् अजीव-पर्याय के भेद-प्रभेद तथा अरूपी अजीव एव रूपी अजीव के भेद-प्रभेदों की अपेक्षा से पर्यायो की सख्या की विचारणा की गई है।

छठे व्युत्क्रान्तिपद मे बारह मुहूर्त्त और चौबीस मुहूर्त्त का उपपात और उद्वर्तन (मरण) सम्बन्धी विरहकाल क्या है ? कहाँ जीव सान्तर उत्पन्न होता है, कहाँ निरन्तर ?, एक समय मे कितने जीव उत्पन्न होते और मरते हैं ?, कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?, मर कर कहाँ जाते हैं ?, परभव की आयु कब बन्धती है ?, आयुबन्ध सम्बन्धी आठ आकर्ष कौन-से हैं ?, इन आठ द्वारो से जीव की प्ररूपणा की गई है ।

सातवे उच्छ्वासपद मे नैरयिक आदि के उच्छ्वास ग्रहण करने और छोड़ने के काल का वर्णन है ।

आठवे सज्ञापद मे जीव की आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ इन १० सज्ञाओ का २४ दण्डकों की अपेक्षा से निरूपण किया गया है ।

नौवे योनिपद में जीव की शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त, मिश्र, सवृत, विवृत, सवृत-विवृत, कूर्मोन्नत, शखावर्त और वशीपत्र, इन योनियों के आश्रय से समग्र जीवों का विचार किया गया है ।

दसवे चरम-अचरम पद में—चरम है ?, अचरम है, चरम हैं, अचरम है, चरमान्तप्रदेश है, अचरमान्त-प्रदेश हैं, इन ६ विकल्पो को लेकर २४ दण्डको के जीवो का गत्यादि की दृष्टि से तथा विभिन्न द्रव्यो का लोक-अलोक आदि की अपेक्षा से विचार किया गया है ।

ग्यारहवे भाषापद में भाषासम्बन्धी विचारणा करते हुए बताया है कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है ?, कहाँ पर रहती है ? उसकी आकृति किस प्रकार की है ? उसका स्वरूप तथा बोलने वाले व्यक्ति आदि प्रश्नो पर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही सत्यभाषा, मृषाभाषा, तथा सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा के क्रमश. दस, दस, दस और सोलह प्रकार बताए हैं । अन्त में १६ प्रकार के वचनो का उल्लेख किया है ।

बारहवें शरीरपद में पाच शरीरो की अपेक्षा से चौबीस दण्डको में से किसके कितने शरीर है ? तथा इन सभी मे बद्ध-मुक्त कितने-कितने और कौन-से शरीर होते हैं ? इत्यादि सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

तेरहवे परिणामपद में—जीव के गति आदि दस परिणामो और अजीव के बन्धन आदि दस परिणामो पर विचार किया गया है ।

चौदहवे कषायपद में क्रोधादि चार कषाय, उनकी प्रतिष्ठा, उत्पत्ति, प्रभेद तथा उनके द्वारा कर्म-प्रकृतियों के चयोपचय एव बन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

पन्द्रहवे इन्द्रियपद मे दो उद्देशक है । प्रथम उद्देशक में पाचो इन्द्रियो की सस्थान, बाहुल्य आदि २४ द्वारो के माध्यम से विचारणा की गई है । दूसरे उद्देशक मे इन्द्रियोपचय, इन्द्रियनिर्वर्तना, निर्वर्तनासमय, इन्द्रियलब्धि, इन्द्रिय-उपयोग आदि तथा इन्द्रियो की अवगाहना, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि १२ द्वारो के माध्यम से चर्चा की गई है । अन्त में इन्द्रियों के भेद-प्रभेद का विचार प्रस्तुत किया गया है ।

☐ सोलहवें प्रयोगपद मे सत्यमन:प्रयोग आदि १५ प्रकार के प्रयोगा का चौबीस दण्डकवर्त्ती जीवो की अपेक्षा से विचार किया गया है। अन्त में ५ प्रकार के गतिप्रपात के स्वरूप का चिन्तन किया गया है।

☐ सत्रहवें लेश्यापद में छह उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक मे समकर्म, समवर्ण, समलेश्या, समवेदना, समक्रिया और समआयु नामक अधिकार हैं। दूसरे मे कृष्णादि ६ लेश्याओं के आश्रय से जीवो का निरूपण किया गया है। तीसरे उद्देशक में लेश्यासम्बन्धी कतिपय प्रश्नोत्तर हैं। चतुर्थ उद्देशक में परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, सक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाढ, वर्गणा, स्थान और अल्प-बहुत्व नामक अधिकार हैं। लेश्याओ के वर्ण और स्वाद (रस) का भी वर्णन है। पाचवे मे लेश्याओ के परिणाम बताए हैं और छठे उद्देशक मे किस जीव के कितनी लेश्याएँ होती हैं ? इसका निरूपण है।

☐ अठारहवे पद का नाम कायस्थिति है। इसमे जीव और अजीव दोनो अपनी-अपनी पर्याय मे कितने काल तक रहते हैं, इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। स्थितिपद और कायस्थितिपद मे अन्तर यह है कि स्थितिपद मे तो २४ दण्डकवर्त्ती जीवो की भवस्थिति—एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है, जबकि कायस्थितिपद में जीव मर कर उसी भव मे जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवो की परम्परा की कालमर्यादा यानी सब भवो के आयुष्य का कुल जोड कितना होगा ?, इसका विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त कायस्थितिपद मे 'काय' शब्द से निरूपित धर्मास्तिकाय आदि का उस-उस रूप मे रहने के काल (स्थिति) का भी विचार किया है। अत इसमें जीव, गति, इन्द्रिय, योग, वेद आदि से लेकर अस्तिकाय और चरम इन द्वारो के माध्यम से विचार प्रस्तुत किया गया है।

☐ उन्नीसवे सम्यक्त्वपद मे २४ दण्डकवर्ती जीवो के क्रम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि का विचार किया गया है।

☐ बीसवे अन्तक्रियापद मे बताया गया है कि कौन-सा जीव अन्तक्रिया (कर्मनाश द्वारा मोक्षप्राप्ति) कर सकता है, और क्यो ? साथ ही अन्तक्रिया शब्द वर्तमान भव का अन्त करके नवीन भवप्राप्ति, (अथवा मृत्यु) के अर्थ में भी यहां प्रयुक्त किया गया है। और इस प्रकार की अन्तक्रिया का विचार चौबीस दण्डकवर्ती जीवों से सम्बन्धित किया गया है। कर्मों की अन्तरूप अन्तक्रिया तो एकमात्र मनुष्य ही कर सकते हैं; इसका वर्णन ६ द्वारो के माध्यम से किया गया है।

☐ इक्कीसवें अवगाहना-सस्थान (या शरीर) पद में शरीर के विधि (भेद), सस्थान, प्रमाण, पुद्गलों के चय, शरीरो के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके द्रव्य, प्रदेश, द्रव्यप्रदेशो तथा अवगाहना के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

☐ बाईसवें क्रियापद में कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी व प्राणातिपातिकी, इन ५ क्रियाओ तथा इनके भेदों की अपेक्षा से समस्त संसारी जीवों का विचार किया गया है।

☐ तेईसवें कर्मप्रकृतिपद मे दो उद्देशक है। प्रथम उद्देशक में ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों में से कौन जीव कितनी कर्मप्रकृतियो को बाधता है ? इसका विचार है। द्वितीय उद्देशक मे कर्मों की उत्तरप्रकृतियो और उनके बन्ध का वर्णन है।

- चौबीसवें कर्मबन्ध पद में यह चिन्तन प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि में से किस कर्म को बाधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?
- पच्चीसवें कर्मवेदपद में ज्ञानावरणीयादि कर्मों को बाधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ? इसका विचार किया गया है।
- छव्वीसवे कर्मवेदबन्धपद मे यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियो को बाधता है ?
- सत्ताईसवे कर्मवेदपद मे—ज्ञानावरणीय आदि का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ? इसका विचार किया है।
- अट्ठाईसवे आहारपद मे दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में—सचित्ताहारी आहारार्थी कितने काल तक, किसका आहार करता है ? क्या वह सर्वात्मप्रदेशो द्वारा आहार करता है, या अमुक भाग से आहार करता है ? क्या सर्वपुद्गलो का आहार करता है ? किस रूप मे उसका परिणमन होता है ? लोमाहार आदि क्या है ?, इसका विचार है। दूसरे उद्देशक में आहार, भव्य, सज्ञी, लेश्या, दृष्टि आदि तेरह अधिकार है।
- उनतीसवे उपयोगपद में दो उपयोगो के प्रकार बताकर किस जीव मे कितने उपयोग पाए जाते है ? इसका वर्णन किया है।
- तीसवे पश्यत्तापद में भी पूर्ववत् साकारपश्यत्ता (ज्ञान) और अनाकारपश्यत्ता (दर्शन) ये दो भेद बताकर इनके प्रभेदों की अपेक्षा से जीवो का विचार किया गया है।
- इकतीसवे सज्ञीपद मे सज्ञी, असज्ञी और नोसज्ञी की अपेक्षा से जीवो का विचार किया है।
- बत्तीसवे सयतपद मे सयत, असयत और सयतासयत की दृष्टि से जीवो का विचार किया गया है।
- तेतीसवे अवधिपद मे विषय, सस्थान, अभ्यन्तरावधि, बाह्यावधि, देशावधि, सर्वावधि, वृद्धि-अवधि, प्रतिपाती और अप्रतिपाती, इन द्वारो के माध्यम से विचारणा की गई है।
- चौतीसवे प्रविचारणा (या परिचारणा) पद मे अनन्तरागत आहारक, आहारविषयक आभोग-अनाभोग, आहाररूप से गृहीत पुद्गलो की अज्ञानता, अध्यवसायकथन, सम्यक्त्वप्राप्ति तथा कायस्पर्श, रूप, शब्द और मन से सम्बन्धित प्रविचारणा (विषयभोग-परिचारणा) एव उनके अल्पबहुत्व का विचार है।
- पेंतीसवे वेदनापद में—शीत, उष्ण, शीतोष्ण, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शारीरिक, मानसिक, शारीरिक-मानसिक साता, असाता, साता-असाता, दुःखा, सुखा, अदुःखसुखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा (चित्त की सलग्नता) एव अनिदा नामक वेदनाओ की अपेक्षा से जीवों का विचार किया गया है।
- छत्तीसवें समुद्घातपद के वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक और केवलि समुद्घात की अपेक्षा से जीवो की विचारणा की गई है। इसमें केवलिसमुद्घात का विस्तृत वर्णन है।

पण्णवणासुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्राथमिक

- ☐ प्रज्ञापनासूत्र का यह प्रथम पद है, इसका नाम प्रज्ञापनापद है।
- ☐ इसमें जैनदर्शनसम्मत जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व की प्रज्ञापना—प्रकर्षरूपेण प्ररूपणा—भेद-प्रभेद बता कर की गई है।
- ☐ जीव-प्रज्ञापना से पूर्व अजीव-प्रज्ञापना इसलिए की गई है कि इसमे जीवतत्त्व की अपेक्षा वक्तव्य अल्प है। अजीवों के निरूपण में रूपी और अरूपी, ये भेद और इनके प्रभेद प्रस्तुत किये गए हैं। रूपी मे पुद्गल द्रव्य का और अरूपी मे धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यो का समावेश हो जाता है। तथा 'अद्धासमय' के साथ 'अस्तिकाय' शब्द जुड़ा हुआ न होने पर भी वह एक स्वतन्त्र अरूपी अजीव कालद्रव्य का द्योतक तो है ही। प्रस्तुत अरूपी अजीव का प्रतिपादन करने के साथ ही यहाँ धर्मास्तिकायादि तीन को देश और प्रदेश के भेदो मे विभक्त किया गया है। तत्पश्चात् रूपी अजीव के स्कन्ध से लेकर परमाणु पुद्गल तक मुख्य ४ भेद बता कर उनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के रूप में परिणत होने पर अनेक प्रभेदों का कथन किया है। साथ ही वर्णादि के परस्पर सम्बन्ध से कुल ५३० भंग होते हैं, उनका निरूपण भी यहाँ किया गया है। शास्त्रकार का आशय यही है कि यों प्रत्येक वर्ण आदि के अनन्त-अनन्त भेद हो सकते हैं। यहाँ मौलिक भेदो का निर्देश करके आगे शास्त्रकार ने इसी शास्त्र के पचम विशेष-पद में अजीव के पर्यायो तथा तेरहवे परिणामपद में परिणामों का विस्तृत वर्णन किया है।[1]
- ☐ जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो मुख्य भेदो—सिद्ध और संसारी का असंसारसमापन्न और ससार-समापन्न नाम से निर्देश किया है। तत्पश्चात् सिद्धो के १५ प्रकार तथा समय की अपेक्षा से सिद्धो का परस्पर अन्तर बताकर मुक्त होने के बाद आत्मा के परमात्मा मे विलीन हो जाने के सिद्धान्त का निराकरण एव प्रत्येक मुक्तात्मा के पृथक् अस्तित्व के सिद्धान्त का मण्डन ध्वनित किया है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक प्रत्येक ससारी जीव के भेद-प्रभेदो का निरूपण करके जीव को ईश्वर का अश न मान कर प्रत्येक जीव का अपने-आप में स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध किया है। अगर ब्रह्मैकत्व—(आत्मैकत्ववाद) माना जाए तो प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व, शुभाशुभकर्मबन्ध तथा उसके फल की एव कर्मबन्ध से मुक्ति की व्यवस्था घटित नहीं हो सकती। यही कारण है कि शास्त्रकार ने पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय से लेकर देव-योनि तक के समस्त संसारी—ससारसमापन्न जीवों का पृथक्-पृथक् कथन किया है। इस पर से यह भी ध्वनित किया है कि चार गतियो और ८४ लक्ष योनियों या २४ दण्डको मे जब तक

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा.-१, पृ. ३ से ४५ तक (ख) पण्णवणासुत्तं भा-२, प्रथम पद की प्रस्तावना, पृ. २९ से ३६ तक।

परिभ्रमण एवं आवागमन है, तब तक संसारसमापन्नता मिट नहीं सकती। किसी देवी-देव या ईश्वर अथवा अवतार (भगवान्) के द्वारा किसी की ससार-समापन्नता मिटाई नही जा सकती, वह तो स्वय की रत्नत्रय-साधना से ही मिटाई जा सकती है। मनुष्य के ज्ञानार्य दर्शनार्य एव चारित्रार्य-रूप भेद बताकर यह स्पष्ट कर दिया है कि उपशान्तकषायत्व, क्षीणकषायत्व, सूक्ष्मसम्परायत्व, वीतरागत्व तथा केवलित्व आदि से युक्त आर्यता प्राप्त करना मनुष्य के अपने अधिकार में है, स्वकीय-पुरुषार्थ के द्वारा ही वह उच्चकोटि का आर्यत्व और सिद्धत्व प्राप्त कर सकता है।

☐ पचेन्द्रिय जीवो में नारको और देवो की प्रज्ञापना तो अन्यत्र विस्तृतरूप मे ही है, किन्तु मनुष्यो की प्रज्ञापना अन्यत्र इतनी विस्तृत रूप से नही है, अतएव प्रथम पद मे मनुष्यो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो जैनदर्शन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने मे उपयोगी है।

☐☐

पण्णवणासुत्तं
प्रज्ञापना-सूत्र

मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध

[नमो अरिहंताणं। नमो सिद्धाणं। नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं। नमो लोए सव्वसाहूणं॥]

१. ववगयजर-मरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं।
वंदामि जिणवरिंदं तेलोक्कगुरुं महावीरं॥१॥

सुयरयणनिहाणं जिणवरेण भवियजणणिव्वुइकरेण।
उवदंसिया भयवया पण्णवणा सव्वभावाण॥२॥

अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं।
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि॥३॥

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो, लोक में (विद्यमान) सर्व-साधुओं को नमस्कार हो।

[**१. गाथाओं का अर्थ**—] जरा, मृत्यु, और भय से रहित सिद्धो को त्रिविध (मन, वचन और काय से) अभिवन्दन करके त्रैलोक्यगुरु जिनवरेन्द्र श्री भगवान् महावीर को वन्दन करता हूँ॥१॥

भव्यजनों को निर्वृत्ति (निर्वाण या उसके कारणरूप रत्नत्रय का उपदेश) करने वाले जिनेश्वर भगवान् ने श्रुतरत्ननिधिरूप सर्वभावों की प्रज्ञापना का उपदेश दिया है॥२॥

दृष्टिवाद के निःस्यन्द-(निष्कर्ष = निचोड़) रूप विचित्र श्रुतरत्नरूप इस प्रज्ञापना-अध्ययन का श्रीतीर्थंकर भगवान् ने जैसा वर्णन किया है, मैं (श्यामार्य) भी उसी प्रकार वर्णन करूंगा॥३॥

विवेचन—मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—प्रस्तुत सूत्र में तीन गाथाओ द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्यवाचक शास्त्र के प्रारम्भ में विघ्नशान्ति-हेतु मगलाचरण तथा प्रस्तुत शास्त्र से सम्बन्धित अनुबन्धचतुष्टय प्रस्तुत करते हैं।

मंगलाचरण का औचित्य—यह उपांग समस्त जीव, अजीव आदि पदार्थों की शिक्षा (ज्ञान) देने वाला होने से शास्त्र है और शास्त्र के प्रारम्भ में विचारक को शास्त्र में प्रवृत्त करने तथा विघ्नोपशान्ति के हेतु तीन प्रयोजनों की दृष्टि से तीन मंगलाचरण करने चाहिए। शिष्टजनो का यह आचार है कि निर्विघ्नता से शास्त्र के पारगमन के लिए आदिमगल, ग्रहण किये हुए शास्त्रीय पदार्थ (प्ररूपण) को स्थिर करने के लिये मध्यमंगल तथा शिष्यपरम्परा से शास्त्र की विचारधारा

को सतत चालू रखने के लिए अन्तिम मगलाचार करना चाहिए। तदनुसार प्रस्तुत मे **'ववगयजरा-मरणभए०'** आदि तीन गाथाओं द्वारा शास्त्रकार ने आदिमगल, **'कइविहे णं उवओगे पन्नत्ते ?'** इत्यादि ज्ञानात्मक सूत्रपाठ द्वारा मध्यमगल एव **'सुही सुहं पत्ता'** इत्यादि सिद्धाधिकारात्मक सूत्र-पाठ द्वारा अन्तमगल प्रस्तुत किया है।[1]

अनुबन्ध चतुष्टय—शास्त्र के प्रारम्भ मे समस्त भव्यो एव बुद्धिमानो को शास्त्र मे प्रवृत्त करने के उद्देश्य से चार अनुबन्ध अवश्य बताने चाहिए। वे चार अनुबन्ध इस प्रकार है—(१) विषय, (२) अधिकारी, (३) सम्बन्ध और (४) प्रयोजन। मगलाचरणीय गाथात्रय से ही प्रस्तुत शास्त्र के पूर्वोक्त चारो अनुबन्ध ध्वनित होते हैं।[2]

अभिधेय विषय—प्रस्तुत शास्त्र का अभिधेय विषय—श्रुतनिधिरूप सर्वभावो की प्रज्ञापना-प्ररूपणा करना है। 'प्रज्ञापना' शब्द का अर्थ ही स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर रहा है कि 'जिसके द्वारा जीव, अजीव आदि तत्त्व प्रकर्ष रूप से ज्ञापित किये जाएँ उसे **प्रज्ञापना**—कहते हैं। यहाँ 'प्रकर्षरूप से' का तात्पर्य है—समस्त कुतीर्थिको के प्रवर्त्तक जैसी प्ररूपणा करने में असमर्थ है, ऐसे वस्तुस्वरूप का यथावस्थितरूप से निरूपण करना। ज्ञापित करने का अर्थ है—शिष्य की बुद्धि में आरोपित कर देना—जमा देना।[3]

अधिकारी—इस शास्त्र के पठन-पाठन का अधिकारी वह है, जो सर्वज्ञवचनो पर श्रद्धा रखता हो, शास्त्रज्ञान मे जिसकी रुचि हो, जिसे शास्त्रज्ञान एव तत्त्वज्ञान के द्वारा अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा अधिकारी महाव्रती भी हो सकता है, अणुव्रती भी और सम्यग्दृष्टिसम्पन्न भी। जैसे कि कहा गया है—जो मध्यस्थ हो, बुद्धिमान् हो और तत्त्वज्ञानार्थी हो, वह श्रोता (वक्ता) पात्र है।[4]

सम्बन्ध—सम्बन्ध प्रस्तुत शास्त्र मे दो प्रकार का है—(१) उपायोपेयभाव-सम्बन्ध और (२) गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध। पहला सम्बन्ध तर्क का अनुसरण करने वालो की अपेक्षा से है। वचनरूप से प्राप्त प्रकरण उपाय है और उसका परिज्ञान उपेय है। गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध केवल

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक २

(ख) प्रेक्षावता प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितय स्फुटम्।
मंगल चैव शास्त्रादौ, वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥१॥

(ग) तं मंगलमाईए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स।
पढम सत्थस्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठं ॥१॥
तस्सेव य थेज्जत्थ मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव।
अव्वोच्छित्तिनिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स ॥२॥

२ (क) 'प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वमनुबन्धत्वम,विषयश्चाधिकारी च सम्बन्धश्च प्रयोजनमिति अनुबन्धचतुष्टयम।'

(ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्राक. १-२

३. प्रकर्षेण-नि शेषकुतीर्थितीर्थकरासाध्येन यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते—शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादय. पदार्था अनयेति प्रज्ञापना। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्राक १

४ मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी श्रोता पात्रमिति स्मृत'। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्राक ७

श्रद्धानुसारी जनों की अपेक्षा से है, जिसे शास्त्रकार स्वय आगे बताएँगे ।

प्रयोजन—प्रस्तुत शास्त्र का प्रयोजन दो प्रकार का है—पर (अनन्तर) प्रयोजन और अपर (परम्पर) प्रयोजन । ये दोनों प्रयोजन भी दो-दो प्रकार के हैं—(१) शास्त्रकर्ता का पर-अपर-प्रयोजन और (२) श्रोता का पर-अपर-प्रयोजन ।

शास्त्रकर्ता का प्रयोजन—द्रव्यास्तिकनय की दृष्टि से विचार करने पर 'आगम' नित्य होने से उसका कोई कर्ता है ही नही । जैसा कि कहा गया है[1]—'**यह द्वादशांगी कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और कभी नहीं होगी, ऐसा भी नहीं है । यह ध्रुव, नित्य और शाश्वत है**' इत्यादि । पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर आगम अनित्य है, अतएव उसका कर्ता भी अवश्य होता है । वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर आगम सूत्र, अर्थ और तदुभयरूप है । अतः अर्थ की अपेक्षा से नित्य और सूत्र की अपेक्षा से अनित्य होने से शास्त्र का कर्ता कथचित् सिद्ध होता है । शास्त्रकर्ता का इस शास्त्रप्ररूपणा से अनन्तर प्रयोजन है—प्राणियो पर अनुग्रह करना और परम्परप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति । कहा भी है—'**जो व्यक्ति सर्वज्ञोक्त उपदेश द्वारा दुःखसंतप्त जीवो पर अनुग्रह करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है** ।' कोई कह सकता है कि अर्थरूप आगम के प्रतिपादक अर्हत् (तीर्थंकर) भगवान् तो कृतकृत्य हो चुके है, उन्हे शास्त्र-प्रतिपादन से क्या प्रयोजन है ? बिना प्रयोजन के अर्थरूप आगम का प्रतिपादन करना वृथा है । इस शका का समाधान यह है कि ऐसी बात नही है । तीर्थंकर भगवान् तीर्थंकरनामकर्म के विपाकोदय-वश अर्थागम का प्रतिपादन करते है । आवश्यकनिर्युक्ति मे इस विषय मे एक प्रश्नोत्तरी द्वारा प्रकाश डाला गया है—(प्र) '**वह (तीर्थंकर नामकर्म) किस प्रकार से वेदन किया (भोगा) जाता है?**' (उ.) '**अग्लान भाव से धर्मदेशना देने से (उसका वेदन होता है)** ।'[2] **श्रोताओं का प्रयोजन**—श्रोताओ का साक्षात् (अनन्तर) प्रयोजन है—विवक्षित अध्ययन के अर्थ का परिज्ञान होना । अर्थात् *आगम श्रवण करते ही उसके अभीष्ट अर्थ का ज्ञान श्रोता को हो जाता है* । परम्पराप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति । जब श्रोता विवक्षित अध्ययन का अर्थ समीचीनरूप से जान लेता है, हृदयगम कर लेता है, तो ससार से उसे विरक्ति हो जाती है । विरक्त होकर भवभ्रमण से छुटकारा पाने हेतु वह आगमानुसार सयममार्ग मे सम्यक् प्रवृत्ति करता है । सयम मे प्रकर्षरूप से प्रवृत्ति और ससार से विरक्ति के कारण श्रोता के समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है । कहा भी है—वस्तुस्वरूप के यथार्थ परिज्ञान से ससार से विरक्त जन (मोक्षानुसारी) क्रिया मे सलग्न होकर निर्विघ्नता से परमगति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते है ।[3]

कतिपय विशिष्ट शब्दों की व्याख्या—'**ववगय-जरमरणभए**'—जो जरा, मरण और भय से सदा के लिए मुक्त हो चुके हैं । यह सिद्धों का विशेषण है । **जरा** का अर्थ है—वय की हानिरूप वृद्धावस्था, **मरण** का अर्थ प्राणत्याग, और **भय** का अर्थ है—इहलोकभय, परलोकभय आदि सात प्रकार की भीति । सिद्ध भगवान् इससे सर्वथा रहित हो चुके हैं । **सिद्धे**—जिन्होंने सित यानी बद्ध अष्टविध-

---

१. नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान-प्रकरण

२. 'तं च कहं वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाए उ' । —आव० निर्युक्ति

३. सम्यग्भावपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जना ।
क्रियासक्ता ह्यविघ्नेन गच्छन्ति परमां गतिम् ॥

कर्मेन्धन को जाज्वल्यमान शुक्लध्यानाग्नि से ध्मात यानी दग्ध (भस्म) कर डाला है, वे सिद्ध हैं। अथवा जो सिद्ध—निष्ठितार्थ (कृतकृत्य) हो चुके है, वे सिद्ध हैं। या 'षिध्' धातु शास्त्र और मांगल्य अर्थ मे होने से इसके दो अर्थ और निकलते हैं—(१) जो शास्ता हो चुके है, अथवा (२) मंगलरूपता का अनुभव कर चुके हैं वे सिद्ध हैं।[1] **जिणवरिंदं**=जो रागादि शत्रुओं को जीतते हैं, वे जिन हैं। वे चार प्रकार के हैं—श्रुतजिन, अवधिजिन, मन.पर्यायजिन और केवलिजिन। यहाँ केवलिजिन को सूचित करने के लिए 'वर' शब्द प्रयुक्त किया गया है। जिनों मे जो वर यानी श्रेष्ठ हो तथा अतीत-अनागत-वर्तमानकाल के समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले केवलज्ञान से युक्त हो, वह जिनवर कहलाता है। परन्तु ऐसा जिनवर तो सामान्यकेवली भी होता है, अत: तीर्थंकरत्वसूचक पद बतलाने के लिए जिनवर के साथ 'इन्द्र' विशेषण लगाया है, जिसका अर्थ होता है—'जिनवरो के इन्द्र'। यहाँ ऋषभदेव आदि अन्य तीर्थंकरो को वन्दन न करके तीर्थंकर महावीर को ही वन्दन किया गया है, इसका कारण है—महावीर वर्तमान जिनशासन (धर्मतीर्थ) के अधिपति होने से आसन्न उपकारी हैं। **महावीरं**—जो महान् वीर हो, वह महावीर है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वीर का अर्थ है—जो कषायादि शत्रुओ के प्रति वीरत्व—पराक्रम दिखलाता है। महावीर का 'महावीर' यह नाम परीषहो और उपसर्गों को जीतने में महावीर द्वारा प्रकट की गई असाधारण वीरता की अपेक्षा से सुरों और असुरो द्वारा दिया गया है।[2] **तेलोक्कगुरुं**—भगवान् महावीर का यह विशेषण है—**तीनों लोकों के गुरु**। गुरु उसे कहते हैं, जो यथार्थरूप से प्रवचन के अर्थ का प्रतिपादन करता है। भगवान् महावीर तीनो लोको के गुरु इसलिए थे कि उन्होने अधोलोकनिवासी असुरकुमार आदि भवनपति देवो को, मध्यलोकवासी मनुष्यो, पशुओ, विद्याधरो, वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्कदेवो को, तथा ऊर्ध्वलोकवासी सोधर्म आदि वैमानिक देवो, इन्द्रो आदि को धर्मोपदेश दिया।

भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त 'जिनवरेन्द्र' 'महावीर' और 'त्रैलोक्यगुरु' ये तीनो शब्द क्रमश: उनके ज्ञानातिशय, पूजातिशय, अपायापगमातिशय एव वचनातिशय को प्रकट करते हैं।

जिणवरेणं भगवया—सामान्य केवली भी जिन कहलाते हैं किन्तु इसके 'वर' शब्द जोडने से सामान्य केवलियो से भी वर—उत्तम तीर्थंकर सूचित हो सकते हैं, किन्तु छद्मस्थ-क्षीणमोह-जिन की अपेक्षा से सामान्यकेवली भी 'जिनवर' कहला सकते हैं, अत. तीर्थंकर अर्थ द्योतित करने हेतु 'भगवया' विशेषण लगाया गया। भगवान् महावीर मे समग्र ऐश्वर्य (अष्ट महाप्रातिहार्य, त्रैलोक्याधिपतित्व आदि), धर्म, यश, श्री, वैराग्य एव प्रयत्न ये ६ भगवत्तत्व थे,[3] इसलिए यहाँ 'तीर्थंकर भगवान् महावीर ने' यही अर्थ स्पष्टत: सूचित होता है।

---

१. सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं, ध्मात—दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धाः। यदि वा 'षिध संराद्धौ'—सिध्यन्तिस्म निष्ठितार्था भवन्तिस्म, यद्वा 'षिधु शास्त्रे मांगल्ये च'—सेधन्तेस्म—शासितारोऽभवन् मांगल्यरूपतां वाऽनुभवन्तिस्मेति सिद्धाः।
"ध्मात सित येन पुराणकर्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, य: सोऽस्तु सिद्ध: कृतमगलो मे ॥ —प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्राक-२-३

२ अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं। देवेहिं कए महावीर' इति।

३. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस. श्रिय:।
वैराग्यस्याथ प्रयत्नस्य षण्णा भग इतीङ्गना ॥ —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्राक-३-४

भवियजणणिव्वुइकरेणं—इसके दो अर्थ फलित होते हैं—तथाविध अनादिपारिणामिकभाव के कारण जो सिद्धिगमनयोग्य हो, वह भव्य कहलाता है। ऐसे भव्यजनो को जो निर्वृति—निर्वाण, शान्ति या निर्वाण के कारणभूत सम्यग्दर्शनादि प्रदान करने वाले हैं। निर्माण का एक अर्थ है—समस्त कर्ममल के दूर होने से स्वस्वरूप के लाभ से परम स्वास्थ्य। प्रश्न यह है कि ऐसे निर्वाण के हेतुभूत सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय भी केवल भव्यजनों को ही भगवान् देते हैं, यह तो एक प्रकार का पक्षपात हुआ भव्यों के प्रति। इसका समाधान यह है कि सूर्य सभी को समानभाव से प्रकाश देता है, किन्तु उस प्रकार के योग्य चक्षुष्मान् प्राणी ही उससे लाभ उठा पाते हैं, तामस खगपक्षी (उल्लू आदि) को उसका प्रकाश उपकारक नही होता, वैसे ही भगवान् सभी प्राणियों को समानभाव से उपदेश देते हैं, किन्तु अभव्य जीवों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे भगवान् के उपदेश से लाभ नही उठा पाते। **उवदंसिया**—जैसे श्रोताओ को झटपट यथार्थवस्तुतत्वबोध समीप से होता है, वैसे ही भगवान् ने स्पष्ट प्रवचनो से श्रोताओं के लिए यह (प्रज्ञापना) श्रवणगोचर कर दी, उपदिष्ट की। **पण्णवणा—प्रज्ञापना**—जीवादि भाव जिस शब्दसहृति द्वारा प्रज्ञापित-प्ररूपित किये जाते है।[1]

प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीस पदों के नाम

२. **पण्णवणा १ ठाणाइं २ बहुवत्तव्वं ३ ठिई ४ विसेसा य ५।**
वक्कंती ६ उस्सासो ७ सण्णा ८ जोणी य ९ चरिमाइं १० ॥४॥
भासा ११ सरीर १२ परिणाम १३ कसाए १४ इंदिए १५ पओगे य १६।
लेसा १७ कायठिई या १८ सम्मत्ते १९ अंतकिरिया य २० ॥५॥
ओगाहणसंठाणे २१ किरिया २२ कम्मे त्ति यावरे २३।
कम्मस्स बंधए २४ कम्मवेदए २५ वेदस्स बंधए २६ वेयवेयए २७ ॥६॥
आहारे २८ उवओगे २९ पासणया ३० सण्णि ३१ संजमे ३२ चेव।
ओही ३३ पवियारण ३४ वेयणा य ३५ तत्तो समुग्घाए ३६ ॥७॥

२ [अर्थाधिकार-सग्रहिणी गाथाओ का अर्थ—] (प्रज्ञापनासूत्र में छत्तीस पद हैं। वे क्रमश इस प्रकार है—) १. प्रज्ञापना, २ स्थान, ३ बहुवक्तव्य, ४ स्थिति, ५ विशेष, ६ व्युत्क्रान्ति (उपपात-उद्वर्त्तनादि), ७. उच्छ्वास, ८ सज्ञा, ९ योनि, १०. चरम ॥४॥

११. भाषा, १२. शरीर, १३. परिणाम, १४. कषाय, १५. इन्द्रिय, १६. प्रयोग, १७. लेश्या, १८ कायस्थिति, १९ सम्यक्त्व और २० अन्तक्रिया ॥५॥

२१. अवगाहना-सस्थान, २२ क्रिया, २३. कर्म और इसके पश्चात् २४. कर्म का बन्धक, २५ कर्म का वेदक, २६. वेद का बन्धक, २७. वेद-वेदक ॥६॥

२८. आहार, २९ उपयोग, ३०. पश्यत्ता, ३१. संज्ञी और ३२ सयम, ३३. अवधि, ३४. प्रविचारणा, ३५. तथा वेदना, एव इसके अनन्तर ३६. समुद्घात ॥७॥

(इन सबके अन्त में 'पद' शब्द जोड़ देना चाहिए।)

---

१ प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्राक २

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्रथम : स्वरूप और प्रकार

३. से किं तं पण्णवणा ?

पण्णवणा दुविहा पन्नत्ता । तं जहा— जीवपण्णवणा य १ अजीवपण्णवणा य २ ।

[३-प्र.] वह (पूर्वोक्त) प्रज्ञापना (का अर्थ) क्या है ?

[३-उ] प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—जीवप्रज्ञापना और अजीव-प्रज्ञापना ।

अजीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार

४. से किं तं अजीवपण्णवणा ?

अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—रूविअजीवपण्णवणा य १ अरूविअजीवपण्णवणा य २ ।

[४-प्र.] वह अजीव-प्रज्ञापना क्या है ।

[४-उ.] अजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार— १ रूपी-अजीव-प्रज्ञापना और २ अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना ।

अरूपी-अजीव प्रज्ञापना

५. से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा ?

अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पन्नत्ता । तं जहा—धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसे २ धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४ अधम्मत्थिकायस्स देसे ५ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७ आगासत्थिकायस्स देसे ८ आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १० । से त्तं अरूविअजीवपण्णवणा ।

[५-प्र.] वह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[५-उ] अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय का देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय, ५ अधर्मास्तिकाय का देश, ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय, ८ आकाशस्तिकाय का देश, ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १० अद्धाकाल । यह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना है ।

रूपी-अजीव-प्रज्ञापना

६. से किं तं रूविअजीवपण्णवणा ?

रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—खंधा १ खंधदेसा २ खंधप्पएसा ३ परमाणुपोग्गला ४ ।

[६-प्र] वह रूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[६-उ] रूपी-अजीव-प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१. स्कन्ध, २ स्कन्धदेश, ३. स्कन्धप्रदेश और ४. परमाणुपुद्‌गल ।

७. ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—वण्णपरिणया १ गंधपरिणया २ रसपरिणया ३ फासपरिणया ४ संठाणपरिणया ५ ।

७ वे (चारो) सक्षेप से पाच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत ३ रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत और (५) सस्थानपरिणत ।

८. [१] जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—कालवण्णपरिणया १ नीलवण्णपरिणया २ लोहियवण्णपरिणया ३ हालिद्दवण्णपरिणया ४ सुक्किलवण्णपरिणया ५ ।

[८-१] जो वर्णपरिणत होते हैं, वे पाच प्रकार के कहे हैं, । यथा—(१) काले वर्ण के रूप मे परिणत, (२) नीले वर्ण के रूप मे परिणन, (३) लाल वर्ण के रूप में परिणत, (४) पीले (हारिद्र) वर्ण के रूप मे परिणत, और (५) शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप मे परिणत ।

[२] जे गंधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—सुब्भिगंधपरिणता य १ दुब्भिगंधपरिणता य २ ।

[८-२] जो गन्धपरिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं—(१) सुगन्ध के रूप मे परिणत और (२) दुर्गन्ध के रूप में परिणत ।

[३] जे रसपरिणता ते पंचविहा पन्नत्ता । तं जहा—तित्तरसपरिणता १ कडुयरसपरिणता २ कसायरसपरिणता ३ अंबिलरसपरिणता ४ महुररसपरिणता ५ ।

[८-३] जो रसपरिणत होते हैं, वे पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —(१) तिक्त (तीखे) रस के रूप में परिणत, (२) कटु (कडवे) रस के रूप मे परिणत, (३) कषाय—(कसैले) रस के रूप में परिणत, (४) अम्ल (खट्टे) रस के रूप में परिणत और (५) मधुर (मीठे) रस के रूप में परिणत ।

[४] जे फासपरिणता ते अट्ठविहा पण्णता । तं जहा—कक्खडफासपरिणता १ मउयफासपरिणता २ गरुयफासपरिणता ३ लहुयफासपरिणता ४ सीयफासपरिणता ५ उसिणफासपरिणता ६ निद्धफासपरिणता ७ लुक्खफासपरिणता ८ ।

[८-४] जो स्पर्शपरिणत होते हैं, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) कर्कश (कठोर) स्पर्श के रूप में परिणत, (२) मृदु (कोमल) स्पर्श के रूप में परिणत, (३) गुरु (भारी)

स्पर्श के रूप में परिणत, (४) लघु (हलके) स्पर्श के रूप में परिणत, (५) शीत (ठंडे) स्पर्श के रूप में परिणत, (६) उष्ण (गर्म) स्पर्श के रूप में परिणत, (७) स्निग्ध (चिकने) स्पर्श के रूप में परिणत और (८) रूक्ष (रूखे) स्पर्श के रूप में परिणत।

[५] जे संठाणपरिणता ते पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणता १ वट्ट-संठाणपरिणता २ तंससंठाणपरिणता ३ चउरंससंठाणपरिणता ४ आयतसंठाणपरिणता ५। २५।

[८-५] जो सस्थानपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) परिमण्डल-संस्थान के रूप में परिणत, (२) वृत्त (गोल) चूडी के सस्थान के रूप में परिणत, (३) त्र्यस्र (तिकोन) सस्थान के रूप में परिणत, (४) चतुरस्र (चोकोन) सस्थान के रूप मे परिणत और (५) आयत (लम्बे) सस्थान (आकार) के रूप मे परिणत ॥ २५ ॥

९. [१] जे वण्णओ कालवण्णपरिणता से गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-१] जो वर्ण से काले वर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमे से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुरभि-गन्ध-परिणत भी होते हैं, दुरभिगन्ध-परिणत भी। रस से कोई तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, इसी प्रकार कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। उनमें से कोई स्पर्श से कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी एव गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्ध स्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। वे संस्थान से (आकार से) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) सस्थान-परिणत भी, चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ॥ २० ॥

[२] जे वण्णओ नीलवण्णपरिणता ते गंधाओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-२] जो वर्ण से नीले वर्ण में परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी; रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है। (वे) स्पर्श से कर्कश-

स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीत-स्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। (वे) संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान-परिणत भी, चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।२० ।।

[३] जे वण्णओ लोहियवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[९-३] जो वर्ण से रक्तवर्ण-परिणत हैं, उनमें से कोई गन्ध से सुगन्धपरिणत होते हैं, कोई दुर्गन्धपरिणत। (वे) रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदु-स्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से—परिमण्डल संस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ।।२०।।

[४] जे वण्णओ हालिद्दवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीतफासपरिणा वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[९-४] जो वर्ण से हारिद्र(पीत)वर्ण-परिणत होते हैं, उनमे से कोई गन्ध से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, कोई दुर्गन्ध-परिणत भी हो सकते हैं। रस से कोई तिक्तरस-परिणत होते हैं, कोई कटुरस-परिणन भी, कोई कषायरस-परिणत भी, कोई अम्लरस-परिणत और मधुररसपरिगत भी होते हैं। स्पर्श से उनमें से कोई कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत एव गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्शपरिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से कोई परिमण्डल संस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत, भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ।। २० ।।

[५] जे वण्णओ सुक्किलवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-

रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २० । १०० । १ ।

[९-५] जो वर्ण से शुक्लवर्ण-परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं कोई दुर्गन्ध-परिणत भी। इसी प्रकार रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं। ।। २०-१००-१ ।।

१०. [१] जे गंधओ सुब्भिगंधपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसठाणपरिणता वि २३ ।

[१०-१] जो गन्ध से सुगन्ध-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। वे रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निधस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। (वे) सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ।। २३ ।।

[२] जे गंधओ दुब्भिगंधपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि नीलवण्णपरिणया वि लोहियवण्णपरिणया वि हालिद्दवण्णपरिणया वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडल-

संठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाण-परिणया वि । २३।४६।२।

[१०-२] जो गन्ध से—दुर्गन्धपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी रक्तवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान से—(वे) परिमण्डल-सस्थान-परिणत होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ॥२३-४६ । २॥

११. [१] जे रसओ तित्तरसपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-१] जो रस से तिक्तरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से (वे) सुगन्ध-परिणत भी और दुर्गन्ध-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—वे परिमण्डलसस्थानपरिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-सस्थान-परिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ॥२०॥

[२] जे रसओ कडुयरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-२] जो रस से—कटुरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं और शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी

उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र-सस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी एव आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२०।।

[३] जे रसओ कसायरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणा वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-३] जो रस से कषायरस-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील वर्ण-परिणत भी होते है, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है, दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी त्र्यसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसथान-परिणत भी एव आयतसस्थान-परिणत भी होते है ।।२०।।

[४] जे रसओ अंबिलरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-४] जो रस से अम्लरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत भी तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। वे गन्ध से सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थानसस्थित भी होते हैं, वृत्तसस्थानसस्थित भी, त्र्यस्रसस्थानसस्थित भी, चतुर-स्रसंस्थानसस्थित भी एव आयतसस्थानसस्थित भी होते हैं।

[५] जे रसओ महुररसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि

लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २०।१००।३।

[११-५] जो रस से मधुररसपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी होते हैं, तथा पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं; मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी है, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी तथैव स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत होते है वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणन भी, चतुरस्रसस्थानपरिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं। २०। १००। ३।

१२. [१] जे फासतो कक्खडफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भि-गंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-१] जो स्पर्श से कर्कशस्पर्शपरिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, काषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है। स्पर्श (वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी, एव स्निग्धस्पर्श-परिणत भी तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसस्थान-परिणत भो होते हैं, तथा आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ॥२३॥

[२] जे फासतो मउयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरस परिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ गरुयफासपरिणया वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-२] जो स्पर्श से मृदु (कोमल)-स्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एव शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। (वे) गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी और दुर्गन्धपरिणत भी होते है। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से—(वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते है, तथा आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[३] जे फासतो गरुयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणया वि २३।

[१२-३] जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी उष्ण-स्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत, त्र्यस्रसस्थान-परिणत, तथा चतुरस्रसस्थानपरिणत भी होते है और आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[४] जे फासतो लहुयफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणया वि सीयफास-परिणया वि उसिणफासपरिणया वि णिद्धफासपरिणया वि लुक्खफासपरिणया वि, संठाणतो परिमंडल-संठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाण-परिणया वि २३।

[१२-४] जो स्पर्श की अपेक्षा से—लघु (हलके) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं; नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एव शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और

दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमडलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी होते हैं तथा आयतनसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[५] जे फासतो सीयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-५] जो स्पर्श की अपेक्षा से—शीतस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं,। गन्ध की अपेक्षा से--(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से— वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भो और अम्लरस-परिणत भी तथा मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान की अपेक्षा से (वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसस्थान-परिणत भी तथा आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२३।।

[६] जे फासतो उसिणफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-६] जो स्पर्श से उष्णस्पर्श-परिणत होते है, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी, होते हैं, तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी

तथा अम्लरस-परिणत भी होते हैं, और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा वे—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। तथा सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-सस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[७] जे फासतो णिद्धफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-७] जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत हैं, वर्ण की अपेक्षा से वे—कृष्णवर्ण-परिणत भी, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी एव अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से--वे कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते है। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी और आयातसस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२३।।

[८] जे फासतो लुक्खफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २३।१८४।८।।

[१२-८] जो स्पर्श से रूक्षस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुरस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा शीतस्पर्श-परिणत

भी होते हैं और उष्णस्पर्शपरिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थानपरिणत भी होते है, वृत्त-सस्थानपरिणत भी, त्र्यस्रसंस्थानपरिणत भी होते हैं और चतुरस्रसस्थानपरिणत भी, तथा आयत-सस्थानपरिणत भी होते हैं ॥२३।१८४।८॥

१३. [१] जे संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भि-गंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफास-परिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सोयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-१] जो सस्थान की अपेक्षा से—परिमण्डलसस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्ण-वर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीत-वर्णपरिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे)सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते है। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं ॥२०॥

[२[जे सठाणओ वट्टसंठाणपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तररसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-२] जो सस्थान की अपेक्षा से—वृत्तसस्थानपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्णवर्णपरिणत भी होते है, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से— (वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। (वे) रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी कषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते है । स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कश-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदु-स्पर्शपरिणत भी, गुरु-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी ॥२०॥

[३] जे संठाणतो तंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि

अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१४-३] जो सस्थान की अपेक्षा से—त्र्यस्रसंस्थान-परिणत हैं, वे वर्णत—कृष्णवर्णपरिणत है, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्धतः (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रसतः (वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते हैं और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते है, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्शपरिणत भी तथा स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[४] जे संठाणओ चउरंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-४] जो संस्थान से चतुरस्रसंस्थानपरिणत है, वे वर्ण से कृष्णवर्णपरिणत भी होते है, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी अम्लरसपरिणत भी होते है और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[५] जे संठाणतो आयतसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।१००।५। से त्तं रूविअजीवपण्णवणा। से त्तं अजीवपण्णवणा।

[१३-५] जो सस्थान की अपेक्षा से आयतसंस्थानपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरसपरिणत भी,

ग्रम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं ॥२०॥१००। ५॥

यह हुई वह (पूर्वोक्त) रूपी-अजीव-प्रज्ञापना। इस प्रकार अजीव-प्रज्ञापना का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापना : दो प्रकार तथा द्विविध अजीव-प्रज्ञापना का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३ से १३ तक) में प्रज्ञापना के जीव-अजीव सम्बन्धी मुख्य दो प्रकार, तत्पश्चात् अजीव-प्रज्ञापना के अरूपी और रूपी के भेद से दो प्रकार और उनके विविध विकल्पो (भगो) का निरूपण किया गया है।

प्रथम प्रज्ञापनापद : प्रश्नकर्ता कौन, उत्तरदाता कौन? प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्य-(श्यामाचार्य) वाचक हैं, उन्होने प्रारम्भ मे सामान्यरूप से किसी अनाग्रही, मध्यस्थ, बुद्धिमान् एव तत्त्वज्ञानार्थी श्रोता या जिज्ञासु की ओर से स्वय प्रश्न उठाए है और आगे अनेक स्थलो या पदो मे श्री गौतम गणधर द्वारा प्रश्न उठाए है, तथा उत्तर भगवान् महावीर की ओर से प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि साक्षात् गौतम गणधर या कोई मध्यस्थ प्रश्नकर्त्ता तथा भगवान् महावीर जैसे उत्तरदाता यहाँ नही है, किन्तु **'अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं'** (शास्त्रोक्त अर्थ का कथन अर्हन्त करते है और गणधर सूत्ररूप मे उसका कुशलतापूर्वक ग्रथन (रचना) करते है।) इस न्याय से परम्परागत शास्त्रप्रतिपादित अर्थ तीर्थंकर भगवान् महावीर और गौतमादि गणधरो से ही आयात है, इसलिए तथा सारा शास्त्रीयज्ञान तीर्थंकरो और गणधरो का है, मैं तो उसकी केवल सकलना करने वाला हूँ, इस प्रकार अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के लिए, तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्वो की प्रश्नोत्तर-रूप मे प्ररूपणा करना युक्तियुक्त ही है। यह शास्त्र कहाँ से उद्धृत किया गया है? इसमे प्रतिपादित अर्थ किन-किन के द्वारा वर्णित है? यह दूसरी, तीसरी मगलाचरणगाथा मे स्पष्ट कह दिया है।

प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप—प्रज्ञापना क्या है? यह प्रश्न या इस प्रकार के शास्त्रीय-शैली के प्रश्नो का फलितार्थ यह है कि प्रज्ञापना या अन्य विवक्षित तत्त्वो का प्रकारात्मक स्वरूप क्या है? प्रज्ञापना का व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ या स्वरूप तो पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। वास्तव मे जीव और अजीव से सम्बन्धित समस्त पदार्थों या तत्त्वो को शिष्य या तत्त्वजिज्ञासु की बुद्धि मे स्थापित कर देना ही प्रज्ञापना का अर्थ या स्वरूप है।[1]

जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना—समस्त चेतनाशील एव उपयोग वाले जीव कहलाते है, जिनमे चेतना नही होती, उपयोग नही होता, वे सब अजीव कहलाते हैं। जीवों की प्रज्ञापना में इन्द्रियो तथा विभिन्न गतियो एवं योनियो की दृष्टि से जीवों का वर्गीकरण करके उनके

---

१. (क) **'मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी, श्रोता पात्रमिति स्मृतः।'**

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ७

(ग) **'प्रकर्षेण यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते-शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था अनयेति प्रज्ञापना।'** —प्रज्ञापना. म. वृत्ति. प. १

भेद-प्रभेद प्रस्तुत किये गए है तथा अजीवप्रज्ञापना मे अरूपी और रूपी अजीवों के भेद-प्रभेदों का वर्गीकरण तथा विविध वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एव सस्थान के एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होने से होने वाले विकल्प (भग) भी प्रस्तुत किये गए है। वैसे देखा जाए तो जीव और अजीव इन दोनो के निमित्त से होने वाले विभिन्न तत्त्वो या पदार्थों का ही विश्लेषण समग्र प्रज्ञापनासूत्र मे है। **जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना** ये दो ही प्रस्तुत शास्त्र के समस्त पदो (अध्ययनो) की मूल आधारभूमि हैं।[1]

रूपी अजीव की परिभाषा—जिनमे रूप हो, वे रूपी कहलाते है। यहाँ रूप के ग्रहण से, उपलक्षण से शेष रस, गन्ध, स्पर्श और सस्थान का भी ग्रहण कर लेना चाहिए; क्योकि रस-गन्धादि के बिना अकेले रूप का अस्तित्व सम्भव नही है। प्रत्येक परमाणु रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाला होता है। केवल परमाणु को ही लीजिए, वह भी कारण ही है, कार्य नही तथा वह अन्तिम, सूक्ष्म, और द्रव्य रूप से नित्य तथा पर्यायरूप मे अनित्य तथा उसमे एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श होते हैं। वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष से ज्ञात नही होता, केवल स्कन्धरूप कार्य से उसका अनुमान होता है। अथवा रूप का अर्थ है--स्पर्श, रूप आदिमय मूर्ति, वह जिनमे हो, वे मूर्तिक या रूपी कहलाते हैं। ससार मे जितनी भी रूपादिमान् अजीव वस्तुएँ हैं, वे सब रूपी अजीव मे परिगणित है।

अरूपी अजीव की परिभाषा—जिनमे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि न हो, वे सब अचेतन पदार्थ अरूपी अजीव कहलाते हैं। अरूपी अजीव के मुख्य दस भेद होने से उसकी प्रज्ञापना—प्ररूपणा भी दस प्रकार की कही गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनो के स्कन्ध, देश और प्रदेश तथा अद्धाकाल, यो कुल १० भेद होते है।[2]

धर्मास्तिकाय आदि की परिभाषा—धर्मास्तिकाय—स्वय गतिपरिणाम मे परिणत जीवो और पुद्गलो को गति मे जो निमित्त कारण हो, जीवो-पुद्गलो के गतिरूपस्वभाव का जो धारण-पोषण करना हो, वह धर्म कहलाता है। अस्ति का अर्थ यहाँ प्रदेश है, उन (अस्तियो) का काय अर्थात् सघात (प्रदेशो का समूह) अस्तिकाय है। धर्मरूप अस्तिकाय **धर्मास्तिकाय** कहलाता है। धर्मास्तिकाय कहने से असख्यातप्रदेशी धर्मास्तिकाय रूप अवयवी द्रव्य का बोध होता है। अवयवी अवयवो के तथारूप-सघातपरिणाम विशेषरूप होता है, किन्तु अवयवो से पृथक् अर्थान्तर द्रव्य नही होता। **धर्मास्तिकाय का देश**—उसी धर्मास्तिकाय का बुद्धि द्वारा कल्पित दो, तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग। **धर्मास्तिकाय का प्रदेश**—धर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश, प्रदेश—जिसका फिर विभाग न हो सके, ऐसा निर्विभाग विभाग।

अधर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का प्रतिपक्षभूत अधर्मास्तिकाय है। अर्थात्—स्थितिपरिणाम मे परिणत जीवो और पुद्गलो की स्थिति में जो सहायक हो, ऐसा अमूर्त्त, असख्यातप्रदेशसघातात्मक द्रव्य **अधर्मास्तिकाय है। अधर्मास्तिकाय का देश, प्रदेश**—अधर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशात्मक आदि खण्ड अधर्मास्तिकायदेश, एव उसका सबसे सूक्ष्म विभाग, जिसका फिर दूसरा विभाग न हो सके वह अधर्मास्तिकाय-प्रदेश है। धर्मास्तिकाय एव अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असख्यात है, लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर हैं।

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा. १, पृ. १२ से ४५ तक

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्राक ८

आकाशास्तिकाय—जिसमें अवस्थित पदार्थ (आ = मर्यादा से) अपने स्वभाव का परित्याग किये बिना (प्र)काशित स्वरूप से प्रतिभासित होते है, वह आकाश है, अथवा जो सब पदार्थों मे अभिव्याप्त होकर प्रकाशित होता (रहता) है, वह आकाश है। अस्तिकाय का अर्थ—प्रदेशो का सघात है। आकाशरूप अस्तिकाय को **आकाशास्तिकाय** कहते है। आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश का अर्थ पूर्ववत् है। यद्यपि लोकाकाश असख्यातप्रदेशात्मक है, किन्तु अलोकाकाश अनन्त है, इस दृष्टि से आकाशास्तिकाय के प्रदेश अनन्त है।

अद्धासमय—अद्धा कहते हैं—काल को। अद्धारूप समय अद्धासमय है। अथवा अद्धा (काल) का समय अर्थात् निर्विभाग (अश) 'अद्धासमय' कहलाता है। परमार्थ दृष्टि से वर्त्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है, अतीत और अनागत काल के समय नही, क्योंकि अतीतकाल के समय नष्ट हो चुके है और अनागतकाल के समय अभी उत्पन्न ही नही हुए। अतएव काल मे देश-प्रदेशो के सघात की कल्पना हो नही सकती। असख्यात समयो के समूहरूप आवलिका आदि की कल्पना केवल व्यवहार के लिए की गई है।

स्कन्ध आदि की व्याख्या—स्कन्ध—व्युत्पत्ति के अनुसार स्कन्ध का अर्थ होता है—जो पुद्गल अन्य पुद्गलो के मिलने से पुष्ट होते है—बढ़ जाते हैं, तथा विघटन हो जाने—हट जाने या पृथक् हो जाने से घट जाते है, वे स्कन्ध हैं। 'स्कन्ध' शब्द मे बहुवचन का प्रयोग पुद्गल-स्कन्धो की अनन्तता बताने के लिए है, क्योंकि आगमो मे स्कन्ध अनन्त बताए गए है। **स्कन्धप्रदेश**—स्कन्धरूप परिणाम को नही त्यागने वाले स्कन्धो के ही बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशी आदि (द्विप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक) विभाग स्कन्धदेश कहलाते है। यहाँ भी स्कन्धदेश के लिए बहुवचनान्त प्रयोग तथाविध अनन्तानन्त-प्रदेशी स्कन्धो मे, अनन्त स्कन्धदेश भी हो सकते है, इसे सूचित करने हेतु है।

स्कन्ध-प्रदेश—स्कन्धो के बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश को अर्थात्—स्कन्ध मे मिले हुए निर्विभाग अश (परमाणु) को **स्कन्धप्रदेश** कहते है। **परमाणु-पुद्गल**—निर्विभागद्रव्य (जिनके विभाग न हो सके, ऐसे पुद्गलद्रव्य) रूप परम अणु, परमाणु-पुद्गल कहलाते है। परमाणु स्कन्ध मे मिले हुए नही होते, वे स्वतन्त्र पुद्गल होते हैं।[1]

वर्णादिपरिणत स्कन्धादि चार—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुपुद्गल ये चारो रूपी-अजीव सक्षेपत. प्रत्येक पाच-पाच प्रकार के कहे गए है। यथा—जो वर्णरूप मे परिणत हो वे वर्णपरिणत कहलाते हैं। इसी प्रकार गन्धपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और सस्थानपरिणत भी समझ लेना चाहिए। 'परिणत' शब्द अतीतकाल का निर्देशक होते हुए भी उपलक्षण से वर्तमान और भविष्यत्काल का भी सूचक है, क्योंकि वर्तमान और अनागत के बिना अतीतत्व सम्भव नही है। जो वर्तमानत्व का अतिक्रमण कर जाता है, वही अतीत होता है, और वर्तमानत्व का वही अनुभव करता है, जो अभी अनागत भी है—जो अभी वर्तमानत्व को प्राप्त है, वही अतीत होता है, और जो वर्तमानत्व को प्राप्त करेगा, वही अनागत है। इस दृष्टि से **वर्णपरिणत** का अर्थ है—वर्णरूप मे जो परिणत हो चुके हैं, परिणत होते है, और परिणत होगे। इसी प्रकार गन्धपरिणत आदि का त्रिकालसूचक अर्थ समझ लेना चाहिए।

वर्णपरिणत आदि पुद्गलों के भेद तथा उनकी व्याख्या—वर्णपरिणत के ५ प्रकार—वर्णरूप मे परिणत, जो पुद्गल हैं, वे ५ प्रकार के हैं—(१) कोई काजल आदि के समान काले होते है, वे

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्राक ८-९-१०

कृष्णवर्णपरिणत, (२) कोई नील या मोर की गर्दन आदि के समान नीले रग के होते हैं, वे **नीलवर्ण-परिणत,** (३) कोई हींगलू आदि के समान लाल रग के होते है, वे **लोहित (रक्त) वर्णपरिणत,** (४) कोई हलदी आदि के समान पीले रंग के होते हैं, **वे हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत,** (५) शख आदि के समान कोई पुद्‌गल श्वेत रग के होते है, वे **शुक्लवर्णपरिणत** हैं ।

गन्धपरिणत के दो प्रकार—कोई पुद्‌गल चन्दनादि अनुकूल सामग्री मिलने से सुगन्ध वाले हो जाते हैं, वे **सुगन्धपरिणत** और कोई लहसुन आदि के समान सामग्री मिलने से दुर्गन्ध वाले हो जाते हैं, वे **दुर्गन्धपरिणत** हो जाते हैं ।

रसपरिणत पुद्‌गलों के पांच प्रकार—(१) कोई मिर्च आदि के समान तिक्त (तीखे या चटपटे) रस वाले होते हैं, (२) कोई नीम, चिरायता आदि के समान कटुरस वाले होते है, (३) कोई हरड आदि के समान कसैले (कषाय) रस वाले होते है, (४) कोई इमली आदि के समान खट्टे (अम्ल) रस वाले होते है और (५) कोई शक्कर आदि के समान मधुर (मीठे) रस वाले होते हैं ।

स्पर्शपरिणत पुद्‌गलों के आठ प्रकार—(१) कोई पाषाण आदि के समान कठोरस्पर्श वाले, (२) कोई आक की रुई या रेशम के समान कोमल स्पर्श वाले, (३) कोई वज्र या लोह आदि के समान भारी (गुरु स्पर्श वाले) होते हैं, तो (४) कोई पुद्‌गल सेमल की रुई आदि के समान हलके (लघुस्पर्श वाले) होते हैं । (५) कोई मृणाल, कदलीवृक्ष आदि के समान ठण्डे (शीतस्पर्श वाले) होते हैं, तो कोई (६) अग्नि आदि के समान गर्म (उष्णस्पर्श वाले) होते है । (७) कोई घी आदि के समान चिकने (स्निग्धस्पर्श वाले) होते हैं तो (८) कोई राख आदि के समान रूखे (रूक्षस्पर्श वाले) होते हैं ।

संस्थानपरिणत के पांच प्रकार—(१) कोई पुद्‌गल वलय (कडा-चूडी) आदि के समान परिमण्डलसस्थान (आकार) के होते हैं, जैसे— ○ । (२) कोई चाक, थाली आदि के समान वृत्त (गोल) सस्थान वाले होते हैं, यथा कोई सिंघाडे के समान तिकोने (त्र्यस्र) आकार के होते है, यथा –△ । (४) कोई कुम्भिका आदि के समान चौकोर आकार के (चतुरस्रसस्थान के) होते है, यथा—□ । और कोई पुद्‌गल दण्ड आदि के समान आयत सस्थान के होते हैं, यथा—[▭] ।

वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श और संस्थानों के पारस्परिक सम्बन्ध से समुत्पन्न भगजाल—अब शास्त्रकार पूर्वोक्त वर्णादि से युक्त स्कन्धादिचतुष्टय के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भग-जाल की प्ररूपणा करते है । अर्थात्— प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान से परिणत स्कन्धादि पुद्‌गलो के साथ जब अन्य वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानो की अपेक्षा से यथायोग्य सम्बन्ध होता है तब जो भंग (विकल्प) होते हैं, उन्ही का निरूपण यहाँ किया गया है ।

(१) जो पाच वर्णों मे से किसी भी एक वर्ण के रूप मे परिणत है, वे ही यदि दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श एव पाच सस्थानो मे से किसी एक के स्वरूप में परिणत हो तो पाचो वर्णों के २० + २०+२०+२०+२०=१०० भग हो जाते हैं ।

(२) दो गन्धों मे प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्‌गल,यदि पाच वर्ण, पाच रस, आठ स्पर्श और पाच सस्थानो की अपेक्षा से परिणत हों तो उन दोनो गन्धों के २३+२३=४६ भग हो जाते हैं ।

(३) पाँच रसों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श और पांच सस्थानो के रूप से परिणत हों तो उन पाचो के २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग हो जाते हैं।

(४) आठ स्पर्शों मे से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस छह स्पर्श (प्रतिपक्षी और स्व स्पर्श को छोडकर) तथा पांच सस्थानो के रूप से परिणत हों, तो उनके २३+२३+२३+२३+२३+२३+२३+२३=१८४ भंग हो जाते हैं।

(५) पाच सस्थानो में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस तथा आठ स्पर्शों के रूप से परिणत हो तो उनके २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग होते हैं। इस प्रकार वर्णादि पाचो के पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा से १००+४६+१००+१८४+१००=कुल ५३० भग (विकल्प) निष्पन्न होते है।

इसे स्पष्टरूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—मान लो, कुछ स्कन्धरूप पुद्गल काले वर्ण वाले हैं, यानी कृष्णवर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमें से गन्ध की अपेक्षा से कोई सुगन्धवाले होते हैं, कोई दुर्गन्ध वाले भी होते हैं। रस की अपेक्षा से—वे तिक्त रस वाले भी हो सकते हैं, कटुरस वाले भी, कषायरस वाले भी, अम्लरम वाले भी और मधुररस वाले भी—होने सभव हैं। स्पर्श की दृष्टि से सोचे तो वे कर्कश आदि आठो ही स्पर्शों मे से कोई न कोई किसी न किसी स्पर्श के हो सकते हैं। सस्थान की अपेक्षा से विचार किया जाए तो वे कृष्णवर्ण-परिणत पुद्गल परिमण्डल भी होते हैं, वृत्त भी, त्रिकोण भी, चतुष्कोण भी और आयत आकार के भी होते हैं। इस प्रकार एक कृष्णवर्णीय पुद्गल के साथ प्रत्येक गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से २० भंग हो जाते हैं। इसी तरह पूर्वोक्त सभी भगो का विचार कर लेना चाहिए।

विकल्पों की संख्या स्थूल दृष्टि से, सूक्ष्मदृष्टि से नहीं—यद्यपि बादरस्कन्धो में पाचो वर्ण, दोनो गन्ध, पांचो रस पाए जाते हैं, अतएव अधिकृत वर्ण आदि के सिवाय शेष वर्ण आदि से भी भग (विकल्प) हो सकते हैं, तथापि उन्ही बादर स्कन्धों में जो व्यावहारिक दृष्टि से केवल कृष्णवर्णादि से युक्त बीच के स्कन्ध हैं, जैसे—देहस्कन्ध मे ही एक नेत्रस्कन्ध काला है, तदन्तर्गत ही कोई लाल है, दूसरा अन्तर्गत ही शुक्ल है, उन्ही की यहाँ विवक्षा की गई है। उनमे दूसरे वर्णादि सभव नही है। स्पर्श की प्ररूपणा में, प्रतिपक्षी स्पर्श को छोडकर किसी एक स्पर्श के साथ अन्य स्पर्श भी देखे जाते हैं। अतएव यहाँ जो भगो को सख्या बताई गई है, वह युक्तियुक्त से। किन्तु यह विकल्पसख्या स्थूलदृष्टि से ही समझनी चाहिए। सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो तरतमता की अपेक्षा से इनमे से प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होने के कारण अनन्त विकल्प हो सकते है।

वर्णादि परिणामो का अवस्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक रहता है।[1]

जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार

१४. से किं तं जीवपण्णवणा ?

जीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संसारसमावण्णजीवपण्णवणा य १ असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २।

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १२, १७-१८

[१४ प्र] वह (पूर्वोक्त) जीवप्रज्ञापना क्या है ?

[१४ उ] जीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संसार-समापन्न (ससारी) जीवो की प्रज्ञापना और (२) असंसार-समापन्न (मुक्त) जीवो की प्रज्ञापना।

विवेचन—जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—प्रस्तुत सूत्र १४ से जीवो की प्रज्ञापना प्रारम्भ होती है, जो सू १४७ मे पूर्ण होती है। इस प्रकार सूत्र मे जीव-प्रज्ञापना का उपक्रम और उसके दो प्रकार बताए गए हैं।

जीव की परिभाषा—जो जीते है, प्राणो को धारण करते है, वे जीव कहलाते है। प्राण दो प्रकार के हैं—द्रव्यप्राण और भावप्राण। द्रव्यप्राण १० है—पाच इन्द्रिया, तीन बल—मन-वचन-काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्यबल प्राण। भावप्राण चार है--ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य। ससार-समापन्न समस्त जीव यथायोग्य भावप्राणो से तथा द्रव्यप्राणो से युक्त होते है। जो असंसारसमापन्न—सिद्ध होते है, वे केवल भावप्राणो से युक्त है।[1]

संसारसमापन्न और असंसारसमापन्न की व्याख्या--ससार का अर्थ है ससार-परिभ्रमण, जो कि नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवभवानुभवरूप है, उक्त ससार को जो प्राप्त हैं, वे जीव ससारसमापन्न हैं, अर्थात्—ससारवर्ती जीव है। जो ससार—भवभ्रमण से रहित है, वे जीव असंसारसमापन्न है।[2]

असंसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद

१५. से किं तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीव-पण्णवणा य १ परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २ ?

[१५ प्र.] वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१५ उ.] असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार- १—अनन्तरसिद्ध-असंसार-समापपन्नजीव-प्रज्ञापना और २—परम्परासिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना।

१६. से किं तं अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवण्णवणा ?

अणंतरसिद्धअससारमावण्णजीवपण्णवणा पन्नरसविहा पन्नत्ता। त जहा—तित्थसिद्धा १ अतित्थसिद्धा २ तित्थगरसिद्ध ३ अतित्थगरसिद्धा ४ सयंबुद्धसिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहिय-सिद्धा ७ इत्थीलिंगसिद्धा ८ पुरिसलिंगसिद्धा ९ नपुंसकलिंगसिद्धा १० सलिंगसिद्धा ११ अण्णलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा १४ अणेगसिद्धा १५। से त्त अणंतरसिद्धअससारसमावण्णजीव-पण्णवणा।

[१६ प्र.] वह अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१६ उ.] अनन्तर-सिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पन्द्रह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थसिद्ध, (३) तीर्थकरसिद्ध, (४) अतीर्थंकरसिद्ध, (५) स्वय-

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८

बुद्धसिद्ध, (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (७) बुद्धबोधितसिद्ध, (८) स्त्रीलिंगसिद्ध, (९) पुरुषलिंगसिद्ध, (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध, (११) स्वलिंगसिद्ध, (१२) अन्यलिंगसिद्ध, (१३) गृहस्थलिंगसिद्ध, (१४) एक-सिद्ध और (१५) अनेकसिद्ध । यह है—अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा)।

१७. से किं तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव संखेज्जसमयसिद्धा असंखेज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा । से त्तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा । से त्तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[१७ प्र] वह (पूर्वोक्त) परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१७ उ] परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतु:समयसिद्ध, यावत्—संख्यातसमय-सिद्ध, असंख्यात समयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध । यह हुई—परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना ।

इस प्रकार वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) पूर्ण हुई ।

विवेचन—असंसार-समापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू १५ से १७ तक) में असंसार-समापन्नजीवों की प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप तथा उसके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है ।

असंसारसमापन्नजीवों का स्वरूप—असंसार का अर्थ है—जहाँ जन्ममरणरूप चातुर्गतिक संसारपरिभ्रमण न हो, अर्थात्—मोक्ष । उस मोक्ष को प्राप्त, समस्त कर्मों से मुक्त, सिद्धिप्राप्त जीव असंसारसमापन्न जीव कहलाते हैं ।[1]

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीव—जिन मुक्त जीवों के सिद्ध होने में अन्तर अर्थात् समय का व्यवधान न हो, वे अनन्तरससिद्ध होते हैं, अर्थात्—सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान । जिन जीवों को सिद्ध हुए प्रथम ही समय हो, वे अनन्तरसिद्ध हैं ।

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों के १५ भेदों की व्याख्या—(१) तीर्थसिद्ध—जिनके आश्रय से संसार-सागर को तिरा जाए—पार किया जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ वह प्रवचन है, जो समस्त जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थरूप से प्ररूपक है और परमगुरु—सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत (प्रतिपादित) है । वह तीर्थ निराधार नहीं होता । अतः चतुर्विध संघ अथवा प्रथम गणधर को भी तीर्थ समझना चाहिए । आगम में कहा है—'(प्र) भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं ? (उ) गौतम ! अरिहन्त भगवान् (नियम से) तीर्थंकर होते हैं, तीर्थ तो चातु-र्वर्ण्य श्रमणसंघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप) अथवा प्रथम गणधर है ।'[2] इस प्रकार के तीर्थ की स्थापना होने पर जो जीव सिद्ध होते हैं, वे तीर्थसिद्ध कहलाते हैं ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८

२ (प्र.) तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थकरे तित्थं ? (उ.) गोयमा ! अरिहा ताव (नियमा) तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा ।

(२) **अतीर्थसिद्ध**—तीर्थ का अभाव अतीर्थ कहलाता है । तीर्थ का अभाव दो प्रकार से होता है—या तो तीर्थ की स्थापना ही न हुई हो, अथवा स्थापना होने के पश्चात् कालान्तर मे उसका विच्छेद हो गया हो । ऐसे अतीर्थकाल में जिन्होने सिद्धि प्राप्त की हो, वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं । तीर्थ की स्थापना के अभाव में (पूर्व ही) मरुदेवी आदि सिद्ध हुई हैं । मरुदेवी आदि के सिद्धिगमनकाल में तीर्थ की स्थापना नही हुई थी । तथा सुविधिनाथ आदि तीर्थंकरो के बीच के समय में तीर्थ का तीर्थव्यवच्छेद-सिद्ध कहलाये । ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध अतीर्थसिद्ध हैं ।

(३) **तीर्थंकरसिद्ध**—जो तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं, वे तीर्थंकरसिद्ध कहलाते हैं। जैसे—इस अवसर्पिणीकाल में ऋषभदेव से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थंकर, तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए ।

(४) **अतीर्थंकरसिद्ध**—जो सामान्य केवली होकर सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थंकरसिद्ध कहलाते हैं।

(५) **स्वयंबुद्धसिद्ध**—जो परोपदेश के बिना, स्वय ही सम्बुद्ध हो (ससारस्वरूप समझ) कर सिद्ध होते है ।

(६) **प्रत्येकबुद्धसिद्ध**—जो प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं । यद्यपि स्वयबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनों ही परोपदेश के बिना ही सिद्ध होते हैं, तथापि इन दोनो मे अन्तर यह है कि स्वयम्बुद्ध बाह्य-निमित्तों के बिना ही, अपने जातिस्मरणादि ज्ञान से ही सम्बुद्ध हो जाते (बोध प्राप्त कर लेते) हैं, जबकि प्रत्येकबुद्ध वे कहलाते है, जो वृषभ, वृक्ष बादल आदि किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होते हैं । सुना जाता है कि करकण्डू आदि को वृषभादि बाह्यनिमित्त की प्रेक्षा से बोधि प्राप्त हुई थी । प्रत्येकबुद्ध बोधि प्राप्त करके नियमत एकाकी (प्रत्येक) ही विचरते है, गच्छ (गण)-वासी साधुओ की तरह समूहबद्ध हो कर नही विचरण करते ।

नन्दी-अध्ययन की चूर्णि में कहा है—स्वयंबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थंकर और तीर्थंकर-भिन्न । तीर्थंकर तो तीर्थंकरसिद्ध की कोटि में सम्मिलित हैं । अतएव यहाँ तीर्थंकर-भिन्न स्वयबुद्ध ही समझना चाहिए ।[1] स्वयंबुद्धो के पात्रादि के भेद से बाहर प्रकार की उपधि (उपकरण) होती है, जबकि प्रत्येकबुद्धों की जघन्य दो प्रकार की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) नौ प्रकार की उपधि प्रावरण (वस्त्र) को छोड कर होती है । स्वयबुद्धो के श्रुत (शास्त्र) पूर्वाधीत (पूर्वजन्मपठित) होता भी है, नहीं भी होता । अगर होता है तो देवता उन्हे लिंग (वेष) प्रदान करता है, अथवा वे गुरु के सान्निध्य मे जा कर मुनिलिंग स्वीकार कर लेते हैं । यदि वे एकाकी विचरण करने में समर्थ हों और उनकी एकाकी-विचरण की इच्छा हो तो एकाकी विचरण करते हैं, नही तो गच्छवासी हो कर रहते हैं । यदि उनके श्रुत पूर्वाधीत न हो तो वे नियम से गुरु के निकट जा कर ही मुनिलिंग स्वीकार करते हैं और गच्छवासी हो कर ही रहते हैं । प्रत्येकबुद्धों के नियमतः श्रुत पूर्वाधीत होता है । वे जघन्यतः ग्यारह अग और उत्कृष्टतः दस पूर्व से किञ्चित् कम पहले पढे हुए होते हैं । उन्हें देवता मुनिलिग देता है, अथवा कदाचित् वे लिगरहित भी

---

१. ते दुविहा सयंबुद्धा—तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्तेहि अहिगारो । —नन्दी अध्ययन चूर्णि

विचरते हैं।[1]

(७) **बुद्धबोधितसिद्ध**—बुद्ध अर्थात्—बोधप्राप्त आचार्य, उनके द्वारा बोधित हो कर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्धबोधितसिद्ध हैं।

(८) **स्त्रीलिंगसिद्ध**—इन पूर्वोक्त प्रकार के सिद्धों में से कई स्त्रीलिंगसिद्ध होते हैं। जिससे स्त्री की पहिचान हो वह स्त्री का लिंग-चिह्न स्त्रीलिंग कहलाता है। उपलक्षण से स्त्रीत्वद्योतक होने से वह तीन प्रकार का हो सकता है—वेद, शरीर की निष्पत्ति (रचना) और वेषभूषा।[2] इन तीन प्रकार के लिंगों में से यहा स्त्री-शरीररचना से प्रयोजन है; स्त्रीवेद या स्त्रीवेशरूप स्त्रीलिंग से नही, क्योकि स्त्रीवेद की विद्यमानता मे सिद्धत्व प्राप्त नही हो सकता और वेश अप्रमाणिक है। अतः ऐसे स्त्रीलिंग मे विद्यमान होते हुए जो जीव सिद्ध होते हैं, वे स्त्रीलिंगसिद्ध हैं। इस शास्त्रीय कथन से 'स्त्रियो को निर्वाण नही होता'; इस उक्ति का खण्डन हो जाता है। वास्तव मे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप है। यह रत्नत्रय पुरुषों की तरह स्त्रियो मे भी हो सकता है। इसकी साधना मे तथा प्रवचनार्थ मे रुचि एव श्रद्धा रखने में स्त्रीलिंग बाधक नही है।[3]

(९) **पुरुषलिंगसिद्ध**—पुरुष-शरीररचनारूप पुल्लिग में स्थित होकर सिद्ध होते है, वे पुरुषलिगसिद्ध कहलाते हैं।

(१०) **नपुंसकलिंगसिद्ध**—जो जीव न तो स्त्री के और न ही पुरुष के, किन्तु नपुंसक के शरीर से सिद्ध होते हैं, वे नपु सकलिगसिद्ध कहलाते हैं।

(११) **स्वलिंगसिद्ध**—जो स्वलिंग से अर्थात्—रजोहरणादिरूप वेष मे रहते हुए सिद्ध होते है।

(१२) **अन्यलिंगसिद्ध**—जो अन्यलिग से, अर्थात्—परिव्राजक आदि से सम्बन्धित वल्कल (छाल) या काषायादि रग के वस्त्र वाले द्रव्यलिंग मे रहते हुए सिद्ध होते है।

(१३) **गृहिलिंगसिद्ध**—जो गृहस्थ के लिग (वेष) मे रहते हुए सिद्ध होते हैं। वे गृहिलिंगसिद्ध होते है, जैसे—मरुदेवी आदि।

---

१. पत्तेयं—बाह्य वृषभादिक कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः, बहिष्प्रत्ययं प्रति बुद्धानां च पत्तेयं नियमा विहारो जम्हा तम्हा ते पत्तेयबुद्धा।
पत्तेयबुद्धाणं जहन्नेणं दुविहो, उक्कोसेण नवविहो नियमा उवही पाउरणवज्जो भवइ।
सयंबुद्धस्स पुव्वाहीयं सुयं से हवइ वा न वा, जइ से नत्थि तो लिंगं नियमा गुरुसन्निहे पडिवज्जइ, जइ य एगविहार-विहरणसमत्थो इच्छा वा से तो एक्को चेव विहरइ, अन्यथा गच्छे विहरइ।
पत्तेयबुद्धाणं पुव्वाहीयं सुयं नियमा हवइ, जहन्नेणं इक्कारस अंगा, उक्कोसेणं भिन्नदसपुव्वा। लिंगं च से देवया पयच्छइ, लिंगवज्जिओ वा हवइ।

२. इत्थीए लिंगं इत्थिलिंग उवलक्खणं ति वुत्तं भवइ। तं च तिविहं—वेदो सरीरनिव्वत्ती नेवत्थं च। इह सरीरनिव्वत्तीए अहिगारो, न वेय-नेवत्थेहि। —नन्दी-अध्ययन चूर्णि

३. स्त्रीमुक्ति की विशेष चर्चा के लिए देखिये—प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्रांक २० से २२ तक
दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रकृत गोमट्टसार मे देखिये—अडयाला पुंवेया, इत्थीवेया, हवंति चालीसा। वीस नपुंसकवेया, समएणेगेण सिज्झंति।।

(१४) **एकसिद्ध** –जो एक समय में अकेले ही सिद्ध होते हैं, वे एकसिद्ध हैं।

(१५) **अनेकसिद्ध**—जो एक ही समय मे एक से अधिक—अनेक सिद्ध होते हैं, वे अनेकसिद्ध कहलाते हैं।[1] सिद्धान्तानुसार एक समय मे अधिक से अधिक १०८ जीव सिद्ध होते है।[2]

अनन्तर सिद्धो के उपाधि के भेद से ये १५ प्रकार कहे हैं।

परम्परासिद्ध-असंसार समापन्नजीवो के प्रकार –इनके अनेक प्रकार है, इसलिए शास्त्रकार ने इनके प्रकारो की निश्चित सख्या नही दी है। अप्रथमसमयसिद्ध से लेकर अनन्तसमयसिद्ध तक के जीव परम्परासिद्ध की कोटि मे हैं। **अप्रथमसमयसिद्ध**—जिन्हे सिद्ध हुए प्रथम समय न हो, अर्थात् जिन्हें सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो चुके हो, वे अप्रथमसमयसिद्ध कहलाते हैं। अथवा जो परम्परसिद्धो में प्रथमसमयवर्ती हो वे प्रथमसमयसिद्ध होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयो मे **द्वितीयसमयसिद्ध** आदि कहलाते हैं। अथवा 'अप्रथमसमयसिद्ध' का कथन सामान्यरूप से किया गया है, आगे इसी के विषय में विशेषत कहा गया है—द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतु समयसिद्ध आदि यावत् अनन्त समयसिद्ध तक अप्रथमसमयसिद्ध –**परंपरासिद्ध** समझने चाहिए।

अथवा **परम्परसिद्ध** का अर्थ इस प्रकार से है—जो किसी भी प्रथम समय मे सिद्ध है, उससे एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। उससे भी एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। परम्परसिद्ध का आशय यह है कि जिस समय मे कोई जीव सिद्ध हुआ है, उससे पूर्ववर्त्ती समयो में जो जीव सिद्ध हुए है, वे सब उसकी अपेक्षा परम्परसिद्ध है। अनन्त अतीतकाल से सिद्ध होते आ रहे है, वे सब किसी भी विवक्षित प्रथम समय मे सिद्ध होने वाले की अपेक्षा से परम्परसिद्ध है। ऐसे मुक्तात्मा परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव हैं।[3]

संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार

१८. से किं तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

संसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा – एगिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा १ बेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ तेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ३ चउरेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ४ पंचेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ५।

[१८ प्र] वह (पूर्वोक्त) ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१८ उ] ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) एकेन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) त्रीन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (४) चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (५) पचेन्द्रिय ससार-समापन्न-जीवप्रज्ञापना।

---

१. 'अनेकसिद्ध' का विस्तृत वर्णन देखें—प्रज्ञापना० म० वृत्ति, पत्रांक २२

बत्तीसा अडयाला सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।

चुलसीइ छउन्नइ उ दुरहियं अट्ठुत्तरसयं च॥

२. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९ से २२ तक

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २३ तथा १८

विवेचन—संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—ससारी जीवो की प्रज्ञापना के एकेन्द्रियादि पांच प्रकार क्रमशः इस सूत्र (सू. १८) मे प्रतिपादित किये गए हैं।

संसारी जीवों के पांच मुख्य प्रकारों की व्याख्या— (१) **एकेन्द्रिय**—पृथ्वीकायादि स्पर्शनेन्द्रिय वाले जीव एकेन्द्रिय कहलाते हैं। (२) **द्वीन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, ये दो इन्द्रिया होती हैं, वे द्वीन्द्रिय होते हैं। जैसे—शख, सीप, लट, गिंडोला आदि (३) **त्रीन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शन, रसन और घ्राणेन्द्रिय हों, वे त्रीन्द्रिय कहलाते है। जैसे—जू, खटमल, चीटी आदि। (४) **चतुरिन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षुरिन्द्रिय हो, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे—टिड्डी, पतगा, मक्खी, मच्छर आदि। (५) **पंचेन्द्रिय**—जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाचो इन्द्रिया हो, वे पचेन्द्रिय कहलाते है जैसे—नारक, तिर्यञ्च (मत्स्य, गाय, हस, सर्प), मनुष्य और देव। इन्द्रिया दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के दो रूप—निर्वृत्तिरूप और उपकरणरूप। इन्द्रियो की रचना को निर्वृत्ति-इन्द्रिय कहते हैं और निर्वृत्ति-इन्द्रिय की शक्तिविशेष को उपकरणेन्द्रिय कहते है। भावेन्द्रिय लब्धि (क्षयोपशम) तथा उपयोग रूप है। एकेन्द्रिय जीवो मे भी क्षयोपशम एव उपयोगरूप भावेन्द्रिय पाचो ही सम्भव है, क्योकि उनमे से कई एकेन्द्रिय जीवो मे उनका कार्य दिखाई देता है।[1] जैसे—जीवविज्ञानविशेषज्ञ डॉ जगदीशचन्द्र बोस ने एकेन्द्रिय वनस्पति मे भी निन्दा-प्रशसा आदि भावो को समझने की शक्ति (लब्धि=क्षयोपशम) सिद्ध करके बताई है।

एकेन्द्रिय संसारी जीवों की प्रज्ञापना

१९. से किं तं एगेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

एगेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुढविकाइया १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सइकाइया ५।

[१९ प्र] वह (पूर्वोक्त) एकेन्द्रिय-ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१९ उ] एकेन्द्रिय-ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक और ५. वनस्पतिकायिक।

विवेचन—एकेन्द्रियसंसारी जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक आदि पाच प्रकार के एकेन्द्रियजीवो की प्ररूपणा की गई है।

एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार और लक्षण—(१) **पृथ्वीकायिक**—पृथ्वी ही जिनका काय—शरीर है, वे पृथ्वीकाय या पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। (२) **अप्कायिक**—अप्—प्रसिद्ध जल ही जिनका काय—शरीर है, वे अप्काय या अप्कायिक कहलाते है। (३) **तेजस्कायिक**—तेज यानी अग्नि ही जिनका काय—शरीर है, वे तेजस्काय या तेजस्कायिक कहलाते हैं। (४) **वायुकायिक**—वायु—हवा ही जिनका काय—शरीर है; वे वायुकाय या वायुकायिक है। (५) **वनस्पतिकायिक**—लतादिरूप वनस्पति ही जिनका शरीर (काय) है, वे वनस्पतिकाय या वनस्पतिकायिक कहलाते हैं।

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २३-२४

पृथ्वी समस्त प्राणियो को आधारभूत होने से सर्वप्रथम पृथ्वीकायिको का ग्रहण किया गया। अप्कायिक पृथ्वी के आश्रित हैं, इसलिए तदनन्तर अप्कायिको का ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् उनके प्रतिपक्षी अग्निकायिको का, अग्नि वायु के सम्पर्क से बढती है, इसलिए उसके बाद वायुकायिको का और वायु दूरस्थ लतादि के कम्पन से उपलक्षित होता है, इसलिए तत्पश्चात् वनस्पतिकायिकों का ग्रहण किया गया।[1]

पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना

२०. से किं तं पुढविकाइया ?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमपुढविकाइया य बादरपुढविकाइया य।

[२० प्र] वे पृथ्वीकायिक जीव कौन-से हैं ?

[२० उ] पृथ्वीकायिक (मुख्यतया) दो प्रकार के कहे गए है—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक।

२१. से किं तं सुहुमपुढविकाइया ?

सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य। से त्तं सुहुमपुढविकाइया।

[२१ प्र] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक क्या है ?

[२१ उ] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक। यह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ।

२२. से किं तं बादरपुढविकाइया ?

बादरपुढविकाइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सण्हबादरपुढविकाइया य खरबादरपुढविकाइया य।

[२२ प्र] बादरपृथ्वीकायिक क्या है ?

[२२ उ.] बादरपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—श्लक्ष्ण (चिकने) बादरपृथ्वीकायिक और खरबादरपृथ्वीकायिक।

२३. से किं तं सण्हबादरपुढविकाइया ?

सण्हबादरपुढविकाइया सत्तविहा पन्नत्ता। तं जहा—किण्हमत्तिया १ नीलमत्तिया २ लोहियमत्तिया ३ हालिद्दमत्तिया ४ सुक्किल्लमत्तिया ५ पंडुमत्तिया ६ पणगमत्तिया ७। से त्तं सण्हबादरपुढविकाइया।

[२३ प्र] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२३ उ.] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) कृष्ण-

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २४

मृत्तिका (काली मिट्टी), (२) नीलमृत्तिका (नीले रग की मिट्टी), (३) लोहितमृत्तिका (लाल रग की मिट्टी), (४) हारिद्रमृत्तिका (पीली मिट्टी), (५) शुक्लमृत्तिका (सफेद मिट्टी), (६) पाण्डुमृत्तिका (पाण्डु—मटमैले रग की मिट्टी) और (७) पनकमृत्तिका (कोई-सी हरे रग की मिट्टी)।

२४. से किं तं खरबादरपुढविकाइया ?

खरबादरपुढविकाइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पुढवी य १ सक्करा २ वालुया य ३ उवले ४ सिला य ५ लोणूसे ६-७।

अय ८ तंब ९ तउय १० सीसय ११ रुप्प १२ सुवण्णे य १३ वइरे य १४ ॥८॥

हरियाले १५ हिंगुलुए १६ मणोसिला १७ सासगंऽजण १८-१९ पवाले २०।

अब्भपडल २१ ऽब्भवालुय २२ बादरकाए मणिविहाणा ॥९॥

[1]गोमेज्जए य २३ रुयए २४ अंके २५ फलिहे य २५ लोहियक्खे य २७।

मरगय २८ मसारगल्ले २० भुयमोयग २० इंदनीले य ३१ ॥१०॥

चंदण ३२ गेरुय ३३ हंसे ३४ पुलए ३५ सोगंधिए य ३६ बोद्धव्वे।

चंदप्पभ ३७ वेरुलिए ३८ जलकंते ३९ सूरकंते य ४० ॥११॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२४-प्र] खर बादरपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के हैं ?

[२४-उ] खर बादरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— (१) पृथ्वी, (२) शर्करा (ककर), (३) बालुका (बालु–रेत), (४) उपल (पाषाण—पत्थर), (५) शिला (चट्टान), (६) लवण (सामुद्र, सैंधव आदि नमक), (७) ऊष (ऊषर—क्षार वाली जमीन, बजरभूमि), (८) अयस् (लोहा), (९) ताम्बा, (१०) त्रपुष् (रांगा), (११) सीसा, (१२) रौप्य (चादी), (१३) सुवण (सोना), (१४) वज्र (हीरा), (१५) हडताल, (१६) हीगलू (१७) मैनसिल, (१८) सासग (पारद—पारा), (१९) अजन (सौवीर आदि), (२०) प्रवाल (मू गा), (२१) अभ्रपटल (अभ्रक–भोडल) (२२) अभ्रबालुका (अभ्रक-मिश्रित बालू), बादरकाय में मणियो के प्रकार—(२३) गोमेज्जक (गोमेदरत्न), (२४) रुचकरत्न, (२५) अकरत्न, (२६) स्फटिकरत्न, (२७) लोहिताक्षरत्न, (२८) मरकतरत्न, (२९) मसारगल्लरत्न, (३०) भुजमोचकरत्न, (३१) इन्द्रनीलमणि, (३२) चन्दनरत्न, ३३) गैरिकरत्न, (३४) हसरत्न (हसगर्भरत्न), (३५) पुलकरत्न, (३६) सौगन्धिकरत्न, (३७) चन्द्रप्रभरत्न, (३८) वैडूर्यरत्न, (३९) जलकान्तमणि और (४०) सूर्यकान्तमणि ॥८-९-१०-११॥

---

१. गोमेज्जए य २३ रुयगे २४ अंके २५ फलिहे य २६ लोहियक्खे य २७। चंदण २८ गेरुय २९ हंसग ३० भुयमोय ३१ मसारगल्ले य ३२ ॥७५॥ चंदप्पह ३३ वेरुलिए ३३ जलकंते ३५ चेव सूरकंते य ३७। एए खरपुढवीए नामं छत्तीसयं होइ ॥७६॥

इस प्रकार आचारांग वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने आचारांगनिर्युक्ति की गाथाओं द्वारा खरपृथ्वीकाय के ३६ भेद गिनाए हैं, जबकि प्रज्ञापना में ४० भेद वर्णित हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में प्रज्ञापना. के समान ही गाथाएँ हैं।—सं.

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथा प्रकार के (वैसे) (पद्मराग आदि मणिभेद हैं, वे भी खर बादरपृथ्वीकायिक समझने चाहिए।)

२५. [१] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[२५-१] वे (पूर्वोक्त सामान्य बादरपृथ्वीकायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[२५-२] उनमें से जो अपर्याप्तक है, वे (स्वयोग्य पर्याप्तियो को) असम्प्राप्त होते है।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसतसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखिज्जा । से त्तं खरबादरपुढविकाइया । से त्तं बादरपुढविकाइया । से त्तं पुढविकाइया ।

[२५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, इनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो (सहस्रश.) भेद (विधान) है। (उनके) सख्यात लाख योनिप्रमुख (योनिद्वार) है। पर्याप्तको के निश्राय (आश्रय) मे, अपर्याप्तक (आकार) उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (पर्याप्तक) होता है, वहाँ (उसके आश्रय से) नियम मे असख्यात अपर्याप्नक (उत्पन्न होते है।) यह हुआ—वह (पूर्वोक्त) खर बादरपृथ्वीकायिकों का निरूपण। (उसके साथ ही) बादरपृथ्वीकायिकों का वर्णन पूर्ण हुआ। (इसके पूर्ण होते ही) पृथ्वीकायिको की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू २० से २५ तक मे) पृथ्वीकायिक जीवो के मुख्य दो भेदो तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक की व्याख्या—जिन जीवो को सूक्ष्मनामकर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म कहलाते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्मपृथ्वीकायिक हैं। जिनकी बादरनामकर्म का उदय हो, उन्हे बादर कहते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक बादरपृथ्वीकायिक कहलाते है। बेर और आवले में जैसी सापेक्ष सूक्ष्मता और बादरता है, वैसी सूक्ष्मता और बादरता यहा नही समझनी चाहिए। यहा तो (नाम-) कर्मोदय के निमित्त मे ही सूक्ष्म और बादर समझना चाहिए। मूल मे '**च**' शब्द सूक्ष्म और बादर के अनेक अवान्तरभेदो, जैसे— पर्याप्त और अपर्याप्त आदि भेदो तथा शर्करा, बालुका आदि उपभेदो को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

'सूक्ष्म सर्वलोक मे हैं' उत्तराध्ययन सूत्र की इस उक्ति के अनुसार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समग्र लोक मे ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं, जैसे किसी पेटी में सुगन्धित पदार्थ डाल देने पर उसकी महक उसमें सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। बादरपृथ्वीकायिक नियत-नियत स्थानो पर लोकाकाश मे होते हैं। यह द्वितीयपद में बताया जाएगा।[1]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक २४-२५

(ख) उत्तराध्ययनसूत्र, अ. ३६—'सुहुमा सव्वलोगंमि।'

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकों के पर्याप्त-अपर्याप्तक की व्याख्या—जिन जीवो की पर्याप्तिया पूर्ण हो चुकी हों वे पर्याप्त या पर्याप्तक कहलाते हैं। जो जीव अपने योग्य पर्याप्तिया पूर्ण न कर चुके हो, वे अपर्याप्त या अपर्याप्तक कहलाते हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त के प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं—लब्धि-पर्याप्त और करण-पर्याप्त, तथा लब्धि-अपर्याप्तक और करण-अपर्याप्त। जो जीव अपर्याप्त रह कर ही मर जाते है, वे लब्धि-अपर्याप्त और जिनकी पर्याप्तियां अभी पूरी नही हुई हैं, किन्तु पूरी होगी, वे करण-अपर्याप्त कहलाते है। **पर्याप्ति**—पर्याप्ति आत्मा की एक विशिष्ट शक्ति की परिपूर्णता है, जिसके द्वारा आत्मा आहार, शरीर आदि के योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करता है और उन्हे आहार, शरीर आदि के रूप मे परिणत करता है। वह पर्याप्तिरूप शक्ति पुद्‌गलो के उपचय से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्तिदेश में आए हुए नवीन आत्मा ने पहले जिन पुद्‌गलो को ग्रहण किया, उनको तथा प्रतिसमय ग्रहण किये जा रहे अन्य पुद्‌गलों को, एव उनके सम्पर्क से जो तद्रूप परिणत हो गए है, उनको आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप मे जिस शक्ति के द्वारा परिणत किया जाता है, उस शक्ति की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है।

पर्याप्ति छह हैं—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रियपर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति और (६) मन:पर्याप्ति। जिस शक्ति द्वारा जीव बाह्य आहार (आहारयोग्य पुद्‌गलो) को लेकर खल और रस के रूप मे परिणत करता है, वह **आहार-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा रसीभूत (रसरूप-परिणत) आहार (आहारयोग्य पुद्‌गलो) को रस, रक्त, मास, मेद, हड्‌डी, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओ के रूप मे परिणत किया जाता है, वह **शरीरपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा धातुरूप में परिणमित आहार पुद्‌गलों को इन्द्रियरूप मे परिणत किया जाता है, वह **इन्द्रियपर्याप्ति** है। इसे दूसरी तरह से यो भी समझा जा सकता है—पाँचो इन्द्रियो के योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करके अनाभोगनिर्वर्तित (अनजाने ही निष्पन्न) वीर्य के द्वारा इन्द्रियरूप मे परिणत करने वाली शक्ति **इन्द्रियपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा (श्वास तथा उच्छ्‌वास के योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करके, उन्हें (श्वास एवं) उच्छ्‌वासरूप परिणत करके और फिर उनका आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह **(श्वास-)उच्छ्‌वास-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति से भाषा-योग्य (भाषावर्गणा के) पुद्‌गलों को ग्रहण करके, उन्हें भाषारूप मे परिणत करके, वचनयोग का आलम्बन लेकर छोडा जाता है, वह **भाषापर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा मन के योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करके मन के रूप में परिणत करके, मनोयोग का आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह मन:पर्याप्ति है। इन छह पर्याप्तियो मे से एकेन्द्रिय मे चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा असज्ञी पचेन्द्रिय मे पाच और सज्ञीपचेन्द्रिय में छहो पर्याप्तियां होती हैं।

जीव अपनी उत्पत्ति (जन्म) के प्रथम समय में ही, अपने योग्य सम्भावित पर्याप्तियों को एक साथ निष्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है। किन्तु वे (पर्याप्तियां) क्रमश. पूर्ण होती हैं। जैसे—सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति, तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति, फिर इन्द्रियपर्याप्ति, तदनन्तर श्वासोच्छ्‌वास-पर्याप्ति, उसके बाद भाषापर्याप्ति और सबसे अन्त में मन:पर्याप्ति पूर्ण होती है। आहारपर्याप्ति प्रथम समय में ही निष्पन्न हो जाती है, शेष पर्याप्तियों के पूर्ण होने में प्रत्येक को अन्तर्मुहूर्त्त समय लग जाता है। किन्तु समस्त पर्याप्तियो के पूर्ण होने में भी अन्तमुहूर्त्तकाल ही लगता है। क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त के अनेक विकल्प हैं। इस पर से सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक दोनो के

पर्याप्तक और अपर्याप्तक का स्वरूप समझ लेना चाहिए।[1]

श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक—पीसे हुए आटे के समान मृदु (मुलायम) पृथ्वी श्लक्ष्ण कहलाती है। श्लक्ष्ण पृथिव्यात्मक जीव भी उपचार से श्लक्ष्ण कहलाते हैं। जिन बादरपृथ्वी के जीवों का शरीर श्लक्ष्ण—मृदु है, वे श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक हैं। यह मुख्यतया सात प्रकार की होती है। उनमें से **पाण्डुमृत्तिका** का अर्थ यह भी है कि किसी देश में मिट्टी धूलिरूप में हो कर भी 'पाण्डु' नाम से प्रसिद्ध है। पनकमृत्तिका का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—नदी आदि में बाढ़ से डूबे हुए प्रदेश में नदी आदि के पूर के चले जाने के बाद भूमि पर जो श्लक्ष्णमृदुरूप पंक शेष रह जाता है, जिसे 'अलमल' भी कहते हैं, वही पनकमृत्तिका है।[2]

खर बादरपृथ्वीकायिकों की व्याख्या—प्रस्तुत गाथाओं में खर बादरपृथ्वीकायिको के ४० भेद बताए हैं। अन्त में यह भी कहा है कि ये और इसी प्रकार के अन्य जो भी पद्मरागादि रत्न हैं, वे सब इसी के अन्तर्गत समझने चाहिए। **अपर्याप्तकों का स्वरूप**—खर बादरपृथ्वीकायिक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जो दो भेद हैं, उनमें से अपर्याप्तक या तो अपनी पर्याप्तियों को पूर्णतया असप्राप्त हैं अथवा उन्हे विशिष्ट वर्ण आदि प्राप्त नहीं हुए हैं। इस दृष्टि से उनके लिए यह नही कहा जा सकता कि वे कृष्ण आदि वर्ण वाले हैं। शरीर आदि पर्याप्तिया पूर्ण हो जाने पर ही बादर जीवों में वर्ण आदि विभाग प्रकट होता है, अपूर्ण होने को स्थिति में नही। तथा वे अपर्याप्तक उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रह कर ही मर जाते हैं, इसी कारण उनमें स्पष्टतर वर्णादि का विभाग सम्भव नही। इसी दृष्टि से उन्हें 'असम्प्राप्त' कहा है। **पर्याप्तकों के वर्णादि के भेद से हजारों भेद**—इनमें से जो पर्याप्तक हैं, जिनकी अपने योग्य चार पर्याप्तियां पूर्ण हो चुकी है, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से हजारों भेद होते हैं। जैसे—वर्ण के ५, गन्ध के २, रस के ५ स्पर्श के ८ भेद होते हैं। फिर प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे अनेक प्रकार की तरतमता होती है। जैसे—भ्रमर, कोयल और कज्जल आदि में कालेपन की न्यूनाधिकता होती है। अतः कृष्ण, कृष्णतर और कृष्णतम आदि अनेक कृष्णवर्णीय भेद हो गए। इसी प्रकार नील आदि वर्ण के विषय मे समझना चाहिए। गन्ध, रस और स्पर्श से सम्बन्धित भी ऐसे ही अनेक भेद होते हैं। इसी प्रकार वर्णों के परस्पर मिश्रण से धूसरवर्ण, कर्बुर (चितकबरा) वर्ण आदि अगणित वर्ण निष्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार एक गन्ध में दूसरी गन्ध के मिलने से, एक रस में दूसरा रस मिश्रण करने से, एक स्पर्श के साथ दूसरे स्पर्श के संयोग से हजारों भेद गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हो जाते हैं। **ऐसे पृथ्वीकायिकों की लाखों योनियां**—उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीवों की लाखो योनियां हैं। यही बात मूलपाठ में कही गई है—**'संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं'**—अर्थात् 'संख्यातलाख योनिप्रमुख-योनिद्वार हैं।' जैसे कि एक-एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में पृथ्वीकायिको की सवृता योनि होती है। वह तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। इनके प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इन शीत आदि प्रत्येक के भी तारतम्य के कारण अनेक भेद हो जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार से स्वस्थान में विशिष्ट वर्णादि से युक्त योनियां व्यक्ति के भेद से संख्यातीत हो जाती हैं, तथापि वे सब जाति (सामान्य) की अपेक्षा एक ही योनि में परिगणित होती हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक जीवों की

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २५-२६

(ख) आहारपर्याप्ति के सम्बन्ध मे सूक्ष्मचर्चा देखिये—प्रज्ञापना. २८ वा आहारपद

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २६

संख्यात लाख योनियां होती हैं। और वे सूक्ष्म और बादर सबकी सब मिलकर सात लाख योनिया समझनी चाहिए।[1]

अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना

२६. से किं तं आउक्काइया ?

आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमआउक्काइया य बादरआउक्काइया य।

[२६ प्र] वे (पूर्वोक्त) अप्कायिक जीव किस (कितने) प्रकार के हैं ?

[२६ उ.] अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक।

२७. से किं तं सुहुमआउक्काइया ?

सुहुमआउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तसुहुमआउक्काइया य अपज्जत्तसुहुम-आउक्काइया य। से त्तं सुहुमआउक्काइया।

[२७ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म अप्कायिक किस प्रकार के हैं ?

[२७ उ] सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक और अपर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक। (इस प्रकार) यह सूक्ष्म-अप्कायिक की प्ररूपणा हुई।

२८. [१] से किं तं बादरआउक्काइया ?

बादरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—[2]ओसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए सीतोदए उसिणोदए खारोदए खट्टोदए अंबिलोदए लवणोदए वारुणोदए खीरोदए घओदए खोतोदए रसोदए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२८-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) बादर-अप्कायिक क्या (कैसे) हैं ?

[२८-१ उ.] बादर-अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—ओस, हिम (बर्फ), महिका (गर्भमासों में होने वाली सूक्ष्म वर्षा—धुम्मस या कोहरा), ओले, हरतनु (भूमि को फोड़ कर अकुरित होने वाले गेहूँ घास आदि के अग्रभाग पर जमा होने वाले जलबिन्दु), शुद्धोदक (आकाश मे उत्पन्न होने वाला तथा नदी आदि का पानी), शीतोदक (नदी आदि का शीतस्पर्शपरिणत जल), उष्णोदक (कही झरने आदि से स्वाभाविकरूप से उष्णस्पर्शपरिणत जल), क्षारोदक (खारा पानी), खट्टोदक (कुछ खट्टा पानी), अम्लोदक (स्वाभाविकरूप से कांजी-सा खट्टा पानी), लवणोदक (लवण समुद्र का पानी), वारुणोदक (वरुणसमुद्र का या मदिरा जैसे स्वादवाला जल), क्षीरोदक (क्षीरसमुद्र

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २७-२८

२. आचारांगसूत्रनिर्युक्तिकार ने बादर-अप्काय के—"सुद्धोदए य १ उस्सा २ हिमे य३ महिया य ४ हरतणू चेव ५। बायरआउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥१०८॥" इस गाथानुसार ५ ही भेदों का निर्देश किया है। तथा उत्तराध्ययनसूत्र अ. ३६, गाथा ८६ मे भी ये ही पांच भेद गिनाए हैं, जबकि यहाँ अनेक भेद बताए हैं।—स.

का पानी), घृतोदक (घृतवरसमुद्र का जल), क्षोदोदक (इक्षुसमुद्र का जल) और रसोदक (पुष्करवर समुद्र का जल)। ये और तथाप्रकार के और भी (रस-स्पर्शादि के भेद से) जितने प्रकार हों, (वे सब बादर-अप्कायिक समझने चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[२८-२] वे (ओस आदि बादर अप्कायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते ण असंपत्ता।

[२८-३] उनमे से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपनी पर्याप्तियो को पूर्ण नही कर पाए) हैं।

[४] तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइं, सखेज्जाइ जोणीपमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरआउक्काइया। से त्तं आउक्काइया।

[२८-४] उनमे से जो अपर्याप्तक है, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो (सहस्रश) भेद (विधान) होते है। उनके सख्यात लाख योनिप्रमुख हैं। पर्याप्तक जीवो के आश्रय से अपर्याप्तक आकर उत्पन्न होते है। जहाँ एक पर्याप्तक है, वहाँ नियम से (उसके आश्रय से) असख्यात (अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।)

यह हुआ, बादर अप्कायिको (का वर्णन।) (और साथ ही) अप्कायिक जीवो की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

विवेचन—अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू २६ से २८ तक) मे अप्कायिक जीवो के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है।

तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना

२९. से किं तं तेउक्काइया?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य।

[२९ प्र] वे (पूर्वोक्त) तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं?

[२९ उ.] तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक।

३० से किं तं सुहुमतेउक्काइया?

सुहुमतेउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं सुहुमतेउक्काइया।

[३० प्र.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं?

[३० उ.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ पूर्वोक्त सूक्ष्म तेजस्कायिक का वर्णन।

३१. [१] से किं तं बादरतेउक्काइया ?

बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणी णिग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिणिस्सिए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[३१-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) बादर तेजस्कायिक किस प्रकार के हैं ?

[३१-१ उ] बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—अगार, ज्वाला, (जाज्वल्यमान खैर आदि की ज्वाला अथवा अग्नि से सम्बद्ध दीपक की लौ), मुर्मुर (राख मे मिले हुए अग्निकण या भोभर), अर्चि (अग्नि से पृथक् हुई ज्वाला या लपट), अलात (जलती हुई मशाल या जलती लकड़ी), शुद्ध अग्नि (लोहे के गोले की अग्नि), उल्का, विद्युत् (आकाशीय विद्युत्), अशनि (आकाश से गिरने वाले अग्निकण), निर्घात (वैक्रिय सम्बन्धित अशनिपात या विद्युत्पात), सघर्ष-समुत्थित (अरणि आदि की लकड़ी की रगड़ से पैदा होने वाली अग्नि), और सूर्यकान्तमणि-नि सृत (सूर्य की प्रखर किरणो के सम्पर्क से सूर्यकान्तमणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि)। इसी प्रकार की अन्य जो भी (अग्निया) हैं (उन्हे बादर तेजस्कायिको के रूप मे समझना चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[३१-२] ये (उपर्युक्त बादर तेजस्कायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[३१-३] उनमे से जो अपर्याप्तक है, वे (पूर्ववत्) असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्णतया अप्राप्त) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति-जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरतेउक्काइया। से त्तं तेउक्काइया।

[३१-४] उनमे से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो (सहस्रश:) भेद होते हैं। उनके सख्यात लाख योनि-प्रमुख हैं। पर्याप्तक (तेजस्कायिकों) के आश्रय से अपर्याप्त (तेजस्कायिक) उत्पन्न होते है। जहां एक पर्याप्तक होता है, वहा नियम से असख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं।)

यह हुई बादर तेजस्कायिक जीवो की प्ररूपणा। (साथ ही) तेजस्कायिक जीवो की भी प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. २९ से ३१ तक) में तेजस्कायिक जीवो के मुख्य दो प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना

३२. से किं तं वाउक्काइया ?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य ।

[३२ प्र.] वायुकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३२ उ.] वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक।

३३. से किं तं सुहुमवाउक्काइया ?

सुहुमवाउक्काइया दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तगसुहुमवाउक्काइया य अपज्जत्तगसुहुम वाउक्काइया य । से त्तं सुहुमवाउक्काइया ।

[३३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिक कैसे हैं ?

[३३ उ.] सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक।

यह हुआ, वह (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिको का वर्णन।

३४. [१] से किं तं बादरवाउक्काइया ?

बादरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीणवाए उड्ढवाए अहोवाए तिरियवाए विदिसीवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया वायमंडलिया उक्कलियावाए मंडलियावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावऽण्णे तहप्पगारे ।

[३४-१ प्र.] वे बादर वायुकायिक किस प्रकार के हैं ?

[३४-१ उ.] बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पूर्वी वात (पूर्वदिशा से बहती हुई वायु), पश्चिमी वायु, दक्षिणी वायु, उत्तरी वायु, ऊर्ध्ववायु, अधोवायु, तिर्यग्वायु (तिरछी चलती हुई हवा), विदिग्वायु (विदिशा से आती हुई हवा), वातोद्भ्राम (अनियत-अनवस्थित वायु), वातोत्कलिका (समुद्र के समान प्रचण्ड गति से बहती हुई तूफानी हवा), वात-मण्डलिका (वातोली), उत्कलिकावात (प्रचुरतर उत्कलिकाओ—आंधियो से मिश्रित हवा), मण्डलिकावात (मूलत. प्रचुर मण्डलिकाओ—गोल-गोल चक्करदार हवाओ से प्रारम्भ होकर उठने वाली वायु), गुंजावात (गूंजती हुई—सनसनाती हुई—चलने वाली हवा), झंझावात (वृष्टि के साथ चलने वाला अधड़), सवर्तकवात (खण्ड-प्रलयकाल में चलने वाली वायु अथवा तिनके आदि उड़ाकर ले जाने वाली आधी), घनवात (रत्नप्रभादि पृथ्वियो के नीचे रही हुई सघन—ठोस वायु), तनुवात (घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु) और शुद्धवात (मशक आदि में भरी हुई या धीमी-धीमी बहने वाली हवा)।

अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवाएँ हैं, (उन्हें भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए)।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तया य अपज्जत्तगा य ।

[३४-२] वे (पूर्वोक्त बादर वायुकायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[३४-३] इनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नहीं किये हुए) हैं ।

[४] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा । से त्तं बादरवाउक्काइया । से त्तं वाउक्काइया ।

[३४-४] इनमे से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार (विधान) होते हैं। इनके संख्यात लाख योनि-प्रमुख होते हैं। (सूक्ष्म और बादर वायुकायिक की मिला कर ७ लाख योनियां हैं)। पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से, अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहाँ नियम से असख्यात (अपर्याप्तक वायुकायिक) होते हैं। यह हुआ—बादर वायुकायिक (का वर्णन)। (साथ ही), वायुकायिक जीवो की (प्ररूपणा पूर्ण हुई)।

विवेचन—वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. ३२ से ३४ तक) मे वायुकायिक जीवों के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना

३५. से किं तं वणस्सइकाइया ?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बादरवणस्सतिकाइया य ।

[३५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिक जीव कैसे हैं ?

[३५ उ.] वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक ।

३६ से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?

सुहुमवणस्सइकाइया दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य अपज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य । से त्तं सुहुमवणस्सइकाइया ।

[३६ प्र.] वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३६ उ.] सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक-सूक्ष्मवनस्पतिकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्मवनस्पतिकायिक। यह हुआ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक (का निरूपण)।

३७. से किं तं बादरवणस्सइकाइया ?

बादरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया य साहारणसरीरबादरवणप्फइकाइया य ।

[३७ प्र] अब प्रश्न है—बादर वनस्पतिकायिक कैसे है ?

[३७ उ.] बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिक और साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक ।

३८. से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ?

पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया दुवालसविहा पन्नत्ता । त जहा—

रुक्खा १ गुच्छा २ गुम्मा ३ लता य ४ वल्ली य ५ पव्वगा चेव ६ ।
तण ७ वलय ८ हरिय ९ ओसहि १० जलरुह ११ कुहणा य १२ बोद्धव्वा ॥१२॥

[३८ प्र.] वे प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३८ उ] प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार से हैं—(१) वृक्ष (आम, नीम आदि), (२) गुच्छ (बैंगन आदि के पौधे), (३) गुल्म (नवमालिका आदि), (४) लता (चम्पकलता आदि), (५) वल्ली (कूष्माण्डी त्रपुषी आदि बेलें), (६) पर्वग (इक्षु आदि पर्व-पोर-गाठ वाली वनस्पति), (७) तृण (कुश, कास, दूब आदि हरी घास), (८) वलय (जिनकी छाल वलय के आकार की गोल होती है, ऐसे केतकी, कदली आदि), (९) हरित (बथुआ आदि हरी लिलोती), (१०) औषधि (गेहूँ आदि धान्य, जो फल (फसल) पकने पर सूख जाते है), (११) जलरुह (पानी में उगने वाली कमल, सिंघाडा, उदकावक आदि वनस्पति) और (१२) कुहण (भूमि को फोड कर उगने वाली वनस्पति), (ये बारह प्रकार के प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव) समझने चाहिए ।

३९. से किं तं रुक्खा ?

रुक्खा दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३९ प्र.] वे वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[३९ उ] वृक्ष दो प्रकार के कहे गए हैं—एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक गुठली या बीज वाले) और बहुबीजक (जिनके फल मे बहुत बीज हो) ।

४०. से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

णिबंब जंबु कोसंब साल अंकोल्ल पीलु सेलू य ।
सल्लइ मोयइ मालुय बउल पलासे करंजे य ॥१३॥
पुत्तंजीवयऽरिट्ठे बिभेलए हरडए य भल्लाए ।
उंबेभरिया खीरिणि बोधव्वे धायइ पियाले ॥१४॥

पूई करंज सेण्हा (सण्हा) तह सीसवा य असणे य ।
पुण्णाग णागरुक्खे सोवण्णि तहा असोगे य ॥१५॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

एतेसि णं मूला असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला एगट्ठिया । से त्तं एगट्ठिया ।

[४० प्र.] एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक बीज-गुठली वाले) वृक्ष किस प्रकार के होते हैं ?

[४० उ.] एकास्थिकवृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] नीम, आम, जामुन, कोशाम्ब (कोशाम्र—जगली आम), शाल, अकोल्ल (अखरोट या पिश्ते का पेड़), पीलू, शेलु (लिसोडा), सल्लकी (हाथी को प्रिय), मोचकी, मालुक, बकुल, (मौलसरी), पलाश (खाखरा या ढाक), करंज (नक्तमाल) ॥१३॥

पुत्रजीवक (पितौंझिया), अरिष्ट (अरीठा), बिभीतक) (बहेडा), हरड या जियापोता, भल्लातक (भिलावा), उम्बेभरिया, खीरणि (खिरनी), धातकी और प्रियाल ॥१४॥

पूतिक (निम्ब--निम्बौली), करञ्ज, श्लक्ष्ण (या प्लक्ष) तथा शीशपा, अशन और पुन्नाग (नागकेसर), नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक; (ये एकास्थिक वृक्ष हैं)।

इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हो, (जो विभिन्न देशो में उत्पन्न होते है तथा जिनके फल मे एक ही गुठली हो, उन सबको एकास्थिक ही समझना चाहिए।) ॥१५॥

इन (एकास्थिक वृक्षों) के मूल असख्यात जीवों वाले होते हैं, तथा कन्द भी, स्कन्ध भी त्वचा (छाल) भी, शाखा (साल) भी और प्रवाल (कोपल) भी (असख्यात जीवों वाले होते हैं), किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव (एक-एक पत्ते में एक-एक जीव) वाले होते हैं। इनके फल एकास्थिक (एक ही गुठली वाले) होते हैं। यह हुआ—उस (पूर्वोक्त) एकास्थिक वृक्ष का वर्णन।

४१. से किं तं बहुबीयगा ?

बहुबीयगा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

अत्थिय तिंदु कविट्ठे अंबाडग माउलिंग बिल्ले य ।
आमलग फणस दाडिम आसोत्थे उंबर वडे य ॥१६॥
णग्गोह णंदिरुक्खे पिप्परि सयरी पिलुक्खरुक्खे य ।
काउंबरि कुत्थुंभरि बोधव्वा देवदाली य ॥१७॥
तिलिए लउए छत्तोह सिरीसे सत्तिवण्ण दहिवण्णे ।
लोद्ध धव चंदणऽज्जुण णीमे कुडए कयंबे य ॥१८॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला बहुबीया । से त्तं बहुबीयगा । से त्तं रुक्खा ।

[४१-प्र.] और वे (पूर्वोक्त) बहुबीजक वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[४१-उ.] बहुबीजक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार से हैं—

[गाथार्थ—] अस्थिक, तेन्दु (तिन्दुक), कपित्थ (कवीठ), अम्बाडग, मातुलिंग (बिजौरा), बिल्व (बेल), आमलक (आंवला), पनस (अनन्नास), दाड़िम (अनार) अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गुल्लर), वट (बड), न्यग्रोध (बड़ा बड़), ॥१६॥

नन्दिवृक्ष, पिप्पली (पीपल), शतरी (शतावरी), प्लक्षवृक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी और देवदाली (इन्हे बहुबीजक) जानना चाहिए ॥१७॥

तिलक लवक (लकुच— लीचो), छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन अर्जुन, नीप, कुरज (कुटक) और कदम्ब ॥१८॥

इस प्रकार के और भी जितने वृक्ष हैं, (जिनके फल मे बहुत बीज हों; वे सब बहुबीजक वृक्ष समझने चाहिए।)

इन (बहुबीजक वृक्षो) के मूल जीवो वाले होते हैं। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा और प्रवाल भी (असख्यात जीवात्मक होते हैं।) इनके पत्ते प्रत्येक जीवात्मक (प्रत्येक पत्ते में एक-एक जीव वाले) होते हैं। पुष्प अनेक जीवरूप (होते हैं) और फल बहुत बीजो वाले (हैं)। यह हुआ बहुबीजक (वृक्षो का वर्णन।) (साथ ही) वृक्षो की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई)।

४२. से किं तं गुच्छा ?

गुच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

वाइंगण सल्लई[1] बोंडई य तह कच्छुरी[2] य जासुमणा।
रूवी आढइ नीली तुलसी तह माउलिंगी य ॥१९॥
कत्थु भरि[3] पिप्पलिया अतसी बिल्ली य कायमाई या।
चुच्चु[4] पडोला[5] कंदलि बाउच्चा[6] वत्थुले बदरे ॥२०॥
पत्तउर सीयउरए हवति तहा जवसए य बोधव्वे।
णिग्गुंडि[7] अक्क तूवरी अट्टइ चेव तलऊडा ॥२१॥
सण वाण[8] कास मद्दग[9] अग्घाडग साम सिंदुवारे य।
करमद्द अद्दरूसग करीर एरावण महित्थे ॥२२॥
जाउलग माल[10] परिली गयमारिणि कुच्चकारिया[11] भंडी[12]।
जावइ[13] केयइ तह गंज पाडला दासी अंकोल्ले[14] ॥२३॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं गुच्छा।

[४२ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गुच्छ किस प्रकार के होते हैं ?

पाठान्तर—१ थुंडई। २ कत्थूरी य जीभुमणा। ३ कच्छुंभरी। ४ चुच्चू। ५ पडोलकदे। ६ विउव्वा वत्थलदेरे। ७ णिग्गु मियगं तवरि, अत्थइ चेव तलउदाडा। ८ पाण। ९ मुद्दग। १० मोल। ११ कुच्चकारिया। १२ भंडा। १३ जीवइ। १४ अकोले।

[४२ उ.] गुच्छ अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—बैंगन, शल्यकी, बोंडी (अथवा थुण्डकी) तथा कच्छुरी, जासुमना, रूपी, आढकी, नीली, तुलसी तथा मातुलिंगी ॥१९॥ कस्तुम्भरी (धनिया), पिप्पलिका, अलसी, बिल्वी, कायमादिका, चुच्चू (बुच्चू), पटोला, कन्दली, बाउच्चा (विकुर्वा), बस्तुल तथा बादर ॥२०॥ पत्रपूर, शीतपूरक तथा जवसक, एवं निर्गुण्डी (निल्गु), अर्क (मृगांक), तूवरी (तबरी), अट्टकी (अस्तकी) और तलपुटा (तलउडादा) भी समझना चाहिए ॥२१॥ तथा सण (शण), वाण (पाण), काश (कास), मद्रक (मुद्रक), आघ्रातक, श्याम, सिन्दुवार और करमर्द, आर्द्रडूसक (अडूसा) करीर (कैर), ऐरावण तथा महित्थ ॥२२॥ जातुलक, मोल, परिली, गजमारिणी, कुर्च्चकारिका (कुर्व्वकारिका), भडी (भंड), जावकी (जीवकी), केतकी तथा गज, पाटला, दासी और अकोल्ल ॥२३॥

अन्य जो भी इस प्रकार के (इन जैसे) हैं, (वे सब गुच्छ समझने चाहिए।) यह हुआ गुच्छ का वर्णन।

४३. से किं तं गुम्मा ?

गुम्मा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

> **सेरियए[1] णोमालिय कोरंटय बंधुजीवग मणोज्जे।**
> **पीईय पाण कणइर कुज्जय तह सिंदुवारे य ॥२४॥**
> **जाई मोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती।**
> **वत्थुल कच्छुल[2] सेवाल गंठि मगदंतिया चेव ॥२५॥**
> **चंपगजीती णवणीइया[3] य कुंदो तहा महाजाई।**
> **एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा ॥२६॥**

से त्तं गुम्मा।

[४३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गुल्म किस प्रकार के हैं ?

[४३ उ.] गुल्म अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—से रितक (सेनतक), नवमालती, कोरण्टक, बन्धुजीवक, मनोद्य, पीतिक (पितिक), पान, कनेर (कर्णिकार), कुर्जक (कुंजक), तथा सिन्दुवार ॥२४॥ जाती (जाई), मोगरा, जूही (यूथिका), तथा मल्लिका और वासन्ती, वस्तुल, कच्छुल (कस्थुल), शैवाल, ग्रन्थि एव मृगदन्तिका ॥२५॥ चम्पक, जीती, नवनीतिका, कुन्द, तथा महाजाति; इस प्रकार अनेक आकार-प्रकार के होते है, (उन सबको) गुल्म समझना चाहिए ॥२६॥ यह हुई गुल्मों की प्ररूपणा।

४४. से किं तं लयाओ ?

लयाओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

> **पउमलता नागलता असोग-चंपयलता य चूतलता।**
> **वणलय वासंतिलया अइमुत्तय-कुंद-सामलता ॥२७॥**

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं लयाओ।

पाठान्तर—१. सेणयए। २. कत्थुल। ३. नीइया।

[४४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) लताएँ किस प्रकार की होती हैं ?

[४४ उ.] लताएँ अनेक प्रकार की कही गई है। यथा—पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, और चूतलता, वनलता, वासन्तीलता, अतिमुक्तकलता, कुन्दलता और श्यामलता ।।२७।।

और जितनी भी इस प्रकार की हैं, (उन्हे लता समझना चाहिए।) यह हुआ उन लताओं का वर्णन।

४५. से किं तं वल्लीओ ?

वल्लीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

पूसफली कालिंगी तुंबी तउसी य एलवालुंकी।
घोसाडई[1] पडोला पंचंगुलिया य णालीया[2] ।।२८।।
कंगूया कद्दुइया[3] कक्कोडइ कारियल्लई सुभगा।
कुवधा (या)[4] य वागली पाववल्लि तह देवदारू[5] य ।।२९।।
अप्फोया[6] अइमुत्तय णागलया कण्ह-सूरवल्ली य।
संघट्ट सुमणसा वि य जासुवण कुविंदवल्ली य ।।३०।।
मुद्दिय अप्पा[7] भल्ली छीरविराली[8] जियंति[9] गोवाली।
पाणी मासावल्ली गुंजावल्ली[10] य वच्छाणी[11] ।।३१।।
ससबिंदु गोत्तफुसिया[12] गिरिकण्णइ मालुया य अंजणई।
दहफुल्लइ[13] कागणि[14] मोगली य तह अक्कबोंदी य ।।३२।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं वल्लीओ।

[४५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वल्लिया किस प्रकार की होती हैं ?

[४५ उ.] वल्लिया अनेक प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] पूसफली, कालिगी (जंगली तरबूज की बेल) तुम्बी, त्रपुषी (ककडी), एलवालुकी (एक प्रकार की ककडी), घोषातकी, पटोला, पचागुलिका और नालीका (आयनीली) ।।२८।। कगूका, कुद्दकिका (कण्डकिका), कर्कोटकी (ककोडी या ककड़ी), कारवेल्लकी (कारेली), सुभगा, कुवधा (कुवया—कुयवाया) और वागली, पापवल्ली, तथा देवदारु (देवदाली) ।।२९।। अफ्फोया (अप्फेया), अतिमुक्तका, नागलता और कृष्णसूरवल्ली, सघट्टा और सुमनसा भी तथा जासुवन और कुविन्दवल्ली ।।३०।। मुद्वीका, अप्पा, भल्ली (अम्बावली), क्षीरविराली (कृष्णक्षीराली), जीयती (जयन्ती), गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुंजावल्ली, (गुजीवल्ली) और वच्छाणी (विच्छाणी) ।।३१।। शशबिन्दु, गोत्रस्पृष्टा (ससिवो द्विगोत्रस्पृष्टा), गिरिकर्णकी, मालुका और अजनकी, दहस्फोटकी (दधिस्फोटकी), काकणी (काकली) और मोकली तथा अर्कबोन्दी ।।३२।।

पाठान्तर—१ घोसाडइ पडोला, घोसाई य पडोला। २ आयणीली य। ३ कड्डइया। ४ कुवया, कुयवाया। ५ देवदाली य। ६ अप्फेया। ७ अम्बावल्ली। ८ किण्हक्षीराली। ९ जयती। १० गुजीवल्ली। ११ विच्छाणी। १२ ससिवी दुगोत्तफुसिया। १३ दहिफोल्लइ। १४ काकली।

इसी प्रकार की अन्य जितनी भी (वनस्पतियां हैं, उन सबको वल्लियां समझना चाहिए।) यह हुई, वल्लियों की प्ररूपणा।

४६. से किं तं पव्वगा ?

पव्वगा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—

> **इक्खू य इक्खुवाडी वीरण तह एक्कडे[1] भमासे य।**
> **सुंठे (सुंबे) सरे य वेत्ते तिमिरे सतपोरग नले य ॥३३॥**
> **वंसे वेलू[2] कणए कंकावंसे य चाववंसे य।**
> **उदए कुडए विमए[3] कंडावेलू य कल्लाणे ॥३४॥**

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं पव्वगा।

[४६ प्र.] वे पर्वक (वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[४६ उ] पर्वक वनस्पतियाँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] इक्षु और इक्षुवाटी, वीरण (वीरुणी) तथा एक्कड़, भमास (माष), सूंठ (सुम्ब), शर और वेत्र) (बेत), तिमिर, शतपर्वक और नल ॥३३॥ वंश (बांस), वेलू (वेच्छू), कनक, कंकावंश और चापवंश, उदक, कुटज, विमक (विसक), कण्डा, वेलू (वेल्ल) और कल्याण ॥३४॥

और भी जो इसी प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, (उन्हे पर्वक में ही समझनी चाहिए)। यह हुई, उन पर्वको की प्ररूपणा।

४७. से किं तं तणा ?

तणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

> **सेडिय भत्तिय[4] होत्तिय डब्भ कुसे पव्वए य पोडइला।**
> **अज्जुण असाढए रोहियंसे सुयवेय खीरतुसे[5] ॥३५॥**
> **एरंडे कुरुविंदे कक्खड[6] सुंठे तहा विभंगू य।**
> **महुरतण लुणय सिप्पिय बोधव्वे सुंकलितणा य ॥३६॥**

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं तणा।

[४७ प्र] वे (पूर्वोक्त) तृण कितने प्रकार के हैं ?

[४७ उ] तृण अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—

[गाथार्थ—] सेटिक (सेंडिक), भक्तिक (मात्रिक), होत्रिक, दर्भ, कुश और पर्वक, पोटकिला (पाटकिला—पोटलिका), अर्जुन, आषाढ़क, रोहितांश, शुकवेद और क्षीरतुष (क्षीरभुसा) ॥३५॥ एरण्ड कुरुविन्द, कक्षट (करकर), सूंठ (मुट्ठ), विभंगू और मधुरतृण, लवणक (क्षुरक), शिल्पिक (शुक्तिक)

पाठान्तर—१ एक्कडे य मासे। २ वेण्डू। ३ विसए, कंडावेल्ले।
४ मतिय। ५ खीरभुसे। ६ कक्कर।

और सुंकलीतृण (सुकलीवृण), (इन्हे) तृण जानना चाहिए ।।३६।। जो अन्य इसी प्रकार के हैं (उन्हें भी तृण समझना चाहिए)। यह हुई उन (पूर्वकथित) तृणो की प्ररूपणा।

४८. से किं तं वलया ?

वलया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

ताल तमाले तक्कलि तेयलि[1] सारे य सारकल्लाणे।
सरले जावति केयइ कदली[2] तह धम्मरुक्खे य ।।३७।।
भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे लवंगरुक्खे य होति बोधव्वे।
पूयफली खज्जूरी बोधव्वा नालिएरी य ।।३८।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं वलया।

[४८ प्र.] वे वलय (जाति की वनस्पतिया) किस प्रकार की हैं।

[४८ उ.] वलय-वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ—] ताल (ताड), तमाल, तर्कली (तक्कली), तेतली (तोतली), सार (शाली), सारकल्याण (सारकत्राण), सरल, जावती (जावित्री), केतकी (केवडा), कदली (केला) और धर्मवृक्ष (चर्मवृक्ष) ।।३७।। भुजवृक्ष (मुचवृच), हिंगुवृक्ष, और (जो) लवगवृक्ष होता है, (इसे वलय) समझना चाहिए। पूगफली (सुपारी), खजूर और नालिकेरी (नारियल), (इन्हे भी वलय) समझना चाहिए ।।३८।।

४९. से किं तं हरिया ?

हरिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

अज्जोरुह वोडाणे हरितग तह तंदुलेज्जग तणे य।
वत्थुल पारग[3] मज्जार पाइ बिल्ली य पालक्का ।।३९।।
दगपिप्पली य दव्वी सोत्थियसाए तहेव मडुक्की।
मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियंतए चेव ।।४०।।
तुलसी कण्ह उराले फणिज्जए अज्जए य भूयणए।
चोरग दमणग मरुयग सयपुप्फिंदीवरे य तहा ।।४१।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं हरिया।

[४९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) हरित (वनस्पतियां) किस प्रकार की है ?

[४९ उ.] हरित वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ—] अध्यावरोह, व्युदान, हरितक तथा तान्दुलेयक (चन्दलिया), तृण, वस्तुल (बथुआ), पारक (पर्वक), मार्जार, पाती, बिल्वी और पाल्यक (पालक) ।।३९।। दकपिप्पली और दर्वी,

---

पाठान्तर— १ तोयली साली य सारकत्ताणे। २ कयली तह चम्मरुक्खे य। ३ पोरग मज्जार याइ।

स्वस्तिक शक (सौत्रिक शाक), तथा माण्डुकी, मूलक, सर्षप (सरसो का साग), अम्लशाक (अम्ल साकेत) और जीवान्तक ॥४०॥ तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक (आर्वक), भुजनक (भूसनक), चोरक (वारक), दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर ॥४१॥

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं, (वे सब हरित (हरी या लिलौती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए)।

यह हुई उन हरित (वनस्पतियो की) प्ररूपणा।

५०. से किं तं ओसहीओ ?

ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

साली १ वीही २ गोधूम ३ [1]जवजवा ४ कल ५ मसूर ६ तिल ७ मुग्गा ८।
मास ९ निप्फाव १० कुलत्थ ११ अलिसंद १२ सतीण १३ पलिमंथा १४ ॥४२॥
अयसी १५ कुसुंभ १६ कोद्दव १७ कंगू १८ रालग १९ [2]वरसामग २० कोदूसा २१।
सण २२ सरिसव २३ मूलग २४ बीय २५ जा यावऽण्णा तहप्पगारा ॥४३॥

[५० प्र.] वे ओषधियां किस प्रकार की होती हैं ?

[५० उ.] ओषधिया अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १. शाली (धान), २. व्रीहि (चावल), ३ गोधूम (गेहूँ), ४. जौ (यवयव), ५ कलाय, ६ मसूर, ७ तिल, ८ मूग, ९ माष (उडद), १०. निष्पाव, ११. कुलत्थ (कुलथ), १२ अलिसन्द, १३. सतीण, १४ पलिमन्थ ॥४२॥ १५. अलसी, १६. कुसुम्भ, १७. कोदो (कोद्रव), १८ कंगू, १९ राल (रालक), २०. वरश्यामाक (सांवा धान) और २१. कोदूस (कोदृंश), २२ शण-सन, २३. सरसों (दाने), २४ मूलक बीज; ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतिया) हैं, (उन्हें भी ओषधियों मे गिनना चाहिए।) ॥४३॥

यह हुआ ओषधियों का वर्णन।

५१. से किं तं जलरुहा ?

जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे नलिणे सुभए सोगंधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलत्थिभए,[3] जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं जलरुहा।

[५१ प्र] वे जलरुह (रूप वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[५१ उ.] जल में उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ (हठ), कसेरुका (कसेरू), कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र,

पाठान्तर—१ जव जवजवा। २ वरट्ट साम। ३ पोक्खलत्थिभुए।

कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस कमल, भिस, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्करास्तिभज (पुष्करास्तिभुक्) । इसी प्रकार की और भी (जल में उत्पन्न होने वाली जो वनस्पतियां हैं, उन्हें जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए) । यह हुआ, जलरुहो का निरूपण ।

५२. से किं तं कुहणा ?

कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया सप्फाए [1]सज्जाए सित्ताए [2]वंसी णहिया कुरए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं कुहणा ।

[५२ प्र.] वे कुहण वनस्पतिया किस प्रकार की हैं ?

[५२ उ.] कुहण वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई हैं । वे इस प्रकार—आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहलिका, शफाय, सद्यात (स्वाध्याय ?), सित्राक (छत्रोक) और वशी, न हिता, कुरक (वशीन, हिताकुरक) । इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पतिया उन सबको कुहणा के अन्तर्गत समझना चाहिए । यह हुआ कुहण वनस्पतियो का वर्णन ।

५३. णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।
खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं ॥४४॥
जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी ।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ॥४५॥
जह वा तिलपप्पडिया बहुएहिं तिलेहिं संहता संती ।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ॥४६॥

से त्तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ।

[५३ गाथार्थ—] वृक्षों (उपलक्षण से गुच्छ, गुल्म आदि) की आकृतिया नाना प्रकार की होती हैं । इनके पत्ते एकजीवक (एक जीव से अधिष्ठित) होते हैं, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है । (यथा—) ताल, सरल, नारिकेल वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते हैं ॥४४॥ जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किये हुए समस्त सर्षपों (सरसो के दानो) की वट्टी (में सरसो के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एकरूप प्रतीत होती है, वैसे ही (रागद्वेष से उपचित विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येकशरीरी जीवो के (शरीर भिन्न होते हुए भी) शरीरसघात रूप होते हैं ॥४५॥ जैसे तिलपपडी (तिलपट्टी) में (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) बहुत-से तिलो के सहत (एकत्र) होने पर होती है, वैसे ही प्रत्येकशरीरी जीवो के शरीरसघात होते है ॥४६॥

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीवो की प्रज्ञापना पूर्ण हुई ।

५४. [१] से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?

साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—
अवए पणए सेवाले लोहिणी [3]मिहू त्थिहू त्थिभगा ।
असकण्णी सीहकण्णी सिउंढि तत्तो मुसुंढी य ॥४७॥

पाठान्तर—१ सज्झाए छत्तोए । २ वसीण हिताकुरए । ३ मिहुत्थु हुत्थिभागा य ।

रुरु कंडुरिया जारू[1] छीरविराली तहेव किट्टीया[2] ।
हलिद्दा सिंगबेरे य आलूगा मूलए इ य ॥४८॥
[3]कंबू य कण्हकडबू महुओ वलई तहेव महुसिंगी ।
णिरुहा सप्पसुयंधा छिण्णरुहा चेव बीयरुहा ॥४९॥
पाढा मियवालुंकी[4] महुररसा चेव रायवल्ली[5] य ।
पउमा य माढरी दंती चंडी किट्टि त्ति यावरा ॥५०॥
मासपण्णी मुग्गपण्णी जीवियरसभेय रेणुया चेव ।
काओली खीरकाओली तहा भंगी णही इ य ॥५१॥
किमिरासि भद्दमुत्था णंगलई पलुगा[6] इय ।
किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी ॥५२॥
कण्हे कंदे वज्जे सूरणकंदे तहेव खल्लूडे ।
एए अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५३॥

[५४-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[५४-१ उ.] साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—

[गाथार्थ—] अवक, पनक, शैवाल, लोहिनी, स्निहूपुष्प (थोहर का फूल), मिहू स्तिहू (मिहूत्थु), हस्तिभागा और अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिउण्डी (शितुण्डी), तदनन्तर मुसुण्ढी ॥४७॥ रुरु, कण्डुरिका (कुण्डरिका या कुन्दरिका), जीरु (जारु), क्षीरविरा(डा)ली; तथा किट्टिका, हरिद्रा (हल्दी), शृंगबेर (आदा या अदरक) और आलू एवं मूला ॥४८॥ कम्बू (काम्बोज) और कृष्णकटबू (कर्णोत्कट), मधुक (सुमात्रक), वलकी तथा मधुशृंगी, नीरूह, सर्पसुगन्धा, छिन्नरुह, और बीजरुह ॥४९॥ पाढा, मृगवालुंकी, मधुररसा और राजपत्री, तथा पद्मा, माठरी, दन्ती, इसी प्रकार चण्डी और इसके बाद किट्टी (कृष्टि) ॥५०॥ माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवित, रसभेद, (जीवितरसह) और रेणुका, काकोली (काचोली), क्षीरकाकोली, तथा भृंगी, (भंगी), इसी प्रकार नखी ॥५१॥ कृमिराशि, भद्रमुस्ता (भद्रमुक्ता), नागलकी, पलुका (पेलुका), इसी प्रकार कृष्णप्रकुल, और हड, हरतनुका तथा लोयाणी ॥५२॥ कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरणकन्द, तथा खल्लूर, ये (पूर्वोक्त) अनन्तजीव वाले हैं। इनके अतिरिक्त और जितने भी इसी प्रकार के हैं, (वे सब अनन्त जीवात्मक है।) ॥५३॥

[२] तणमूल कंदमूले वंसमूले त्ति यावरे ।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य ॥५४॥
सिंघाडगस्स गुच्छो अणेगजीवो उ होति नायव्वो ।
पत्ता पत्तेयजिया, दोण्णि य जीवा फले भणिता ॥५५॥

---

१ जीरु । २ किट्टीया । ३ कबूय कन्नुक्कड सुमत्तओ । ४ मियमालुकी । ५ रायवत्ती । ६ वेलुगा इय ।

[५४-२] तृणमूल, कन्दमूल और वंशीमूल, ये और इसी प्रकार के दूसरे सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए। सिघाड़े का गुच्छ अनेक जीव वाला होता है, यह जानना चाहिए और इसके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। इसके फल में दो-दो जीव कहे गए हैं ॥५५॥

[३] जस्स मूलस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५६॥
जस्स कंदस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५७॥
जस्स खंधस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५८॥
जीसे तयाए भग्गाए समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥५९॥
जस्स सालस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६०॥
जस्स पवालस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे पवाले से, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६१॥
जस्स पत्तस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६२॥
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पुप्फे, जे याअऽण्णे तहाविहा ॥६३॥
जस्स फलस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसती।
अणंतजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६४॥
जस्स बीयस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से बीए, यावऽण्णे तहाविहा ॥६५॥

[५४-३] जिस मूल को भग करने (तोड़ने) पर समान (चक्राकार) दिखाई दे, वह मूल अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी मूल हो, उन्हे भी अनन्तजीव समझना चाहिए। ॥५६॥ जिस टूटे या तोडे हुए कन्द का भग समान दिखाई दे, वह कन्द अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी कन्द हो, उन्हें अनन्तजीव समझना चाहिए ॥५७॥ जिस टूटे हुए स्कन्ध का भग समान दिखाई दे, वह स्कन्ध (भी) अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे स्कन्धो को (भी अनन्तजीव समझना चाहिए) ॥५८॥ जिस छाल (त्वचा) के टूटने पर उसका भग सम दिखाई दे, वह छाल भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य छाल भी (अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए) ॥५९॥ जिस टूटी हुई शाखा (साल) का भग समान दृष्टिगोचर हो, वह शाखा भी अनन्तजीव वाली है। इसो प्रकार की जो अन्य (शाखाएँ) हों, (उन्हें भी अनन्तजीव वाली समझो) ॥६०॥

टूटे हुए जिस प्रवाल (कोंपल) का भंग समान दीखे, वह प्रवाल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्रवाल) हो, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझो) ।।६१।। टूटे हुए जिस पत्ते का भग समान दिखाई दे, वह पत्ता (पत्र) भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार जितने भी अन्य पत्र हों, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ।।६२।। टूटे हुए जिस फूल (पुष्प) का भग समान दिखाई दे, वह भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी पुष्प हो, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ।।६३।। जिस टूटे हुए फल का भंग सम दिखाई दे, वह फल भी अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी फल हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ।।६४।। जिस टूटे हुए बीज का भग समान दिखाई दे, वह बीज भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी बीज हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ।।६५।।

[४] जस्स मूलस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।६६।।
जस्य कंदस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।६७।।
जस्स खंधस्य भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।६८।।
जीसे तयाए भग्गाए हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।६९।।
जस्स सालस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसती।
परित्तजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७०।।
जस्स पवालस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे पवाले उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७१।।
जस्स पत्तस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७२।।
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७३।।
जस्स फलस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७४।।
जस्स बीयस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।७५।।

[५४-४] टूटे हुए जिस मूल का भग (-प्रदेश) हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह मूल प्रत्येक (परित्त) जीव वाला है ।, इसी प्रकार के अन्य जितने भी मूल हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए) ।।६६) टूटे हुए जिस कन्द के भंग-प्रदेश में हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह कन्द

प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (कन्द हो, उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझो) ॥६७॥ टूटे हुए जिस स्कन्ध के भगप्रदेश मे हीर दिखाई दे, वह स्कन्ध प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने स्कन्ध हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो।) ॥६८॥ जिस छाल टूटने पर उनके भग (प्रदेश) मे हीर दिखाई दे, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छाले (त्वचाएं) हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ॥६९॥ जिस शाखा के टूटने पर उनके भग (प्रदेश) मे विषम छेद दीखे, वह शाखा प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी शाखाएँ हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाली समझनी चाहिए।) ॥७०॥ जिस प्रवाल के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषमछेद दिखाई दे, वह प्रवाल भी प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने प्रवाल हो, (उन्हे प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ॥७१॥ जिस टूटे हुए पत्ते के भग-प्रदेश मे विषमछेद दिखाई दे, वह पत्ता प्रत्येकजीव वाला है । इसी प्रकार के और भी जितने पत्ते हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो) ॥७२॥ जिस पुष्प के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषम-छेद दिखाई दे, वह पुष्प प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितते (पुष्प हो, उन्हे प्रत्येक जीवी समझना चाहिए) ॥७३॥ जिस फल के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषमछेद दृष्टिगोचर हो, वह फल भी प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे और भी जितने (फल हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए) ॥७४॥ जिस बीज के टूटने पर उसके भग मे विषमछेद दिखाई दे, वह वह बीज प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे अन्य जितने भी बीज हो, (वे भी प्रत्येकजीव वाले जानने चाहिए) ॥७५॥

[५] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥७६॥
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा तु सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥७७॥
जस्स खंधस्य कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥७८॥
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली, बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥७९॥

[५४-५] जिस मूल के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा छल्ली (छाल) अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार की जो भी अन्य छाले हो, उन्हे अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए ॥७६॥ जिस कन्द के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो वह अनन्तजीव वाली है । इसी प्रकार की जो भी अन्य छाले हो, उन्हे अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ॥७७॥ जिस स्कन्ध के काष्ठ मे छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छाले हो, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए) ॥७८॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी छालें हो, उन सबको अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ॥७९॥

[६] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८०॥

जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे ।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८१॥
जस्स खंधस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे ।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८२॥
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे ।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८३॥

[५४-६] जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक-जीव वाली है । इस प्रकार जितनी भी अन्य छाले हो, (उन्हे प्रत्येक जीव वाली समझो) ॥८०॥ जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है । इस प्रकार की जितनी भी अन्य छाले हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८१॥ जिस स्कन्ध के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है । इस प्रकार की अन्य जो भी छाले हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८२॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है । इस प्रकार की अन्य जो भी छाले हो, उन्हे प्रत्येक जीव वाली समझना चाहिए ॥८३॥

[७] चक्कागं भज्जमाणस्स गंठी चुण्णघणो भवे ।
पुढविसरिसेण भेएण अणंतजीवं वियाणाहि ॥८४॥
गूढछिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होति णिच्छीरं ।
जं पि य पणट्ठसंधि अणंतजीवं वियाणाहि ॥८५॥

[५४-७] जिस (मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि) को तोडने पर (उसका भगस्थान) चक्राकार अर्थात् सम हो, तथा जिसकी गाठ (पर्व, गाठ या भगस्थान) चूर्ण (रज) से सघन (व्याप्त) हो, उसे पृथ्वी के समान भेद से अनन्तजीवो वाला जानो ॥८४॥ जिस (मूल-कन्दादि) की शिराएँ गूढ (प्रच्छन्न या अदृश्य) हो, जो (मूलादि) दूध वाला हो अथवा जो दूध-रहित हो तथा जिस (मूलादि) को सन्धि नष्ट (अदृश्य) हो, उसे अनन्तजीवो वाला जानो ॥८५॥

[८] पुप्फा जलया थलया य वेंटबद्धा य णालबद्धा य ।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य ॥८६॥
जे केई नालियाबद्धा पुप्फा संखेज्जजीविया भणिता ।
णिहुया अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥८७॥
पउमुप्पलिणीकंदे अंतरकंदे तहेव झिल्ली य ।
एते अणंतजीवा एगो जीवो भिस-मुणाले ॥८८॥
पलंडू-ल्हसणकंदे य कंदली य कुसुंबए ।
एए परित्तजीवा जे यावऽण्णे तहाविहा ॥८९॥

पउमुप्पल-नलिणाणं सुभग-सोगंधियाण य।
अरविंद-कोकणाणं सतवत्त-सहस्सवत्ताणं ॥९०॥
वेंटं बाहिरपत्ता य कण्णिया चेव एगजीवस्स।
अब्भितरगा पत्ता पत्तेय केयरा मिंजा ॥९१॥
वेणु णल इक्खुवाडियमसमासइक्खू य इक्कडेरंडे।
करकर सुंठि विहुंगुं तणाण तह पव्वगाणं च ॥९२॥
अच्छि पव्वं बलिमोडग्रो य एगस्स होंति जीवस्स।
पत्तेयं पत्ताइं पुप्फाइं अणेगजीवाइं ॥९३॥
पुस्सफलं कालिंगं तुंबं तउसेलवालु वालुंकं।
घोसाडगं पडोलं तिंदूयं चेव तेंदूसं ॥९४॥
विंटं गिरं कडाहं एयाहं होंति एगजीवस्स।
पत्तेयं पत्ताइं सकेसरमकेसरं मिंजा ॥९५॥
सप्फाए सज्जाए उव्वेहलिया य कुहण कंदुक्के।
एए अणंतजीवा कंडुक्के होंति भयणा उ ॥९६॥

[५४-८] पुष्प जलज (जल मे उत्पन्न होने वाले) और स्थलज हो, वृन्तबद्ध हो या नालबद्ध, सख्यात जीवो वाले, असख्यात जीवो वाले और कोई-कोई अनन्त जीवो वाले समझने चाहिए ॥८६॥ जो कोई नालिकाबद्ध पुष्प हो, वे सख्यात जीव वाले कहे गए हैं। थूहर (स्निहुका) के फूल अनन्त जीवो वाले है। इसी प्रकार के (थूहर के फूलो के सदृश) जो अन्य फूल हो, (उन्हे भी अनन्त जीवो वाले समझने चाहिए।) ॥८७॥ पद्मकन्द, उत्पलिनीकन्द और अन्तरकन्द, इसी प्रकार झिल्ली (नामक वनस्पति), ये सब अनन्त जीवो वाले हैं, किन्तु (इनके) भिस और मृणाल मे एक-एक जीव है ॥८८॥ पलाण्डुकन्द (प्याज), लहसुनकन्द, कन्दली नामक कन्द और कुसुम्बक (कुस्तुम्बक या कुटुम्बक) (नामक वनस्पति) ये प्रत्येकजीवाश्रित है। अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतिया है, (उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझो।) ॥८९॥ पद्म, उप्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र—कमलो के वृत्त (डठल), बाहर के पत्ते और कर्णिका, ये सब एकजीवरूप है। इनके भीतरी पत्ते, केसर और मिंजा (अर्थात्—फल) भी प्रत्येक-जीव वाले होते है ॥९०-९१॥ वेणु (बास), नल (नड), इक्षुवाटिक, समासेक्षु, और इक्कड, रड, करकर, सुठी (सोठ), विहुगु (विहगु) एव दूब आदि तृणो तथा पर्व (पोर—गाठ) वाली वनस्पतियो के जो अक्षि, पर्व तथा बलिमोटक (गाठो को परिवेष्टन करने वाला चक्राकार भाग) हों, वे सब एकजीवात्मक है। इनके पत्र (पत्ते) प्रत्येकजीवात्मक होते है, और इनके पुष्प अनेकजीवात्मक होते हैं। ॥९२-९३॥ पुष्यफल, कालिग, तुम्ब, त्रपुष, एलवालुस (चिर्भट-चीभडा-ककड़ी), वालुक (चिर्भट—ककड़ी), तथा घोषाटक (घोषातक), पटोल, तिन्दूक, तिन्दूस फल इनके सब पत्ते प्रत्येक जीव से (पृथक्-पृथक्) अधिष्ठित होते हैं। तथा वृन्त (डंठल) गुद्दा और गिर (कटाह) के सहित तथा केसर (जटा) सहित या अकेसर (जटारहित) मिंजा (बीज), ये, सब एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं ॥९४-९५॥ सप्फाक, सद्यात (सध्यात), उव्वेहलिया और कुहण तथा कन्दुक्य

ये सब वनस्पतियां अनन्तजीवात्मक होती हैं; किन्तु कन्दुक्य वनस्पति में भजना (विकल्प) है, (अर्थात्—कोई कन्दुक्य अनन्तजीवात्मक और कोई असंख्यातजीवात्मक होती है।) ॥९६॥

[९] जोणिब्भूए बीए जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जो वि य मूले जीवो सो वि य पत्ते पढमताए ॥९७॥
सव्वो वि किसलओ खलु उग्गममाणो अणंतओ भणिओ।
सो चेव विवड्ढंतो होइ परित्तो अणंतो वा ॥९८॥

[५४-९] योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होता है, वह जीव वही (पहले वाला बीज का जीव हो सकता है,) अथवा अन्य कोई जीव (भी वहाँ आकर उत्पन्न हो सकता है।) जो जीव मूल (रूप) में (परिणत) होता है, वह जीव प्रथम पत्र के रूप में भी (परिणत होता) है। (अतः मूल और वह प्रथमपत्र दोनों एकजीवकर्तृक भी होते हैं।) ॥९७॥ सभी किसलय (कोपल) ऊगता हुआ अवश्य ही अनन्तकाय कहा गया है। वही (किसलयरूप अनन्तकायिक) वृद्धि पाता हुआ प्रत्येक शरीरी या अनन्तकायिक हो जाता है ॥९८॥

[१०] समयं वक्कंताणं समयं तेसिं सरीरनिव्वत्ती।
समयं आणुग्गहणं समयं ऊसास-नीसासे ॥९९॥
एक्कस्स उ जं गहणं बहूण साहारणाण तं चेव।
जं बहुयाणं गहणं समासओ तं पि एगस्स ॥१००॥
साहारणमाहारो साहारणमाणुपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं एयं ॥१०१॥
जह अयगोलो धंतो जाओ तत्ततवणिज्जसंकासो।
सव्वो अगणिपरिणतो निगोयजीवे तहा जाण ॥१०२॥
एगस्स दोण्ह तिण्ह व संखेज्जाण व न पासिउं सक्का।
दीसंति सरीराइं णिओयजीवाणऽणंताणं ॥१०३॥

[५४-१०] एक साथ उत्पन्न (जन्मे) हुए उन (साधारण वनस्पितकायिक जीवो की शरीर-निष्पति (शरीररचना) एक ही काल में होती (तथा) एक साथ ही (उनके द्वारा) प्राणापान-(के योग्य पुद्‌गलों का) ग्रहण होता है, (तत्पश्चात्) एक काल मे ही (उनका) उच्छ्वास और निःश्वास होता है ॥९९॥ एक जीव का जो (आहारादि पुद्‌गलो का) ग्रहण करना है, वही बहुत-से (साधारण) जीवो का ग्रहण करना (समझना चाहिए।) और जो (आहारादि पुद्‌गलो का) ग्रहण बहुत-से (साधारण) जीवो का होता है, वही एक का ग्रहण होता है ॥१००॥ (एक शरीर में आश्रित) साधारण जीवों का आहार भी साधारण (एक) ही होता है, प्राणापान (के योग्य पुद्‌गलो) का ग्रहण (एव श्वासोच्छ्वास भी) साधारण होता है। यह (साधारण जीवों का) साधारण लक्षण (समझना चाहिए।) ॥१०१॥ जैसे (अग्नि में) अत्यन्त तपाया हुआ लोहे का गोला, तपे हुए (सोने) के समान सारा का सारा अग्नि में परिणत (अग्निमय) हो जाता है, उसी प्रकार (अनन्त) निगोद जीवो का निगोदरूप एक शरीर में परिणमन होना समझ लो ॥१०२॥ एक, दो, तीन, सख्यात अथवा

(असख्यात) निगोदों (के पृथक्-पृथक् शरीरो) का देखना शक्य नही है : (केवल) (अनन्त-) निगोद-जीवो के शरीर ही दिखाई देते हैं ।।१०३।।

[११] लोगागासपएसे णिओयजीवं ठवेहि एक्केक्कं ।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोया अणंता उ ।।१०४।।
लोगागासपएसे परित्तजीवं ठवेहि एक्केक्कं ।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोया असंखेज्जा ।।१०५।।
पत्तेया पज्जत्ता पयरस्स असंखभागमेत्ता उ ।
लोगाऽसंखाऽपज्जत्तगाण साहारणमणंता ।।१०६।।
[एएहिं सरीरेहिं पच्चक्खं ते परूविया जीवा ।
सुहुमा आणागेज्झा चक्खुप्फासं ण ते एंति ।।१।।] [पक्खित्ता गाहा]

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[५४-११] लोकाकाश के एक-एक प्रदेश मे यदि एक-एक निगोदजीव को स्थापित किया जाए और उसका माप किया जाए तो ऐसे-ऐसे अनन्त लोकाकाश हो जाते है, (किन्तु लोकाकाश तो एक ही है, वह भी असख्यातप्रदेशी है ।) ।।१०४।। एक-एक लोकाकाश-प्रदेश मे, प्रत्येक वनस्पति काय के एक-एक जीव को स्थापित किया जाए और उन्हे मापा जाए तो ऐसे-ऐसे असख्यात-लोकाकाश हो जाते है ।।१०५।। प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्तक जीव घनीकृत प्रतर के असख्यात-भाग मात्र (अर्थात्—लोक के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश है, उतने) होते है । तथा अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवो का प्रमाण असख्यात लोक के बराबर है, और साधारण जीवो का परिमाण अनन्तलोक के बराबर है ।।१०६।।

[प्रक्षिप्त गाथार्थ] "इन (पूर्वोक्त) शरीरो के द्वारा स्पष्टरूप से उन बादरनिगोद जीवो की प्ररूपणा की गई है । सूक्ष्म निगोदजीव केवल आज्ञाग्राह्य (तीर्थकरवचनो द्वारा ही ज्ञेय) है । क्योकि ये (सूक्ष्मनिगोद जीव) आँखो से दिखाई नही देते ।।१।।" अन्य जो भी इस प्रकार की (न कही गई) वनस्पतिया हो, (उन्हे साधारण या प्रत्येक वनस्पतिकाय मे लक्षणानुसार यथायोग्य समझ लेनी चाहिए ।)

५५ [१] ते समासओ दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[५५-१] वे (पूर्वोक्त सभी प्रकार के वनस्पतिकाय जीव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[५५-२] उनमे से जो अपर्याप्तक है, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नही किये हुए) हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ

एगो तत्थ सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता । एएसि णं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ । तं जहा—

> कंदा य १ कंदमूला य २ रुक्खमूला इ ३ यावरे ।
> गुच्छा य ४ गुम्म ५ वल्ली य ६ वेणुयाणि ७ तणाणि य ८ ॥१०७॥
> पउमुप्पल ९-१० संघाडे ११ हढे य १२ सेवाल १३ किण्हए १४ पणए १५ ।
> अवए य १६ कच्छ १७ भाणी १८ कंदुक्केक्कूणवीसइमे १९ ॥१०८॥
> तय-छल्लि-पवालेसु य पत्त-पुप्फ-फलेसु य ।
> मूलऽग्ग-मज्झ-बीएसु जोणी कस्स य कित्तिया ॥१०९॥

से त्तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया । से त्तं बादरवणस्सइकाइया । से त्तं वणस्सइकाइया । से त्तं एगिंदिया ।

[५५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो प्रकार (विधान) हो जाते हैं। उनके सख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं। पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (बादर) पर्याप्तक जीव होता है, वहा (नियम से उसके आश्रय से) कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त (प्रत्येक) अपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते हैं। (साधारण जीव तो नियम से अनन्त ही उत्पन्न होते है)।

इन (साधारण और प्रत्येक वनस्पति-विशेष) के विषय में विशेष जानने के लिए इन (आगे कही जाने वाली) गाथाओं का अनुसरण करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १. कन्द (सूरण आदि कन्द), २. कन्दमूल और ३ वृक्षमूल (ये साधारण वनस्पति-विशेष हैं।) ४ गुच्छ, ५ गुल्म, ६. वल्ली और ७. वेणु (बास) और ८ तृण (अर्जुन आदि हरी घास), ९. पद्म, १०. उत्पल, ११. शृंगाटक (सिंघाड़ा), १२ हढ (जलज वनस्पति), १३. शैवाल, १४ कृष्णक, १५. पनक, १६. अवक, १७. कच्छ, १८. भाणी और १९. कन्दक्य (नामक साधारण वनस्पति) ॥१०८॥

इन उपर्युक्त उन्नीस प्रकार की वनस्पतियों की त्वचा, छल्ली (छाल), प्रवाल (कोंपल), पत्र, पुष्प, फल, मूल, अग्र, मध्य और बीज (इन) में से किसी की योनि कुछ और किसी की कुछ कही गई है ॥१०९॥ यह हुआ साधारणशरीर वनस्पतिकायिक का स्वरूप। (इसके साथ ही) उस (पूर्वोक्त) बादर वनस्पतिकायिक का वक्तव्य पूर्ण हुआ। (साथ ही) वह (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिको का वर्णन भी समाप्त हुआ; और इस प्रकार उन एकेन्द्रियसंसारसमापन्न जीवों की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—समस्त वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रों (सू. ३५ से ५५ तक) में वनस्पतिकायिक जीवो के भेद-प्रभेदों तथा प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिकों के वृक्ष, गुच्छ आदि सविवरण बारह भेदो तथा साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकों की विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

क्रम—सर्वप्रथम वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद, तदनन्तर सूक्ष्म के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो प्रकार, फिर बादर के दो भेद—प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर, तत्पश्चात् प्रत्येकशरीर के वृक्ष, गुच्छ आदि १२ भेद, क्रमशः प्रत्येक भेद के अन्तर्गत विविध वनस्पतियों के नामों का उल्लेख, तदनन्तर साधारणवनस्पतिकायिकों के अन्तर्गत अनेक नामो का उल्लेख तथा लक्षण एव अन्त में उनके पर्याप्तक-अपर्याप्तक भेदों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[1]

वृक्षादि बारह भेदों की व्याख्या—वृक्ष—जिनके आश्रित मूल, पत्ते, फूल, फल, शाखा-प्रशाखा, स्कन्ध, त्वचा, आदि अनेक हों, ऐसे आम, नीम, जामुन आदि वृक्ष कहलाते हैं। वृक्ष दो प्रकार के होते हैं—एकास्थिक (जिसके फल में एक ही बीज या गुठली हो) और बहुबीजक (जिसके फल में अनेक बीज हों)। आम, नीम आदि वृक्ष **एकास्थिक** के उदाहरण हैं तथा बिजौरा, वट, दाड़िम, उदुम्बर आदि **बहुबीजक** वृक्ष हैं। ये दोनों प्रकार के वृक्ष तो प्रत्येकशरीरी होते हैं, लेकिन इन दोनों प्रकार के वृक्षो के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल, असख्यात जीवो वाले तथा पत्ते प्रत्येक जीव वाले और पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं। **गुच्छ**—वर्तमान युग की भाषा में इसका अर्थ है—पौधा। इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं—वृन्ताकी (बेंगन), तुलसी, मातुलिंगी आदि पौधे। **गुल्म**—विशेषतः फूलो के पौधो को गुल्म कहते हैं। जैसे—चम्पा जाई, जूही, कुन्द, मोगरा, मल्लिका आदि पुष्पों के पौधे। **लता**—ऐसी बेले जो प्रायः वृक्षो पर चढ जाती हैं, वे लताएँ होती हैं। जैसे—चम्पकलता, नागलता, अशोकलता आदि। **वल्ली**—ऐसी बेलें जो विशेषत· जमीन पर ही फैलती हैं, वे वल्लियां कहलाती हैं। उदाहरणार्थ—कालिंगी (तरबूज की बेल), तुम्बी (तुम्बे की बेल), कर्कटिकी (ककड़ी की बेल), एला (इलायची की बेल) आदि। **पर्वक**—जिन वनस्पतियो मे बीच-बीच में पर्व—पोर या गाठे हो वे पर्वक वनस्पतिया कहलाती हैं। जैसे—इक्षु, सूंठ, बेत, आदि। **तृण**—हरी घास आदि को तृण कहते हैं। जैसे—कुश, अर्जुन, दूब आदि। **वलय**—वलय के आकार की गोल-गोल पत्तो वाली वनस्पति 'वलय' कहलाती है। जैसे—ताल (ताड़) कदली (केले) आदि के पौधे। **ओषधि**—जो वनस्पति फल (फसल) के पक जाने पर दानों के रूप मे होती है, वह ओषधि कहलाती है। जैसे—गेहू, चावल, मसूर, तिल, मूंग आदि। **हरित**—विशेषत· हरी सागभाजी को हरित कहते हैं—जैसे—चन्दलिया, बथुआ, पालक आदि। **जलरुह**—जल मे उत्पन्न होने वाली वनस्पति जलरुह कहलाती है। जैसे—पनक, शैवाल, पद्म, कुमुद, कमल आदि। **कुहण**—भूमि को तोड़ कर निकलने वाली वनस्पतियां कुहण कहलाती हैं। जैसे—छत्राक (कुकुरमुत्ता) आदि।[2]

प्रत्येकशरीरी अनेक जीवों का एक शरीराकार कैसे? प्रथम दृष्टान्त : जैसे—पूर्ण सरसों के दानों को किसी श्लेषद्रव्य से मिश्रित कर देने पर वे बट्टी के रूप में एकरूप—एकाकार हो जाते हैं। यद्यपि वे सब सरसों के दाने परिपूर्ण शरीर वाले होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना मे रहते हैं; तथापि श्लेषद्रव्य से परस्पर चिपक जाने पर वे एकरूप प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसघात भी परिपूर्ण शरीर होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भाग-१, पृ. १६ से २७ तक

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ३० से ३२

अवगाहना में रहते हैं, परन्तु विशिष्ट कर्मरूपी श्लेषद्रव्य से मिश्रित होने के कारण वे जीव भी एक-शरीरात्मक, एकरूप एवं एकशरीराकार प्रतीत होते हैं।

द्वितीय दृष्टान्त—जैसे तिलपपड़ी बहुत-से तिलों में एकमेक होने से (गुड़ आदि श्लेषद्रव्य से मिश्रित करने से) बनती है। उस तिलपपड़ी में तिल अपनी-अपनी अवगाहना में स्थित हो कर अलग-अलग रहते है, फिर भी वह तिलपट्टी एकरूप प्रतीत होती। इसी प्रकार प्रत्येक शरीरीजीवो के शरीरसघात पृथक्-पृथक् होने पर भी एकरूप प्रतीत होते हैं।[1]

अनन्तजीवों वाली वनस्पति के लक्षण—(१) टूटे हुए या तोड़े हुए जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पुष्प, फल, बीज का भगप्रदेश समान अर्थात्—चक्राकार दिखाई दे, उन मूल आदि को अनन्तजीवों वाले समझने चाहिए। (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध और शाखा के काष्ठ यानी मध्यवर्ती सारभाग की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, उस छाल को अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए। (३) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर उसका भगस्थान चक्र के आकार का एकदम सम हो, वह मूल, कन्द आदि अनन्तजीव वाला समझना चाहिए। (४) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर पर्व—गाठ या भगस्थान रज से व्याप्त होता है, अथवा जिस पत्र आदि को तोड़ने पर चक्राकार का भग नही दिखता और भग (ग्रन्थि-) स्थान भी रज से व्याप्त नही होता, किन्तु भगस्थान का पृथ्वीसदृश भेद हो जाता है। अर्थात् सूर्य की किरणो से अत्यन्त तपे हुए खेत की क्यारियो के प्रतरखण्ड का-सा समान भग हो जाता है, तो उसे अनन्तजीवों वाला समझना चाहिए। (५) क्षीरसहित (दूधवाले) या क्षीर-रहित (बिना दूध के) जिस पत्र की शिराएँ दिखती न हो उसे, अथवा जिस पत्र की (पत्र के दोनों भागो को जोडने वाली) सन्धि सर्वथा दिखाई न दे, उसे भी अनन्तजीवो वाला समझना चाहिए। (६) पुष्प दो प्रकार के होते हैं—जलज और स्थलज। ये दोनो भी प्रत्येक दो-दो प्रकार के होते हैं—वृन्तबद्ध (अतिमुक्तक आदि) और नालबद्ध (जाई के फूल आदि), इन पुष्पो में से पत्रगत जीवो की अपेक्षा से कोई-कोई सख्यात जीवो वाले, कोई-कोई असंख्यात जीवो वाले और कोई-कोई अनन्त जीवो वाले भी होते हैं। आगम के अनुसार उन्हे जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि जो जाई आदि नालबद्ध पुष्प होते है, उन सभी को तीर्थकरो तथा गणधरो ने संख्यातजीवो वाले कहे हैं; किन्तु स्निहूपुष्प अर्थात्—थोहर के फूल या थोहर के जैसे अन्य फूल भी अनन्तजीवों वाले समझने चाहिए। (७) पद्मिनीकन्द, उत्पलिनीकन्द, अन्तरकन्द (जलज वनस्पतिविशेषकन्द) एवं झिल्लिका नामक वनस्पति, ये सब अनन्तजीवो वाले होते हैं। विशेष यह है कि पद्मिनीकन्द आदि के विस (भिस) और मृणाल में एक जीव होता है। (८) सफ्फाक, सज्जाय, उव्वेहलिया, कूहन और कन्दूका (देशभेद से) अनन्तजीवात्मक होती है। (९) सभी किसलय (कोंपल) ऊगते समय अनन्तकायिक होते हैं। प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चाहे वह प्रत्येकशरीरी हो या साधारण, जब किसलय अवस्था को प्राप्त होता है, तब तीर्थकरो और गणधरो द्वारा उसे अनन्तकायिक कहा गया है। किन्तु वही किसलय बढ़ता बढता, बाद मे पत्र रूप धारण कर लेता है तब साधारणशरीर या अनन्तकाय अथवा प्रत्येकशरीरी जीव हो जाता है।

प्रत्येकशरीर जीव वाली वनस्पति के लक्षण—(१) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प अथवा फल या बीज को तोड़ने पर उसके टूटे हुए (भंग) प्रदेश (स्थान) मे हीर

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ३३

दिखाई दे, अर्थात्—उसके टुकड़े समरूप न हों, विषम हों, दतीले हों उस मूल, कन्द या स्कन्ध को प्रत्येक (शरीरी) जीव समझना चाहिए। (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध या शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकशरीर जीव वाली समझनी चाहिए। (३) पलाण्डुकन्द, लहसुनकन्द, कदलीकन्द और कुस्तुम्ब नामक वनस्पति, ये सब प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझने चाहिये। इस प्रकार की सभी अनन्त जीवात्मकलक्षण से रहित वनस्पतिया प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझनी चाहिए। (४) पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र, इन सब प्रकार के कमलो के वृन्त (डण्ठल), बाह्य पत्र और पत्रों की आधारभूत कर्णिका, ये तीनो एकजीवात्कम हैं। इनके भीतरी पत्ते केसर (जटा) और मिंजा भी एकजीवात्मक हैं। (५) बास, नड नामक घास, इक्षुवाटिका, समासेक्षु, इक्कड घास, करकर, सू ठि, विहगु और दूब आदि तृणो तथा पर्ववाली वनस्पतियो की अक्षि, पर्व, बलिमोटक (पर्व को परिवेष्ठित करने वाला चक्राकार भाग) ये सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्ते भी एक जीवाधिष्ठित होते हैं। किन्तु इनके पुष्प अनेक जीवो वाले होते है। (६) पुष्यफल, कालिग आदि फलो का प्रत्येक पत्ता (पृथक्-पृथक्), वृन्त, गिरि और गूदा और जटावाले या बिना जटा के बीज एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं।[1]

बीज का जीव मूलादि का जीव बन सकता है या नहीं ?—बीज की दो अवस्थाएँ होती है—योनि-अवस्था और अयोनि-अवस्था। जब बीज योनि-अवस्था का परित्याग नही करता किन्तु जीव के द्वारा त्याग दिया जाता है, तब वह बीज योनिभूत कहलाता है। जीव के द्वारा बीज त्याग दिया गया है, छद्मस्थ के द्वारा निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। अत आजकल चेतन या अचेतन, जो अविध्वस्तयोनि है, उसे योनिभूत कहते हैं। जो विध्वस्तयोनि है, वह नियमत अचेतन होने से अयोनिभूत बीज है। ऐसा बीज उगने मे समर्थ नही रहता। तात्पर्य यह है कि योनि कहते है—जीव के उत्पत्तिस्थान को। अविध्वस्तशक्ति-सम्पन्न बीज ही योनिभूत होता है, उसी मे जीव उत्पन्न होता है है। प्रश्न यह है कि ऐसे योनिभूत बीज मे वही पहले के बीज वाला जीव आकर उत्पन्न होता है अथवा दूसरा कोई जीव आकर उत्पन्न होता है ? उत्तर है—दोनो ही विकल्प हो सकते है। तात्पर्य यह कि बीज में जो जीव था, उसने अपनी आयु का क्षय होने पर बीज का परित्याग कर दिया। वह बीज निर्जीव हो गया किन्तु उस बीज को पुन: पानी, काल और जमीन के सयोगरूप सामग्री मिले तो कदाचित् वही पहले वाला बीज मूल आदि का नाम-गोत्र बाध कर उसी पूर्व-बीज में आ कर उत्पन्न हो जाता है, और कभी कोई अन्य पृथ्वीकायिक आदि नया जीव भी उस बीज मे उत्पन्न हो जाता है।[2]

साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकजीवों का लक्षण—साधारण वनस्पतिकायिक जीव एक साथ ही उत्पन्न होते है, एक साथ ही उनका शरीर बनता है, एक साथ ही वे प्राणापान के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करते हैं और एक साथ ही उनका श्वासोच्छ्वास होता है। एक जीव का आहारादि के पुद्गलो को ग्रहण करना ही (उस शरीर के आश्रित) बहुत-से जीवों का ग्रहण करना है, इसी प्रकार बहुत-से जीवो का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण करना भी एक जीव का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. १, पृ. ३०० से ३२५ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३५-३६-३७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ३८

करना है; क्योंकि वे सब जीव एक ही शरीर में आश्रित होते है। एक शरीर में आश्रित साधारण जीवों का आहार, प्राणापानयोग्य पुद्गलग्रहण एवं श्वासोच्छ्वास साधारण ही होता है। यही साधारण जीवों का साधारणरूप लक्षण है। एक निगोदशरीर मे अनन्तजीवों का परिणमन कैसे होता है? इसका समाधान यह है—अग्नि में प्रतप्त लोहे का गोला जैसे सारा-का-सारा अग्निमय बन जाता है, वैसे ही निगोदरूप एकशरीर में अनन्त जीवो का परिणमन समझ लेना चाहिए। एक, दो, तीन, संख्यात या असख्यात निगोदजीवो के शरीर हमे नही दिखाई दे सकते, क्योकि उनके पृथक्-पृथक् शरीर ही नही हैं, वे तो अनन्तजीवों के पिण्डरूप ही होते हैं। अर्थात् अनन्तजीवो का एक ही शरीर होता है। हमें केवल अनन्तजीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं, वे भी बादर निगोदजीवो के ही; सूक्ष्म निगोदजीवो के नही; क्योकि सूक्ष्म निगोदजीवो के शरीर अनन्त जीवात्मक होने पर भी वे अदृश्य (दृष्टि से अगोचर) ही होते हैं। स्वाभाविकरूप से उसी प्रकार के सूक्ष्मपरिणामों से परिणत उनके शरीर होते है। अनन्त निगोदजीवो का एक ही शरीर होता है, इस विषय में वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान् के वचन ही प्रमाणभूत हैं। भगवान् का कथन है—**'सूई की नोंक के बराबर निगोदकाय में असंख्यात गोले होते हैं, एक-एक गोले में असंख्यात-असंख्यात निगोद होते हैं और एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं।'**[1]

अनन्त निगोदिया जीवो का शरीर एक ही होता है, यह कथन औदारिकशरीर की अपेक्षा जानना चाहिए। उन सबके तैजस और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—

५६. [१] से किं तं बेंदिया? बेंदिया (से किं तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा? बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा) अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा णेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जलोउया संखा संखणगा घुल्ला-खुल्ला गुलाया खंधा वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगओवत्ता दुहओवत्ता णंदियावत्ता संबुक्का माईवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा।

[५६-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) द्वीन्द्रिय जीव किस प्रकार के है? [वह द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना क्या है?]

[५६-१ उ.] द्वीन्द्रिय (द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना) अनेक-प्रकार के कहे गए हैं। (अनेक प्रकार की कही गई है।) वह इस प्रकार—पुलाकृमिक, कुक्षिकृमिक, गण्डूयलग, गोलोम, नूपुर, सौमगलक, वशीमुख, सूचीमुख, गौजलोका, जलोका, जलोयुक (जलायुष्क), शख, शंखनक, घुल्ला, खुल्ला, गुडज, स्कन्ध, वराटा (वराटिका=कौडी), सौत्तिक, मौत्तिक (सौत्रिक मूत्रिक), कलुकावास, एकतोवृत्त, द्विधातोवृत्त, नन्दिकावर्त्त, शम्बूक, मातृवाह, शुक्तिसम्पुट, चन्दनक, समुद्र-

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३९-४०

(ख) गोला य असंखेज्जा होंति निओगा असखया गोले।
एक्केको य निगोओ अणंत जीवो मुणेयव्वो॥

लिक्षा । अन्य जितने भी इस प्रकार के है, (उन्हे द्वीन्द्रिय समझना चाहिए ।) ये उपर्युक्त प्रकार के सभी (द्वीन्द्रिय) सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं ।

[२] **ते समासतो दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एएसि णं एवमादियाणं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं सत्त जाइकुलकोडिजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं । से त्तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।**

[५६-२] ये (द्वीन्द्रिय) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियो के सात लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा गया है । यह हुई द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना ।

विवेचन—द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५६) में द्वीन्द्रिय जीवो की विविध जातियो के नामो का उल्लेख है तथा उनके दो प्रकारो एव उनकी जीवयोनियों की सख्या का निरूपण किया गया है ।

कुछ शब्दों के विशेष अर्थ—'पुलाकिमिया'—पुलाकृमिक एक प्रकार के कृमि होते हैं, जो मलद्वार (गुदाद्वार) में उत्पन्न होते है। **कुच्छिकिमिया**—कुक्षिकृमिक एक प्रकार के कृमि, जो उदर-प्रदेश मे उत्पन्न होते हैं। **संखणगा**—शखनक—छोटे शख, शखनी। **चंदणा**—चन्दनक—अक्ष। **गंडूयलगा**—गिंडोला । **संबुक्का**—शम्बूक—घोघा । **घुल्ला**—घोघरी । **खुल्ला**—समुद्री शख के आकार के छोटे शख । **सिप्पसंपुटा**—शुक्तिसपुट—सपुटाकार सीप । **जलोया**—जौक ।[1]

सव्वेते सम्मुच्छिमा—इसी प्रकार के मृतकलेवर मे पैदा होने वाले कृमि, कीट आदि सब द्वीन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम समझने चाहिए। क्योंकि सभी अशुचिस्थानो मे पैदा होने वाले कीडे सम्मूर्च्छिम ही होते है, गर्भज नही । और तत्त्वार्थसूत्र के **'नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि'** इस सूत्रानुसार सभी सम्मूर्च्छिम जीव नपुसक ही होते हैं [2]

जाति, कुलकोटि एवं योनि शब्द की व्याख्या—पूर्वाचार्यों ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—जातिपद से तिर्यञ्चगति समझनी चाहिए । उसके कुल हैं—कृमि, कीट, वृश्चिक आदि । ये कुल योनि-प्रमुख होते हैं, अर्थात्—एक ही योनि मे अनेक कुल होते है । जैसे—एक ही छगण (गोबर या कडे) की योनि मे कृमिकुल, कीटकुल और वृश्चिककुल आदि होते हैं। इसी प्रकार एक ही योनि मे अवान्तर जातिभेद होने से अनेक जातिकुल के योनिप्रवाह होते हैं। द्वीन्द्रियो के सात लाख जातिकुलकोटिरूप योनिया हैं ।[3]

त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना

५७. [१] **से किं तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ? तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पन्नत्ता । तं जहा—ओवइया रोहिणीया कुंथू पिपीलिया उद्दंसगा उद्देहिया उक्कलिया**

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलय वृत्ति, पत्रांक ४१, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. १, पृ. ३४८-३४९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ. २. सू , ५०

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणबिंटिया पत्तबिंटिया पुप्फबिंटिया फलबिंटिया बीयबिंटिया तेवुरणमज्जिया[1] तउसमिंजिया कप्पासट्ठिसमिंजिया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा[2] पाहुया सुभगा सोवच्छिया सुयबिंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरुलुंचगा[3] कोत्थल-वाहगा जूया हालाहला पिसुया सतवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिम-णपुंसगा।

[५७-१ प्र] वह (पूर्वोक्त) त्रीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५७-१ उ.] त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—औपयिक, रोहिणीक, कंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चीटी, कीड़ी), उद्दशक, उद्देहिका (उदई—दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेदुरणमज्जिक (तेवुरणमिंजिक या तम्बुरुण-उमज्जिक), त्रपुषमिंजिक, कार्पासास्थिमिंजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा (झीगुर), किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक (इन्द्रकायिक), इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—बीरबहूटी), उरुलुचक (तुरुतुम्बक), कुस्थलवाहक, यूका (जू), हालाहल, पिशुक (पिस्सू—खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (गोम्मयी), और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के जितने भी अन्य जीव हो, उन्हे त्रीन्द्रिय ससारसमापन्न समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त) सब सम्मूर्च्छिम और नपुसक है।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५७-२] ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) सक्षेप में, दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रियजीवो के सात लाख जाति कुलकोटि-योनिप्रमुख (योनिद्वार) होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई उन त्रीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना।

विवेचन—त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५७) में तीन इन्द्रियो वाले अनेक जाति के जीवो का निरूपण किया गया है।

गोम्ही का अर्थ—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'कर्णसियालिया' किया है। हिन्दी भाषा मे इसे कनसला या कानखजूरा भी कहते हैं।[4]

चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना

५८. [१] से किं तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पाठान्तर—१. तंबूरुणुमज्जिया, तिंबुरणमज्जिया, तेबुरणमिंजिया। २. झिंगिरिडा बाहुया। ३. उरुतुभुग', तुरुतु बगा।

४. प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ४२

अंधिय णेत्तिय[1] मच्छिय मगमिगकीडे[2] तहा पयंगे य ।
ढिंकुण कुक्कुड कुक्कुह णंदावत्ते य सिंगिरिडे ॥११०॥

किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हलिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओभंजलिया जलचारिया गंभीरा णीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा णेउला दोला भमरा भरिली जरुला तोट्टा विच्छुता पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया पियंगाला कणगा गोमयकीडगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । सव्वेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा ।

[५८-१ प्र] वह (पूर्वोक्त) चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५८-१ उ] चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार है–[गाथार्थ] अधिक, नेत्रिक (या पत्रिक), मक्खी, मगमृगकीट (मशक—मच्छर, कीडा अथवा टिड्डी) तथा पतगा, ढिंकुण (ढकुण), कुक्कुड (कुक्कुंट), कुक्कुह, नन्द्यावर्त और शृ गिरिट (शृ गिरट) ॥११०॥

कृष्णपत्र (कृष्णपक्ष), नीलपत्र (नीलपक्ष), लोहितपत्र (लोहितपक्ष), हारिद्रपत्र (हारिद्रपक्ष), शुक्लपत्र (शुक्लपक्ष), चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष, अवभाजलिक (ओहांजलिक), जलचारिक, गम्भीर, नीनिक (नीतिक), नन्तव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारग, नेवल (नूपुर), दोला, भ्रमर, भरिली, जरुला, तोट्ट, बिच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक (गोबर का बिच्छू) जलवृश्चिक, (जल का बिच्छू) प्रियगाल, कनक और गोमयकीट (गोबर का कीडा) । इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्राणी) है, (उन्हे भी चतुरिन्द्रिय समझना चाहिए । ये (पूर्वोक्त) सभी चतुरिन्द्रिय सम्मूर्छिम और नपुंसक हैं ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एतेसि णं एवमाइयाणं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं णव जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं । से त्तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[५८-२] वे दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । इस प्रकार के चतुरिन्द्रिय पर्याप्तको और अपर्याप्तको के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते है, ऐसा (तीर्थकरो ने) कहा है । यह हुई उन चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना ।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५८) मे चतुरिन्द्रिय जीवो के अनेक प्रकारो और उनकी जातिकुलकोटि-योनियो की सख्या का निरूपण किया गया है ।

चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना

५९. से किं तं पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—नेरइयपंचिंदियसंसार-

१. पोत्तिय । २. मसगाकीडे, मणसिरकीडे, मगासकीडे ।

समावण्णजीवपण्णवणा १ तिरिक्खजोणियपंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ मणुस्सपंचेंदिय-संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ३ देवपंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ४ ।

[५९ प्र.] वह पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५९ उ.] पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न जीवो की स्थापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) नैरयिक-पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न जीवप्रज्ञापना, (२) तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) मनुष्य-पचेन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (४) देव-पचेन्द्रिय ससारसमापन्न जीवप्रज्ञापना।

विवेचन—पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५९) में नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चतुर्विध पचेन्द्रिय ससारसमापन्न जीवों का निरूपण किया गया है।

नैरयिकजीवों की प्रज्ञापना

६०. से किं तं नेरइया ?

नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता। तं जहा—रयणप्पभापुढविनेरइया १ सक्करप्पभापुढविनेरइया २ वालुयप्पभापुढविनेरइया ३ पंकप्पभापुढविनेरइया ४ धूमप्पभापुढविनेरइया ५ तमप्पभापुढविनेरइया ६ तमतमप्पभापुढविनेरइया ७ ।

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं नेरइया।

[६० प्र] वे (पूर्वोक्त) नैरयिक किस (कितने) प्रकार के है ?

[६० उ.] नैरयिक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (२) शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरयिक (३) वालुकाप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (४) पकप्रभापृथ्वी-नैरयिक (५) धूमप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (६) तम प्रभापृथ्वी-नैरयिक और (७) तमस्तम प्रभापृथ्वी-नैरयिक। वे (उपर्युक्त सातो प्रकार के नैरयिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह नैरयिको की प्ररूपणा हुई।

विवेचन—नैरयिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ६०) मे नैरयिक और उसके सात प्रकारो की प्ररूपणा की गई है।

'नैरयिक' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—निर्+अय का अर्थ है— जिससे अय अर्थात् इष्टफल देने वाला (शुभ कर्म) निर् अर्थात् निर्गत हो गया हो—निकल गया हो, जहा इष्टफल की प्राप्ति न होती हो, वह निरय अर्थात् नारकावास है। निरय मे उत्पन्न होने वाले जीव नैरयिक कहलाते है। ये नैरयिक (नारक) जीव ससारसमापन्न अर्थात्—जन्ममरण को प्राप्त हैं तथा पाँचो इन्द्रियो से युक्त होते हैं, अतएव पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न कहलाते है।[1]

समग्र पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की प्रज्ञापना

६१. से किं तं पंचिदियतिरिक्खजोणिया ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ४३

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया १ थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया २ खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ३।

[६१ प्र.] वे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं।

[६१ उ.] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—(१) जलचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, (२) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और (३) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

६२. से किं तं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया?

जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—मच्छा १ कच्छभा २ गाहा ३ मगरा ४ सुंसुमारा ५।

[६२ प्र] वे जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कैसे है?

[६२ उ] जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (कछुए), (३) ग्राह, (४) मगर और (५) सुसुमार।

६३. से किं तं मच्छा?

मच्छा अणेगविहा पण्णता। त जहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा।[1] जुगमच्छा विज्झिडियमच्छा हलिमच्छा मग्गरिमच्छा रोहियमच्छा हलीसागरा गागरा वडा वडगरा।[2] तिमी तिमिंगिला णक्का तंदुलमच्छा कणिक्कामच्छा सालिसत्थियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागातिपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं मच्छा।

[६३ प्र] वे (पूर्वोक्त) मत्स्य कितने प्रकार के है?

[६३ उ] मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार— श्लक्ष्णमत्स्य, खवल्लमत्स्य, युगमत्स्य (जुंगमत्स्य), विज्झिडिय (विज्झडिय) मत्स्य, हलिमत्स्य, मकरीमत्स्य, रोहितमत्स्य, हलीसागर, गागर, वट, वटकर, (तथा गर्भज उसगार), तिमि, तिमिंगल, नक्र, तन्दुलमत्स्य, कणिक्कामत्स्य, शालिशस्त्रिक मत्स्य, लभनमत्स्य, पताका और पताकातिपताका। इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हैं, वे सब मत्स्यो के अन्तर्गत समझने चाहिए। यह मत्स्यो की प्ररूपणा हुई।

६४. से किं कच्छभा?

कच्छभा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—अट्ठिकच्छभा य मंसकच्छभा य। से त्तं कच्छभा।

[६४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) कच्छप किस प्रकार के हैं?

[६४ उ] कच्छप दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—अस्थिकच्छप (जिनके शरीर में हड्डिया अधिक हो, वे) और मासकच्छप (जिनके शरीर मे मास की बहुलता हो, वे)। इस प्रकार कच्छप की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

पाठान्तर—जुंगमच्छा। २. 'गब्भया उसगारा' यह अधिक पाठ है।

६५. से किं तं गाहा ?

गाहा पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—दिली १ वेढला[1] २ मुद्धया ३ पुलगा ४ सीमागारा ५। से त्तं गाहा।

[६५ प्र] वे (पूर्वोक्त) ग्राह कितने प्रकार के हैं ?

[६५ उ.] ग्राह (घड़ियाल) पाच प्रकार के होते है ? वे इस प्रकार हैं—(१) दिली, (२) वेढल या (वेटक), (३) मूर्धज, (४) पुलक और (५) सीमाकार। यह हुई ग्राह की वक्तव्यता।

६६. से किं तं मगरा ?

मगरा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य। से त्तं मगरा।

[६६ प्र] वे मगर किस प्रकार के होते हैं ?

[६७ उ] मगर (मगरमच्छ) दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—शौण्डमकर और मृष्टमकर। यह हुई (पूर्वोक्त) मकर की प्ररूपणा।

६७. से किं तं सुंसुमारा ?

सुंसुमारा एगागारा पण्णत्ता। से त्तं सुंसुमारा। जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[६७ प्र.] वे सुसुमार (शिशुमार) किस प्रकार के हैं ?

[६७ उ.] सुसुमार (शिशुमार) एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। यह हुआ (पूर्वोक्त) सुसुमार का निरूपण। अन्य जो इस प्रकार के हो।

६८. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[६८-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के जलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) सक्षेप मे दो प्रकार के है। यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक)।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[६८-२] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम है, वे सब नपुसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[६४-१] इनमे से जो गर्भज है, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं—स्त्री, पुरुष और नपुसक।

[४] एतेसि णं एवमाइयाणं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं अद्धतेरस जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[६८-४] इस प्रकार (मत्स्य) इत्यादि इन (पाचो प्रकार के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक

पाठान्तर—१. वेढगा।

जलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के साढ़े बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई जलचर पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको की प्ररूपणा।

६९. से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[६९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[६९ उ] स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७०. से किं तं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—एगखुरा १ दुखुरा २ गंडीपदा ३ सणप्फदा ४।

[७९ प्र] वे (पूर्वोक्त) चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७० उ.] चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—१ एकखुरा (एक खुर वाले), २ द्विखुरा (दो खुर वाले), ३ गण्डीपद (सुनार की एरण जैसे पैर वाले) और ४ सनखपद (नखसहित पैरो वाले)।

७१. से किं तं एगखुरा ?

एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—अस्सा अस्सतरा घोडगा गद्दभा गोरक्खरा कदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं एगखुरा।

[७१ प्र] वे एकखुरा किस प्रकार के हैं ?

[७१ उ] एकखुरा अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है, जैसे कि—अश्व, अश्वतर, (खच्चर), घोटक (घोडा), गधा (गर्दभ), गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्त (आवर्त्तक) इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी है, (उन्हे एकखुर-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्च के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ एकखुरो का प्ररूपण।

७२. से किं तं एकखुरा ?

दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—उट्टा गोणा गवया रोज्झा पसुया महिसा मिया संवरा वराहा अय-एलग-रुरु-सरभ-चमर-कुरंग-गोकण्णमादी। से तं दुखुरा।

[७२ प्र-] वे द्विखुर किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[७२ उ] द्विखुर (दो खुर वाले) अनेक प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—उष्ट्र (ऊँट), गाय (गौ और वृषभ आदि), गवय (नील गाय), रोज, पशुक, महिष (भैंस-भैसा), मृग, सांभर, वराह (सूअर), अज (बकरा-बकरी), एलक (बकरा या भेडा), रुरु, सरभ, चमर (चमरी गाय), कुरग, गोकर्ण आदि। यह दो खुर वालो की प्ररूपणा हुई।

७३. से किं तं गंडीपया ?

गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—हत्थी हत्थी-पूयणया मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं गंडीपया ।

[७३ प्र] वे (पूर्वोक्त) गण्डीपद किस प्रकार के हैं ?

[७३ उ] गण्डीपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—हाथी, हस्तिपूतनक, मत्कुण-हस्ती, (बिना दांतों का छोटे कद का हाथी), खड्गी और गडा (गेंडा) इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हो, उन्हे गण्डीपद मे जान लेना चाहिए । यह हुई गण्डीपद जीवो की प्ररूपणा ।

७४. से किं तं सणप्फदा ?

सणप्फदा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सियाला बिडाला सुणगा कोलसुणगा[1] कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा से त्तं सणप्फदा ।

[७४ प्र] वे सनखपद किस प्रकार के है ?

[७४ उ] सनखपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—सिह, व्याघ्र, द्वीपिक (दीपडा), रीछ (भालू), तरक्ष, पाराशर, शृगाल (सियार), विडाल (बिल्ली), श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक (लोमडी), शशक (खरगोश), चीता और चित्तलग (चिल्लक) । इसी प्रकार के अन्य जो भी प्राणी है, वे सब सनखपदो के अन्तर्गत समझने चाहिए । यह हुआ पूर्वोक्त सनखपदो का निरूपण ।

७५. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[७५-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के चतुष्पद-स्थलचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है, यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा ।

[७५-२] उनमे जो सम्मूर्च्छिम है, वे सब नपुसक हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ णपुंसगा ३ ।

[७५-३] उनमें जो गर्भज है, वे तीन प्रकार के कहे गए है । यथा—१. स्त्री, २ पुरुष और ३ नपुसक ।

[४] एतेसि णं एवमादियाणं (चउप्पय) थलयरपंचिदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्ज-त्ताणं दस जाईकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा हवंतीति मक्खातं । से त्तं चउप्पयथलयरपचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ।

[७५-४] इस प्रकार (एकखुर) इत्यादि इन स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के पर्याप्तक-

१. [ग्रन्थाग्रम् ५००]

अपर्याप्तको के दस लाख जाति-कुल-कोटि-योनिप्रमुख होते है, ऐसा कहा है। यह हुआ चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको का निरूपण।

७६ से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[७६ प्र] वे (पूर्वोक्त) परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७६ उ.] परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक एव भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७७. से किं तं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—अही १ अयगरा २ आसालिया ३ महोरगा ४।

[७७ प्र] उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७७ उ.] उर:परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—१ अहि (सर्प), २ अजगर, ३ आसालिक और ४ महोरग।

७८. से किं तं अही ?

अही दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—दव्वीकरा य मउलिणो य।

[७८ प्र.] वे अहि किस प्रकार के होते हैं ?

[७८ उ] अहि दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—दर्वीकर (फन वाले), और मुकुली (बिना फन वाले)।

७९. से किं तं दव्वीकरा ?

दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा उस्सासविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेदसप्पा काओदरा दज्झपुप्फा कोलाहा मेलिमिंदा, सेसिंदा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं दव्वीकरा।

[७९ प्र] वे दर्वीकर सर्प किस प्रकार के होते हैं ?

[७९ उ] दर्वीकर (फन वाले) सर्प अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—आशीविष (दाढो में विष वाले), दृष्टिविश (दृष्टि में विष वाले), उग्रविष (तीव्र विष वाले), भोगविष (फन या शरीर मे विष वाले), त्वचाविष (चमडी में विष वाले), लालाविष (लार में विष वाले), उच्छ्वास-विष (श्वास लेने में विष वाले), नि श्वासविष (श्वास छोडने में विष वाले), कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प (दर्भपुष्प), कोलाह, मेलिभिन्द और शेषेन्द्र। इसी प्रकार के और भी जितने सर्प हो, वे सब दर्वीकर के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुई दर्वीकर सर्प की प्ररूपणा।

८०. से किं तं मउलिणो ?

मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—दिव्वागा गोणसा कसाहिया वइउला चित्तलिणो मंडलिणो मालिणो अही अहिसलागा वायपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं मउलिणो । से त्तं अही ।

[८० प्र] वे (पूर्वोक्त) मुकुली (बिना फन वाले) सर्प कैसे होते हैं ?

[८० उ] मुकुली सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं । जैसे कि—दिव्याक, गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मण्डली, माली, अहि, अहिशलाका और वातपताका (वासपताका) । अन्य जितने भी इसी प्रकार के सर्प हैं, (वे सब मुकुली सर्प की जाति के समझने चाहिए) । यह हुआ मुकुली (सर्पों का वर्णन) (साथ ही), अहि सर्पों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई) ।

८१. से किं तं अयगरा ?

अयगरा एगागारा पण्णत्ता । से त्तं अयगरा ।

[८१ प्र] वे (पूर्वोक्त) अजगर किस प्रकार के होते हैं ?

[८१ उ] अजगर एक ही आकार-प्रकार के कहे गए है । यह अजगर की प्ररूपणा हुई ।

८२. से किं त आसालिया ? कहि णं भंते ! आसालिया सम्मुच्छति ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु, निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघातं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु, चक्कवट्टिखंधावारेसु वा वासुदेवखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामंडलियखंधावारेसु वा गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु निगमणिवेसेसु खेडनिवेसेसु कब्बडनिवेसेसु मडंबनिवेसेसु वा दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु संवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एतेसि णं चेव विणासेसु एत्थ णं आसालिया सम्मुच्छति, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोयणाइं, तयणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ताणं समुट्ठेति अस्सण्णी मिच्छद्दिट्ठी अण्णाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ । से त्तं आसालिया ।

[८२ प्र] आसालिक किस प्रकार के होते हैं ? भगवन् ! आसालिग (आसालिक) कहाँ सम्मूच्छित (उत्पन्न) होते हैं ?

[८२ उ] गौतम ! वे (आसालिक उर:परिसर्प) मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीपो मे, निर्व्याघातरूप से (बिना व्याघात के) पन्द्रह कर्मभूमियो में, व्याघात की अपेक्षा से पाच महाविदेह क्षेत्रो में, अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारो (सैनिकशिविरो-छावनियो) मे, या वासुदेवो के स्कन्धावारो में, बलदेवों के स्कन्धावारो मे, माण्डलिको (अल्पवैभव वाले छोटे राजाओ) के स्कन्धावारों मे, महामाण्डलिको (अन्य देशों के अधिपति नरेशों) के स्कन्धावारो मे, ग्रामनिवेशो में, नगरनिवेशो मे, निगम (वणिक्-निवास)-निवेशो में, खेटनिवेशो में, कर्बटनिवेशों में, मडम्बनिवेशो में, द्रोणमुखनिवेशों में, पट्टणनिवेशो में, आकरनिवेशों में, आश्रमनिवेशो में, सम्बाधनिवेशों मे और राजधानीनिवेशो में । इन (चक्रवर्ती स्कन्धावार आदि स्थानों) का विनाश होने वाला हो तब इन (पूर्वोक्त

स्थानो मे आसालिक सम्मूर्च्छिमरूप से उत्पन्न होते है। वे (आसालिक) जघन्य अगुल के असंख्यातवें भाग-मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना से (उत्पन्न होते हैं।) उस (अवगाहना) के अनुरूप ही उसका विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है। वह (आसालिक) चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फाड (विदारण) कर प्रादुर्भूत (समुत्थित) होता है। वह असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है, तथा अन्तर्मुहूर्तकाल की आयु भोग कर मर (काल कर) जाता है। यह हुई उक्त आसालिक की प्ररूपणा।

८३. से किं तं महोरगा ?

महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—अत्थेगइया अंगुलं पि अंगुलपुहत्तिया वि वियत्थिं पि वियत्थिपुहत्तिया वि रयणिं पि रयणिपुहत्तिया वि कुच्छिं पि कुच्छिपुहत्तिया वि धणुं पि धणुपुहत्तिया वि गाउयं पि गाउयपुहत्तिया वि जोयणं पि जोयणपुहत्तिया वि जोयणसतं पि जोयणसतपुहत्तिया वि जोयणसहस्सं पि। ते णं थले जाता जले वि चरंति थले वि चरंति। ते णत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु हवंति, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं महोरगा।

[८३ प्र] महोरग किस प्रकार के होते है ?

[८३ उ] महोरग अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—कई महोरग एक अगुल के भी होते है, कई अगुलपृथक्त्व (दो अगुल मे नौ अगुल तक) के, कई वितस्ति (बीता—बारह अगुल) के भी होते हैं, कई वितस्तिपृथक्त्व (दो से नौ वितस्ति) के, कई एक रत्नि (हाथ) भर के, कई रत्निपृथक्त्व (दो हाथ से नौ हाथ तक) के भी, कई कुक्षिप्रमाण (दो हाथ के) होते है, कई कुक्षिपृथक्त्व (दो कुक्षि से नौ कुक्षि तक) के भी, कई धनुष (चार हाथ) प्रमाण भी, कई धनुषपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) के भी, कई गव्यूति-(गाऊ—दो कोस दो हजारधनुष) प्रमाण भी, कई गव्यूति-पृथक्त्व के भी, कई योजनप्रमाण (चार गाऊ भर) भी, कई योजन पृथक्त्व के भी कई सौ योजन के भी, कई योजनशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ योजन तक) के भी और कई हजार योजन के भी होते है। वे स्थल मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु जल में विचरण (सचरण) करते हैं, स्थल मे भी विचरते है। वे यहाँ नही होते, किन्तु मनुष्यक्षेत्र के बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते हैं। इसी प्रकार के अन्य जो भी उर परिसर्प हो, उन्हे भी महोरगजाति के समझने चाहिए। यह हुई उन (पूर्वोक्त) महोरगो की प्ररूपणा।

८४. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[८४-१] वे (चारो प्रकार के पूर्वोक्त उर परिसर्प स्थलचर) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

[८४-२] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपु सक होते है।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[८४-३] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए है। १. स्त्री, २ पुरुष और ३ नपु सक।

[४] एएसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं उरपरिसप्पाणं दस जाइकुलकोडीजोणिप्पमुहसतसहस्सा हवंतीति मक्खातं । से त्तं उरपरिसप्पा ।

[८४-४] इस प्रकार (अहि) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक उर:परिसर्पों के दस लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है ।

यह उर:परिसर्पों की प्ररूपणा हुई ।

८५. [१] से किं तं भुयपरिसप्पा ?

भुयपरिसप्पा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—णउला गोहा सरडा सल्ला सरंठा सारा खारा घरोइला विस्संभरा मूसा मंगूसा पयलाइया छीरविरालिया; जहा चउप्पाइया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[८५-१प्र] भुजपरिसर्प किस प्रकार के हैं ?

[८५-१ उ] भुजपरिसर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—नकुल (नेवले), गोह, सरट (गिरगिट), शल्य, सरठ (सरठ), सार, खार (खोर), गृहकोकिला (घरोली—छिपकली), विषम्भरा (विसभरा), मूषक (चूहे), मगुसा (गिलहरी), पयोलातिक, क्षीरविडालिका, जैसे चतुष्पद (चौपाये) स्थलचर (का कथन किया, वैसे ही इनका समझना चाहिए) । इसी प्रकार के अन्य जितने भी (भुजा से चलने वाले प्राणी हो, उन्हे भुजपरिसर्प समझना चाहिए) ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[८५-२] वे (नकुल आदि पूर्वोक्त भुजपरिसर्प) सक्षेप में दो प्रकार के होते है । जैसे कि—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[३] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा ।

[८५-३] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपु सक होते है ।

[४] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३ ।

[८५-४] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं । (१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुस क ।

[५] एतेसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं भुयपरिसप्पाणं णव जाइकुलकोडिजोणीपमुहसतसहस्सा हवंतीति मक्खायं । से त्तं भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया । से त्तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[८५-५] इस प्रकार (नकुल) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक भुजपरिसर्पों के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है ।

यह हुआ पूर्वोक्त भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (का वर्णन ।) (साथ ही) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई) ।

८६. से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—चम्मपक्खी १ लोमपक्खी समुग्गपक्खी ३ वियतपक्खी ४ ।

[८६ प्र] वे (पूर्वोक्त) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस-किस प्रकार के है ।

[८६ उ] खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) चर्मपक्षी (जिनकी पाखे चमडे की हो), (२) लोम (रोम) पक्षी (जिनकी पाखे रोंएदार हो), (३) समुद्गकपक्षी (जिनको पाखें उड़ते समय भी समुद्गक (डिब्बे या पेटी) जैसी रहे), और (४) विततपक्षी (जिनके पख फैले हुए रहें, सिकुडे नही) ।

८७. से किं तं चम्मपक्खी ?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—वग्गुली जलोया अडिला भारंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिबिराली, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं चम्मपक्खी ।

[८७ प्र] वे (पूर्वोक्त चर्मपक्षी खेचर किस प्रकार के है ?

[८७ उ] चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—वल्गुली (चमगीदड - -चमचेड), जलौका, अडिल्ल, भारण्डपक्षी, जीवजीव (चक्रवाक-चकवे), समुद्रवायस (समुद्री कौए), कर्णत्रिक और पक्षिविडाली । अन्य जो भी इस प्रकार के पक्षी हो, (उन्हे चर्मपक्षी समझना चाहिए) । यह हुई चर्म-पक्षियो (की प्ररूपणा) ।

८८. से किं तं लोमपक्खी ?

लोमपक्खी अणेगविहा पन्नत्ता । तं जहा—ढंका कंका कुरला वायसा चक्कागा हंसा कलहंसा पायहंसा रायहंसा अडा सेडी बगा बलागा पारिप्पवा कोंचा सारसा मेसरा मसूरा मयूरा सतवच्छा गहरा पोंडरीया कागा कामंजुगा वंजुलगा तित्तिरा वट्टगा लावगा कवोया कविंजला पारेवया चिडगा चासा कुक्कुडा सुगा बरहिणा मदणसलागा कोइला सेहा वरेल्लगमादी । से त्तं लोमपक्खी ।

[८८ प्र.] वे (पूर्वोक्त) रोमपक्षी किस प्रकार के हैं ।

[८८ उ.] रोमपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—ढक, कक, कुरल, वायस (कौए), चक्रवाक (चकवा), हंस, कलहस, राजहस (लाल चोच एव पख वाले हस), पादहस, आड (अड), सेडी, बक (बगुले), बकाका (बकपक्ति), पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर (मोर), शतवत्स (सप्तहस्त), गहर, पौण्डरीक, काक, कामजुक (कामेज्जुक), वजुलक, तित्तिर (तीतर), वर्त्तक (बतक), लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत (कबूतर), चिटक, चास, कुक्कुट (मुर्गे), शुक (सुग्गे-तोते), बर्ही (मोर विशेष), मदनशलाका (मैना), कोकिल (कोयल), सेह और वरिल्लक आदि । यह है (उक्त) रोमपक्षियो (का वर्णन) ।

८९. से किं तं समुग्गपक्खी ?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता । ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति । से त्तं समुग्गपक्खी ।

[८९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) समुद्गपक्षी कौन-से हैं ?

[८९ उ.] समुद्गपक्षी एक ही आकार-प्रकार के कहे गए है। वे यहा (मनुष्यक्षेत्र में) नही होते। वे (मनुष्यक्षेत्र से) बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते है। यह समुद्गपक्षियो की प्ररूपणा हुई।

९०. से किं तं विततपक्खी ?

विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता। ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति। से त्तं विततपक्खी।

[९०-प्र.] वे (पूर्वोक्त) विततपक्षी कैसे हैं ?

[९०-उ] विततपक्षी एक ही आकार-प्रकार के होते हैं। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र मे) नही होते (मनुष्यक्षेत्र से) बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते हैं। यह विततपक्षियो की प्ररूपणा हुई।

९१ [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—समुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[९१-१] ये (पूर्वोक्त चारो प्रकार के खेचरपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[९१-२] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[९१-३] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुसक।

[४] एएसि णं एवमाइयाणं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं बारस जातीकुलकोडीजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

सत्तट्ठ जातिकुलकोडिलक्ख नव अद्धतेरसाइं च।
दस दस य होंति णवगा तह बारस चेव बोद्धव्वा ॥१११॥

से त्तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं तिरिक्खजोणिया।

[९१-४] इस प्रकार चर्मपक्षी इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च योनिको के बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

[सग्रहणी गाथार्थ—] (द्वीन्द्रियजीवो को) सात लाख जातिकुलकोटि, (त्रीन्द्रियो की) आठ लाख, (चतुरिन्द्रियो की) नौ लाख, (जलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की) साढे बारह लाख, (चतुष्पद-स्थलचर पचेन्द्रियो की) दस लाख, (उरःपरिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रियों की) दस लाख, (भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रियो की) नौ लाख तथा (खेचर-पचेन्द्रियो की) बारह लाख, (यो द्वीन्द्रिय से लेकर खेचर पंचेन्द्रिय तक की क्रमशः) समझनी चाहिए ॥१११॥

यह खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको की प्ररूपणा हुई। इस समाप्ति के साथ ही पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की प्ररूपणा भी समाप्त हुई और इसके साथ ही समस्त तिर्यञ्चपचेन्द्रियों की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई।

विवेचन—पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इकतीस सूत्रो (सू ६१ से ९१ तक) मे शास्त्रकार ने पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के जलचर आदि तीनो प्रकारों के भेद-प्रभेदो तथा उनकी विभिन्न जातियो एव जातिकुलकोटियो की सख्या का विशद निरूपण किया है।

गर्भज और सम्मूर्छिम की व्याख्या—जो जीव गर्भ मे उत्पन्न होते हैं, वे माता-पिता के सयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भव्युत्क्रान्तिक या **गर्भज** कहलाते हैं। जो जीव माता-पिता के सयोग के बिना ही, गर्भ या उपपात के बिना, इधर-उधर के अनुकूल पुद्गलो के इकट्ठे हो जाने से उत्पन्न होते है, वे **सम्मूर्च्छिम** कहलाते है। सम्मूर्च्छिम सब नपु सक ही होते है, किन्तु गर्भजो मे स्त्री, पुरुष और नपु सक, ये तीनो प्रकार होते हैं।[1]

तिर्यञ्चयोनिक शब्द का निर्वचन—जो 'तिर्' अर्थात् कुटिल—टेढे-मेढे या वक्र, 'अञ्चन' अर्थात् गमन करते हैं, उन्हे **तिर्यञ्च** कहते हैं। उनकी योनि अर्थात्—उत्पत्तिस्थान को **'तिर्यग्योनि'** कहते है। तिर्यग्योनि मे जन्मने—उत्पन्न होने वाले **तैर्यग्योनिक हैं**।[2]

'उरःपरिसर्प' और 'भुजपरिसर्प का अर्थ—जो अपनी छाती (उर) से रेंग (परिसर्पण) करके चलते हैं, वे सर्प आदि स्थलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय **'उरःपरिसर्प'** कहलाते है और जो अपनी भुजाओ के सहारे चलते है, ऐसे नेवले, गोह आदि स्थलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय प्राणी **'भुजपरिसर्प'** कहलाते है।[3]

'आसालिका' (उरःपरिसर्प) की व्याख्या—'आसालिया' शब्द के सस्कृत मे दो रूपान्तर होते हैं—आसालिका और आसालिगा। आसालिका या आसालिक किसे कहते है, वे किस-किस प्रकार के होते है और कहाँ उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्नो के उत्तर मे प्रज्ञापना सूत्रकार श्री श्यामार्य वाचक ने अन्य ग्रन्थ मे भगवान् द्वारा गौतम के प्रति प्ररूपित कथन को यहाँ उद्धृत किया है।

'आसालिया कहिं संमुच्छइ ?' इस वाक्य मे प्रयुक्त 'समुच्छइ' क्रियापद से स्पष्ट सूचित होता है कि 'आसालिका' या 'आसालिक' गर्भज नही, किन्तु सम्मूर्छिम है।

आसालिका की उत्पत्ति मनुष्यक्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीपो मे होती है; वस्तुत मनुष्यक्षेत्र, अढाई द्वीप को ही कहते हैं, किन्तु यहाँ जो अढाई द्वीप मे इनकी उत्पत्ति बताई है, वह यह सूचित करने के लिए है कि आसालिका की उत्पत्ति अढाई द्वीपो मे ही होती है, लवणसमुद्र मे या कालोदधि समुद्र मे नही। किसी प्रकार के व्याघात के अभाव मे वह १५ कर्मभूमियो मे उत्पन्न होता है, इसका रहस्य यह है कि अगर ५ भरत एव ५ ऐरवत क्षेत्रो मे व्याघातहेतुक सुषम-सुषम आदि रूप या दु षम-दु षम आदिरूप काल व्याघातकारक न हो, तो १५ कर्मभूमियो मे आसालिका की उत्पत्ति होती है। यदि ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र मे पूर्वोक्त रूप का कोई व्याघात हो तो फिर वहा वह उत्पन्न नही होता। ऐसी (व्याघातकारक) स्थिति मे वह पांच महाविदेहक्षेत्रों मे उत्पन्न होता है। इससे यह भी

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४४

२. वही, मलय वृत्ति, पत्रांक ४३

३. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४६

ध्वनित हो जाता है कि तीस अकर्मभूमियो मे आसालिका की उत्पत्ति नही होती तथा १५ कर्मभूमियो एव महाविदेहों मे भी इसकी सर्वत्र उत्पत्ति नही होती, किन्तु चक्रवर्ती, बलदेव आदि के स्कन्धावारो (सैनिक छावनियो) में वह उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त ग्राम-निवेश से लेकर राजधानी-निवेश तक मे से किसी मे भी इसकी उत्पत्ति होती है; और वह भी जब चक्रवर्ती आदि के स्कन्धावारो या ग्रामादि-निवेशो का विनाश होने वाला हो। स्कन्धावारो या निवेशो के विनाशकाल मे उनके नीचे की भूमि को फाड़कर उसमे से यह आसालिका निकलती है। यही आसालिका की उत्पत्ति की प्ररूपणा है। आसालिका की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट बारह योजन की होती है। उसका विस्तार और मोटाई अवगाहना के अनुरूप होती है। आसालिका असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है। इसकी आयु सिर्फ अन्तर्मुहूर्त भर की होती है।[1]

महोरगो का स्वरूप और स्थान—महोरग एक अगुल की अवगाहना से लेकर एक हजार योजन तक की अवगाहना वाले होते है। ये स्थल मे उत्पन्न होकर भी जल मे भी सचार करते है, स्थल मे भी, क्योकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। महोरग इस मनुष्यक्षेत्र मे नही होते, किन्तु इसस बाहर के द्वीपो और समुद्रो मे, तथा समुद्रो मे भी पर्वत, देवनगरी आदि स्थलो मे उत्पन्न होते है। अत्यन्त स्थूल होने के कारण ये जल में उत्पन्न नही होते। इसी कारण ये मनुष्यक्षेत्र मे नही दिखाई देते। मूलपाठ मे उक्त लक्षण वाले दस अगुल आदि की अवगाहना वाले जो उर.परिसर्प हों, उन्हे महोरग समझना चाहिए।[2]

'दर्वीकर' और 'मुकुली' शब्दों का अर्थ—दर्वी कहते हैं--कुडछी या चाटु को, उसकी तरह दर्वी या फणा करने वाला **दर्वीकर** है। **मुकुली** अर्थात्—फन उठाने की शक्ति से विकल, जो बिना फन का हो।[3]

ग्राम आदि के विशेष अर्थ--**ग्राम**—बाड़ से घिरी हुई बस्ती। **नगर**—जहां अठारह प्रकार के कर न लगते हो। **निगम**--बहुत से वणिक्जनो के निवास वाली बस्ती। **खेट**—खेड़ा, धूल के परकोटे से घिरी हुई बस्ती। **कर्बट**--छोटे से प्राकार से वेष्टित बस्ती। **मडम्ब**— जिसके आसपास ढाई कोस तक दूसरी बस्ती न हो। **द्रोणमुख**—जिसमे प्राय: जलमार्ग से ही आवागमन हो या बन्दरगाह। **पट्टण**—जहां घोडा, गाडी या नौका से पहुचा जाए अथवा व्यापार की मडी, व्यापारिक केन्द्र। **आकर**—स्वर्णादि की खान। **आश्रम**--तापसजनो का निवासस्थान। **सबाध**—धान्यसुरक्षा के लिए कृषको द्वारा निर्मित दुर्गम भूमिगत स्थान या यात्रिको के पड़ाव का स्थान। **राजधानी**—राज्य का शासक जहाँ रहता हो।[4]

समग्र मनुष्य जीवों की प्रज्ञापना

९२. से किं तं मणुस्सा ?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक ४७-४८

२. वही मलय वृत्ति, पत्राक ४८

३. वही मलय. वृत्ति पत्राक ४७

४. वही मलय वृत्ति, पत्राक ४७-४८

[९२ प्र] मनुष्य किस (कितने) प्रकार के होते हैं ?

[९२ उ] मनुष्य दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य ।

९३. से किं तं सम्मुच्छिममणुस्सा ? कहि ण भंते ! सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुछंति ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणुतालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अतरदीवएसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा १ पासवणेसु वा २ खेलेसु वा ३ सिंघाणेसु वा ४ वंतेसु वा ५ पित्तेसु वा ६ पूएसु वा ७ सोणिएसु वा ८ सुक्केसु वा ९ सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा १० विगतजीवकलेवरेसु वा ११ थी-पुरिससंजोएसु वा १२ [गोयणिद्धमणेसु वा १३]' णगरणिद्धमणेसु वा १४ सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु, एत्थ णं सम्मुच्छिम-मणुस्सा सम्मुछंति । अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असण्णी मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति । से त्त सम्मुच्छिममणुस्सा ।

[९३ प्र.] सम्मूर्च्छिम मनुष्य कैसे होते है ? भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[९३ उ] गौतम! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर, पैतालीस लाख योजन विस्तृत द्वीप-समुद्रो मे, पन्द्रह कर्मभूमियो मे, तीस अकर्मभूमियो मे एव छप्पन अन्तर्द्वीपो मे गर्भज मनुष्यो के- -(१) उच्चारो (विष्ठाओ--मलो) मे (२) पेशाबो (मूत्रो) मे,(३) कफो मे,(४) सिंघाण—नाक के मैलो (लीट) मे, (५) वमनो मे, (६) पित्तो में, (७) मवादो मे, (८) रक्तो मे, (९) शुक्रो--वीर्यों मे, (१०)पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलो को गीला करने मे, (११) मरे हुए जीवो के कलेवरो (लाशो) मे, (१२) स्त्री-पुरुष के सयोगो मे या (१३) ग्राम की गटरो या मोरिया मे अथवा (१४) नगर की गटरो—मोरियो मे, अथवा सभी अशुचि (अपवित्र—गदे) स्थानो मे—इन सभी स्थानो मे सम्मूर्च्छिम मनुष्य (माता-पिता के सयोग के बिना स्वत) उत्पन्न होते है । इन सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग मात्र की होती है । ये असज्ञी मिथ्यादृष्टि एव सभी पर्याप्तियो से अपर्याप्त होते है । ये अन्त-र्मुहूर्त्त की आयु भोग कर मर जाते है । यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की प्ररूपणा हुई ।

९४ से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा ?

गब्भवक्कंतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—कम्मभूमगा १ अकम्मभूमगा २ अंतर-दीवगा ३ ।

[९४ प्र.] गर्भज मनुष्य किस प्रकार प्रकार के होते हैं ?

[९४ उ] गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—१ कर्मभूमिक, ९ अकर्म-भूमिक और ३. अन्तरद्वीपक ।

९५. से किं तं अंतरदीवगा ?

अंतरदीवया अट्ठावीसतिविहा पण्णत्ता । तं जहा—एगोरुया १ आभासिया २ वेसाणिया ३

१. "गामणिद्धमणेसु वा १२" पाठ मलयगिरि नन्दी टीका के उद्धरण मे है ।

णंगोलिया ४ हयकण्णा ५ गयकण्णा ६ गोकण्णा ७ सक्कुलिकण्णा ८ आयंसमुहा ९ मेंढमुहा १० अयोमुहा ११ गोमुहा १२ आसमुहा १३ हत्थिमुहा १४ सीहमुहा १५ वग्घमुहा १६ आसकण्णा १७ सीहकण्णा १८ अकण्णा १९ कण्णपाउरण्णा २० उक्कामुहा २१ मेहमुहा २२ विज्जुमुहा २३ विज्जुदंता २४ घणदंता २५ लट्ठदंता २६ गूढदंता २७ सुद्धदंता २८। से त्तं अंतरदीवगा।

[९५ प्र] अन्तरद्वीपक किस प्रकार के होते हैं ?

[९५ उ.] अन्तरद्वीपक अट्ठाईस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) एकोरुक, (२) आभासिक, (३) वैषाणिक, (४) नागोलिक, (५) हयकर्ण, (६) गजकर्ण, (७) गोकर्ण, (८) शष्कुलिकर्ण, (९) आदर्शमुख, (१०) मेण्ढमुख, (११) अयोमुख, (१२) गोमुख, (१३) अश्वमुख, (१४) हस्तिमुख, (१५) सिंहमुख, (१६) व्याघ्रमुख, (१७) अश्वकर्ण, (१८) सिंहकर्ण (हरिकर्ण), (१९) अकर्ण, (२०) कर्णप्रावरण, (२१) उल्कामुख, (२२) मेघमुख, (२३) विद्युन्मुख, (२४) विद्युद्दन्त, (२५) घनदन्त, (२६) लष्टदन्त, (२७) गूढदन्त और (२८) शुद्धदन्त। यह अतरद्वीपको की प्ररूपणा हुई।

९६. से किं तं अकम्मभूमगा ?

अकम्मभूमगा तीसतिविहा पन्नता। तं जहा—पंचहिं हेमवएहिं पंचहिं हिरण्णवएहिं पंचहिं हरिवासेहिं पंचहिं रम्मगवासेहिं पंचहिं देवकुरूहिं पंचहिं उत्तरकुरूहिं। से त्तं अकम्मभूमगा।

[९६ प्र] अकर्मभूमक मनुष्य कौन-से हैं ?

[९६ उ] अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पाच हैमवत क्षेत्रो मे, पाच हैरण्यवत क्षेत्रो में, पाच हरिवर्ष क्षेत्रो में, पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रो मे, पांच देवकुरुक्षेत्रो मे और पाच उत्तरकुरुक्षेत्रों मे। इस प्रकार यह अकर्मभूमक मनुष्य की प्ररूपणा हुई।

९७. [१] से किं तं कम्मभूमया ?

कम्मभूमया पण्णरसविहा पण्णत्ता। तं जहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवतेहिं पंचहिं महाविदेहेहिं।

[९७-१ प्र] कर्मभूमक मनुष्य किस प्रकार के हैं ?

[९७-१ उ] कर्मभूमक मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पाच भरत क्षेत्रो में, पाच ऐरवत क्षेत्रों में और पाच महाविदेहक्षेत्रों मे।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—आरिया य मिलक्खू य।

[९७-२] वे (पन्द्रह प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य) सक्षेप में दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ।

९८. से किं तं मिलक्खू ?

मिलक्खू[1] अणेगविहा पण्णता । तं जहा—सग-जवण-चिलाय-सबर-बब्बर-काय-मुरुंडोड्ड-भडग- णिण्णग-पक्कणिय- कुलक्ख-गोंड- सिंहल-पारस-गांधोडंब- दमिल- चिल्लल- पुलिंद-हारोस-डोंब-बोक्काण-गंधाहारग-बहलिय-अज्जल-रोम-पास-पउसा-मलया य चुंचया य मूयलि-कोंकणग-मेय-पल्हव-मालव-मग्गर-आभासिय-णक्क-चीणा ल्हसिय-खस-खासिय-णेडूर-मंढडोंबिलग-लउस-बउस-केक्कया अरवागा हूण-रोसग-मरुग-रुय-विलायविसयवासी य एवमादी । से त्तं मिलक्खू ।

[९८ प्र] म्लेच्छ मनुष्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[९८ उ] म्लेच्छ मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, काय, मरुण्ड, उड्ड, भण्डक, (भडक), निन्नक (निण्णक). पक्कणिक, कुलाक्ष, गोड, सिंहल, पारस्य, (पारसक) आन्ध्र (क्रौच), उडम्ब (अम्बडक), तमिल (दमिल-द्रविड), चिल्लल (चिल्लस या चिल्लक) पुलिन्द, हारोस, डोंब (डोम), पोक्काण (वोक्काण), गन्धाहारक (कन्धारक), बहलिक (बाल्हीक), अज्जल (अज्झल), रोम, पास (मास), प्रदुष (प्रकुष), मलय (मलयाली) और चचूक (बन्धुक) तथा मूयली (चूलिक), कोकणक, मेद (मेव), पल्हव, मालव, गग्गर (मग्गर), आभाषिक, णक्क (कणवीर), चीना, ल्हासिक (लासा के), खस, खासिक (खासी जातीय), नेडूर (नेढूर), मढ (मीढ), डोम्बिलक, लओम, बकुश, कैकय, अरबाक (अक्खाग), हूण, रोसक (रूसवासी या रोमक), मरुक, रुत (भ्रमररुत) और विलात (चिलात) देशवासी इत्यादि । यह म्लेच्छों का (वर्णन हुआ) ।

९९. से किं तं आरिया ?

आरिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—इड्ढिपत्तारिया य अणिड्ढिपत्तारिया य ।

[९९ प्र.] आर्य कौन-से हैं ?

[९९ उ] आर्य दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—ऋद्धिप्राप्त आर्य और ऋद्धि-अप्राप्त आर्य ।

१००. से किं तं इड्ढिपत्तारिया ?

इड्ढिपत्तारिया छव्विहा पण्णत्ता । त जहा—अरहंता १ चक्कवट्टी २ बलदेवा ३ वासुदेवा ४ चारणा ५ विज्जाहरा ६ । से त्त इड्ढिपत्तारिया ।

---

1 प्रवचनसारोद्धार की तीन गाथाओं मे म्लेच्छ के बदले अनार्यों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—"सग-जवण-सबर-बब्बर-काय-मुरुंडोड्डगोण-पक्कणया । अरबाग-होण-रोमय-पारस खसखासिया चेव ॥१५८३॥ दुंबिलय-लउस-बोक्कस-भिल्लंऽध-पुलिंद-कुंच-भमररुया कोवाय-चीण-चंचुय-मालव-दमिला कुलग्घा य ॥१५८४॥ केक्कय-किराय-हयमुह-खरमुह-गय-तुरय-मिंढयमुहा य । हयकन्ना गयकन्ना अन्ने वि अणारिया बहवे ॥१५८५॥" "शकाः यवनाः शबराः बर्बराः कायाः मुरुण्डाः उड्डाः गौड्डाः पक्कणगाः अरबागाः हूणाः रोमकाः पारसाः खसाः खासिकाः द्रुम्बिलकाः लकुशाः बोक्कशा भिल्लाः अन्ध्राः पुलिन्द्राः कुञ्चाः भ्रमररुचाः कोर्पकाः चीनाः चञ्चुकाः मालवाः द्रविडाः कुलार्घाः केकयाः किराताः हयमुखाः खरमुखाः गजमुखाः तुरङ्गमुखाः मिण्ढकमुखाः हयकर्णाः गजकर्णाश्चेत्येते देशा अनार्याः ।" इति वृत्ति । पत्र ४४५-२ ॥

[१०० प्र.] ऋद्धिप्राप्त आर्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०० उ] ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अर्हन्त (तीर्थंकर), २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४ वासुदेव, ५ चारण और ६. विद्याधर । यह हुई ऋद्धिप्राप्त आर्यों की प्ररूपणा ।

१०१. से किं तं अणिड्ढिपत्तारिया ?

अणिड्ढिपत्तारिया णवविहा पण्णत्ता । तं जहा—खेत्तारिया १ जातिआरिया २ कुलारिया ३ कम्मारिया ४ सिप्पारिया ५ भासारिया ६ णाणारिया ७ दंसणारिया ८ चरित्तारिया ९ ।

[१०१ प्र] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य किस प्रकार के हैं ?

[१०१ उ] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) क्षेत्रार्य, (२) जात्यार्य, (३) कुलार्य, (४) कर्मार्य, (५) शिल्पार्य, (६) भाषार्य, (७) ज्ञानार्य, (८) दर्शनार्य और (९) चारित्रार्य ।

१०२. से किं तं खेत्तारिया ?

खेत्तारिया अद्धछव्वीसतिविहा पण्णत्ता । तं जहा—

रायगिह मगह १, चंपा अंगा २, तह तामलित्ति[1] वंगा य ३ ।
कंचणपुरं कलिंगा ४, वाणारसि चेव कासी य ५ ॥११२॥
साएय कोसला ६, गयपुरं च कुरु-७, सोरियं कुसट्टा य ८ ।
कंपिल्लं पंचाला ९, अहिछत्ता जंगला चेव १० ॥११३॥
बारवती य सुरट्ठा ११, मिहिल विदेहा य १२, वच्छ[2] कोसंबी १३।
णंदिपुरं संडिल्ला १४, भद्दिलपुरमेव मलया य १५ ॥११४॥
वइराड मच्छ[3] १६, वरणा अच्छा १७, तह मत्तियावइ दसण्णा १८ ।
सुत्तीमई य चेदी १९, वीइभयं सिंधुसोवीरा २० ॥११५॥

---

१. 'तामलित्ती' शब्द के सस्कृत मे दो रूपान्तर होते हैं—तामलिप्ती और ताम्रलिप्ती । प्रज्ञापना मलय वृत्ति, तथा प्रवचनसारोद्धार मे प्रथम रूपान्तर माना गया है, जब कि भगवती आदि की टीकाओ मे 'ताम्रलिप्ती' शब्द को ही प्रचलित माना है । जो हो, वर्तमान में यह 'तामलूक' नाम से पश्चिम बगाल मे प्रसिद्ध है । —स.

२ प्रवचनसारोद्धार की गाथा १५८९ से १५९२ तक की वृत्ति १३ वें आर्यक्षेत्र से पाठक्रम तथा इसी के समान वृत्ति मिलती है—'वत्सदेशः कौशाम्बी नगरी १३ नन्दिपुरं नगरं शाण्डिल्यो शाण्डिल्या वा देशः १४ भद्दिलपुर नगरं मलयादेशः १५ वैराटो देशः वत्सा राजधानी, अन्ये तु 'वत्सादेशो वैराटं पुरं नगरम्' इत्याहुः १६ वरणा-नगरं अच्छादेश , अन्ये तु 'वरणेषु अच्छापुरी' इत्याहुः १७ तथा मृत्तिकावती नगरी दशार्णो देशः १८ शुक्तिमती नगरी चेदयो देशः १९ वीतभयं नगरं सिन्धुसौवीरा जनपदः २० मथुरा नगरी सूरसेनाख्यो देशः २१ पापा नगरी भङ्गयो देशः २२ मासपुरी नगरी वर्तो देशः २३ तथा श्रावस्ती नगरी कुणाला देश. २४ ।' —पत्रांक ४४६।२

३ वैराट् नगर (वर्तमान मे वैराठ) अलवर के पास है, जहाँ प्राचीनकाल मे पाण्डवो का अज्ञातवास रहा है । यह वत्सदेश मे न होकर मत्स्यदेश मे है । क्योंकि वच्छ कोसाबी पाठ पहले आ चुका है । अत' मूलपाठ मे यह 'वच्छ' न होकर मच्छ शब्द होना चाहिए । अन्यथा 'वइराड वच्छ' पाठ होने से वत्सदेश नाम के दो देश होने का भ्रम हो जाएगा । —स । —देखिये, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भा-२, पृ ९१ ।

> महुरा य सूरसेणा २१, पावा भंगी य २२, मास पुरिवट्टा २३ ।
> सावत्थी य कुणाला २४, कोडीवरिसं च लाढा य २५ ॥११६॥
>
> सेयविया वि य णयरी केयइअद्धं च २५ ॥ आरियं भणितं ।
> एत्थुप्पत्ति जिणाणं चक्कीणं राम-कण्हाणं ॥११७॥

से त्तं खेत्तारिया ।

[१०२ प्र.] क्षेत्रार्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[१०२ उ] क्षेत्रार्य साढे पच्चीस प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार से है—

[गाथाओं का अर्थ—] (१) मगध (देश में) राजगृह (नगर), (२) अग (देश मे) चम्पा (नगरी), तथा (३) बंग (देश में) ताम्रलिप्ती (तामलूक नगरी), (४) कलिंग (देश में) काञ्चनपुर और (५) काशी (देश में) वाराणसी (नगरी), ॥११२॥ (६) कौशल (देश मे) साकेत (नगर), (७) कुरु (देश में) गजपुर (हस्तिनापुर), (८) कुशार्त्त (कुशावर्त्त देश मे) सोरियपुर (सौरीपुर), (९) पचाल (देश मे) काम्पिल्य, (१०) जागल (देश में) अहिच्छत्रा (नगरी) ॥११३॥ (११) सौराष्ट्र में द्वारावती (द्वारिका), (१२) विदेह (जनपद मे) मिथिला (नगरी), (१३) वत्स (देश मे) कौशाम्बी (नगरी), (१४) शाण्डिल्य (देश मे) नन्दिपुर, (१५) मलय (देश मे) भद्दिलपुर ॥११४॥ (१६) मत्स्य (देश मे) बैराट नगर, (१७) वरण (देश मे) अच्छ (पुरी), तथा (१८) दशार्ण (देश में) मृत्तिकावती (नगरी), (१९) चेदि (देश में) शुक्तिमती (शौक्तिकावती), (२०) सिन्धु-सौवीर देश मे वीतभय नगर ॥११५॥ (२१) शूरसेन (देश में) मथुरा (नगरी), (२२) भग (नामक जनपद मे) पावापुरी (अपापा नगरी), (२३) पुरिवर्त्त (परावर्त्त) (नामक जनपद में) मासा पुरी (माषा नगरी), (२४) कुणाल (देश मे) श्रावस्ती (सेहटमेहट), (२५॥) लाढ (देश मे) कोटिवर्ष (नगर) ॥११६॥ और (२५½) केकयार्द्ध (जनपद में) श्वेताम्बिका (नगरी), (ये सब २५॥ देश) आर्य (क्षेत्र) कहे गए हैं। इन (क्षेत्रो मे तीर्थंकरो, चक्रवर्तियो, राम और कृष्ण (बलदेवो और वासुदेवो) का जन्म (उत्पत्ति) होता है ॥११७॥ यह हुआ उक्त क्षेत्रार्यों का वर्णन ।

१०३. से किं तं जातिआरिया ?

जातिआरिया छव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—

> **अंबट्ठा १ य कलिंदा २ विदेहा ३ वेदगा ४ इ य ।**
> **हरिया ५ चुंचुणा ६ चेव, छ एया इब्भजातिओ[1] ॥११८॥**

से त्तं जातिआरिया ।

[१०३ प्र.] जात्यार्य किस प्रकार के हैं ?

[१०३ उ.] जात्यार्य[2] छह प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—

---

१. पाठान्तर—अज्जजातितो ।

२. जात्यार्य—उमास्वातिकृत तत्त्वार्थभाष्य मे इक्ष्वाकु विदेह, हरि, अम्बष्ठ, ज्ञात, कुरु, बु बुनाल (?) उग्र, भोग, राजन्य आदि की गणना जात्यार्य मे की गई है ।

[गाथार्थ]—(१) अम्बष्ठ[1], (२) कलिन्द, (३) वैदेह[2], (४) वेदग (वेदंग) आदि और (५) हरित एवं (६) चु चुण; ये छह इभ्य (अर्चनीय-माननीय) जातियां हैं ॥११८॥

यह हुआ उक्त जात्यार्यों का निरूपण।

१०४. से किं तं कुलारिया ?

कुलारिया छव्विहा पन्नत्ता। तं जहा—उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३ इक्खागा ४ नाता ५ कोरव्वा ६। से त्तं कुलारिया।

[१०४ प्र] कुलार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०४ उ] कुलार्य[3] छह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) उग्र[4] (२) भोग, (३) राजन्य, (४) इक्ष्वाकु, (५) ज्ञात और (६) कौरव्य। यह हुआ उक्त कुलार्यों का निरूपण।

१०५. से किं तं कम्मारिया ?

कम्मारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—दोस्सिया सोत्तिया कप्पासिया सुत्तवेयालिया भंडवेयालिया कोलालिया णरवाहणिया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं कम्मारिया।

[१०५ प्र.] कर्मार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०५ उ] कर्मार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—दोषिक (दूष्यक), सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैतालिक, भाण्डवैतालिक, कौलालिक और नरवाहनिक। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (आर्यकर्म वाले हों, उन्हें कर्मार्य समझना चाहिए)। यह हुई उक्त कर्मार्यों (की प्ररूपणा)।

१०६. से किं तं सिप्पारिया ?

सिप्पारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—तुण्णागा तंतुवाया पट्टगारा देयडा वरणा[5] छव्विया कट्ठपाउयारा मुंजपाउयारा छत्तारा वज्झारा पोत्थारा लेप्पारा चित्तारा संखारा दंतारा भंडारा जिज्झगारा[6] सेल्लगारा[7] कोडिगारा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं सिप्पारिया।

[१०६ प्र.] शिल्पार्य कौन-कौन से है ?

[१०६ उ.] शिल्पार्य (भी अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—तुन्नाक—(रफ्फूगर) दर्जी, तन्तुवाय—जुलाहे, पट्टकार (पटवा), दृतिकार (चमड़े की मशक बनाने वाले), वरण (या वरुट्ट—पिच्छिक-पिंछी बनाने वाले), छविक (चटाई आदि बनाने वाले), काष्ठपादुकाकार (लकड़ी की

---

१. अम्बष्ठ—ब्राह्मण पुरुष और वैश्यस्त्री से उत्पन्न सन्तान, देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)

२. वैदेह—वैश्य पुरुष और ब्राह्मणस्त्री से उत्पन्न। देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)

३. कुलार्य—तत्त्वार्थभाष्य मे कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की गणना कुलार्य मे की गई है।
—तत्त्वार्थभाष्य अ. ३। सू. १५

४. उग्र—क्षत्रिय पुरुष और शूद्रस्त्री से उत्पन्न सन्तान। देखिये मनुस्मृति और आचारांगनियुक्ति।

५. पाठान्तर—वरुणा, वरुट्टा। ६ जिज्झगारा, जिज्भारा। ७ सेल्लारा (शिलावट)।

खड़ाऊँ बनाने वाले), मु जपादुकाकार (मुंज की खड़ाऊँ बनाने वाले), छत्रकार (छाते बनाने वाले), वज्झार-वाह्यकार (वाहन बनाने वाले), (अथवा बहकार—मोरपिच्छी बनाने वाले), पुच्छकार या पुस्तकार (पूंछ के बालो से झाड़ू आदि बनाने वाले), या पुस्तककार—जिल्दसाज अथवा मिट्टी के पुतले बनाने वाले, लेप्यकार (लिपाई-पुताई करने वाले, अथवा मिट्टी के खिलौने आदि बनाने वाले), चित्रकार, शखकार, दन्तकार (दांत बनाने वाले, या दाती), भाण्डकार (विविध बर्तन बनाने वाले), जिज्झकार (जिह्वाकार = नकली जीभ बनाने वाले), सेलकार (शैल्यकार—शिला तथा पाषाण आदि घडकर वस्तु बनाने वाले अथवा सैलकार—भाला बनाने वाले) और कोडिकार (कोडियो की माला आदि बनाने वाले), इसी प्रकार के अन्य जितने भी आर्य शिल्पकार हैं, उन सबको शिल्पार्य समझना चाहिए। यह हुई उन शिल्पार्यों की प्ररूपणा।

१०७. से किं तं भासारिया ?

भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासिंति, जत्थ विय णं बंभी लिवी पवत्तइ। बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेक्खविहाणे पण्णत्ते। तं जहा—बंभी १ जवणाणिया २ दोसापुरिया[1] ३ खरोट्ठी ४ पुक्खरसारिया ५ भोगवईया ६ पहराईयाओ य ७ अंतक्खरिया ८ अक्खरपुट्ठिया ९ वेणइया १० णिण्हइया ११ अंकलिवी १२ गणितलिवी १३ गंधव्वलिवी १४ आयंसलिवी १५ माहेसरी १६ दामिली[2] १७ पोलिंवी १८। से त्तं भासारिया।

[१०७ प्र] भाषार्य कौन-कौन से है ?

[१०७ उ] भाषार्य वे हैं, जो अर्धमागधी भाषा मे बोलते है, और जहाँ भी ब्राह्मी लिपि प्रचलित है (अर्थात्—जिनमे ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है)। ब्राह्मी लिपि मे अठारह प्रकार का लेखविधान (लेखन-प्रकार) बताया गया है। जैसे कि—१ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३. दोषापुरिका, ४ खरौष्ट्री, ५ पुष्करशारिका, ६ भोगवतिका, ७ प्रहरादिका, ८ अन्ताक्षरिका, ९. अक्षरपुष्टिका, १० वैनयिका, ११. निह्नविका, १२ अकलिपि, १३ गणितलिपि, १४ गन्धर्वलिपि, १५ आदर्शलिपि, १६ माहेश्वरी, १७ तामिली—द्राविडी, १८ पौलिन्दी। यह हुआ उक्त भाषार्य का वर्णन।

१०८. से किं तं णाणारिया ?

णाणारिया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—आभिणिबोहियणाणारिया १ सुयणाणारिया २ ओहिणाणारिया ३ मणपज्जवणाणारिया ४ केवलणाणारिया ५। से त्तं णाणारिया।

[१०८ प्र] ज्ञानार्य कौन-कौन-से हैं।

[१०८ उ] ज्ञानार्य पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१ आभिनिबोधिकज्ञानार्य, २. श्रुतज्ञानार्य, ३ अवधिज्ञानार्य, ४ मन:पर्यवज्ञानार्य और ५ केवलज्ञानार्य। यह है उक्त ज्ञानार्यों की प्ररूपणा।

पाठान्तर—१ दासापुरिया। २ दोमिली, दोमिलिवी।

१०९. से किं तं दंसणारिया ?

दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सरागदंसणारिया य वीयरागदंसणारिया य ।

[१०९ प्र.] वे दर्शनार्य कौन-कौन से हैं ?

[१०९ उ.] दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य ।

११०. से किं तं सरागदंसणारिया ?

सरागदंसणारिया दसविहा पण्णत्ता । तं जहा—

निस्सग्गुवएसरुई-१ २-आणारुइ ३-सुत्त ४-बीयरुइ ५-मेव ।
अहिगम-६ वित्थाररुई-७ किरिया-८ संखेव-९ धम्मरुई-१० ॥११९॥

भूयत्थेणाधिगया जीवाऽजीवं च पुण्ण-पावं च ।
सहसम्मुइयाऽऽसव-संवरे य रोएइ उ निसग्गो ॥१२०॥

जो जिणदिट्ठे भावे चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव णऽण्णह त्ति य निस्सग्गरुइ त्ति णायव्वो १ ॥१२१॥

एते चेव उ भावे उवदिट्ठे जो परेण सद्दहइ ।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो २ ॥१२२॥

जो हेउमयाणंतो आणाए रोयए पवयणं तु ।
एमेव णऽण्णह त्ति य एसो आणारुई नाम ३ ॥१२३॥

जो सुत्तमहिज्जंतो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति णायव्वो ४ ॥१२४॥

एगपएऽणेयाइं पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।
उदए व्व तेल्लबिंदू सो बीयरुइ त्ति णायव्वो ५ ॥१२५॥

सो होइ अहिगमरुई सुयणाणं जस्स अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाइं पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ६ ॥१२६॥

दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहिं नयविहीहिं वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ७ ॥१२७॥

दंसण-णाण-चरित्ते तव-विणए सव्वसमिइ-गुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई सो खलु किरियारुई नाम ८ ॥१२८॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी संखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो ।
अविसारओ पवयणे अणभिग्गहिओ य सेसेसु ९ ॥१२९॥

जो अत्थिकायधम्मं सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो १० ॥१३०॥

परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावण्ण-कुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥१३१॥
निस्संकिय १ निक्कंखिय २ निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य ।
उववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पभावणे ८ अट्ठ ॥१३२॥

से त्तं सरागदंसणारिया ।

[११० प्र.] सरागदर्शनार्य किस-किस प्रकार के होते है ?

[११० उ.] सरागदर्शनार्य दस प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथाओं का अर्थ—] १. निसर्गरुचि, २. उपदेशरुचि, ३. आज्ञारुचि, ४. सूत्ररुचि, और ५. बीजरुचि, ६ अभिगमरुचि, ७. विस्ताररुचि, ८ क्रियारुचि, ९ सक्षेपरुचि, और १०. धर्मरुचि ॥११९॥

१. जो व्यक्ति (परोपदेश के बिना) स्वमति (जातिस्मरणादि) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और सवर आदि तत्त्वो को भूतार्थ (तथ्य) रूप से जान कर उन पर रुचि—श्रद्धा करता है, वह निसर्ग—(रुचि-सराग-दर्शनार्य) है ॥१२०॥ जो व्यक्ति तीर्थकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट भावो (पदार्थों) पर स्वयमेव (परोपदेश के बिना) चार प्रकार से (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) श्रद्धान करता है, तथा (ऐसा विश्वास करता है कि जीवादि तत्त्वो का स्वरूप जैसा तीर्थंकर भगवान् ने कहा है,) वह वैसा ही है, अन्यथा नही, उसे निसर्गरुचि जानना चाहिए ॥१२१॥

२. जो व्यक्ति छद्मस्थ या जिन (केवली) किसी दूसरे के द्वारा उपदिष्ट इन्ही (जीवादि) पदार्थों पर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि जानना चाहिए ॥१२२॥

३ जो (व्यक्ति किसी अर्थ के साधक) हेतु (युक्ति या तर्क) को नही जानता हुआ, केवल जिनाज्ञा से प्रवचन पर रुचि—श्रद्धा रखता है, तथा यह समझता है कि जिनोपदिष्ट तत्त्व ऐसे ही है, अन्यथा नही, वह आज्ञारुचि नामक दर्शनार्य है ॥१२३॥

४. जो व्यक्ति शास्त्रो का अध्ययन करता हुआ श्रुत के द्वारा ही सम्यक्त्व का अवगाहन करता है, चाहे वह श्रुत अग-प्रविष्ट हो या अगबाह्य, उसे सूत्ररुचि (दर्शनार्य) जानना चाहिए ॥१२४॥

५ जैसे जल में पड़ा हुआ तेल का बिन्दु फैल जाता है, उसी प्रकार जिसके लिए सूत्र (शास्त्र) का एक पद, अनेक पदो के रूप में फैल (परिणत हो) जाता है, उसे बीजरुचि (दर्शनार्य) समझना चाहिए ॥१२५॥

६. जिसने ग्यारह अगो, प्रकीर्णको (पइन्नो) को तथा बारहवे दृष्टिवाद नामक अग तक का श्रुतज्ञान, अर्थरूप मे उपलब्ध (दृष्ट एव ज्ञात) कर लिया है, वह अभिगमरुचि होता है ॥१२६॥

७. जिसने द्रव्यो के सर्वभावो को, समस्त प्रमाणो से एव समस्त नयविधियों (नयविवक्षाओ) से उपलब्ध कर (जान) लिया, उसे विस्ताररुचि समझना चाहिए ॥१२७॥

८. दर्शन, ज्ञान और चारित्र मे, तप और विनय में, सर्व समितियो और गुप्तियो मे जो क्रियाभावरुचि (आचरण-निष्ठा) वाला है, वह क्रियारुचि नामक (सरागदर्शनार्य) है ॥१२८॥

९. जिसने कुदर्शन (मिथ्यादर्शन) का ग्रहण नहीं किया है, तथा शेष अन्य दर्शनों का भी अभिग्रहण (परिज्ञान) नहीं किया है, और जो अर्हत्प्रणीत प्रवचन में विशारद (पटु) नहीं है, उसे संक्षेपरुचि (सराग दर्शनार्य) समझना चाहिए ॥१२९॥

१०. जो व्यक्ति जिनोक्त अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकाय आदि पाचों अस्तिकायों के धर्म) पर तथा श्रुतधर्म एवं चारित्रधर्म पर श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि (सरागदर्शनार्य) समझना चाहिए ॥१३०॥

परमार्थ (जीवादि तात्त्विक पदार्थों) का संस्तव करना (परिचय प्राप्त करना, अर्थात्—उन्हें समझने के लिए बहुमानपूर्वक प्रयत्न करना या सस्तुति—प्रशंसा, आदर करना); जिन्होंने परमार्थ (जीवादि तत्त्वार्थ) को सम्यक् प्रकार से श्रद्धापूर्वक जान लिया है, उनकी सेवा—उपासना करना (या उनका सेवन-सत्संग करना); और जिन्होंने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है, उन (निह्नवों) से तथा कुदृष्टियों से दूर रहना, यही सम्यक्त्व-श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) है। (जो इनका पालन करता है, वही सरागदर्शनार्य होता है।) ॥१३१॥

(सरागदर्शन के) ये आठ आचार हैं—(१) निःशंकित, (२) निष्कांक्षित, (३) निर्विचिकित्स और (४) अमूढदृष्टि, (५) उपबृंहण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। (ये आठ दर्शनाचार जिसमें हों, वह सरागदर्शनार्य होता है।) ॥१३२॥

यह हुई उक्त सरागदर्शनार्यों की प्ररूपणा।

१११. से किं तं वीयरागदंसणारिया ?

वीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया खीणकसाय-वीयरायदंसणारिया।

[१११ प्र.] वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[१११ उ.] वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११२. से किं तं उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया ?

उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीयराय-दंसणारिया अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया, अहवा चरिमसमयउवसंतकसायवीयराय-दंसणारिया य अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया य।

[११२ प्र.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११२ उ.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—प्रथमसमय उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरम-समय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११३. से किं तं खीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

खीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयराग-दंसणारिया य केवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य।

[११३ प्र.] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११३ उ.] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य ।

११४. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य ।

[११४ प्र] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११४ उ.] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य ।

११५. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से त्तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया ।

[११५ प्र] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते है ?

[११५ उ] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरमसमय स्वयबुद्धछद्मस्थ क्षीणकषाय वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य । यह हुआ उक्त स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन ।

११६. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से त्तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया। से त्तं छउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया ।

[११६ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११६ उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य और अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य ।

यह हुआ उक्त बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण और इसके साथ ही उक्त छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण पूर्ण हुआ।

११७. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य।

[११७ प्र.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[११७ उ.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११८. से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य। से त्तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया।

[११८ प्र.] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११८ उ.] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुई उक्त सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य की प्ररूपणा।

११९. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य। से त्तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं खीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं वीयरायदंसणारिया। से त्तं दंसणारिया।

[११९ प्र.] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११९ उ.] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों (का वर्णन)। (साथ ही, पूर्वोक्त) केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ और इसके पूर्ण होने के साथ ही) क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन भी समाप्त हुआ।

यह है उक्त दर्शनार्य (मनुष्यों) का (विवरण)।

१२०. से किं तं चरित्तारिया ?

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सरागचरित्तारिया य वीयरागचरित्तारिया य।

[१२० प्र.] चारित्रार्य (मनुष्य) कैसे होते हैं ?

[१२० उ.] चारित्रार्य (मनुष्य) दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य।

१२१. से किं तं सरागचरित्तारिया ?

सरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य बायरसंपरायसरागचरित्तारिया य।

[१२१ प्र.] सरागचारित्रार्य मनुष्य कैसे होते हैं ?

[१२१ उ.] सरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और बादरसम्पराय-सराग चारित्रार्य।

१२२. से किं तं सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसुहुमसपरायसरागचरित्तारिया य अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य अचरिमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संकिलिस्समाणा य विसुज्झमाणा य। से त्तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया।

[१२२ प्र.] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य किस प्रकार के होते है ?

[१२२ उ] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य दो प्रकार के होते हैं—प्रथमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अप्रथसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य। अथवा सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—सक्लिश्यमान (ग्यारहवे गुणस्थान से गिर कर दशम गुणस्थान मे आये हुए) और विशुद्धयमान (नवम गुणस्थान से ऊपर चढ कर दशम गुणस्थान में पहुँचे हुए)। यह हुई, उक्त सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य की प्ररूपणा।

१२३. से किं तं बादरसंपरायसरागचरित्तारिया ?

बादरसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य अपढमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य अचरिमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा बादरसंपरायसराग-

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवाती य अपडिवाती य । से त्तं बादरसंपरायसरागचरित्तारिया । से त्तं सरागचरित्तारिया ।

[१२३ प्र.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२३ उ.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा चरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा (तीसरी तरह से) बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रतिपाति और अप्रतिपाती । यह हुआ बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य (का वर्णन) (और साथ ही) सराग-चारित्रार्य (का वर्णन भी पूर्ण हुआ) ।

१२४. से किं तं वीयरागचरित्तारिया ?

वीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया य खीणकसायवीतरागचरित्तारिया य ।

[१२४ प्र.] वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२४ उ.] वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार—उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य ।

१२५. से किं तं उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया ?

उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया य अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयउवसंतकसायवीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरागचरित्तारिया य । से त्तं उवसंतकसायवीयरागचरित्तारिया ।

[१२५ प्र.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२५ उ.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य । यह हुआ उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का निरूपण ।

१२६. से किं तं खीणकसायवीयरायचरित्तारिया ?

खीणकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य ।

[१२६ प्र.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२६ उ.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य ।

१२७. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीण-कसायवीयरागचरित्तारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य।

[१२७ प्र] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२७ उ.] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। यथा—स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२८. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसयंबुद्ध-छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थ-खीणकसायवीतरागचरित्तारिया य। से त्तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२८ प्र.] वे स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२८ उ.] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य, अथवा चरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ, उक्त स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का वर्णन।

१२९. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबुद्ध-बोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतराग-चरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिम-समयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य। से त्तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीय-रायचरित्तारिया। से त्तं छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२९ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२९ उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमयबुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों और साथ ही छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन सम्पूर्ण हुआ।

१३०. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय-वीयरागचरित्तारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१३० प्र.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१३० उ.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य और अयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य।

१३१. से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरायचरित्तारिया य। से त्तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया।

[१३१ प्र.] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य किस प्रकार के कहे हैं ?

[१३१ उ.] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य। यह सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का निरूपण हुआ।

१३२. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पढमसमयअजोगि-केवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीण-कसायवीतरागचरित्तारिया य। से त्तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया। से त्तं केवलि-खीणकसायवीतरागचरित्तारिया। से त्तं खीणकसायवीतरागचरित्तारिया। से त्तं वीतराग-चरित्तारिया।

[१३२ प्र.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य कैसे होते हैं ?

[१३२ उ.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथम-समय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य। इस प्रकार अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का, साथ ही केवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ), (और इसके पूर्ण होने के साथ ही) वीतराग-चारित्रार्यों की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई)।

१३३. अहवा चरित्तारिया पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—सामाइयचरित्तारिया १ छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया २ परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ३ सुहुमसंपरायचरित्तारिया ४ अहक्खायचरित्तारिया ५।

[१३३] अथवा—प्रकारान्तर से चारित्रार्य पाच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—१. सामायिक-चारित्रार्य, २ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य, ३ परिहारविशुद्धिक-चारित्रार्य, ४. सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और ५ यथाख्यात-चारित्रार्य।

१३४. से किं तं सामाइयचरित्तारिया ?

सामाइयचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्तरियसामाइयचरित्तारिया य आवकहियसामाइयचरित्तारिया य। से त्तं सामाइयचरित्तारिया।

[१३४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सामायिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३४ उ.] सामायिक-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—इत्वरिक सामायिक-चारित्रार्य और यावत्कथिक सामायिक-चारित्रार्य। यह हुआ सामायिक-चारित्रार्य का निरूपण।

१३५. से किं तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया ?

छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—साइयारछेदोवट्ठावणियचरित्तारिया य णिरइयारछेओवट्ठावणियचरित्तारिया य। से त्तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया।

[१३५ प्र] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३५ उ] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सातिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य और निरतिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य। यह हुआ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्यों का वर्णन।

१३६. से किं तं परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ?

परिहारविसुद्धियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—निव्विसमाणपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य निव्विट्ठकाइयपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य। से त्तं परिहारविसुद्धियचरित्तारिया।

[१३६ प्र] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३६ उ] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—निर्विश्यमानक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य और निर्विष्टकायिक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य। यह हुआ उक्त परिहारविशुद्धि-चारित्रार्यों का वर्णन।

१३७ से किं तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संकिलिस्समाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य विसुज्झमाणसुहुमसपरायचरित्तारिया य। से त्तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया।

[१३७ प्र] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१३७ उ.] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—सक्लिश्यमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और विशुद्धयमान-सूक्ष्मसम्पराय-चरित्रार्य ।

यह हुआ उक्त सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्यों का निरूपण ।

१३८. से किं तं अहक्खायचरित्तारिया ?

अहक्खायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—छउमत्थअहक्खायचरित्तारिया य केवलिअहक्खायचरित्तारिया य । से त्तं अहक्खायचरित्तारिया । से त्तं चरित्तारिया । से त्तं अणिड्ढिपत्तारिया । से त्तं आरिया । से त्तं कम्मभूमगा । से त्तं गब्भवक्कंतिया । से त्तं मणुस्सा ।

[१३८ प्र.] यथाख्यात-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३८ उ.] यथाख्यात-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—छद्मस्थयथाख्यात-चारित्रार्य और केवलियथाख्यात-चारित्रार्य । यह हुआ उक्त यथाख्यात-चारित्रार्यों का,(निरूपण ।) (इसके पूर्ण होने के साथ ही) चारित्रार्य का वर्णन (समाप्त हुआ ।) इस प्रकार आर्यों का वर्णन, कर्मभूमिजो का वर्णन तथा उक्त गर्भजो के वर्णन के समाप्त होने के साथ ही मनुष्यों की प्ररूपणा पूर्ण हुई ।

विवेचन—समग्र मनुष्यजीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत ४७ सूत्रो (सू. ९२ से १३८ तक) मे मनुष्यो के सम्मूर्च्छिम और गर्भज इन दो भेदों का उल्लेख करके गर्भजों के कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तरद्वीपज, यो तीन भेद और फिर इनके भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

कर्मभूमक और अकर्मभूमक की व्याख्या—कर्मभूमक—प्रस्तुत में कृषि-वाणिज्यादि जीवन-निर्वाह के कार्यों को तथा मोक्ष सम्बन्धी अनुष्ठान को कर्म कहा गया है । जिनकी कर्मप्रधान भूमि है, वे **'कर्मभूम'** या **'कर्मभूमक'** कहलाते हैं । अर्थात्—कर्मप्रधान भूमि में रहने और उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमक हैं । **अकर्मभूमक**—जिन मनुष्यों की भूमि पूर्वोक्त कर्मों से रहित हो, जो कल्पवृक्षो से ही अपना जीवन निर्वाह करते हों, वे अकर्मभूम या अकर्मभूमक कहलाते हैं ।[1]

'अन्तरद्वीपक' मनुष्यों की व्याख्या—अन्तर शब्द मध्यवाचक है । अन्तर में अर्थात्—लवण-समुद्र के मध्य में जो द्वीप हैं वे अन्तरद्वीप कहलाते हैं । उन अन्तरद्वीपों मे रहने वाले अन्तरद्वीपग या अन्तरद्वीपक कहलाते हैं । ये अन्तरद्वीपग मनुष्य अट्ठाइस प्रकार के हैं, जिनका मूल पाठ मे नामोल्लेख है ।

अन्तरद्वीपग मनुष्य वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले, कंकपक्षी के समान परिणमन वाले, अनुकूल वायुवेग वाले एव समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं । उनके चरणों की रचना कच्छप के समान आकार वाली एव सुन्दर होती है । उनकी दोनों जाघें चिकनी, अल्परोमयुक्त, कुरुविन्द के समान गोल होती हैं । उनके घुटने निगूढ और सम्यक्तयाबद्ध होते हैं, उनके उरूभाग हाथी की सूड के समान गोलाई से युक्त होते हैं, उनका कटिप्रदेश सिंह के समान, मध्यभाग वज्र के समान, नाभि-मण्डल दक्षिणावर्त्त शंख के समान तथा वक्षःस्थल विशाल, पुष्ट एव श्रीवत्स से लाञ्छित होता है । उनकी भुजाएँ नगर के फाटक की अर्गला के समान दीर्घ होती हैं । हाथ की कलाइयां (मणिबन्ध) सुबद्ध होती हैं । उनके करतल और पदतल रक्तकमल के समान लाल होते हैं । उनकी गर्दन चार अंगुल की, सम और वृत्ताकार शंख-सी होती है । उनका मुखमण्डल शरद्ऋतु के चन्द्रमा के समान सौम्य होता है । उनके छत्राकार मस्तक पर अस्फुटित-स्निग्ध, कान्तिमान एव चिकने केश होते हैं ।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५०

वे कमण्डलु, कलश, यूप, स्तूप, वापी, ध्वज, पताका, सौवस्तिक, यव, मत्स्य, मगर, कच्छप, रथ, स्थाल, अंशुक, अष्टापद, अकुश, सुप्रतिष्ठक, मयूर, श्रीदाम, अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, श्रेष्ठ-भवन, दर्पण, पर्वत, हाथी, वृषभ, सिंह, छत्र और चामर; इन ३२ उत्तम लक्षणो से युक्त होते हैं।

वहाँ की स्त्रिया भी सुनिर्मित-सर्वांगसुन्दर तथा समस्त महिलागुणो से युक्त होती हैं। उनके चरण कच्छप के आकार के, तथा परस्पर सटी हुई अगुलियो वाले एवं कमलदल के समान मनोहर होते हैं। उनके जघायुगल रोमरहित एव प्रशस्त लक्षणो से युक्त होते हैं, तथा जानुप्रदेश निगूढ एवं पुष्ट होते हैं, उनके उरू केले के स्तम्भसदृश संहत, सुकुमार एव पुष्ट होते हैं। उनके नितम्ब विशाल, मांसल एव शरीर के आयाम के अनुरूप होते हैं। उनकी रोमराजि मुलायम, कान्तिमय एव सुकोमल होती है। उनका नाभिमण्डल दक्षिणावर्त की तरगो के समान, उदर प्रशस्त लक्षणयुक्त एव स्तन स्वर्णकलशसम सहृत, उन्नत, पुष्ट एवं गोल होते हैं। पार्श्वभाग भी संगत होता है। उनकी बांहें लता के समान सुकुमार होती हैं। उनके अधरोष्ठ अनार के पुष्प के समान लाल, तालु एव जिह्वा रक्तकमल के समान तथा आखें विकसित नीलकमल के समान बड़ी एव कमनीय होती हैं। उनकी भौहे चढाए हुए धनुषबाण के आकार की सुसगत होती हैं। ललाट प्रमाणोपेत होता है। मस्तक के केश सुस्निग्ध एव सुन्दर होते हैं। करतल एव पदतल स्वस्तिक, शंख, चक्र आदि की आकृति की रेखाओ से सुशोभित होते हैं। गर्दन ऊँची, मांसल एव शंख के समान होती है। वे ऊँचाई मे पुरुषो से कुछ कम होती हैं। स्वभाव से ही वे उदार, शृ गार और सुन्दर वेष वाली होती हैं। प्रकृति से हास्य, वचन, विलास एव विषय में परम नैपुण्य से युक्त होती है।

वहाँ के पुरुष-स्त्री सभी स्वभाव से सुगन्धित वदन वाले होते हैं। उनके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द होते हैं। वे सन्तोषी, उत्सुकता रहित, मृदुता-ऋजुतासम्पन्न होते हैं। मनोहर मणि, स्वर्ण और मोती आदि ममत्व के कारणों के विद्यमान होते हुए भी वे ममत्व के अभिनिवेश से तथा वैरानुबन्ध से रहित होते हैं। हाथी, घोडे, ऊँट, गाय, भैंस आदि के होते हुए भी वे उनके परिभोग से पराङ्मुख रह कर पैदल चलते हैं।

वे ज्वरादि रोग, भूत, प्रेत, यक्ष आदि की ग्रस्तता, महामारी आदि विपत्तियों के उपद्रव से भी रहित होते हैं। उनमें परस्पर स्वामि-सेवक का व्यवहार नही होता, अतएव सभी अहमिन्द्र जैसे होते हैं। उनकी पीठ मे ६४ पसलिया होती हैं। उनका आहार एक चतुर्थभक्त (उपवास) के बाद होता है और आहार भी शालि आदि धान्य से निष्पन्न नही, किन्तु पृथ्वी की मिट्टी एव कल्पवृक्षो के पुष्प, फल का होता है। क्योकि वहां चावल, गेहू, मू ग, उडद आदि अन्न होते हुए भी वे मनुष्यों के उपभोग मे नहीं आते, वहाँ की पृथ्वी ही शक्कर से अनन्तगुणी मधुर है, तथा कल्पवृक्षों के पुष्प-फलों का स्वाद चक्रवर्ती के भोजन से भी अनेक गुणा अच्छा है। वे इस प्रकार का स्वादिष्ट आहार करके प्रासाद के आकार के जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते हैं, उनमे सुख से रहते हैं। उस क्षेत्र में डास, मच्छर, जूं, खटमल, मक्खी आदि शरीरोपद्रवकारी जन्तु पैदा नही होते। जो भी सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वहाँ होते हैं, वे मनुष्यों को कोई पीड़ा नही पहुँचाते। उनमें परस्पर हिंस्य-हिंसकभाव का व्यवहार नही है। क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ के जीव रौद्र (भयकर) स्वभाव से रहित होते हैं। वहाँ के मनुष्यों (स्त्री-पुरुष) का जोड़ा अपने अवसान के समय एक जोड़े (स्त्री-पुरुष) को जन्म देता है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करता है। उनके शरीर की ऊचाई ८०० धनुष की और उनकी आयु पल्योपम के असख्यातवे भाग जितनी होती है। वे मन्दकषायी,

मन्दराग-मोहानुबन्ध के कारण मर कर देवलोक में जाते हैं। उनका मरण भी जभाई, खांसी या छींक आदि से होता है, किन्तु किसी शरीरपीड़ापूर्वक नही।

अन्तरद्वीपगों के अन्तरद्वीप कहां और कैसी स्थिति में ?—आगमानुसार छप्पन अन्तरद्वीपगो के अन्तरद्वीप हिमवान् और शिखरी इन दो पर्वतों की लवणसमुद्र में निकली दाढ़ाओं पर स्थित हैं। **हिमवान् पर्वत के अट्ठाईस अन्तरद्वीपों का वर्णन**—जम्बूद्वीप में भरत और हैमवत क्षेत्रो की सीमा का विभाजन करने वाला हिमवान् नामक पर्वत है। वह भूमि में २५ योजन गहरा और सौ योजन ऊँचा तथा भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तृत, हेममय चीनाशुक के-से वर्ण वाला है। उसके दोनो पार्श्व नाना वर्णों से विशिष्ट कान्तिमय मणिसमूह से परिमण्डित हैं। उसका विस्तार ऊपर-नीचे सर्वत्र समान है। वह गगनमण्डल को स्पर्श करने वाले रत्नमय ग्यारह कूटो से सुशोभित है, उसका तल वज्रमय है, तटभाग विविध मणियो और सोने से सुशोभित है। वह दस योजन मे अवगाहित—जगह घेरे हुए है। वह पूर्व-पश्चिम में हजार योजन लम्बा और दक्षिण-उत्तर में पाच योजन विस्तीर्ण है। उसके मध्यभाग में पद्मह्रद है तथा चारो ओर कल्पवृक्षों की पंक्ति से अतीव कमनीय है। वह पूर्व और पश्चिम के छोरों (अन्तो) से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल के स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा में दो गजदन्ताकार दाढे निकली हैं। उनमें से ईशानकोण में जो दाढा निकली है, उस प्रदेश मे हिमवान् पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र में ३०० योजन लम्बा-चौडा तथा कुछ कम ९४९ योजन की परिधिवाला **एकोरुक** नामक द्वीप है। जो कि ५०० धनुष विस्तृत, दो गाऊ ऊँची पद्मवरवेदिका से चारो ओर से मण्डित है। उसी हिमवान् पर्वत के पर्यन्तभाग से दक्षिण-पूर्वकोण में तीन सौ योजन दूर स्थित लवणसमुद्र का अवगाहन करते ही दूसरी दाढा आती है, जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौडा **'आभासिक'** नामक द्वीप है तथा उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर (पर्यन्त) से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्य-कोण) मे तीन-सौ योजन लवणसमुद्र का अवगाहन करने के बाद एक दाढ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का **वैषाणिक** नामक द्वीप है, एव उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तरदिशा (वायव्यकोण) में तीन-सौ योजन दूर लवणसमुद्र मे एक दंष्ट्रा (दाढ़) आती है, जिस पर पूर्वोक्त प्रमाण वाला **नांगोलिक** द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारो द्वीप हिमवान् पर्वत से चारों विदिशाओ में हैं और समान प्रमाण वाले हैं।

तदनन्तर इन्ही एकोरुक आदि चारों द्वीपो के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा मे चार-चार सौ योजन आगे चलने के बाद चार-चार सौ योजन लम्बे-चौडे, कुछ कम १२६५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले तथा जम्बू-द्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण अन्तर वाले **हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण** और **शष्कुलीकर्ण** नाम के चार द्वीप हैं। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभासिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और नांगोलिक के आगे शष्कुलीकर्ण द्वीप है।

तत्पश्चात् इन हयकर्ण आदि चार द्वीपों के आगे पाच-पाच सौ योजन की दूरी पर फिर चार द्वीप हैं—जो पांच-पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं और पहले की तरह ही चारो विदिशाओ में स्थित हैं। इनकी परिधि १५८१ योजन की है। इनके बाह्यप्रदेश भी पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड मे सुशोभित हैं तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ५०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके

नाम हैं—**आदर्शमुख, मेण्ढमुख, अयोमुख और गोमुख**। इनमें से हयकर्ण के आगे आदर्शमुख, गजकर्ण के आगे मेण्ढमुख, गोकर्ण के आगे अयोमुख और शष्कुलीकर्ण के आगे गोमुख द्वीप है।

इन आदर्शमुख आदि चारो द्वीपो के आगे छह-छह सौ योजन की दूरी पर पूर्वोत्तरादि विदिशाओ में फिर चार द्वीप हैं—**अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख**। ये चारो द्वीप ६०० योजन लम्बे-चौडे और १८९७ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से मण्डित बाह्यप्रदेश वाले एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ६०० योजन अन्तर पर हैं।

इन अश्वमुखादि चारो द्वीपों के आगे क्रमशः पूर्वोत्तरादि विदिशाओ में ७००-७०० योजन की दूरी पर ७०० योजन लम्बे-चौड़े तथा २२१३ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से घिरे हुए एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ७०० योजन के अन्तर पर क्रमशः **अश्वकर्ण, हरिकर्ण, अकर्ण और कर्णप्रावरण** नाम के चार द्वीप हैं।

फिर इन्ही अश्वकर्ण आदि चार द्वीपो के आगे, यथाक्रम से पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ८००-८०० योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बे-चौड़े, २५२९ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका-वनखण्ड से मण्डित परिसर वाले, एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ८०० योजन के अन्तर पर **उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त** नाम के चार द्वीप हैं।

तदनन्तर इन्ही उल्कामुख आदि चारों द्वीपो के आगे क्रमश· पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ९००-९०० योजन की दूरी पर, नौ सौ योजन लम्बे-चौड़े तथा २८४५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका एव वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले, जम्बूद्वीप की वेदिका से ९०० योजन के अन्तर पर चार द्वीप और हैं। जिनके नाम क्रमशः ये हैं—**घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त**। इस हिमवान् पर्वत की दाढो पर चारो विदिशाओ मे स्थित ये सब द्वीप (७×४=२८) अट्ठाईस हैं।

शिखरी पर्वत के २८ अन्तरद्वीपों का वर्णन—इसी प्रकार हिमवान् पर्वत के समान वर्ण और प्रमाण वाले तथा पद्मह्रद के समान लम्बे-चौड़े और गहरे पुण्डरीकह्रद से सुशोभित शिखरी पर्वत पर लवणसमुद्र के जलस्पर्श से लेकर पूर्वोक्त दूरी पर यथोक्त प्रमाण वाली चारो विदिशाओ में स्थित, एकोरुक आदि नाम के अट्ठाईस द्वीप हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई, परिधि, नाम आदि सब पूर्ववत् हैं। अतएव दोनों ओर के मिल कर कुल अन्तरद्वीप छप्पन हैं। इन द्वीपो मे रहने वाले मनुष्य भी इन्ही नामो से पुकारे जाते हैं। जैसे पजाब मे रहने वाले को पजाबी कहा जाता है।[1]

अकर्मभूमकों का वर्णन—अकर्मभूमक मनुष्य तीन प्रकार के हैं। अढाई द्वीप रूप मनुष्यक्षेत्र मे पाच हैमवत, पाच हैरण्यवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यकवर्ष, पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु अकर्मभूमि के इन तीस क्षेत्रो में ३० ही प्रकार के मनुष्य रहते हैं। इन्ही के नाम पर से इनमे रहने वाले मनुष्यो के प्रकार गिनाये गए हैं। इनमें से ५ हैमवत क्षेत्र और ५ हैरण्यवत क्षेत्र में मनुष्य एक गव्यूति (गाऊ) ऊँचे, एक पल्योपम की आयु और वज्रऋषभनाराचसहनन तथा समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पसलियाँ ६४ होती हैं, ये एक दिन के अन्तर से भोजन करते है और ७९ दिन तक अपनी संतान का पालन-पोषण करते हैं। पाच हरिवर्ष और पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रो में मनुष्यो की आयु दो पल्योपम की, शरीर की ऊँचाई दो गव्यूति की होती है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्रांक ५० से ५४ तक

ये वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। ये दो दिन के अन्तर से आहार करते हैं। इनकी पीठ की पसलियां १२८ होती हैं और ये अपनी संतान का पालन ६४ दिन तक करते हैं। पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की एव शरीर की ऊँचाई तीन गाऊ की होती है। ये भी वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पसलियां २५६ होती हैं। ये तीन दिनो के अनन्तर आहार करते हैं और ४९ दिनों तक अपनी सतति का पालन करते हैं।

इन सभी क्षेत्रो में अन्तरद्वीपों की तरह मनुष्यो के भोगोपभोग के साधनों की पूर्ति कल्पवृक्षो से होती है। इतना अन्तर अवश्य है कि पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत क्षेत्रों मे मनुष्यों के उत्थान, बल-वीर्य आदि तथा वहाँ के कल्पवृक्षो के फलो का स्वाद और वहाँ की भूमि का माधुर्य अन्तरद्वीप की अपेक्षा पर्यायों की दृष्टि से अनन्तगुणा अधिक है। ये ही सब पदार्थ पाच हरिवर्ष और पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में उनसे भी अनन्तगुणे अधिक तथा पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु मे इनसे भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं। यह सक्षेप मे अकर्मभूमको का निरूपण है।[1]

आर्य और म्लेच्छ मनुष्य—पाच भरत, पाच ऐरवत और पांच महाविदेह, इन १५ क्षेत्रो मे आर्य और म्लेच्छ दोनो प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य रहते हैं। आर्य का अर्थ—हेय धर्मों (अधर्मों या पापों) से जो दूर हैं, और उपादेय धर्मों (अहिंसा, सत्य आदि धर्मों) के निकट हैं या इन्हे प्राप्त किये हुये हैं। म्लेच्छ वे हैं—जिनके वचन (भाषा) और आचार अव्यक्त—अस्पष्ट हों। दूसरे शब्दो मे कहे तो जिनका समस्त व्यवहार शिष्टजनसम्मत न हो, उन्हें म्लेच्छ समझना चाहिए।

म्लेच्छ अनेक प्रकार के हैं, जिनका मूलपाठ में उल्लेख है। इनमे से अधिकाश म्लेच्छो की जाति के नाम तो अमुक-अमुक देश मे निवास करने से पड़ गए हैं, जैसे—शक देश के निवासी शक, यवन देश के निवासी यवन इत्यादि।

आर्यों के प्रकार और उनके लक्षण—**क्षेत्रार्य**—मूलपाठ में परिगणित साढे पच्चीस जनपदात्मक आर्य क्षेत्र मे उत्पन्न होने एव रहने वाले क्षेत्रार्य कहलाते हैं। ये क्षेत्र आर्य इसलिए कहे गए हैं कि इनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषो का जन्म होता है। इनसे भिन्न क्षेत्र अनार्य कहलाते हैं। **जात्यार्य**—मूलपाठ मे वर्णित अम्बष्ठ आदि ६ जातिया इभ्य—अभ्यर्चनीय एव प्रसिद्ध हैं। इन जातियो से सम्बद्ध जन जात्यार्य कहलाते हैं। **कुलार्य**—शास्त्र-परिगणित उग्र आदि ६ कुलो में से किसी कुल में जन्म लेने वाले कुलार्य—कुल की अपेक्षा से आर्य कहलाते है। **कर्मार्य**—अहिंसा आदि एव शिष्टसम्मत तथा आजीविकार्थ किये जाने वाले कर्म आर्यकर्म कहलाते है। शास्त्रकार ने दोषिक, सौत्रिक आदि कुछ आर्यकर्म से सम्बन्धित मनुष्यों के प्रकार गिनाये है। विशेषता स्वयमेव समझ लेना चाहिए। **शिल्पार्य**—जो शिल्प अहिंसा आदि धर्मांगो से तथा शिष्टजनो के आचार के अनुकूल हो, वह आर्य शिल्प कहलाता है। ऐसे आर्य शिल्प से अपना जीवननिर्वाह करने वाले शिल्पार्यों मे परिगणित किये गए हैं। कुछ नाम तो शास्त्रकार ने गिनाये ही है। शेष स्वय चिन्तन द्वारा समझ लेना चाहिए। **भाषार्य**—अर्धमागधी उस समय आम जनता की, शिष्टजनो की भाषा थी, आज उसी का प्रचलित रूप हिन्दी एव विविध प्रान्तीय भाषाएँ हैं। अतः वर्तमान युग

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५४

मे भाषार्य उन्हे कहा जा सकता है, जिनकी भाषा उच्च सस्कृति और सभ्यता से सम्बन्धित हो, जिनकी भाषा तुच्छ और कर्कश न हो, किन्तु आदरसूचक कोमल-कान्त पदावली से युक्त हो। शेष ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य का स्वरूप स्पष्ट ही है। जो सम्यग्ज्ञान से युक्त हो, वे ज्ञानार्य, जो सम्यग्दर्शन से युक्त हों, वे दर्शनार्य और जो सम्यक्चारित्र से युक्त हो, वे चारित्रार्य कहलाते हैं। जो मिथ्याज्ञान से, मिथ्यात्व एव मिथ्यादर्शन से एव कुचारित्र से युक्त हो, उन्हे क्रमश. ज्ञानार्य, दर्शनार्य एव चारित्रार्य नही कहा जा सकता। शास्त्रकार ने पाच प्रकार के सम्यग्ज्ञान से युक्त जनों को ज्ञानार्य, सराग और वीतराग रूप सम्यग्दर्शन से युक्त जनो को दर्शनार्य तथा सराग और वीतराग रूप सम्यक्चारित्र से युक्त जनो को चारित्रार्य बतलाया है। इन सबके अवान्तर भेद-प्रभेद विभिन्न अपेक्षाओ से बताए है। इन सब अवान्तर भेदो वाले भी ज्ञानार्य, दर्शनार्य एव चारित्रार्य मे ही परिगणित होते हैं।

सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य—जो दर्शन राग अर्थात् कषाय से युक्त होता है, वह सरागदर्शन तथा जो दर्शन राग अर्थात्—कषाय से रहित हो वह वीतरागदर्शन कहलाता है। सराग-दर्शन की अपेक्षा से आर्य सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शन की अपेक्षा से आर्य वीतरागदर्शनार्य कहलाते है। सरागदर्शन के निसर्गरुचि आदि १० प्रकार हैं। परमार्थसंस्तव आदि तीन लक्षण है और नि शकित आदि ८ आचार है। वीतरागदर्शन दो प्रकार का है—उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। इन दोनों के कारण जो आर्य है, उन्हे क्रमश उपशान्तकषायदर्शनार्य और क्षीणकषायदर्शनार्य कहा जाता है। उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे है—जिनके समस्त कषायो का उपशमन हो चुका है, अतएव जिनमे वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, ऐसे ग्यारहव गुणस्थानवर्ती मुनि। क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे हैं—जिनके समस्त कषाय समूल क्षीण हो चुके है, अतएव जिनमे वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, वे बारहवे मे लेकर चौदहवे गुणस्थानवर्ती महामुनि। जिन्हे इस अवस्था मे पहुँचे प्रथम समय ही हो, वे प्रथमसमयवर्ती, और जिन्हे एक समय से अधिक हो गया हो, वे अप्रथमसमय-वर्ती कहलाते है। इसी प्रकार चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती ये दो भेद समयभेद के कारण है।

क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य के भी अवस्थाभेद से दो प्रकार हैं—जो बारहवे गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, वे छद्मस्थ हैं और जो तेरहवे, चौदहवे गुणस्थानवाले है, वे केवली हैं। बारहवे गुण-स्थानवर्ती छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग भी दो प्रकार के हैं—स्वयबुद्ध और बुद्धबोधित। फिर इन दोनो मे से प्रत्येक के अवस्थाभेद से दो-दो भेद पूर्ववत् होते हैं—प्रथमसमयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। स्वामी के भेद के कारण दर्शन मे भी भेद होता है और दर्शनभेद से उनके व्यक्तित्व (आर्यत्व) में भी भेद माना गया है। केवलिक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य के सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दो भेद होते हैं। जो केवलज्ञान तो प्राप्त कर चुके, लेकिन अभी तक योगो से युक्त हैं, वे सयोगिकेवली, और जो केवली अयोग दशा प्राप्त कर चुके, वे अयोगि-केवली कहलाते हैं। वे सिर्फ चौदहवे गुणस्थान वाले होते हैं। इन दोनो के भी समयभेद से प्रथम-समयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती अथवा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती, यो प्रत्येक के चार-चार भेद हो जाते है। इनके भेद से दर्शन मे भी भेद माना गया है और दर्शनभेद के कारण दर्शननिमित्तक आर्यत्व मे भी भेद होता है।

सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य—रागसहित चारित्र अथवा रागसहितपुरुष के चारित्र को सरागचारित्र और जिस चारित्र में राग का सद्भाव न हो, या वीतरागपुरुष का जो चारित्र हो, उसे वीतरागचारित्र कहते हैं। सरागचारित्र के दो भेद हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्र

(जिसमें सूक्ष्म कषाय की विद्यमानता होती है) तथा बादरसम्पराय-सरागचारित्र (जिसमें स्थूल कषाय हो, वह)। इनसे जो आर्य हो, वह तथारूप आर्य होता है। सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य के अवस्था भेद से चार भेद बताए हैं—प्रथमसमयवर्ती व अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। इनकी व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य के पुन. दो भेद बताए गए हैं—सक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान मे आया हुआ)। और विशुद्धयमान (नौवें गुणस्थान से ऊपर चढ़कर दसवे गुणस्थान मे आया हुआ)। बादरसम्पराय-चारित्रार्य के भी पूर्ववत् प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद बताए गए हैं। इनके भी प्रकारान्तर से दो भेद किए गए है—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। उपशमश्रेणी वाले प्रतिपाती (गिरने वाले) और क्षपकश्रेणीप्राप्त अप्रतिपाती (नही गिरने वाले) होते है। वीतराग के दो प्रकार हैं—उपशान्तकषायवीतराग और क्षीणकषायवीतराग। उपशान्तकषायवीतराग (एकादशम-गुणस्थान वर्ती) की व्याख्या तथा इसके चार भेदो की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

क्षीणकषायवीतराग के भी दो भेद होते हैं—छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग और केवलिक्षीण-कषायवीतराग। इनमें से छद्मस्थक्षीणकषीयवीतराग के दो प्रकार हैं—स्वयंबुद्ध और बुद्धबोधित। इन दोनो के प्रथमसमयवर्ती आदि पूर्ववत् चार-चार भेद होते हैं। इन सबकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इसी प्रकार केवलिक्षीणकषायवीतराग के भी पूर्ववत् सयोगिकेवली और अयोगिकेवली तथा प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद होते हैं। इनकी व्याख्या भी पूर्ववत समझ लेनी चाहिए। इन सबकी अपेक्षा से जो आर्य होते है, वे तथारूप चारित्रार्य कहलाते हैं।[1]

सामायिकचारित्रार्य का स्वरूप—सम का अर्थ है—राग और द्वेष से रहित। समरूप आय को समाय कहते है। अथवा सम का अर्थ है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इनके आय अर्थात् लाभ अथवा प्राप्ति को समाय कहते है। अथवा 'समाय' शब्द साधु की समस्त क्रियाओ का, उपलक्षण है, क्योंकि साधु की समस्त क्रियाएँ राग-द्वेष से रहित होती हैं। पूर्वोक्त 'समाय' से जो निष्पन्न हो, सम्पन्न हो अथवा 'समाय' मे होने वाला सामायिक है। अथवा समाय ही सामायिक है; जिसका तात्पर्य है—सर्व सावद्य कार्यों से विरति। महाव्रती साधु-साध्वियो के चारित्र को सामायिक-चारित्र कहा गया है, क्योंकि महाव्रती जीवन अगीकार करते समय समस्त सावद्य कार्यों अथवा योगों से निवृत्तिरूप सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है। यद्यपि सामायिकचारित्र मे साधु के समस्त चारित्रो का अन्तर्भाव हो जाता है, तथापि छेदोपस्थापना आदि विशिष्ट चारित्रो से सामायिक-चारित्र मे उत्तरोत्तर विशुद्धि और विशेषता आने के कारण उन चारित्रो को पृथक् ग्रहण किया गया है। सामायिकचारित्र के दो भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक का अर्थ है—अल्पकालिक और यावत्कथिक का अर्थ है—आजीवन (जीवनभर का, यावज्जीव का)। इत्वरिकसामायिक-चारित्र, भरत और ऐरवत क्षेत्रो में, प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ मे, महाव्रतों का आरोपण नही किया गया हो, तब तक शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है। अर्थात्—दीक्षाग्रहणकाल में महा-व्रतारोपण से पूर्व तक का शैक्ष (नवदीक्षित) का चारित्र इत्वरिकसामायिक-चारित्र होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों तथा महाविदेहक्षेत्रीय तीर्थंकरो के तीर्थ मे साधुओ के यावत्कथिकसामायिक-चारित्र होता है। क्योंकि उनके उपस्थापना नही होती, अर्थात्—

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५५ से ६० तक
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भाग १, पृ. ४५३ से ५१२ तक

उन्हें महाव्रतारोपण के लिए दूसरी बार दीक्षा नही दी जाती। इस प्रकार के सामायिकचारित्र की आराधना के कारण से जो आर्य हैं वे सामायिकचारित्रार्य कहलाते हैं।

छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य—जिस चारित्र मे पूर्वपर्याय का छेद, और महाव्रतो में उपस्थापन किया जाता है वह छेदोपस्थापनचारित्र है। वह दो प्रकार का है—सातिचार और निरतिचार। निरतिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है—जो इत्वरिक सामायिक वाले शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ मे जाने पर अगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के तीर्थ से वर्द्धमान के तीर्थ मे आने वाले श्रमण को पचमहाव्रतरूप चारित्र स्वीकार करने पर दिया जाने वाला छेदोस्थापनचारित्र निरतिचार है। सातिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है जो मूलगुणों (महाव्रतो) मे से किसी का विघात करने वाले साधु को पुन महाव्रतोच्चारण के रूप मे दिया जाता है। यह दोनो हो प्रकार का छेदोपस्थापनचारित्र स्थितकल्प मे—अर्थात्—प्रथम और चरम तीर्थकरों के तीर्थ में होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थकरो के तीर्थ में नही। छेदोपस्थापनचारित्र की आराधना करने के कारण साधक को छेदोपस्थापनचारित्रार्य कहा जाता है।

परिहारविशुद्धिचारित्रार्य का स्वरूप—परिहार एक विशिष्ट तप है, जिससे दोषों का परिहार किया जाता है। अत: जिस चारित्र मे उक्त परिहार तप से विशुद्धि प्राप्त होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। उसके दो भेद हैं—निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक। जिस चारित्र में साधक प्रविष्ट होकर उस तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हो, उसे निर्विशमानक-चारित्र कहते हैं और जिस चारित्र मे साधक तपोविधि के अनुसार तप का आराधन कर चुके हो, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिकचारित्र है। इस प्रकार के चारित्र अगीकार करने वाले साधको को भी क्रमश: निर्विशमान और निर्विष्टकायिक कहा जाता है। नौ साधु मिल कर इस परिहारतप की आराधना करते हैं। उनमे सेचार साधु निर्विशमानक होते है। जो इस तप को करते हैं और चार साधु उनके अनुचारी अर्थात् वैयावृत्य करने वाले होते हैं तथा तथा एक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है। यद्यपि सभी साधु श्रुतातिशयसम्पन्न होते हैं, तथापि यह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमे एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित कर लिया जाता है। निर्विशमान साधुओ का परिहारतप इस प्रकार होता है—ज्ञानीजनो ने पारिहारको का शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाकाल मे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तप इस प्रकार बताया है—ग्रीष्मकाल मे जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठभक्त और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होता है, शिशिरकाल मे जघन्य षष्ठभक्त (बेला), मध्यम अष्टमभक्त (तेला) और उत्कृष्ट दशमभक्त (चौला) तप होता है। वर्षाकाल में जघन्य अष्टमभक्त, मध्यम दशमभक्त और उत्कृष्ट द्वादशभक्त (पंचौला) तप। पारणे मे आयम्बिल किया जाता है। भिक्षा मे पाच (वस्तुओ) का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित भी प्रतिदिन इसी प्रकार आयम्बिल करते हैं। इस प्रकार छह महीने तक तप करके पारिहारिक (निर्विशमानक) साधु अनुचारी (वैयावृत्य करने वाले) बन जाते हैं, और जो चार अनुचारी थे, वे छह महीने के लिए पारिहारिक बन जाते हैं। इसी प्रकार कल्पस्थित (वाचनाचार्य पदस्थित) साधु भी छह महीने के पश्चात् पारिहारिक बन कर अगले ६ महीनो तक के लिये तप करता है। और शेष साधु अनुचारी तथा कल्पस्थित बन जाते हैं। यह कल्प कुल १८ मास का सक्षेप में कहा गया है। कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधु या तो जिनकल्प को अगीकार कर लेते हैं, या अपने गच्छ में पुन: लौट आते हैं। परिहार तप के प्रतिपद्यमानक इस तप को या तो तीर्थंकर भगवान् के सान्निध्य में अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर

से स्वीकार किया हो, उसके पास से अंगीकार करते हैं; अन्य के पास नहीं। ऐसे मुनियो का चारित्र परिहारविशुद्धिचारित्र कहलाता है। इस चारित्र की आराधना करने वाले को **परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य** कहते हैं।

परिहारविशुद्धिचारित्री दो प्रकार के होते हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक वे होते हैं, जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी कल्प या गच्छ में आ जाते हैं। जो कल्प समाप्त होते ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते हैं, वे यावत्कथिकचारित्री कहलाते हैं। इत्वरिक-परिहारविशुद्धिकों को कल्प के प्रभाव से देवादिकृत उपसर्ग, प्राणहारक आतक या दु:सह वेदना नही होती किन्तु जिनकल्प को अंगीकार करने वाले यावत्कथिकों को जिनकल्पी भाव का अनुभव करने के साथ ही उपसर्ग होने सम्भव हैं।

सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य का स्वरूप—जिसमें सूक्ष्म अर्थात् संज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सम्पराय—कषाय का ही उदय रह गया हो, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। यह चारित्र दसवे गुणस्थान वालो मे होता है, जहाँ सज्वलनकषाय का सूक्ष्म अश ही शेष रह जाता है। इसके दो भेद हैं—विशुद्धयमानक और संक्लिश्यमानक। क्षपकश्रेणी या उपसमश्रेणी पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धयमानक होता है, जबकि उपशमश्रेणी के द्वारा ग्यारहवें गुणस्थान मे पहुँच कर वहाँ से गिरने वाला मुनि जब पुन: दसवे गुणस्थान में आता है, उस समय का सूक्ष्मसम्पराय-चारित्र सक्लिश्यमानक कहलाता है। सूक्ष्मसम्परायचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, उन्हें **सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य** कहते हैं।

यथाख्यातचारित्रार्य—'यथाख्यात' शब्द मे यथा+आ+आख्यात, ये तीन शब्द सयुक्त हैं, जिनका अर्थ होता है—यथा (यथार्थरूप से) आ (पूरी तरह से) आख्यात (कषायरहित कहा गया) हो अथवा **जिस प्रकार समस्त लोक में ख्यात—प्रसिद्ध जो अकषायरूप हो,** वह चारित्र, यथाख्यातचारित्र कहलाता है। इस चारित्र के भी दो भेद हैं—छाद्मस्थिक (छद्मस्थ—यानी ग्यारहवें, बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तेरहवें गुणस्थानवर्ती-सयोगिकेवली और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली का)। इस प्रकार के यथाख्यातचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, वे **यथाख्यातचारित्रार्य** कहलाते हैं।[1]

चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना

१३९. से किं तं देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—भवणवासी १ वाणमंतरा २ जोइसिया ३ वेमाणिया ४।

[१३९ प्र.] देव कितने प्रकार के हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ६३ से ६८ तक

(ख) **सव्वमिणं समाइयं छेयाइविसेसियं पुण विभिन्नं।**
अविसेसं समाइय चियमिह सामन्नसन्नाए॥—प्र. म. वृ., प. ६३

(ग) **अह सद्दो उ जहत्थे, अडोऽभिविहीए कहियमक्खायं।**
चरणमकसायमुइयं तहमक्खायं जहक्खायं॥—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ६८

[१३९ उ] देव चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) भवनवासी, (२) वाण-व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

१४०. [१] से किं तं भवणवासी ?

भवणवासी दसविहा पन्नत्ता। तं जहा—असुरकुमारा १ नागकुमारा २ सुवण्णकुमारा ३ विज्जुकुमारा ४ अग्गिकुमारा ५ दीवकुमारा ६ उदहिकुमारा ७ दिसाकुमारा ८ वाउकुमारा ९ थणियकुमारा १०।

[१४०-१ प्र] भवनवासी देव किस प्रकार के है ?

[१४०-१ उ] भवनवासी देव दस प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवन (वायु) कुमार और (१०) स्तनितकुमार।

(२) ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं भवणवासी।

[१४०-२] ये (दस प्रकार के भवनवासी देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

यह भवनवासी देवो की प्ररूपणा हुई।

१४१. [१] से किं तं वाणमंतरा ?

वाणमंतरा अट्ठविहा पण्णत्ता। तं जहा—किन्नरा १ किंपुरिसा २ महोरगा ३ गंधव्वा ४ जक्खा ५ रक्खसा ६ भूया ७ पिसाया ८।

[१४१-१ प्र] वाणव्यन्तर देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४१-१ उ] वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गए हैं। जैसे—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच।

[२] से समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं वाणमंतरा।

[१४१-२] वे (उपर्युक्त किन्नर आदि आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ उक्त वाणव्यन्तरो का वर्णन।

१४२. [१] से किं तं जोइसिया ?

जोइसिया पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—चंदा १ सूरा २ गहा ३ नक्खत्ता ४ तारा ५।

[१४२-१ प्र] ज्योतिष्क देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४२-१ उ] ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं। यथा— (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारे।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं जोइसिया।

[१४२-२] वे (उपर्युक्त पाच प्रकार के ज्योतिष्क देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ज्योतिष्क देवों का निरूपण है।

१४३. से किं तं वेमाणिया ?

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—कप्पोवगा य कप्पातीता य।

[१४३ प्र.] वैमानिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४३ उ] वैमानिक देव दो प्रकार के हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

१४४. [१] से किं तं कप्पोवगा ?

कप्पोवगा बारसविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोहम्मा १ ईसाणा २ सणंकुमार ३ माहिंदा ४ बंभलोया ५ लंतया ६ सुक्का ७ सहस्सारा ८ आणता ९ पाणता १० आरणा ११ अच्चुता १२।

[१४४-१ प्र.] कल्पोपपन्न कितने प्रकार के हैं ?

[१४४-१ उ.] कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गए हैं—(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं कप्पोवगा।

[१४४-२] वे (बारह प्रकार के कल्पोपपन्न देव) सक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह कल्पोपपन्न देवो की प्ररूपणा हुई।

१४५. से किं तं कप्पातीया ?

कप्पातीया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—गेवेज्जगा य अणुत्तरोववाइया य।

[१४५ प्र] कल्पातीत देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४५ उ.] कल्पातीत देव दो प्रकार के हैं—ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक।

१४६. [१] से किं तं गेवेज्जगा ?

गेवेज्जगा णवविहा पण्णत्ता। तं जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगा १ हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगा २ हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा ३ मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ४ मज्झिममज्झिमगेवेज्जगा ५ मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा ६ उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ७ उवरिममज्झिमगेवेज्जगा ८ उवरिमउवरिमगेवेज्जगा ९।

[१४६-१ प्र.] ग्रैवेयक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४६-१ उ.] ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक, (२) अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक, (३) अधस्तन-उपरिम-ग्रैवेयक, (४) मध्यम-

अधस्तन-ग्रैवेयक, (५) मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक, (६) मध्यम-उपरिम-ग्रैवेयक, (७) उपरिम-अधस्तन-ग्रैवेयक, (८) उपरिम-मध्यम-ग्रैवेयक और (९) उपरिम-उपरिम-ग्रैवेयक मे रहने वाले ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से तं गेवेज्जगा ।

[१४६-२] ये (उपर्युक्त नौ प्रकार के ग्रैवेयक देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह ग्रैवेयकों का निरूपण हुआ ।

१४७. [१] से किं तं अणुत्तरोववाइया ?

अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—विजया १ वेजयंता २ जयंता ३ अपराजिता ४ सव्वट्ठसिद्धा ५ ।

[१४७-१ प्र] अनुत्तरौपपातिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४७-१ उ.] अनुत्तरौपपातिक देव पाच प्रकार के कहे गए हैं—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध, (विमानो मे रहने वाले) ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से त्तं अणुत्तरोववाइया । से त्तं कप्पाईया । से त्तं वेमाणिया । से त्तं देवा । से त्तं पंचिंदिया । से त्तं संसारसमावण्ण-जीवपण्णवणा । से त्तं जीवपण्णवणा । से त्तं पण्णवणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए पढमं पण्णवणापयं समत्तं ।।

[१४७-२] ये सक्षेप मे दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह हुई अनुत्तरौपपातिक देवों की प्ररूपणा । साथ ही उक्त कल्पातीत देवो का निरूपण पूर्ण हुआ, और इससे सम्बन्धित वैमानिक देवो का निरूपण भी पूर्ण हुआ । इसके पूर्ण होने पर देवो का वर्णन भी पूर्ण हुआ । साथ ही पचेन्द्रिय जीवो का वर्णन भी पूरा हुआ । इसकी समाप्ति के साथ ही उक्त संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना पूर्ण हुई; और इससे सम्बन्धित जीवप्रज्ञापना भी समाप्त हुई । इस प्रकार यह प्रथम प्रज्ञापनापद पूर्ण हुआ ।

विवेचन—चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. १३९ से १४७ तक) मे चार प्रकार के देवो के भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है ।

भवनवासी देवों का स्वरूप—जो देव प्राय. भवनो मे निवास किया करते हैं, वे भवनवासी देव कहलाते हैं । यह कथन बहुलता से नागकुमार आदि देवो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि वे (नागकुमारादि) ही प्राय: भवनो में निवास करते है, कदाचित् आवासो में भी रहते हैं; किन्तु असुरकुमार प्राय: आवासो में रहते हैं, कदाचित् भवनो मे भी निवास करते हैं । भवन और आवास में अन्तर यह है कि भवन तो बाहर से वृत्त (गोलाकार) तथा भीतर से समचौरस होते हैं, और नीचे कमल की कर्णिका के आकार के होते हैं, जबकि आवास कायप्रमाण स्थान वाले महामण्डप होते हैं, जो अनेक प्रकार के मणि-रत्नरूपी प्रदीपो से समस्त दिशाओ को प्रकाशित करते हैं । भवनवासी देवों के प्रत्येक प्रकार के नाम के साथ सलग्न 'कुमार' शब्द इनकी विशेषता का द्योतक है । ये दसों ही प्रकार के देव कुमारो के समान चेष्टा करते हैं अतएव 'कुमार' कहलाते हैं । ये कुमारो की तरह सुकुमार होते हैं, इनकी चाल (गति) कुमारों की तरह मृदु, मधुर और ललित होती है । शृंगार-

प्रसाधनार्थ ये नाना प्रकार की विशिष्ट एवं विशिष्टतर उत्तरविक्रिया किया करते हैं। कुमारों की तरह ही इनके रूप, वेशभूषा, भाषा, आभूषण, शस्त्रास्त्र, यान एवं वाहन ठाठदार होते हैं। ये कुमारो के समान तीव्र अनुरागपरायण एवं क्रीडातत्पर होते हैं।

वाणव्यन्तर देवों का स्वरूप—अन्तर का अर्थ है--अवकाश, आश्रय या जगह। जिन देवों का अन्तर (आश्रय), भवन, नगरावास आदि रूप हो, वे व्यन्तर कहलाते हैं। वाणव्यन्तर देवों के भवन रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम रत्नकाण्ड मे ऊपर और नीचे सौ-सौ योजन छोड़ कर शेष आठ-सौ योजन-प्रमाण मध्यभाग में हैं, इनके नगर तिर्यग्लोक मे भी हैं; तथा इनके आवास तीन लोको मे हैं, जैसे ऊर्ध्वलोक में इनके आवास पाण्डुकवन आदि में हैं। व्यन्तर शब्द का दूसरा अर्थ है—मनुष्यो से जिनका अन्तर नही (विगत) हो, क्योंकि कई व्यन्तर चक्रवर्ती, वासुदेव आदि मनुष्यों की सेवक की तरह सेवा करते है। अथवा जिनके पर्वतान्तर, कन्दरान्तर या वनान्तर आदि आश्रयरूप विविध अन्तर हों, वे व्यन्तर कहलाते हैं। अथवा वानमन्तर का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—वनो का अन्तर वनान्तर है, जो वनान्तरो में रहते है, वे वानमन्तर।

वाणव्यन्तरो के किन्नर आदि आठ भेद हैं। **किन्नर** के दस भेद हैं—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) किम्पुरुषोत्तम, (४) किन्नरोत्तम, (५) हृदयगम, (६) रूपशाली, (७) अनिन्दित, (८) मनोरम, (९) रतिप्रिय और (१०) रतिश्रेष्ठ। **किम्पुरुष** भी दस प्रकार के होते है—(१) पुरुष, (२) सत्पुरुष, (३) महापुरुष, (४) पुरुषवृषभ, (५) पुरुषोत्तम, (६) अतिपुरुष, (७) महादेव, (८) मरुत, (९) मेरुप्रभ और (१०) यशस्वन्त। **महोरग** भी दस प्रकार के होते हैं—(१) भुजग, (२) भोगशाली, (३) महाकाय, (४) अतिकाय, (५) स्कन्धशाली, (६) मनोरम, (७) महावेग, (८) महायक्ष, (९) मेरुकान्त और (१०) भास्वन्त। **गन्धर्व** १२ प्रकार के होते है—(१) हाहा, (२) हूहू, (३) तुम्बरव, (४) नारद, (५) ऋषिवादिक, (६) भूतवादिक, (७) कादम्ब, (८) महाकदम्ब, (९) रैवत, (१०) विश्वावसु, (११) गीतरति और (१२) गीतयश। **यक्ष** तेरह प्रकार के होते हैं—(१) पूर्णभद्र, (२) मणिभद्र, (३) श्वेतभद्र, (४) हरितभद्र, (५) सुमनोभद्र, (६) व्यतिपातिकभद्र, (७) सुभद्र, (८) सर्वतोभद्र, (९) मनुष्ययक्ष, (१०) वनाधिपति, (११) वनाहार, (१२) रूपयक्ष और (१३) यक्षोत्तम। **राक्षस** देव सात प्रकार के होते हैं—(१) भीम, (२) महाभीम, (३) विघ्न, (४) विनायक, (५) जलराक्षस, (६) राक्षस-राक्षस और (७) ब्रह्मराक्षस। **भूत** नौ प्रकार के होते हैं—(१) सुरूप, (२) प्रतिरूप, (३) अतिरूप, (४) भूतोत्तम, (५) स्कन्द, (६) महास्कन्द, (७) महावेग, (८) प्रतिच्छन्न और (९) आकाशग। **पिशाच** सोलह प्रकार के होते है—(१) कूष्माण्ड, (२) पटक, (३) सुजोष, (४) आह्निक, (५) काल, (६) महाकाल, (७) चोक्ष, (८) अचोक्ष, (९) तालपिशाच, (१०) मुखरपिशाच, (११) अधस्तारक, (१२) देह, (१३) विदेह, (१४) महादेह, (१५) तृष्णीक और (१६) वनपिशाच।

ज्योतिष्क देवों का स्वरूप—जो लोक को द्योतित—ज्योतित—प्रकाशित करते है वे ज्योतिष्क कहलाते है। अथवा जो द्योतित करते है, वे ज्योतिष्-विमान हैं, उन ज्योतिर्विमानो मे रहने वाले देव ज्योतिष्क देव कहलाते हैं। अथवा जो मस्तक के मुकुटों से आश्रित प्रभामण्डलसदृश सूर्यमण्डल आदि के द्वारा प्रकाश करते हैं, वे सूर्यादि ज्योतिष्कदेव कहलाते हैं। सूर्यदेव के मुकुट के अग्रभाग में सूर्य के आकार का, चन्द्रदेव के मुकुट के अग्रभाग मे चन्द्र के आकार का, ग्रहदेव के मुकुट के अग्रभाग

में ग्रह के आकार का, नक्षत्रदेव के मुकुट के अग्रभाग मे नक्षत्र के आकार का और तारकदेव के मुकुट के अग्रभाग में तारक के आकार का चिह्न होता है। इससे वे प्रकाश करते है।

वैमानिक देवों का स्वरूप—वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं—(१) कल्पोपपन्न या कल्पोपपन्न और (२) कल्पातीत। कल्पोपपन्न का अर्थ है—कल्प यानी आचार—अर्थात्—इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार और मर्यादा। उक्त कल्प से युक्त व्यवहार जिनमें हो, वे देव कल्पोपपन्न कहलाते है और जिनमे ऐसा कल्प न हो, वे कल्पातीत कहलाते हैं। सौधर्म आदि देव कल्पोपपन्न और नौ ग्रैवेयक तथा पाच अनुत्तरौपपातिक देव कल्पातीत कहलाते हैं। लोकपुरुष की ग्रीवा पर स्थित होने से ये विमान ग्रैवेयक कहलाते हैं। अनुत्तर का अर्थ है—सर्वोच्च एव सर्वश्रेष्ठ विमान। उन अनुत्तर विमानो मे उपपात यानी जन्म होने के कारण ये देव अनुत्तरौपपातिक कहलाते हैं।

।। प्रज्ञापना सूत्र : प्रथम प्रज्ञापनापद समाप्त ।।

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह द्वितीय स्थानपद है।
- प्रथम पद मे ससारी और सिद्ध, इन दो प्रकार के जीवों के भेद-प्रभेद बताए गए हैं। उन-उन जीवों के निवासस्थान का जानना आवश्यक होने से इस द्वितीय 'स्थानपद' में उसका विचार किया गया है।
- जीवों के निवासस्थान का विचार करना इसलिए भी आवश्यक है कि अन्य दर्शनो की तरह जैनदर्शन में आत्मा को सर्वव्यापक नही, किन्तु उस-उस जीव के शरीरप्रमाणव्यापी सकोच-विकासशील माना गया है। इसके अतिरिक्त जैनदर्शन में अन्य दर्शनो की मान्यता की तरह आत्मा कूटस्थनित्य नही, किन्तु परिणामीनित्य मानी गई है। इस कारण ससार मे नाना पर्यायो के रूप मे उसका जन्म होता है तथा नियत स्थान से ही वह शरीर धारण करती है। अतएव कौन-सा जीव किस स्थान मे होता है ? इसका विचार करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरे दर्शनो की दृष्टि से जीव सदैव सर्वत्र लोक में उपलब्ध है ही, वे केवल शरीर की दृष्टि से भले ही निवास स्थान का विचार कर लें, आत्मा की दृष्टि से जीव के स्थान का विचार उनके लिए अनिवार्य नही।[1]
- प्रस्तुत 'स्थानपद' मे अकित मूलपाठ के अनुसार जीव के दो प्रकार के निवासस्थान फलित होते हैं—(१) **स्थायी** और (२) **प्रासंगिक**। जन्म धारण करने से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीव जहाँ (जिस स्थान में) रहता है, उस निवास स्थान को स्थायी कहा जा सकता है, शास्त्रकार ने जिसका उल्लेख **'स्वस्थान'** के नाम से किया है। प्रासंगिक निवासस्थान का विचार **'उपपात'** और **'समुद्घात'** इन दो प्रकारो से किया गया है।
- जैनशास्त्रीय परिभाषानुसार पूर्वभव की आयु समाप्त (मृत्यु) होते ही जीव नये नाम (पर्याय) से पहचाना जाता है। उदाहरणार्थ कोई जीव पूर्वभव मे देव था, किन्तु वहाँ से मर कर वह मनुष्य होने वाला हो तो देवायु समाप्त होने से वह मनुष्य नाम से पहचाना जाता है। परन्तु जीव (आत्मा) सर्वव्यापक न होने से, शरीरप्रमाणव्यापी जीव को मृत्यु के पश्चात् नया जीवन स्वीकार करने हेतु यात्रा करके स्वजन्मस्थान में जाना पड़ता है। क्योंकि देवलोक तो उस जीव ने छोड़ दिया और मनुष्यलोक में अभी तक पहुँचा नहीं है, तब तक उसका यह यात्राकाल है। इस यात्रा के दौरान उस जीव ने जिस प्रदेश की यात्रा की, वह भी उसका स्थान तो है ही।

---

१. (क) प्रमाणनयतत्त्वालोक (रत्नाकरावतारिका) परि. ४
(ख) पण्णवणासुत्तं पद २ की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८

इसी स्थान को शास्त्रकार ने **'उपपातस्थान'** कहा है। स्पष्ट है कि यह स्थान प्रासंगिक है, फिर भी अनिवार्य तो है ही।

☐ दूसरा प्रासगिक स्थान है—'समुद्घात'। वेदना मृत्यु या विक्रिया आदि के विशिष्ट प्रसंगों पर जैनमतानुसार जीव के प्रदेशो का विस्तार होता है, जिसे जैन परिभाषा में 'समुद्घात' कहते हैं; जो कि अनेक प्रकार का है। समुद्घात के समय जीव के (आत्म-) प्रदेश शरीर स्थान मे रहते हुए भी किसी न किसी स्थान मे बाहर भी समुद्घात पर्यन्त रहते हैं। अत. समुद्घात की अपेक्षा से जीव के इस प्रासगिक या कादाचित्क निवासस्थान का विचार भी आवश्यक है। इसीलिए प्रस्तुत पद मे नानाविध जीवो के विषय मे स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घात-स्थान, यों तीन प्रकार के निवासस्थानो का विचार किया गया है। षट्खण्डागम में भी खेत्ताणुगमप्रकरण मे स्वस्थान, उपपात और समुद्घात को लेकर स्थान—क्षेत्र का विचार किया गया है।[1]

☐ प्रस्तुत 'स्थानप्रद' में जीवों के जिन भेदों के स्थानो के विषय में विचार और क्रम बताया गया है, उस पर से मालूम होता है कि प्रथमपद मे निर्दिष्ट जीवभेदो मे से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदों का विचार नही किया गया, किन्तु 'पचेन्द्रिय' जैसे सामान्य भेदो का विचार किया गया है। प्रथमपद-निर्दिष्ट सभी विशेष भेद-प्रभेदो के स्थानो का विचार प्रस्तुत पद मे नही किया गया है, किन्तु मुख्य-मुख्य भेद-प्रभेदो के स्थानो का विचार किया गया है।

☐ अन्य सभी जीवो के भेद-प्रभेदों के स्थान के विषय में विचार करते समय पूर्वोक्त तीनो स्थानो का विचार किया गया है, परन्तु सिद्धो के विषय में केवल 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है। इसका कारण यह है कि सिद्धो का उपपात नही होता; क्योंकि अन्य जीवो को उस-उस जन्मस्थान को प्राप्त करने से पूर्व उस-उस नाम, गोत्र और आयु कर्म का उदय होता है, इस कारण से नाम धारण करके, नया जन्म ग्रहण करने हेतु उस गति को प्राप्त करते हैं। सिद्धो के कर्मों का अभाव है, इस कारण सिद्ध रूप मे उनका जन्म नही होता, किन्तु वे स्व (सिद्धि) स्थान की दृष्टि से स्वस्वरूप को प्राप्त करते है, वही उनका स्वस्थान है। मुक्त जीवो की लोकान्त-स्थान तक जो गति होती है, वह जैनमान्यतानुसार आकाश प्रदेशो को स्पर्श करके नही होती, इसलिए मुक्त जीवो का गमन होते हुए भी आकाशप्रदेशो का स्पर्श न होने से उस-उस प्रदेश मे सिद्धो का 'स्थान' होना नही कहलाता। इस दृष्टि से सिद्धो का उपपातस्थान नही होता। समुद्घातस्थान भी सिद्धो को नही होता, क्योंकि समुद्घात कर्मयुक्त जीवो के होता है, सिद्ध कर्मरहित हैं। इसलिए सिद्धो के विषय मे 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है।

☐ 'एकेन्द्रिय जीव समग्र लोक में परिव्याप्त हैं' इस कथन का अर्थ केवल एक एकेन्द्रिय जीव से नहीं, अपितु समग्ररूप से—सामान्यरूप से एकेन्द्रिय जाति से है। तथा तीन स्थानों का पृथक्-पृथक् कथन न करके तीनो स्थान समग्ररूप से समझना चाहिए। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव समग्र लोक में नहीं, किन्तु लोक के असंख्यातवे भाग मे हैं। सामान्य

---

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ४६ से ८०
   (ख) पण्णवणासुत्तं पद २ की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८   (ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. २९९

पंचेन्द्रियों का स्थान भी लोक के असंख्यातवे भाग में है, किन्तु विशेषपचेन्द्रिय के रूप मे नारको, तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों एवं देवो के पृथक्-पृथक् सूत्रो मे उन-उनके स्थानों का पृथक्-प्रथक् निर्देश है। सिद्ध लोक के अग्रभाग में हैं।[1]

[■] जीवभेदों के अनुसार स्थान-निर्देश इस क्रम से किया गया है— (१) पृथ्वीकायिक (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त), (२) अप्कायिक (पूर्ववत्), (३) तेजस्कायिक (पूर्ववत्), (४) वायुकायिक (पूर्ववत्), (५) वनस्पतिकायिक (पूर्ववत्), (६) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (पर्याप्त-अपर्याप्त), (७) पंचेन्द्रिय (सामान्य), (८) नारक (सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त), (९) प्रथम से सप्तम नरक तक (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१०) पचेन्द्रिय तिर्यञ्च (पूर्ववत्), (११) मनुष्य (पूर्ववत्), (१२) भवनवासी देव (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१३) असुरकुमार आदि दस भवनवासी (दक्षिणात्य, औदिच्य, पर्याप्त-अपर्याप्त) (१४) व्यन्तर (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१५) पिशाचादि ८ व्यन्तर (दक्षिण-उत्तर के, पर्याप्त-अपर्याप्त), (१६) ज्योतिष्कदेव, (१७) वैमानिकदेव, (१८) सौधर्म से अच्युत तक, (पर्याप्त-अपर्याप्त) (१९) ग्रैवेयकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) (२०) अनुत्त-रौपपातिकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) और (२१) सिद्ध।[2]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ४६ से ८० तक

(ख) पण्णवणासुत्तं पद दो की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४९-५०

(ग) उत्तराध्ययन अ. ३६, गा. 'सुहुमा सव्वलोगमि'

२. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) विषयानुक्रम, पृ. ३१

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण

१४८. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाण पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेण अट्ठसु पुढवीसु । तं जहा—रयणप्पभाए १ सक्करप्पभाए २ वालुयप्पभाए ३ पंकप्पभाए ४ धूमप्पभाए ५ तमप्पभाए ६ तमतमप्पभाए ७ इसीपब्भाराए ८-१ ।

अहोलोए पायलेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु णिरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु २ ।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३ ।

तिरियलोए टंकेसु कूडेसु सेलेसु सिहरीसु पब्भारेसु विजएसु वक्खारेसु वासेसु वासहरपव्वएसु वेलासु वेइयासु बारेसु तोरणेसु दीवेसु समुद्देसु (-४) ण्क[1] ।

एत्थ णं बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१४८ प्र] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवो के स्थान कहाँ कहे है ?

[१४८ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से वे आठ पृथ्वियो में हैं। वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा मे, (३) वालुकाप्रभा में, (४) पंकप्रभा मे, (५) धूमप्रभा मे, (६) तमःप्रभा में, (७) तमस्तम.प्रभा मे और (८) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे ।

१. अधोलोक में—पातालो में, भवनो में, भवनों के प्रस्तटो (पाथड़ो) मे, नरको मे, नरकावलियो में एव नरक के प्रस्तटो (पाथडो) मे ।

२. ऊर्ध्वलोक मे—कल्पो में, विमानो मे, विमानावलियों में और विमान के प्रस्तटो (पाथड़ो) में ।

३. तिर्यक्लोक में—टको मे, कूटो मे, शैलो मे, शिखर वाले पर्वतो मे, प्राग्भारो (कुछ झुके हुए पर्वतो) मे, विजयों में, वक्षस्कार पर्वतो में, (भारतवर्ष आदि) वर्षों (क्षेत्रो) मे, (हिमवान् आदि) वर्षधरपर्वतो में, वेलाओ (समुद्रतटवर्ती ज्वारभूमियों) मे, वेदिकाओ में, द्वारो में, तोरणो मे, द्वीपो में और समुद्रों में ।

इन (उपर्युक्त भूमियो) मे बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तको के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवें भाग मे है ।

---

१. 'ण्क' चार सख्या का द्योतक है ।

१४९. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता । तं जहा—उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१४९ प्र.] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४९ उ.] गौतम ! जहाँ बादरपृथ्वीकायिक-पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं, वही बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं । जैसे कि—उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से समस्त लोक मे तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे है ।

१५०. कहि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमपुढविकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५० प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५० उ.] गौतम ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक, जो पर्याप्तक हैं और जो अपर्याप्तक है, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषतारहित (सामान्य) हैं, नानात्व (अनेकत्व) से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे समग्र लोक में परिव्याप्त कहे गए हैं ।

विवेचन—पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १४८ से १५० तक) मे बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक सभी प्रकार के पृथ्वीकायिको के स्थानो का निरूपण किया गया है ।

'स्थान' की परिभाषा और प्रकार—जीव जहाँ-जहाँ रहते हैं, जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक जहाँ रहते हैं, उसे **'स्वस्थान'** कहते हैं, जहाँ एक भव से छूट कर दूसरे भव में जन्म लेने से पूर्व बीच में स्वस्थानाभिमुख होकर रहते हैं, उसे **'उपपातस्थान'** कहते हैं और समुद्घात करते समय जीव के प्रदेश जहाँ रहते हैं, जितने आकाशप्रदेश में रहते हैं, उसे **'समुद्घातस्थान'** कहते हैं ।

पृथ्वीकायिकों के तीनों लोकों में निवासस्थान कहाँ-कहाँ और कितने प्रदेश में ? शास्त्रकार ने पृथ्वीकायिको (बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तो) के स्वस्थान तीन दृष्टियो से बताए हैं—(१) सात नरक पृथ्वियो में और आठवी ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे, तत्पश्चात् (२) अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक मे विभिन्न स्थानों में, तथा (३) स्वस्थान मे भी लोक के असख्यातवे भाग मे । इसके अतिरिक्त बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तक के उपपातस्थान क्रमश: लोक के असख्यातवे भाग में तथा सर्वलोक में और समुद्घातस्थान पूर्वोक्त दोनों पृथ्वीकायिकों के क्रमश: लोक के असख्यातवे भाग मे तथा सर्वलोक में बताया गया है ।[1]

---

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा. १, पृ. ६४
   (ख) पण्णवणासुत्त भा. २, पद २ की प्रस्तावना

उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवों का जो स्वस्थान कहा गया है, उसकी प्राप्ति के अभिमुख होना उपपात है, उस उपपात को लेकर वे चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक के असंख्यातवे भाग मे हैं, क्योकि उनका रत्नप्रभादि समुदित स्वस्थान भी लोक के असख्यातवें भाग में है । पर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक थोड़े हैं, इसलिए उपपात के समय अपान्तरालगत होने पर भी वे सभी स्वस्थान लोक के असख्यातवे भाग में होते हैं, इस कथन में कोई दोष नहीं है ।

समुद्घात की अपेक्षा से भी लोक के असख्यातवें भाग में—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव समुद्घात-अवस्था में स्वस्थान के अतिरिक्त क्षेत्रान्तरवर्ती होने पर भी लोक के असख्यातवे भाग में ही होते हैं, कारण यह है कि बादर पृथ्वीकायिकजीव सोपक्रम आयु वाले हों या निरुपक्रम आयु वाले, जब भुज्यमान आयु का तृतीय भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करके मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब उनके दण्डरूप में फैले हुए आत्मप्रदेश भी लोक के असंख्यातवे भाग मे ही होते हैं, क्योंकि वे जीव थोड़े ही होते हैं । उन बादर पृथ्वीकायिको की आयु अभी क्षीण नही हुई, इसलिए वे बादर पृथ्वीकायिक तब (समुद्घात-अवस्था में) भी पर्याप्तरूप मे उपलब्ध होते हैं ।

स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में—स्वस्थान हैं—रत्नप्रभादि । वे सब मिल कर भी लोक के असख्यातवे भाग में हैं । जैसे कि—रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख, अस्सी हजार योजन का है । इसी प्रकार अन्य पृथ्वियों की भिन्न-भिन्न मोटाई भी कह लेनी चाहिए । पातालकलश भी एक लाख योजन अवगाह वाले होते हैं । नरकवास भी तीन हजार योजन ऊँचे होते हैं । विमान भी बत्तीस सौ योजन विस्तृत होते हैं । अतएव ये सभी परिमित होने के कारण सब मिल कर भी असख्यातप्रदेशात्मक लोक के असख्यातवे भागवर्ती ही होते हैं ।

अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक : उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से--दोनो अपेक्षाओ से ये समस्त लोक में रहते हैं । अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक उपपातावस्था मे विग्रहगति (अपान्तराल गति) मे होते हुए भी स्वस्थान में भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की आयु का वेदन विशिष्ट विपाकवश करते है तथा वे देवो व नारकों को छोड़कर शेष सभी कार्यों से उत्पन्न होते हैं, उद्वृत्त होने पर (मरने पर) भी वे देवो और नारकों को छोडकर शेष सभी स्थानो मे जाते है । मर कर स्वस्थान में जाते समय वे विग्रहगति में रहे हुए (उपपातावस्था मे) भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक ही कहलाते हैं, ये स्वभाव से ही प्रचुरसख्या मे होते हैं, इसलिए उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोकव्यापी होते हैं । इनमे से किन्ही का उपपात ऋजुगति से होता है, और किन्ही का वक्रगति से । ऋजुगति तो सुप्रतीत है । वक्रगति की स्थापना इस प्रकार है—जिस समय में प्रथम वक्र (मोड़) को कई जीव सहरण करते हैं, उसी समय दूसरे जीव उस वक्रदेश को आपूरित कर देते हैं । इसी प्रकार द्वितीय वक्रदेश के संहरण में भी, वक्रोत्पत्ति में भी प्रवाह से निरन्तर आपूरण होता रहता है ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तों और अपर्याप्तों के तीन स्थान—सूक्ष्म पृथ्वीकायिको के जो पर्याप्त और अपर्याप्त जीव हैं, वे सभी एक ही प्रकार के हैं, पूर्वोक्त स्थान आदि के विचार की अपेक्षा से इनमे कोई भेद नही होता, कोई विशेष नहीं होता, जैसे पर्याप्त हैं, वैसे ही दूसरे हैं तथा वे नानात्व से रहित हैं, देशभेद से उनमें नानात्व परिलक्षित नही होता । तात्पर्य यह है कि जिन आधारभूत

आकाशप्रदेशों में ये (एक) हैं, उन्हीं में दूसरे हैं। अतः वे सभी सूक्ष्म पृथ्वीकायिक उपपात, समुद्घात और स्वस्थान, इन तीनो अपेक्षाओं से सर्वलोकव्यापी हैं।[1]

कठिन शब्दों के विशेष अर्थ—**'भवणेसु'**—भवनपतियो के रहने के भवनों में, **'भवन-पत्थडेसु'**—भवनों के प्रस्तटों यानी भवनभूमिकाओं में (भवनो के बीच के भागों—अन्तरालो में)। **'णिरएसु णिरयावलिकासु'**—नरको (प्रकीर्णक नरकवासा) मे, तथा आवली रूप से स्थित नरकवासो में। **'कप्पेसु'** —कल्पो—सौधर्मादि बारह देवलोको में। **'विमाणेसु'**—ग्रैवेयकसम्बन्धी प्रकीर्णक विमानों में। **'टंकेसु'**—छिन्न टंकों (एक भाग कटे हुए पर्वतों में)। **'कूडेसु'**—कूटो—पर्वत के शिखरों में। **'सेलेसु'**—शैलों—शिखरहीन पर्वतो में। **'विजयेसु'**—विजयों—कच्छादि विजयों में। **'वक्खारेसु'**—विद्युत्प्रभ आदि वक्षस्कार पर्वतों में। **'वेलासु'**—समुद्रादि के जल की तटवर्ती रमणभूमियों में। **'वेदिकासु'**—जम्बूद्वीप की जगती आदि से सम्बन्धित वेदिकाओं में। **'तोरणेसु'**—विजय आदि द्वारो में, द्वारादि सम्बन्धी तोरणों मे। **'दीवेसु समुद्देसुण्क'**—समस्त द्वीपो और समस्त समुद्रो मे। यहाँ 'ण्क' शब्द 'चार' सख्या का द्योतक है, ऐसा किन्ही विद्वानों का अभिप्राय है।[2]

अप्कायिकों के स्थानों का निरूपण

१५१. कहि णं भंते ! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदधीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

एत्थ णं बादरआउक्काइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५१ प्र.] भगवन् ! बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५१ उ.] गौतम ! (१) स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियों में और सात घनोदधि-वलयों में उनके स्थान हैं।

२—अधोलोक में—पातालों मे, भवनों में तथा भवनों के प्रस्तटों (पाथडों) में हैं।

३—ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमानावलियों (आवलीबद्ध विमानो) में, विमानों के प्रस्तटो (मध्यवर्ती स्थानों) में हैं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३-७४

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३

(ख) पण्णवणासुत्तं मूलपाठ-टिप्पण पृ. ४६

४—तिर्यग्लोक मे—अवटों (कुओं) में, तालाबो में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों (चौकोर बावड़ियों), पुष्करिणियों (गोलाकार बावड़ियों या पुष्कर—कमल वाली बावड़ियों) में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों, सरल-छोटी नदियों) में, गुंजालिकाओ (टेढीमेढी बावडियो) मे, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर:सर:पंक्तियो (नाली द्वारा जिनमे कुए का जल बहता है, ऐसे पंक्तिबद्ध तालाबों में), बिलो मे (स्वाभाविक बनी हुई छोटी कुइओं में), पंक्तिबद्ध बिलो मे, उज्झरो में (पर्वतीय जलस्रोतो में), निर्झरो (झरनों) मे, गड्ढो में पोखरो मे, वप्रों (क्यारियो) में, द्वीपों में, समुद्रों में तथा समस्त जलाशयो मे और जलस्थानो मे (इनके स्थान) है।

इन (पूर्वोक्त) स्थानो में बादर-अप्कायिको के पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवे भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते हैं।

१५२. कहि णं भंते! बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! जत्थेव बादरआउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५२ प्र.] भगवन्! बादर-अप्कायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे गए हैं?

[१५२ उ.] गौतम! जहाँ बादर-अप्कायिक-पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं, वही बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक मे, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे होते हैं।

१५३. कहि णं भंते! सुहुमआउक्काइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! सुहुमआउक्काइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पन्नत्ता समणाउसो!

[१५३ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म-अप्कायिको के पर्याप्तकों और अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे हैं?

[१५३ उ.] गौतम! सूक्ष्म-अप्कायिको के जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक हैं, वे सभी एक प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषतारहित—सामान्य या भेदरहित) हैं, नानात्व से रहित हैं, और आयुष्मन् श्रमणो! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं।

विवेचन—अप्कायिकों के स्थानो का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५१ से १५३ तक) मे बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक अप्कायिकों के स्वस्थान, उपपात और समुद्घात, इन तीनों अपेक्षाओ से स्थानो का निरूपण किया गया है।

'घणोदधिवलएसु' इत्यादि शब्दों की व्याख्या—'घणोदधिवलएसु'—स्व-स्वपृथ्वी-पर्यन्त प्रदेश को वेष्टित करने वाले वलयाकारो में। **'पायालेसु'**—वलयामुख आदि पातालकलशों में। क्योंकि उनमें भी दूसरे में देशत त्रिभाग में और तीसरे मे त्रिभाग में सर्वात्मना जल का सद्भाव रहता है।

'भवणेसु कप्पेसु विमाणेसु'—भवनपतियो के भवनों में, कल्पो-देवलोको मे, तथा विमानो—सौधर्मादि-कल्पगत विमानो में, तथा इसके प्रस्तटों एव विमानावलियों में जल बावड़ी आदि में होता है। ग्रैवेयक आदि विमानो में बावड़िया नही होती, अत वहां जल नही होता।[1]

तेजस्कायिकों के स्थानों का निरूपण

१५४. कहि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्म-भूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु।

एत्थ णं बादरतेउक्काइयाणं पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं[2] लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५४ प्र] भगवन् ! बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५४ उ.] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से—मनुष्यक्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीप-समुद्रो मे, निर्व्याघात (बिना व्याघात) से पन्द्रह कर्मभूमियो में, व्याघात की अपेक्षा से—पाच महाविदेहों मे (इनके स्थान हैं)।

इन (उपर्युक्त) स्थानो मे बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे (वे) होते हैं।

१५५. कहि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरतेउकाइयाण पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरतेउकाइयाण अपज्जत्त-गाणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु[3] तिरियलोयतट्टे य, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५५ प्र.] भगवन् ! बादर तेजस्कायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५५ उ.] गौतम ! जहाँ बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तको के स्थान है, वही बादर तेज-स्कायिकों के अपर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों में तथा तिर्यग्लोक के तट्ट (स्थालरूप

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७४-७५

२. पाठान्तर—तीसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे

३. पाठान्तर—दोसुड्ढक

स्थान) में एवं समुद्घात की अपेक्षा से—सर्वलोक मे तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५६. कहि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमतेउकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५६ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म तेजस्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५६ उ.] गौतम ! सूक्ष्म तेजस्कायिक, जो पर्याप्त हैं और अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष हैं, (उनमे विशेषता या भिन्नता नही है) उनमे नानात्व नही है, हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं।

विवेचन—तेजस्कायिक के स्थान का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. १५४ से १५६ तक) मे बादर-सूक्ष्म के पर्याप्त एव अपर्याप्त तेजस्कायिको के स्वस्थान, उपपात स्थान एव समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों के स्थान—स्वस्थान की अपेक्षा से—वे मनुष्यक्षेत्र के अन्दर-अन्दर हैं। अर्थात् मनुष्यक्षेत्र के अन्तर्गत ढाई द्वीपो एव दो समुद्रो मे हैं। व्याघाताभाव से वे पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियो मे होते हैं; और व्याघात होने पर पांच महाविदेह क्षेत्रो में होते हैं। तात्पर्य यह है कि अत्यन्तस्निग्ध या अत्यन्तरूक्ष काल व्याघात कहलाता है। इस प्रकार के व्याघात होने पर अग्नि का विच्छेद हो जाता है। जब पाच भरत पाच ऐरवत क्षेत्रो मे सुषम-सुषम, सुषम, तथा सुषम-दुष्षम आरा प्रवृत्त होता है, तब वह अतिस्निग्ध काल कहलाता है। उधर दुष्षम-दुष्षम आरा अतिरूक्ष काल कहलाता है। ये दोनो प्रकार के काल हों तो व्याघात—अग्निविच्छेद होता है। अगर ऐसी व्याघात की स्थिति हो तो पचमहाविदेह क्षेत्रो मे ही बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते है। अगर इस प्रकार के व्याघात से रहित काल हो तो पन्द्रह ही कर्मभूमिक क्षेत्रो में बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते हैं।

विग्रहगति मे यथोक्त स्वस्थान-प्राप्ति के अभिमुख—उपपात अवस्था में स्थान का विचार करने पर ये लोक के असख्यातवें भाग में ही होते है, क्योकि उपपात के समय वे बहुत थोड़े होते हैं। समुद्घात की अपेक्षा से विचार करे तो मारणान्तिक समुद्घातवश दण्डरूप में आत्मा प्रदेशो को फैलाने पर भी वे थोड़े होने से लोक के असख्यातवें भाग में ही समा जाते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा से भी वे लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं। क्योंकि मनुष्यक्षेत्र कुल ४५ लाख योजनप्रमाण लम्बा-चौड़ा है, जो कि लोक का असख्यातवां भागमात्र है।[1]

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकों के स्थान—पर्याप्तकों के आश्रय से ही अपर्याप्त जीव रहते हैं, इस दृष्टि से जहाँ पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं अपर्याप्तकों के हैं। उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों तथा तिर्यग्लोकतट्ट में बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक रहते हैं। आशय यह है

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७५

कि अढाई द्वीप-समुद्रों से निकले हुए, अढाई द्वीप-समुद्रप्रमाण विस्तृत एव पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त जो दो कपाट हैं, वे केवलिसमुद्घातसमय के कपाट की तरह ऊपर भी लोक के अन्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं और नीचे भी लोकान्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं, ये ही **'दो ऊर्ध्वकपाट'** कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त तट्ट का अर्थ है—स्थाल (थाल)। अर्थात्—स्थालसदृश तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) कहलाता है। आशय यह है कि स्वयम्भूरमणसमुद्र की वेदिकापर्यन्त अठारह सौ योजन मोटा समस्त तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) है।

निष्कर्ष यह है कि उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटो एव तिर्यग्लोकरूप तट्ट मे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीवों के स्थान हैं।

'लोयस्स दोसुद्धकवाडेसु तिरियलोयतट्ठे' इस पाठान्तर के अनुसार यह अर्थ भी हो सकता है—लोक के उन दोनों ऊर्ध्वकपाटों मे जो स्थित हो, वह तट्ठ—'तत्स्थ'। इस प्रकार—तिर्यग्लोक रूप तत्स्थ में—अर्थात्—उन दो ऊर्ध्वकपाटो के अन्दर स्थित तिर्यग्लोक में वे होते हैं। निष्कर्ष यह हुआ कि पूर्वोक्त दोनों ऊर्ध्वकपाटों मे और तिर्यग्लोक में भी (स्थित) उन्हीं कपाटों में अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकजीवों का उपपातस्थान है, अन्यत्र नही।

अभिमुखनामगोत्र अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक का प्रस्तुत अधिकार—यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक तीन प्रकार के होते हैं—

(१) एकभविक, (२) बुद्धायुष्क और (३) अभिमुखनामगोत्र। जो जीव विवक्षित भव के अनन्तर आगामी भव मे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकरूप में उत्पन्न होंगे वे **एकभाविक** कहलाते हैं, जो जीव पूर्वभव की आयु का त्रिभाग आदि समय शेष रहते बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु बाध चुके हैं, वे **बुद्धायुष्क** कहलाते हैं और जो पूर्वभव को छोड़ने के पश्चात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु, नाम और गोत्र का साक्षात् वेदन (अनुभव) कर रहे हैं, अर्थात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक-पर्याय का अनुभव कर रहे हैं, वे **'अभिमुखनामगोत्र'** कहलाते हैं। इन तीन प्रकार के बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको में से प्रथम के दो—एकभविक और बुद्धायुष्क—द्रव्यनिक्षेप से ही बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक हैं, भावनिक्षेप से नहीं, क्योंकि ये दोनों उस समय आयु, नाम और गोत्र का वेदन नहीं करते; अतएव यहाँ इन दोनों का अधिकार नही है, किन्तु यहाँ केवल अभिमुख-नामगोत्र बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिकों का ही अधिकार समझना चाहिए; क्योंकि वे ही स्वस्थान प्राप्ति के आभिमुख्यरूप उपपात को प्राप्त करते हैं। यद्यपि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वे भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक के आयुष्य, नाम एवं गोत्र का वेदन करने के कारण पूर्वोक्त कपाटयुगल-तिर्यग्लोक के बाहर स्थित होते हुए भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को प्राप्त कर लेते है, तथापि यहाँ व्यवहारनय की दृष्टि को स्वीकार करने के कारण जो स्वस्थान में समश्रेणिक कपाट-युगल में स्थित हैं, और जो स्वस्थान से अनुगत तिर्यग्लोक में प्रविष्ट हैं, उन्ही को बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम से कहा जाता है; शेष जो कपाटो के अन्तराल में स्थित हैं, उनका नही क्योंकि वे विषमस्थानवर्ती हैं। इस प्रकार जो अभी तक उक्त कपाटयुगल में प्रवेश नही करते और न तिर्यग्लोक में प्रविष्ट होते हैं, वे अभी पूर्वभव में ही स्थित हैं, अतएव उनकी गणना बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में नही की जाती। कहा भी है—

पणयालसयसहस्सा पिहुला दुन्नि कवाडा य छद्दिसिं पुट्ठा।
लोयंते तेसिऽन्तो जे तेऊ ते उ घिप्पंति॥

अर्थात्—पैंतालीस लाख योजन चौड़े दो कपाट हैं, जो छहों दिशाओं में लोकान्त का स्पर्श करते हैं। उनके अन्दर-अन्दर जो तेजस्कायिक हैं, उन्हीं का यहाँ ग्रहण किया जाता है।
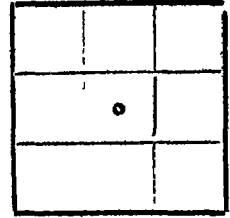
इसकी स्थापना (आकृति) इस प्रकार है—

अतः इस सूत्र की व्याख्या व्यवहारनय की दृष्टि से की गई है।

समुद्घात की अपेक्षा से बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों का स्थान— समुद्घात की दृष्टि से ये सर्वलोक मे होते हैं। इसका आशय यो समझना चाहिए—पूर्वोक्तस्वरूप वाले दोनो कपाटो के मध्य (अपान्तरालो) मे जो सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादि जीव है, वे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको मे उत्पन्न होते हुए मारणान्तिक समुद्घात करते है, उस समय वे विस्तार और मोटाई मे शरीर-प्रमाण और लम्बाई में उत्कृष्टत लोकान्त तक अपने आत्मप्रदेशो को बाहर फैलाते है। जैसा कि अवगाहनासस्थानपद में आगे कहा जाएगा—

* [प्र.] भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात किये हुए पृथ्वीकायिक के तैजसशरीर की शारीरिक अवगाहना कितनी बडी होती है ?

[उ] गौतम ! (उन की शरीरावगाहना, विस्तार और मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाण होती है, और लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट लोकान्तप्रमाण होती है।

उसके पश्चात् वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि अपने उत्पत्तिदेश तक दण्डरूप मे आत्मप्रदेशो को फैलाते हैं और अपान्तरालगति (विग्रहगति) मे वर्तमान होते हुए वे बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक की आयु का वेदन करने के कारण बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को धारण करते है। वे समुद्घात अवस्था मे ही विग्रहगति मे विद्यमान होते हैं तथा समुद्घात-गत जीव समस्त लोक को व्याप्त करते हैं। इस दृष्टि से समुद्घात की अपेक्षा से इन्हे सर्वलोकव्यापी कहा गया है।

दूसरे आचार्यों का कहना है—बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक जीव सख्या मे बहुत-अधिक होते हैं; क्योंकि एक-एक पर्याप्त के आश्रय से असंख्यात अपर्याप्तों की उत्पत्ति होती है। वे सूक्ष्मो में भी उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म तो सर्वत्र विद्यमान हैं। इसलिए बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक अपने-अपने भव के अन्त मे मारणान्तिक समुद्घात करते हुए समस्त लोक को आपूरित करते हैं। इसलिए इन्हे समग्र की दृष्टि से, समुद्घात की अपेक्षा सकललोकव्यापी कहने में कोई दोष नही है।[1]

स्वस्थान की अपेक्षा से बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक—लोक के असख्यातवे भाग मे होते हैं, क्योकि पर्याप्तो के आश्रय से अपर्याप्तो की उत्पत्ति होती है। पर्याप्तो का स्थान मनुष्यक्षेत्र है, जो कि सम्पूर्ण लोक का असख्यातवां भागमात्र है। इसलिए इन्हे लोक के असंख्यातवे भाग मे कहना उचित ही है।

---

* 'पुढवीकाइयस्स ण भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा प. ?' 'गोयमा ! सरीरपमाणमेत्तविक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागे, उक्कोसेणं लोगंतो।'   प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ७६ में उद्धृत

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ७५ से ७७

वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण

१५७. कहि णं भंते ! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवाय-वलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिद्देसु भवणणिक्खुडेसु निरएसु निरयावलियासु णिरयपत्थडेसु णिरयछिद्देसु णिरयणिक्खुडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेस विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिद्देसु विमाणणि-क्खुडेसु ३।

तिरियलोए पाईण-पडीण-दाहिण-उदीण सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य ४।

एत्थ णं बायरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

[१५७ प्र] भगवन् ! बादर वायुकायिक-पर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५७ उ] १—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनवातों में, सात घनवातवलयों मे, सात तनुवातो में और सात तनुवातवलयों में (वे होते हैं)।

२. अधोलोक में—पातालो मे, भवनो में, भवनों के प्रस्तटो (पाथड़ो) में, भवनो के छिद्रो मे, भवनो के निष्कुट प्रदेशों में नरको में, नरकावलियो में, नरकों के प्रस्तटों मे, छिद्रों मे और नरको के निष्कुट-प्रदेशों में (वे हैं)।

३. ऊर्ध्वलोक में—(वे) कल्पों में, विमानो में, आवली (पंक्ति) बद्ध विमानो मे, विमानो के प्रस्तटों (पाथडों—बीच के भागो) मे, विमानों के छिद्रो में, विमानों के निष्कुट- प्रदेशों में (हैं)।

४. तिर्यग्लोक में—(वे) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में समस्त लोकाकाश के छिद्रो में, तथा लोक के निष्कुट-प्रदेशो मे, इन (पूर्वोक्त सभी स्थलो) में बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीव के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असख्येयभागो में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्येयभागों मे, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्येयभागो मे (बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान हैं।

१५८. कहि णं भंते अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवाउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवाउकाइयाणं अपज्जत्त-गाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

[१५८ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त-बादर-वायुकायिकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५८ उ.] गौतम ! जहाँ बादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यात भागों मे हैं।

१५९. कहि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवाउकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५९ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मवायुकायिकों के पर्याप्तो और अपर्याप्तो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५९ उ.] गौतम ! सूक्ष्मवायुकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषता या भेद से रहित) हैं, नानात्व से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक मे परिव्याप्त हैं।

विवेचन—वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १५७ से १५९ तक) में वायुकायिक जीवो के बादर, सूक्ष्म और उनके पर्याप्तको-अपर्याप्तकों के स्थानो का निरूपण तीनो अपेक्षाओ से किया गया है।

'भवणछिद्देसु' 'भवणणिक्खुडेसु' आदि पदों के विशेषार्थ—भवणछिद्देसु—भवनपतिदेवो के भवनो के छिद्रो—अवकाशान्तरों मे। **'भवणणिक्खुडेसु'**—भवनो के निष्कुटो अर्थात् गवाक्ष आदि के समान भवनप्रदेशो मे। **णिरयणिक्खुडेसु**—नरको मे निष्कुटो यानी गवाक्ष आदि के समान नरकावास प्रदेशों में।[1]

पर्याप्त बादरवायुकायिक : उपपात आदि तीनों की अपेक्षा से—ये तीनो की अपेक्षा से लोक के असख्यात भागो मे हैं; क्योकि जहाँ भी खाली जगह है—पोल है, वहाँ वायु बहती है। लोक मे खाली जगह (पोल) बहुत है। इसलिए पर्याप्त वायुकायिक जीव बहुत अधिक है। इस कारण उपपात समुद्घात और स्वस्थान इन तीनों अपेक्षाओ से बादर पर्याप्तवायुकायिक लोक के असख्येय भागो में कहे हैं।

अपर्याप्त बादरवायुकायिकों के स्थान—उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्त बादरवायुकायिक जीव सर्वलोक मे व्याप्त हैं, क्योकि देवों और नारकों को छोड कर शेष सभी कार्यों से जीव बादर अपर्याप्तवायुकायिको मे उत्पन्न होते हैं। विग्रहगति मे भी बादर अपर्याप्तवायुकायिक पाए जाते है तथा उनके बहुत-से स्वस्थान हैं। अतएव व्यवहारनय की दृष्टि से भी उपपात को लेकर बादरपर्याप्त-अपर्याप्तवायुकायिको की सकललोकव्यापिता मे कोई बाधा नही है। समुद्घात की अपेक्षा से उनकी समग्रलोकव्यापिता प्रसिद्ध ही है; क्योकि समस्त सूक्ष्म जीवों मे और लोक मे सर्वत्र वे उत्पन्न हो सकते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा से बादर-अपर्याप्तवायुकायिकजीव लोक के असख्येय-भागों में होते हैं, यह पहले बतलाया जा चुका है।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक. ७८

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७८

वनस्पतिकायिकों के स्थानों का निरूपण

१६०. कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदहिवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तडागेसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

एत्थ णं बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६० प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६० उ.] गौतम ! १—स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियो में और सात घनोदधिवलयो मे (हैं)।

२—अधोलोक मे—पातालो मे, भवनो मे और भवनो के प्रस्तटो (पाथड़ो) में (हैं)।

३—ऊर्ध्वलोक मे—कल्पो मे, विमानो मे, आवलिकाबद्ध विमानो मे और विमानो के प्रस्तटो (पाथड़ो) मे (वे हैं)।

४—तिर्यग्लोक में—कुंओ मे, तालाबों मे, नदियो में, ह्रदो में, वापियो (चौरस बावड़ियो) में, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गुंजालिकाओ (वक्र—टेढ़ीमेढी बावड़ियो) मे, सरोवरो मे, पंक्तिबद्धसरोवरो मे, सर-सर पंक्तियो मे, बिलो (स्वाभाविकरूप से बनी हुई कुइयो) में, पंक्तिबद्ध बिलों में, उज्झरो (पर्वतीयजल के अस्थायी प्रवाहो) मे, निर्झरो (झरनो) मे, तलैयो में, पोखरो में, क्षेत्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो में, समुद्रो में और सभी जलाशयो में तथा जल के स्थानो मे; इन (सभी स्थलो) में बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (ये) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे हैं और स्वस्थान की अपेक्षा से (ये) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं।

१६१. कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६१ प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६१ उ.] गौतम ! जहाँ बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वही बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक मे हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी) सर्वलोक में हैं; (किन्तु) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग में हैं।

१६२. कहि णं भंते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१६२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिको के पर्याप्तको एव अपर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६२ उ] गौतम ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषता से रहित है, नानात्व से भी रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक में व्याप्त कहे गए हैं।

विवेचन—वनस्पतिकायिकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे बादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भेदो के स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

पर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिकों के स्थान—जहाँ जल होता है, वहाँ वनस्पति अवश्य होती है, इस दृष्टि से समस्त जलस्थानो मे पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीव होते हैं। उपपात की अपेक्षा से वे सर्वलोक मे हैं, क्योकि उनके स्वस्थान घनोदधि आदि हैं, उनमे शैवाल आदि बादरनिगोद के जीव होते हैं। सूक्ष्मनिगोद जीवो की भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही होती है, तत्पश्चात् वे बादर पर्याप्त-निगोदों मे उत्पन्न होकर बादर निगोदपर्याप्त की आयु का वेदन करते हुए सुविशुद्ध ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक नाम पा लेते है; उपपात की अपेक्षा से (वे) समस्त काल और समस्त लोक को व्याप्त कर लेते है।

समुद्घात की अपेक्षा से भी वे सर्वलोक मे व्याप्त हैं; क्योकि जब बादरनिगोद सूक्ष्मनिगोद-सम्बन्धी आयु का बन्ध करके और आयु के अन्त मे मारणान्तिकसमुद्घात करके आत्मप्रदेशो को उत्पत्तिदेश तक फैलाते हैं, तब तक उनकी पर्याप्तबादरनिगोद की आयु क्षीण नही होती। अतएव वे उस समय भी बादर पर्याप्तनिगोद ही रहते हैं और समुद्घातावस्था में वे समस्तलोक में व्याप्त होते हैं। इस दृष्टि से कहा गया है कि बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में व्याप्त होते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असख्यातवें भाग में होते हैं, क्योंकि घनोदधि आदि पूर्वोक्त सभी स्थान मिल कर भी लोक के असंख्यातवें भागमात्र में ही हैं।[1]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ७८

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सामान्य पंचेन्द्रियों के स्थानों की प्ररूपणा

१६३. कहि णं भंते ! बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ(-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६३ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग मे (वे) होते है, २. अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कुओं में, तालाबों मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो (बावड़ियो) में, पुष्करिणियो में, दीर्घिकाओ मे, गुंजालिकाओं में, सरोवरो में, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पक्तियो में, बिलों में, पक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलप्रवाहों मे, निर्झरो मे, तलैयों में पोखरों में वप्रों (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो में, समुद्रों में और सभी जलाशयों मे तथा समस्त जलस्थानो मे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवे भाग में होते हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग में होते हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते है ।

१६४. कहि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं तेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६४ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ(-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६४ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उनके एकदेशभाग में (होते हैं), २. अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालाबों में, नदियो में, ह्रदो में, वापियों में, पंक्तिबद्ध सरोवरो में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पर्वतीय जलप्रवाहो में, निर्झरो मे, तलैयो (छोटे गड्ढों) में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) मे, द्वीपो में, समुद्रो में और सभी जलाशयों में तथा समस्त जलस्थानों में, इन (सभी स्थानो) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवे भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवें भाग में होते हैं।

१६५. कहि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३।

एत्थ णं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६५ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६५ उ] गौतम ! १ (वे) उर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), २ अधोलोक मे—उसमे एकदेशभाग मे (होते हैं), ३ तिर्यग्लोक मे—कूपो मे, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गुजालिकाओ में, सरोवरो में, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सरपक्तियो मे, बिलो मे, पक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनो मे, छोटे गड्ढो में, पोखरो मे, वप्रो (खेतों या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और समस्त जलाशयो मे तथा सभी जलस्थानो मे (होते हैं)। इन (पूर्वोक्त सभी स्थलो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं), और स्वस्थान को अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं)।

१६६. कहि णं भंते ! पंचिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६६ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पचेन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६६ उ.] गौतम ! १. (वे) ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग मे (होते हैं), अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), और ३ तिर्यग्लोक में—कुओ में, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो में पुष्करिणियों मे, दीर्घिकाओ में, गुंजालिकाओ मे, सरोवरों में, सरोवर-पंक्तियो मे, सर-सरपंक्तियों में, बिलों मे, बिलपंक्तियो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो में, झरनो मे, छोटे गड्ढो मे, पोखरों में, वप्रों में, द्वीपों में, समुद्रों में, और सभी जलाशयों तथा समस्त जलस्थानों मे (होते हैं)। इन (सभी उपर्युक्त स्थलों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रियो के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवें भाग मे (होते हैं)।

विवेचन—द्वि-त्रि-चतु:पंचेन्द्रिय जीवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू १६३ से १६६ तक) मे क्रमश. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पचेन्द्रिय जीवो के पर्याप्तको और अपर्याप्तकों के स्थानो की प्ररूपणा की गई है।

द्वीन्द्रियादि जीवों के तीनों लोकों की दृष्टि से स्वस्थान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पचेन्द्रिय, इन चारो के सूत्रपाठ एक समान हैं। ये सभी ऊर्ध्वलोक मे उसके एकदेशभाग मे—अर्थात्—मेरुपर्वत आदि की वापी आदि मे होते हैं। अधोलोक मे भी उसके एकदेशभाग मे, अर्थात्—अधोलौकिक वापी, कूप तालाब आदि मे होते हैं तथा तिर्यग्लोक में भी कूप, तडाग, नदी आदि मे होते है।

तथा पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार उपपात समुद्घात एव स्वस्थान की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय से सामान्य पचेन्द्रिय तक के जीव लोक के असख्यातवे भाग मे होते हैं।[1]

नैरयिकों के स्थानों की प्ररूपणा

१६७. कहि णं भंते ! नेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! नेरइया परिवसंति ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु पुढवीसु। तं जहा—रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए पंकप्पभाए धूमप्पभाए तमप्पभाए तमतमप्पभाए, एत्थ णं णेरइयाणं चउरासीति णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा मेद-वसा-पूय-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परम-दुब्भिगंधा; काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं णेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७९

एत्थ णं बहवे णेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१६७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के स्थान कहाँ, किस और कितने, तथा कैसे प्रदेश मे कहे गए हैं ? नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६७ उ.] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) सात (नरक-) पृथ्वियों मे रहते हैं। तथा इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा में, (३) वालुकाप्रभा मे, (४) पकप्रभा मे, (५) धूमप्रभा में, (६) तम प्रभा में और (७) तमस्तमःप्रभा में। इन (सातो नरक-पृथ्वियो) मे चौरासी लाख नरकावास होते हैं, वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और बाहर से चोकौर (होते हैं), नीचे से छुरे के आकार (संस्थान) से युक्त (सस्थित) हैं। सतत अन्धकार होने से गाढ अधकार (से ग्रस्त होते हैं)। (वे नारकावास) ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग (फर्श) मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर (रक्त) और मास के कीचड़ के लेप से लिप्त, अशुचि (गंदे), बीभत्स (घिनौने), अत्यन्त दुर्गन्धित, (धधकती) कापोत वर्ण की अग्नि जैसे रग के, कठोरस्पर्श वाले, दुःसह एव अशुभ नरक हैं। नरको में अशुभ वेदनाएँ होती है। इन (ऐसे अशुभ नरकावासो) में पर्याप्त-अपर्याप्त नारको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा मे—लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग मे, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवे भाग मे, इनमे (पूर्वोक्त नरकावासो में) बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयानक), उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण (रग) से अतीव काले कहे गए हैं।

वे (वहाँ) नित्य भीत (डरते), सदैव त्रस्त, (परमाधार्मिक असुरो से परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), सदैव उद्विग्न (घबराए हुए) तथा नित्य अत्यन्त अशुभ, अपने नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं।

१६८. कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइया परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं रयणप्पभापुढविनेरइयाणं तीसं णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पभा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घातेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

एत्थ णं बहवे रयणप्पभापुढविनेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६८ प्र.] भगवन् रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं?

[१६८ उ] गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर, तथा नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (जगह) मे, रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावास होते हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (सस्थित) हैं, वे नित्य घने अंधकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मास के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं। (अतएव) अशुचि (अपवित्र—गदे), बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धित, कापोतरग की अग्नि के वर्ण-सदृश, कर्कश स्पर्श वाले, दु:सह तथा अशुभ नरक हैं। नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं। इनमे रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एव अपर्याप्तक नैरयिको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवे भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है।

यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं। (वे) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयकर), उत्कट त्रासजनक और हे आयुष्मन् श्रमणो! वे वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं।

वे (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरो द्वारा एव परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), नित्य उद्विग्न (घबराये हुए), तथा सदैव अत्यन्त अशुभ (स्व-)सम्बद्ध (लगातार) नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं।

१६९ कहि णं भंते! सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

कहि णं भंते! सक्करप्पभापुढविनेरइया परिवसंति?

गोयमा! सक्करप्पभाए पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे तीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविणेरइयाणं पणवीसं णिरयावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे सक्करप्पभापुढविणेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६९ प्र.] भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहाँ कहे गए हैं? शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं?

[१६९ उ] गौतम! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर तथा नीचे भी एक हजार योजन छोड कर, मध्य मे एक लाख, तीस हजार योजन (जगह) में, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको के पच्चीस लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (सस्थित) हैं। वे नित्य घने अन्धकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं। (अतएव वे) अशुचि, वीभत्स (घृणास्पद) है, अथवा अपक्व गन्ध वाले हैं, घोर दुर्गन्ध से युक्त हैं, कापोत अग्नि के वर्ण-सदृश (धोको जाती हुई लोहाग्नि के समान नीली आभा वाले) हैं; उनका स्पर्श बड़ा कठोर होता है, (अतएव वे) नरक दुःसह और अशुभ हैं। नरको की वेदनाएँ अशुभ हैं। (पूर्वोक्त नरकावासों) मे शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के (स्व-) स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवे भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे है।

उनमें बहुत-से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। (वे) काले, काली आभा वाले, अत्यन्त गम्भीर रोमाञ्चयुक्त, भयकर, उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (नारक) वहाँ नित्य भयभीत, नित्य त्रस्त, तथा परमाधार्मिको द्वारा) सदैव त्रासित. सदा उद्विग्न (घबराए हुए) और नित्य अत्यन्त अशुभ तत्सम्बद्ध नरक के भय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७०. कहि णं भंते! वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं

ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे छब्बीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं वालुयप्पभा-पुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं नरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरएसु वेदणाओ. एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे वालुयप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं निच्चं भीता निच्चं तत्था निच्चं तसिता निच्चं उव्विग्गा निच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७० प्र.] भगवन्! वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहा कहे गए है?

[१७० उ] गौतम! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन (पार) करके अर्थात् नीचे, और नीचे से एक हजार योजन छोड़ कर बीच मे एक लाख छब्बीस हजार योजन प्रदेश मे, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिको के पन्द्रह लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, नित्य गाढ अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद-पटल, रुधिर और मांस के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं, अतएव वे अशुचि (अपवित्र), बीभत्स, अतीव दुर्गन्धित, कापोत रग की धधकती अग्नि के वर्णसदृश, दु सह एव अशुभ नरक हैं। उन नरको मे वेदनाएँ अशुभ हैं। इन (ऐसे नारकावासो) मे वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एव अपर्याप्त नारको के स्थान कहे है।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवे भाग मे (है); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवे भाग मे (हैं); (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं)।

जिनमे बहुत-से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। हे आयुष्मम् श्रमणो! वे काले, काली आभा वाले गम्भीर-लोमहर्षक, भीम, उत्कट त्रासजनक, वर्ण से अत्यन्त कृष्ण कहे है।

वे नारक (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरो द्वारा) त्रास पहुँचाये हुए, नित्य उद्विग्न और सदैव परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७१. कहि णं भंते ! पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंकप्पभाए पुढवीए वीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वेग जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभा-पुढविनेरइयाण दस निरयावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई बीसा परम-दुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे पंकप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं निच्चं भीता निच्चं तत्था निच्चं तसिया निच्चं उव्विग्गा निच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१७१ प्र.] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एव अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७१ उ.] गौतम ! एक लाख बीस हजार योजन मोटी पकप्रभापृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन भाग अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन भाग छोड कर, बीच के एक लाख अठारह हजार योजन प्रदेश मे, पकप्रभापृथ्वी के नैरयिको के दस लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा है ।

वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, सदा अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित, मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मास के कीचड के लेप से लिप्त तलवाले, अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोतरग की (धधकती) अग्नि के वर्ण-सदृश, कठोरस्पर्शयुक्त है अतएव अत्यन्त दुःसह एव अशुभ हैं । उन नरको मे अशुभ वेदनाएँ होती है, जहाँ कि पकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के स्थान बताए गए है ।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असख्यातवे भाग मे (हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे (हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग में (हैं), जहाँ पकप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते है, जो काले, काली प्रभावाले, गम्भीर रोमहर्षक, भयकर, उत्त्रासजनक एव परमकृष्णवर्ण के कहे गए है ।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे नारक (वहाँ) सदैव भयभीत, सदा त्रस्त, नित्य परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव सम्बद्ध (निरन्तर) अतीव अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं ।

१७२. कहि णं भंते ! धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! धमप्पभाए पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं

ओगाहित्ता हिट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभा पुढविनेरइयाणं तिन्नि निरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे धूमप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्ध णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७२ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहाँ (किस प्रदेश मे) कहे हैं ?

[१७२ उ.] गौतम ! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन को अवगाहन (पार) करके, नीचे के एक हजार योजन (क्षेत्र) को छोड़ कर बीच के एक लाख सोलह हजार योजन प्रदेश में, धूमप्रभापृथ्वी के नारको के तीन लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल और बाहर से चौकोर हैं, नीचे से छुरे के-से आकार के तीक्ष्ण हैं, (वे) सदैव गाढ अन्धकार से (पूर्ण रहते हैं); वे ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से दूर है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मास के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं। अतः वे नरक अत्यन्त अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोत रग की जाज्वल्यमान अग्नि के वर्ण के समान, कठोरस्पर्श वाले, दु सह एव अशुभ है। उन नरको मे अशुभ वेदनाएँ है।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवे भाग में है, (तथा) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, जहाँ उन (नरकावासो) मे धूमप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक रहते हैं, जो काले, काली कान्तिवाले, गम्भीर रोमाञ्चकारी, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से परम कृष्ण कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव अविच्छिन्नरूप से परम अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७३. कहि णं भंते ! तमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तमप्पभाए पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं तमप्पभा-पुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे णरगावाससतसहस्से हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा नरगेसु वेदणाओ, एत्थ णं तमप्पभा-पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे तमप्पभापुढविणेरइया परिवसंति ।

काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं निच्चं भीता निच्चं तत्था निच्चं तसिया निच्चं उव्विग्गा निच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१७३ प्र.] भगवन् ! तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१७३ उ.] गौतम ! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तम:प्रभापृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन (प्रदेश) छोडकर मध्य में एक लाख चौदह हजार योजन (प्रदेश) में, वहाँ तम:प्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पांच कम एक लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के (आकार के-से तीक्ष्ण) सस्थान से युक्त हैं । वे सदैव (घने) अंधेरे से (भरे होते हैं,) वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को के प्रकाश से वचित हैं, उनके तल मेद, वसा, मवाद की मोटी परत, रक्त और मास के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं, अतएव वे अपवित्र, बीभत्स, अतिदुर्गन्धित, कर्कश स्पर्शयुक्त, दु:सह एव अशुभ या सुखरहित (असुख)नरक हैं, इन नरको में अशुभ वेदनाएँ होती हैं । इन (नरकावासो) मे तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्त एव अपर्याप्त नारको के स्थान कहे हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवे भाग मे (हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे (हैं); और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (हैं) , जहाँ कि बहुत-से तम:प्रभापृथ्वी के नैरयिक निवास करते हैं ।

(वे नैरयिक) काले, काली प्रभा वाले, गम्भीरलोमहर्षक, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से अतीव कृष्ण कहे गए हैं । हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (वहाँ) सदैव भयभीत, सदैव त्रस्त, नित्य त्रासित, सदैव उद्विग्न, नित्य परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं ।

१७४. कहि णं भंते ! तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तमतमाए पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता हिट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जेत्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—

काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महारोरुए ४ अपइट्ठाणे ५ ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे तमतमापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

आसीतं १ बत्तीसं २ अट्ठावीसं च होइ ३ वीसं च ४ ।
अट्ठारस ५ सोलसगं ६ अट्ठुत्तरमेव ७ हिट्ठिमया ॥१३३॥
अट्ठुत्तरं च १ तीसं २ छव्वीसं चेव सतसहस्सं तु ५ ।
अट्ठारस ४ सोलसगं ५ चोद्दसमहियं तु छट्ठीए ६ ॥१३४॥
अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमऽहे वज्जिऊण तो भणियं ।
मज्झे उ तिसु सहस्सेसु होंति नरगा तमतमाए ७ ॥१३५॥
तीसा य १ पण्णवीसा २ पण्णरस ३ दसेव सयसहस्साइं ४ ।
तिण्णि य ५ पंचूणेगं ६ पंचेव अणुत्तरा नरगा ७ ॥१३६॥

[१७४ प्र.] भगवन् ! तमस्तमपृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७४ उ] गौतम ! एक लाख, आठ हजार मोटी तमस्तमपृथ्वी के ऊपर के साढे बावन हजार योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे के भी साढे बावन हजार योजन (प्रदेश) को छोडकर बीच के तीन हजार योजन (प्रदेश) मे, तमस्तमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के पांच दिशाओ में पांच अनुत्तर, अत्यन्त विस्तृत महान् महानिरय (बड़े-बड़े नरकावास) कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काल, (२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव और (५) अप्रितष्ठान ।

वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और बाहर से चौरस हैं, नीचे से छुरे के समान तीक्ष्ण-संस्थान से युक्त हैं। वे नित्य अन्धकार से आवृत रहते हैं; वहाँ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा नही है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड के लेप से लिप्त रहते हैं। अतएव वे अपवित्र, घृणित, अतिदुर्गन्धित, कठोरस्पर्शयुक्त, दु:सह एवं

अशुभ (अनिष्ट) नारक (नारकावास) हैं। उन नरको मे अशुभ वेदनाएँ होती हैं। यही तमस्तम:प्रभा-पृथ्वी के पर्याप्त नारको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इन्ही (पूर्वोक्त स्थलो) में तमस्तम:पृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते है, जो कि काले, काली प्रभा वाले, (भयकर) गभीररोमाञ्चकारी, भयकर, उत्कृष्ट त्रासदायक (आतक उत्पन्न करने वाले), वर्ण से अत्यन्त काले कहे है।

वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सतंव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रास पहुँचाये हुए, नित्य (दु:ख से) उद्विग्न, तथा सदैव अत्यन्त अनिष्ट तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत साक्षात् अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

[**संग्रहणी गाथाओं का अर्थ**—] (नरकपृथ्वियो की क्रमश. मोटाई एक लाख से ऊपर की संख्या में)—१. अस्सी (हजार), २. बत्तीस (हजार), ३, अट्ठाईस (हजार), ४. बीस (हजार), ५. अठारह (हजार), ६ सोलह (हजार) और ७ सबसे निचली की आठ (हजार), (सबके 'योजन' शब्द जोड देना चाहिए) ।। १३३ ।।

(नारकावासो का भूमिभाग—) (ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोडकर छठी नरक तक, एक लाख से ऊपर की सख्या मे)—१. अठहत्तर (हजार), २. तीस (हजार), ३ छव्वीस (हजार), ४ अठारह (हजार) ५ सोलह (हजार), और ६. छठी नरकपृथ्वी मे—चौदह (हजार) ये सब एक लाख योजन से ऊपर (की सख्याएँ) हैं। और ७ सातवी तमस्तमा नरकपृथ्वी मे ऊपर और नीचे साढे बावन-साढे बावन हजार छोड कर मध्य मे तीन हजार योजनों मे नरक (नारकावास) होते हैं, ऐसा कहा है ।।१३४-१३५ ।।

(नारकावासों की सख्या) (छठी नरक तक लाख की सख्या में)—१ (प्रथम पृथ्वी मे) तीस (लाख), २. (दूसरी मे) पच्चीस (लाख), ३. (तीसरी में) पन्द्रह (लाख), ४ (चौथी पृथ्वी मे) दस लाख, ५ (पाचवी में) तीन (लाख), तथा ६. (छठी पृथ्वी मे) पाँच कम एक (लाख) और ७. सातवी नरकपृथ्वी मे) केवल पाच ही अनुत्तर नरक (नारकावास) हैं ।।१३६।।

विवेचन—नैरयिकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू. १६७ से १७४ तक) मे सामान्य नैरयिको तथा तत्पश्चात् क्रमश. पृथक्-पृथक् सातो नारको के नैरयिको के स्थानो की सख्या तथा उन स्थानो के स्वरूप एवं उन स्थानो मे रहने वाले नारको की प्रकृति एव परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आठो सूत्रों मे उल्लिखित निरूपण कुछ बातो को छोड कर प्राय. एक सरीखा है।

नारकावासों की संख्या—सातो नरकों के नारकावासो की कुल मिला कर ८४ लाख संख्या होती है; जिसका विवरण सग्रहणी गाथाओं मे दिया गया है। इसके अतिरिक्त नारक कहाँ (किस प्रदेश मे) रहते हैं ?, इसका विवरण भी पूर्वोक्त संग्रहणी गाथाओ मे दिया है, जैसे कि—१ हजार योजन ऊपर और १ हजार योजन नीचे छोड कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश मे प्रथम पृथ्वी के नारक रहते हैं, इत्यादि। सातो पृथ्वियो के नारकों के स्थानादि का वर्णन प्राय: समान है।[1]

१. देखिये सग्रहणी गाथाएँ—पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ ५४-५५

नारकावासों की भूमि—नारकावासों का भूमितल ककरीला होने पर भी नारकों के पैर रखने पर कंकड़ों का स्पर्श ऐसा लगता है, मानो छुरे से पैर कट गए हों। उनमें प्रकाश का अभाव होने से सदैव गाढ़ अन्धकार व्याप्त रहता है। बादलों से आच्छादित काली घोर रात्रि की तरह वहाँ सदैव अन्धकार रहता है; क्योंकि प्रकाशक ग्रह-सूर्य-चन्द्रादि का या उनकी प्रभा का वहाँ अभाव है। वहाँ मेद, चर्बी, मवाद, रक्त, मांस आदि दुर्गन्धित वस्तुओ के कीचड से भूमितल व्याप्त रहता है, इसलिए वे नारकावास सदैव गन्दे, घृणित या दुर्गन्धयुक्त रहते हैं। मरी हुई गाय, भैंस आदि के कलेवरों की-सी दुर्गन्ध से भी अत्यन्त अनिष्ट घोर दुर्गन्ध वहाँ रहती है। धौंकनी से लोहे को खूब धौंकने पर जैसे गहरे नीले रंग की (कपोत के रंग-जैसी) ज्वाला निकलती है, वैसी ही आभा वाले नारकावास होते हैं, क्योंकि नारकों के उत्पत्तिस्थान को छोड कर वे सर्वत्र उष्ण होते हैं। यह कथन छठी-सातवी पृथ्वी के सिवाय अन्यपृथ्वियों के विषय में समझना चाहिए। आगे कहा जायेगा कि छठी और सातवी नरक के नारकावास कापोतवर्ण की अग्नि के वर्ण-सदृश नही होते। उन नारकावासो का स्पर्श तलवार की धार के समान अतीव कर्कश और दुःसह होता है। वे देखने ने भी अत्यन्त अशुभ होते हैं। उन नरको की वेदनाएँ भी दु.सह शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श के कारण अतीव अशुभ या असुखकर होती हैं।

नारकों की शरीररचना, प्रकृति और परिस्थिति—वे रंग से काले-कलूटे और भयकर होते है। उनके शरीर से काली प्रभा निकलती है। उनको देखने मात्र से रोमाच हो जाता है, अथवा वे दूसरे नारकों में अत्यन्त भय उत्पन्न करके रोमांच खड़ा कर देते हैं। इस कारण वे अत्यन्त आतक पैदा करते रहते हैं। तथा वे सदैव भयभीत, त्रस्त, आतंकित, उद्विग्न रहते हैं, तथा सतत अनिष्ट नरकभय का अनुभव करते रहते हैं।[1]

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के स्थानों की प्ररूपणा

१७५. कहि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१७५ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७५ उ.] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे उसके एकदेशभाग मे, २. अधोलोक मे उसके एकदेशभाग में, ३. तिर्यग्लोक में कुओं में, तालाबों में नदियों में, वापियो में, द्रहो में, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं मे, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों मे, सर-सर-पंक्तियो मे, बिलो में, पंक्तिबद्ध बिलों में, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, क्यारियों अथवा खेतो

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८०-८१ का सारांश

में, द्वीपों में, समुद्रों मे तथा सभी जलाशयों एव जल के स्थानों मे; इन (सभी पूर्वोक्त स्थलों) में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग मे है, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) वे लोक के असख्यातवें भाग में हैं।

विवेचन—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू. १७५) में पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तो के स्थानो की प्ररूपणा की गई है। इसमे प्रयुक्त शब्दों का स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका है।

मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा

१७६. कहि णं भंते ! मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणतालीसाए जोयणसतसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु, एत्थ णं मणुस्साणं पज्जत्ता-ऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१७६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७६ उ.] गौतम ! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर पैंतालीस लाख योजनो में, ढाई द्वीप-समुद्रो मे, पन्द्रह कर्मभूमियो मे, तीस अकर्मभूमियो मे और छप्पन अन्तर्द्वीपो मे; इन स्थलो मे पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यो के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे हैं।

विवेचन—मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुतसूत्र (सू. १७६) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यो के स्थानो की प्ररूपणा की गई है।

समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में—समुद्घात की अपेक्षा से पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य सर्वलोक में होते हैं, यह कथन केवलिसमुद्घात की अपेक्षा से सम्भव है।[1]

सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१७७. कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झिमअट्ठहुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८४

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो समचउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउल-गंभीरखात-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत-सयग्घि-मुसल-मुसंढिपरियारिया अउज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामर-दंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकततोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरस-सुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया[1] कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंध-वरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पहा सस्सिरिया समरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति । तं जहा—

असुरा १ नाग २ सुवण्णा ३ विज्जू ४ अग्गी य ५ दीव ६ उवही य ७ ।
दिसि ८ पवण ९ थणिय १० नामा दसहा एए भवणवासी ॥१३७॥

चूडामणिमउडरयण १-भूसणनिउत्तणागफड २-गरुल ३-वइर ४-पुण्णकलसविउप्फेस ५-सीह ६-मगर ७-गयअंक ८-हयवर ९-वद्धमाण १०-निज्जुत्तचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडग-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठ-गंडतल कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउलीमउडा कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा ।

ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाहिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुयंग-पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

[१७७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भवनवासी देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७७ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक

---

1. ग्रन्थाग्रम् १०००

हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे भी एक हजार योजन छोड़ कर बीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन में भवनवासी देवो के सात करोड़, बहत्तर लाख भवनावास है, ऐसा कहा गया है।

वे भवन बाहर से गोल और भीतर से समचतुरस्र (चौकोर), तथा नीचे पुष्कर (कमल) की कर्णिका के आकार के हैं। (उन भवनो के चारो ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयां और परिखाएँ खुदी हुई होती हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारो (परकोटों), अटारियों, कपाटों, तोरणों और प्रतिद्वारो से (वे भवन) सुशोभित हैं। (तथा वे भवन) विविध यन्त्रों शतघ्नियों (महाशिलाओ या महायष्टियों), मूसलों, मुसुण्ढी नामक शस्त्रो से चारो ओर वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं; तथा वे शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय (सदैव जयशील), सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) एव अड़तालीस कोठो (प्रकोष्ठो—कमरों) से रचित, अड़तालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय (उपद्रवरहित), शिव (मंगल) मय किंकरदेवो के दण्डो से उपरिक्षत हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाचों अगुलियो (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं। (यथास्थान) चन्दन के कलश (मागल्यघट) रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओं के कलाप से युक्त होते है, तथा पचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पो के उपचार से भी युक्त होते हैं। वे काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्धित होने से गधवट्टी के समान लगते हैं। वे अप्सरागण के संघो से व्याप्त, दिव्य वाद्यों के शब्दो से भलीभाति शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पौंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, आवरणरहित कान्ति (छाया) वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणो से युक्त, उद्योतयुक्त (शीतल प्रकाश से युक्त), प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एव सुरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओ से युक्त भवनो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवो के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग में हैं। वहां बहुत-से भवनवासी देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १-असुरकुमार, २-नागकुमार, ३-सुप(व)र्णकुमार, ४-विद्युत्कुमार, ५-अग्निकुमार, ६-द्वीपकुमार, ७-उदधिकुमार, ८-दिशाकुमार, ९-पवनकुमार और १०-स्तनितकुमार; इन नामो वाले दस प्रकार के ये भवनवासी देव है ॥१३७॥

इनके मुकुट या आभूषणो में अंकित चिह्न क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) चूडामणि, (२) नाग का फन, (३) गरुड़, (४) वज्र, (५) पूर्णकलश चिह्न से अंकित मुकुट, (६) सिंह, (७) मकर (मगरमच्छ), (८) हस्ती का चिह्न, (९) श्रेष्ठ अश्व और (१०) वर्द्धमानक (शरावसम्पुट—सकोरा), इनसे युक्त विचित्र चिह्नों वाले, सुरूप, महर्द्धिक (महती ऋद्धि वाले) महाद्युति (कान्ति) वाले, महान् बलशाली, महायशस्वी, महान् अनुभाग (अनुभाव—प्रभाव या शापानुग्रहसामर्थ्य) वाले, महान् (अतीव) सुख वाले, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कडो और बाजूबन्दों से स्तम्भित भुजा वाले, कपोलों को चिकने बनाने वाले अगद, कुण्डल तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र

(नानारूप) आभूषण वाले, विचित्र पुष्पमाला और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठमाला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति (कान्ति) से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (शोभा) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिकदेवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंश देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी अपनी परिषदाओं का, अपने-अपने सैन्यों (अनीकों) का, अपने-अपने सेनाधिपतियों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नायकत्व), भर्तृत्व (पोषकत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञैश्वरत्व (अपनी आज्ञा का पालन कराने का प्रभुत्व), एवं सेनापतित्व (अपनी सेना को आज्ञा पालन कराने का प्राधान्य) करते-कराते हुए तथा पालन करते-कराते हुए, अहत (अव्याहत—व्याघात रहित अथवा आहत-आख्यानकों से प्रतिबद्ध) नृत्य, गीत, वादित, एव तंत्री, तल, ताल (कांसा), त्रुटित (वाद्य) और घनमृदंग बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एव उपभोग्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

१७७. [१] कहि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता-हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोवट्ठि भवणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घि-मुसल-मुसुंढिपरियारिया अओज्झा सदाजया सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचितचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति, काला लोहियक्ख-बिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असियकेसा वामेयकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं

पवरपरिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं च असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्डीया महज्जुइया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगय-कुंडल-मट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-परिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससतसहस्साणं साण साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतणट्ट-गीत-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त अपर्याप्त असुरकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१७८-१ उ] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन (प्रदेश) छोड कर, बीच मे (स्थित) जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश है,) वहाँ असुरकुमारदेवों के चौसठ लाख भवन-आवास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल, अदर से चौरस (चौकोर), और नीचे से पुष्कर-(नील-कमल) कर्णिका के आकार मे सस्थित हैं। (उन भवनों के चारो ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई है, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारो (परकोटो), अटारियो, कपाटो, तोरणों और प्रतिद्वारो से भवनो के एकदेशभाग सुशोभित होते है, (तथा वे भवन) यत्रो, शतघ्नियो (महाशिलाओ या महायष्टियो), मूसलों और मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से (चारों ओर से) वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं; तथा शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय, सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) तथा अड़तालीस कोठो से रचित, अडतालीस वनमालाओ से सुसज्जित, क्षेममय, शिवमय, किंकर-देवो के दण्डो से उपरक्षित हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनो पर (गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाचो अंगुलियो (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं; (यथास्थान) चन्दन के (मागल्य) कलश रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घडों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओ के समूह से युक्त होते हैं, तथा पंचरगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पों के द्वारा उपचार से भी युक्त होते हैं। (वे भवन) काले अगर, श्रेष्ठ चीडा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित, गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान लगते हैं। (वे भवन) अप्सरागण के संघों से व्याप्त,

दिव्य वाद्यों के शब्दों से शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पोंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक (कलंकरहित), आवरणरहित-कान्तिमान्, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त (प्रकाशमान), प्रसन्नता (आह्लाद) उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (सुन्दर) होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त भवनावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (वे) हैं।

उन (पूर्वोक्त स्थानों) में बहुत-से असुरकुमार देव निवास करते हैं। (वे असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्षरत्न तथा बिम्बफल के समान ओठों वाले, श्वेत (धवल) पुष्पों के समान दांतों तथा काले केशों वाले, बाएँ एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीर (गात्र) वाले, शिलिन्ध-पुष्प के समान थोड़े-से प्रकाशमान (किञ्चित् रक्त) तथा संक्लेश उत्पन्न न करने वाले सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र पहने हुए, प्रथम (कौमार्य) वय को पार किये हुए (कुमारावस्था के किनारे पहुँचे हुए) और द्वितीय वय को असम्प्राप्त (प्राप्त नहीं किए हुए) (अतएव) भद्र (अतिप्रशस्त) यौवन में वर्तमान होते हैं। (तथा वे) तलभंगक (भुजा का आभूषणविशेष) त्रुटित (बाहुरक्षक) एवं अन्यान्य श्रेष्ठ आभूषणों में जटित निर्मल मणियों तथा रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (अंगुलियों) वाले, चूडामणिरूप अद्भुत चिह्न वाले, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग (सामर्थ्य) युक्त, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों और बाजूबंदों से स्तम्भित भुजा वाले, अंगद एवं कुण्डल से चिकने कपोल वाले तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र आभरण वाले, विचित्र पुष्पमाला मस्तक में धारण किए हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्यवर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (शरीर के डीलडौल) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंश देवों का अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतिदेवों का, अपने-अपने आत्मरक्षकदेवों का तथा और भी अन्य बहुत से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नेतृत्व), भर्तृत्व (पोषणाकर्तृत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञेश्वरत्व एवं सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए, महान् आहत से (बड़े जोरों से अथवा अहान् व्याघातरहित) नृत्य, गीत, वादित, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग के बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एवं उपभोग्य भोगों का उपभोग करते हुए विहरण करते हैं।

[२] चमर-बलिणो यऽत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा णीलगुलिय-गवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियसयवत्तणिम्मलईसीसित-रत्त-तंबणयणा गरुलाययउज्जुतुंगणासा ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्ठा पंडरससिसगलविमल-निम्मलदहि-

घण-संख-गोखीर-कुंद-दगरय-मुणालियाधवलदंतसेढी हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा वामेयकुंडलधरा, अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंध-पुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवर परिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं तु असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-तुडित-पवरभूषण-निम्मलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दा-मंडियग्गहत्था चुडामणिविचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुईया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्त-हत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेण गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससत-सहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-२] यहाँ (इन्हीं स्थानों में) जो दो असुरकुमारों के राजा—चमरेन्द्र और बलीन्द्र निवास करते है, वे काले, महानील के समान, नील की गोली, गवल (भैंस के सींग), अलसी के फूल के समान (रंगवाले), विकसित कमल (शतपत्र) के समान निर्मल कहीं श्वेत, रक्त एवं ताम्रवर्ण के नेत्रों वाले, गरुड के समान विशाल सीधी और ऊँची नाक वाले, पुष्ट या तेजस्वी (उप-चित) मूंगा तथा बिम्बफल के समान अधरोष्ठ वाले; श्वेत विमल एवं निर्मल, चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शंख, गाय के दूध, कुन्द, जलकण और मृणालिका के समान धवल दन्तपंक्ति वाले, अग्नि में तपाये और धोये हुए तपनीय (सोने) के समान लाल तलवों, तालु तथा जिह्वा वाले, अंजन तथा मेघ के समान काले, रुचकरत्न के समान रमणीय एवं स्निग्ध (चिकने) केशों वाले, बाएं एक कान में कुण्डल के धारक, गीले (सरस) चन्दन से लिप्त शरीर वाले, शिलीन्ध्र-पुष्प के समान किंचित् लाल रंग के एवं क्लेश उत्पन्न न करने वाले, (अत्यन्त सुखकर) सूक्ष्म एवं अत्यन्त श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, प्रथम वय (कौमार्य) को पार किए हुए, दूसरी वय को अप्राप्त, (अतएव) नवयौवन में वर्तमान, तल-भंगक, त्रुटित तथा अन्य श्रेष्ठ आभूषणों एवं निर्मल मणियों और रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (हाथ की अंगुलियों) वाले, विचित्र चूड़ामणि के चिह्न से युक्त, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबलवान्, महासामर्थ्यशाली (प्रभाव-शाली) महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों तथा बाजूबंदों से स्तम्भित भुजाओं वाले, अंगद, कुण्डल तथा कपोल भाग को मर्षण करने वाले कर्णपीठ (कर्णभूषण) के धारक, हाथों में विचित्र आभूषणों वाले, अद्भुत मालाओं से युक्त मुकुट वाले, कल्याणकारी श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमालाओं के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य

संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य कान्ति से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या (शारीरिकवर्ण-सौन्दर्य) से दसों दिशाओं को प्रकाशित एवं प्रभासित (सुशोभित) करते हुए, वे (असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र और बलीन्द्र) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपनी-अपनी हजारों सामानिकों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतियों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व (महानता) और आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए महान् आहत (बड़े जोर से, अथवा अहत—व्याघातरहित) नाट्य, गीत, वादित, (बजाए गए) तंत्री, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग आदि से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१७९. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससत-सहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, सो च्चेव वण्णओ[1] जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा य देवीओ य परिवसंति। काला लोहियक्खा तहेव[2] जाव भुंजमाणा विहरंति। एतेसि णं तहेव[3] तायत्तीसगलोगपाला भवंति। एवं सव्वत्थ भाणितव्वं भवणवासीणं।

[१७९-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त एवं अपर्याप्त दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले) असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७९-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे के एक हजार योजन छोड़ कर, बीच में जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन क्षेत्र है, वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के एक लाख चौंतीस हजार भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे (दाक्षिणात्य असुरकुमारों के) भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर में चौरस (चौकोर) हैं, शेष समस्त वर्णन यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं, जो कि तीनों अपेक्षाओं

---

१. 'वण्णओ' से सूत्र १७७ [१] के अनुसार पाठ समझना चाहिए।
२. 'तहेव' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार तत्स्थानीय पूर्ण पाठ ग्राह्य है।
३. 'तहेव' से सूत्र १७८-१ के अनुसार तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

(उपपात, समुद्घात एवं स्वस्थान की अपेक्षा) से लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देव एव देवियाँ निवास करती हैं। वे (दाक्षिणात्य असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्ष रत्न·· ··के समान ओठ वाले हैं,·· इत्यादि सब वर्णन यावत् 'भोगते हुए रहते हैं' (भु जमाणा विहरंति) तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए।

इनके उसी प्रकार त्रायस्त्रिशक और लोकपाल देव आदि होते है, (जिन पर वे आधिपत्य आदि करते-कराते, पालन करते-कराते हुए यावत् विचरण करते हैं।) इस प्रकार सर्वत्र 'भवनवासियो के' ऐसा उल्लेख करना चाहिए।

[२] चमरे अत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव[1] पभासेमाणे।

से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससतसहस्साणं चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तावत्तीसाए तायत्तीसाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाण सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं य चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव[1] विहरति।

[१७९-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (दाक्षिणात्य) असुरकुमारो का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र निवास करता है, वह कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि सारा वर्णन यावत् प्रभासित-सुशोभित करता हुआ ('पभासेमाणे'), तक सूत्र १७७-२ के अनुसार समझना चाहिए।

वह (चमरेन्द्र) वहाँ चौतीस लाख भवनावासो का, चौसठ हजार सामानिको का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, पाच सपरिवार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार चौसठ हजार—अर्थात्—दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य एव अग्रेसरत्व करता हुआ यावत् विचरण करता है।

१८०. [१] कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए[2] असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, सेसं जहा[1] दाहिणिल्लाणं जाव[1] विहरंति।

---

१. 'जाव' तथा 'जहा' से सूचित तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

२. ग्रन्थाग्रम् ११००

[१८०-१ प्र.] भगवन् ! उत्तरदिशा मे पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उत्तरदिशा के असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८०-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरुपर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे (भी) एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में, वहाँ उत्तरदिशा के असुरकुमार देवो के तीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है । वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष सब वर्णन यावत् विचरण करते हैं (विहरति) तक, दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो के समान (सूत्र १७९-१ के अनुसार) जानना चाहिए ।

[२] बली यऽत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव (सु. १७८ [२]) पभासेमाणे । से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तावत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति ।

[१८०-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलीन्द्र निवास करता है, (जो) कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि समग्र वर्णन यावत् 'प्रभासित-सुशोभित करता हुआ' ('पभासमाणे' तक सूत्र १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए ।) वह वहाँ तीस लाख भवनावासो का, साठ हजार सामानिक देवो का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, सपरिवार पाच अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार साठ हजार अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा और भी बहुत-से उत्तरदिशा के असुरकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य एव पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व) करता हुआ विचरण करता है ।

१८१. [१] कहि णं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा हवंतीति मक्खातं ।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव (सु. १७७) पडिरूवा । तत्थ णं णागकुमाराण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे णागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया महाजुतीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव विहरंति ।

[१८१-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! नागकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१८१-१ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर

एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के चौरासी लाख भवनावास (भवन) हैं, ऐसा कहा है। वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, यावत् प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) हैं तक, (सू. १७७ के अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिए।)

वहां (पूर्वोक्त भवनावासो मे) पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के स्थान कहे गए हैं। तीनो अपेक्षाओ से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) (वे स्थान) लोक के असख्यातवें भाग में हैं। वहां बहुत-से नागकुमार देव निवास करते हैं। वे महर्द्धिक हैं, महाद्युति वाले हैं, इत्यादि शेष वर्णन, यावत् विचरण करते हैं (विहरति) तक, औधिको (सामान्य भवनवासी देवो) के समान (सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरण-भूयाणंदा एत्थ दुवे णागकुमारिंदा णागकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८१-२] यहाँ (इन्ही पूर्वोक्त स्थानो में) जो दो नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज—धरणेन्द्र और भूतानन्देन्द्र—निवास करते हैं, (वे) महर्द्धिक हैं, शेष वर्णन औधिको (सामान्य भवनवासियो) के समान (सूत्र १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक समझना चाहिए।

१८२. [१] कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससय-सहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव[1] पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८२-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य नागकुमारो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! दाक्षिणात्य नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८२-१ उ] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण मे, एक लाख अस्सी हजार मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाह करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, यहाँ दाक्षिणात्य नागकुमार देवो के चवालीस लाख भवन हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और भीतर से चौरस हैं, यावत् प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। यहाँ (इन्ही भवनावासो में) दाक्षिणात्य पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमारों के स्थान कहे गए हैं।

१. 'जाव' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।

(वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) लोक के असंख्यातवे भाग में हैं, जहाँ कि बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं; (इत्यादि शेष समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक (सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरणे यऽत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु. १७८ पभासेमाणे। से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणिया-णं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं नाग-कुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति।

[१८२-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) में नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।)

वहाँ वह (धरणेन्द्र) चवालीस लाख भवनावासो का, छह हजार सामानिकों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवो का, चार लोकपालो का, सपरिवार पाच अग्रमहिषियो का, तीन परिषदों का, सात सैन्यो का, सात सेनाधिपति देवो का, चौवीस हजार आत्मरक्षक देवो का और अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य और अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है।

१८३. [१] कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चत्तालीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं (सु. १८२ [१]) जाव विहरंति।

[१८३-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तरदिशा के नागकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! उत्तरदिशा के नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८३-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, सुमेरुपर्वत के उत्तर मे, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, बीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, वहाँ उत्तरदिशा के नागकुमार देवों के चालीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल हैं, शेष सारा वर्णन दाक्षिणात्य नागकुमारों के वर्णन, (सू. १८२-१) के अनुसार यावत् विचरण करते हैं (विहरति) (तक समझ लेना चाहिए।)

[२] भूयाणंदे यऽत्थ णागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु. १७७) पभासेमाणे। से णं तत्थ चत्तालीसाए भवणावाससतसहस्साणं आहेवच्चं जाव[1] (सु. १७७) विहरंति।

[१८३-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (औदीच्य) नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (शेष वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

वहाँ वह (भूतानन्देन्द्र) चालीस लाख भवनावासों का यावत् आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है, तक (सारा वर्णन सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

१८४. [१] कहि णं भंते! सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरिं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा। तत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव विहरंति।

[१८४-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८४-१ उ] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक एक हजार ऊपर और नीचे के भाग को छोड़ कर शेष भाग में यावत् सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप तक (समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।) वहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) (पूर्वोक्त) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं; (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् 'विचरण करते हैं' (तक) औधिक (सामान्य असुरकुमारों) की तरह (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] वेणुदेव-वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८४-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में दो सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज—वेणुदेव और वेणुदाली निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, (शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं'; तक समझ लेना चाहिए।

१८५. [१] कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! इमीसे जाव मज्झे अट्ठुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठतीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा।

---

१. 'जाव' एवं 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन संकेतित सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। एत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति।

[१८५-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते है?

[१८५-१ उ] गौतम! इसी रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के अडतीस लाख भवनावास है; ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप हैं; (यहाँ तक का शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए), यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के स्थान कहे गए है। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। यहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं।

[२] वेणुदेवे यऽत्थ सुवण्णिदे सुवण्णकुमारराया परिवसइ। सेसं जहा णागकुमाराणं (सु. १८२ [२])।

[१८५-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (दाक्षिणात्य) सुपर्णेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदेव निवास करता है, शेष सारा वर्णन नागकुमारों के वर्णन की तरह (सू. १८२-२ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

१८६ [१] कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए जाव एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं चोत्तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा जाव एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८६-१ प्र] भगवन्! उत्तरदिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८६-१ उ.] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक लाख अठहत्तर योजन मे, आदि (समग्र वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए)। यावत् यहाँ उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देवो के चौतीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) जिनका समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए) यावत् यहाँ (इन्ही भवनावासो में) बहुत-से उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं, यावत् विचरण करते हैं (तक का शेष समग्र वर्णन सू १७७ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

[२] वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्ढीए, सेसं जहा णागकुमाराणं (सु. १८३ [२])।

[१८६-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) में यहाँ सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदाली निवास

करता है, जो महर्द्धिक है; शेष सारा वर्णन नागकुमारों की तरह (सू. १८३-२ के अनुसार) समझना चाहिए।

१८७. एवं जहा सुवण्णकुमाराणं वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि चोद्दसण्हं इंदाण भाणितव्वा। नवरं भवणनाणत्तं इंदनाणत्तं वण्णणाणत्तं परिहाणणाणत्तं च इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वं—

चोवट्ठि असुराणं १ चुलसीतो चेव होंति णागाणं २।
बावत्तरिं सुवण्णे ३ वाउकुमाराण छण्णउई ४॥१३८॥
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणिय-मग्गीणं।
छण्हं पि जुअलयाणं छावत्तरिमो सतसहस्सा १०॥१३९॥
चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं च सयसहस्साइं ३।
पण्णा ४ चत्तालीसा ५-१० दाहिणओ होंति भवणाइं॥१४०॥
तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ३।
छायाला ४ छत्तीसा ५-१० उत्तरओ होंति भवणाइं॥१४१॥
चउसट्ठी सट्ठी, १ खलु छ च्च सहस्सा २-१० उ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ॥१४२॥
चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गिसीहे य।
पुण्णे ६ जलकंते या ७ अमिय ८ विलंबे य ९ घोसे य १०॥१४३॥
बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सहे ४ अग्गिमाणव ५ वसिट्ठे ६।
जलप्पहे ७ अमियवाहण ८ पभंजणे या ९ महाघोसे १०॥१४४॥

उत्तरिल्लाणं जाव विहरंति।

काला असुरकुमारा, णागा उदही य पंडरा दो वि।
वरकणगणिहसगोरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥१४५॥
उत्तत्तकणगवण्णा विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
सामा पियंगुवण्णा वाउकुमारा मुणेयव्वा॥१४६॥
असुरेसु होंति रत्ता, सिलिंधपुप्फप्पभा य नागुदही।
आसासगवसणधरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥१४७॥
णीलाणुरागवसणा विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
संझाणुरागवसणा वाउकुमारा मुणेयव्वा॥१४८॥

[१८७] इस प्रकार जैसी वक्तव्यता सुपर्णकुमारों की कही है, वैसी ही शेष भवनवासियों की भी और उनके चौदह इन्द्रों की कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनके भवनों की सख्या मे, इन्द्रों के नामों मे, उनके वर्णों तथा परिधानों (वस्त्रों) में अन्तर है, जो इन गाथाओं द्वारा समझ लेना चाहिए—

(गाथाओं का अर्थ—) **भवनावास**—१—(असुरकुमारो के) चौसठ लाख है, २—(नागकुमारों के) चौरासी लाख हैं, ३—(सुपर्णकुमारो के) बहत्तर लाख हैं, ४—(वायुकुमारो के) छियानवे लाख हैं ।।१३८।। ५ से १० तक अर्थात् (द्वीपकुमारो, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युतकुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो) इन छहो के युगलो के प्रत्येक के छहत्तर-छहत्तर लाख (भवनावास) हैं ।।१३९।।

दक्षिणदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनो की सख्या (इस प्रकार है)—१—(असुरकुमारों के) चौंतीस लाख, २—(नागकुमारो के) चवालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) अड़तीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) पचास लाख, ५ से १० तक—(द्वीपकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युतकुमारो स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के) प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन (भवनावास) हैं ।।१४०।।

उत्तरदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनों की सख्या (इस प्रकार है—) १—(असुरकुमारो के) तीस लाख, २—(नागकुमारों के) चालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) चौंतीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) छयालीस लाख, ५ से १० तक—अर्थात् द्वीपकुमारों, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन है ।।१४१।।

सामानिकों और आत्मरक्षकों की संख्या—इस प्रकार है—१—(दक्षिण दिशा के) असुरेन्द्र के ६४ हजार और (उत्तरदिशा के असुरेन्द्र के) ६० हजार हैं, असुरेन्द्र को छोड कर (शेष सब २ से १०—दक्षिण-उत्तर के इन्द्रो के प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिकदेव हैं। आत्मरक्षकदेव (प्रत्येक इन्द्र के सामानिको की अपेक्षा) चौगुने-चौगुने होते हैं ।।१४२।।

दाक्षिणात्य इन्द्रों के नाम—१—(असुरकुमारो का) चमरेन्द्र, २—(नागकुमारो का) धरणेन्द्र ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदेवेन्द्र, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिकान्त, ५—(अग्निकुमारो का) अग्निसिह (या अग्निशिख), ६—(द्वीपकुमारों का) पूर्णेन्द्र, ७—(उदधिकुमारो का) जलकान्त, ८—(दिशाकुमारो का) अमित, ९—(वायुकुमारों का) वेलम्ब और १०—(स्तनितकुमारो का) इन्द्र घोष है ।।१४३।।

उत्तरदिशा के इन्द्रों के नाम—१—(असुरकुमारो का) बलीन्द्र, २—(नागकुमारो का) भूतानन्द, ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदालि, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिस्सह, ५—(अग्निकुमारो का) अग्निमाणव, ६—द्वीपकुमारो का वशिष्ठ, ७—(उदधिकुमारो का) जलप्रभ, ८—दिशाकुमारो का) अमितवाहन, ९—(वायुकुमारो का) प्रभजन और १०—(स्तनितकुमारो का) महाघोष इन्द्र है ।।१४४।।

(ये दसो) उत्तरदिशा के इन्द्र · यावत् विचरण करते हैं।

वर्णों का कथन—सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते हैं, नागकुमारो और उदधिकुमारो का वर्ण पाण्डुर अर्थात्—शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार कसौटी (निकषपाषाण) पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण के होते हैं ।।१४५।।

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार तपे हुए सोने के समान (किञ्चित् रक्त) वर्ण के होते हैं और वायुकुमार श्याम प्रियगु के वर्ण के समझने चाहिए ।।१४६।।

इनके वस्त्रों के वर्ण—असुरकुमारो के वस्त्र लाल होते हैं, नागकुमारो और उदधिकुमारो के

वस्त्र शिलिन्ध्रपुष्प की प्रभा के समान (नीले) होते हैं, सुपर्णकुमारो, दिशाकुमारो और स्तनितकुमारो के वस्त्र अश्व के मुख के फेन के सदृश अतिश्वेत होते है ॥१४७॥

विद्युत्कुमारो, अग्निकुमारो और द्वीपकुमारो के वस्त्र नीले रग के होते है और वायुकुमारो के वस्त्र सन्ध्याकाल की लालिमा जैसे वर्ण के जानने चाहिए ॥१४८॥

विवेचन—सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू. १७७ से १८७ तक) में शास्त्रकार ने सामान्य भवनवासी देवो से लेकर असुरकुमारादि दस प्रकार के, तथा उनमें भी दक्षिण और उत्तर दिशाओ के, फिर उनके भी प्रत्येक निकाय के इन्द्रो के (विविध अपेक्षाओ से) स्थानो, भवनवासो की सख्या और विशेषता तथा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो और इन्द्रो के स्वरूप, वैभव एव सामर्थ्य, प्रभाव आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे—सग्रहणी गाथाओ द्वारा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो के भवनो, सामानिको और आत्मरक्षक देवो की सख्या, दाक्षिणात्य और औदीच्य कुल २० इन्द्रो के नाम तथा दस प्रकार के भवनवासियो के प्रत्येक के शारीरिक और वस्त्र सम्बन्धी वर्ण का उल्लेख किया है।[1]

कुछ कठिन शब्दों की व्याख्या—**पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया**—पुष्कर—कमल की कर्णिका के समान आकार मे सस्थित हैं। कर्णिका उन्नत एव समान चित्रविचित्र बिन्दु रूप होती है। **'उक्किण्णंतरविउलगंभीरखातपरिहा'**—उन भवनो के चारो ओर खाइयाँ और परिखाएँ है। जिनका अन्तर उत्कीर्ण की तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। वे विपुल यानी अत्यन्त गम्भीर (गहरी) हैं। जो ऊपर से चौडी और नीचे से सकड़ी हो उसे परिखा कहते हैं और जो ऊपर-नीचे समान हो, उसे खात (खाई) कहते हैं। यही परिखा और खाई मे अन्तर है। **पागारऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा**—प्रत्येक भवन में प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार यथास्थान बने हुए हैं। प्राकार कहते है—साल या परकोटे को। उस पर भृत्यवर्ग के लिए बने हुए कमरो को अट्टालक या अटारी कहते है। बडे दरवाजो (फाटको) के निकट छोटे द्वार 'तोरण' कहलाते है। बडे द्वारो के सामने जो छोटे द्वार रहते हैं, उन्हे प्रतिद्वार कहते हैं। **अउज्झा**—जहाँ शत्रुओ द्वारा युद्ध करना अशक्य हो, ऐसे अयोध्य भवन। **खेमा**—शत्रुकृत उपद्रव से रहित। **सिवा**—सदा मगलयुक्त। **चंदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा**—जिन भवनो के प्रतिद्वारो के देशभाग मे चन्दन के घडो से अच्छी तरह बनाए हुए तोरण हैं। **'सव्वरयणामया' ''लण्हा**—वे असुरकुमारो के भवन पूर्णरूप से रत्नमय, अच्छा—स्फटिक के समान स्वच्छ, सण्हा—स्निग्ध पुद्गलस्कन्धो से निर्मित, और कोमल होते है। **णिप्पंका**—कलक या कीचड़ से रहित। **निक्कंकडछाया**—वे भवन उपघात या आवरण से रहित (निष्ककट) छाया यानी कान्ति वाले होते हैं। **समरिया**—उनमे से किरणो का जाल बाहर निकलता रहता है। **सउज्जोया**—उद्योतयुक्त अर्थात्—बाहर स्थित वस्तुओ को भी प्रकाशित करने वाले। **पासा-दीया**—मन को प्रसन्न करने वाले। **दरिसणिज्जा**—दर्शनीय—दर्शनयोग्य, जिन्हे देखने मे नेत्र थके नही। **दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया**—दिव्य वीणा, वेणु, मृदग आदि वाद्यो की मनोहर ध्वनि से सदा गू जते रहने वाले। **पडिरूवा**—प्रतिरूप—उनमें प्रतिक्षण नया-नया रूप दृष्टिगोचर होता है। **धवलपुप्फदंता**—कुद आदि के श्वेतवर्ण-पुष्पो के समान श्वेत दात वाले, **असियकेसा**—काले केश वाले। ये दांत और केश औदारिक पुद्गलों के नही, वैक्रिय के समझने चाहिए। **महिड्ढिया**—

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ५५ से ६३ तक

भवन, परिवार आदि महान् ऋद्धियों से युक्त। **महज्जुइया**—जिनके शरीरगत और आभूषणगत महती द्युति है। **महब्बला**—शारीरिक और प्राणगत महती शक्ति वाले। **महाणुभागे**—महान् अनुभाग—सामर्थ्यशील, अर्थात् जिनमे शाप और अनुग्रह का महान् सामर्थ्य हो। **दिव्वेण संघयणेणं**—दिव्य संहनन से। यहाँ देवो के संहनन का कथन शक्तिविशेष की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि संहनन अस्थिरचनात्मक (हड्डियो की रचना विशेष) होता है, देवो के हड्डियाँ नही होती। इसीलिए जीवाभिगमसूत्र मे कहा है—**'देवा असंघयणी, जम्हा तेसिं नेवट्ठी नेव सिरा'** (देव असंहनन होते है, क्योकि उनके न तो हड्डी होती है, न ही नसे (शिराएँ) होती हैं, **दिव्वाए पभाए**—दिव्य प्रभा से, भवनावासगत प्रभा से। **दिव्वाए छायाए**—दिव्य छाया से—देवो के समूह की शोभा से। **दिव्वाए अच्चीए**—शरीरस्थ रत्नों आदि के तेज की ज्वाला से। **दिव्वेर तेएण**—शरीर से निकलते हुए दिव्य तेज से। **दिव्वाए लेसाए**—देह के वर्ण की दिव्य सुन्दरता से। **आणाईसरसेणावच्चं**—आज्ञा से ईश्वरत्व (आज्ञा पर प्रभुत्व) एव सेनापतित्व करते हुए।

भवनवासियो के मुकुट और आभूषणों में अंकित चिह्न—मूलपाठ मे असुरकुमारादि की पहिचान के लिए चिह्न बताए है। वे उनके मुकुटो तथा अन्य आभूषणो में अकित होते है।[1]

समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१८८. कहि णं भंते ! वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते ! वाणमंतरा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसत ओगाहित्ता हेट्ठा वि एगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ ण वाणमतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतर-विउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत-सयग्घि-मुसल-मुसुंढि-परियरिया अओज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितला उवचित-चंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता पडाग-मालाउलाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया निम्मला निप्पंका णिक्कंकड-च्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं वाणमतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति। तं जहा—पिसाया १ भूया २ जक्खा ३ रक्खसा ४ किन्नरा ५ किंपुरिसा ६ भुयगवइणो य महाकाया ७ गंधव्व-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ८५ से ९५ तक

गणा य निउणगंधव्वगीतरइणो ८ अणवण्णिय १-पणवण्णिय २-इसिवाइय ३-भूयवाइय ४-कंदित ५-महाकंदिया य ६-कुहंड ७-पयगदेवा।

८ चंचलचलचवलचित्तकीलण-दवप्पिया गहिरहसिय-गीय-णच्चणरई वणमाला-मेल-मउल-कुंडल-सच्छंदविउव्वियाभरणचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरभिकुसुमसुरइयपलंबसोहंतकंतवियसंतचित्त-वणमालरइयवच्छा कामकामा[1] कामरूवदेहधारी णाणाविहवण्णरागवरवत्थचित्तचिल्ल [ल]गणियंसणा विविहदेसिणेवच्छगहियवेसा पमुइयकंदप्प-कलह-केलि-कोलाहलप्पिया हास.बोलबहुला असि-मोग्गर-सत्ति-कोंत-हत्था अणेगमणि-रयणविविहणिजुत्तविचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडितथंभियभुया अंगय-कुंडल-मट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाण-गपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेज्जगणगरावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीण साणं साणं परिसाणं साण साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं च बहूण वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतणट्ट-गीय-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१८८ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८८ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन अवगाहन (प्रवेश) करके तथा नीचे भी एक सौ योजन छोड कर, बीच मे आठ सौ योजन (प्रदेश) मे, वाणव्यन्तर देवो के तिरछे असख्यात भौमेय (भूमिगृह के समान) लाखो नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भौमेयनगर बाहर से गोल और अदर से चौरस तथा नीचे से कमल की कर्णिका के आकार में सस्थित हैं। (उन नगरवासो के चारो ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयां एव परिखाए खुदी हुई हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारो, अट्टालको, कपाटो, तोरणो प्रतिद्वारो से (वे नगरावास) युक्त हैं। (तथा वे नगरावास) विविध यन्त्रो, शतघ्नियो, मूसलो एव मुसुण्ढी नामक शस्त्रो से परिवेष्टित (घिरे हुए) होते हैं। (वे शत्रुओ द्वारा) अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजयशील, सदागुप्त (सुरक्षित), अडतालीस कोष्ठो (कमरों) से रचित, अडतालीस वनमालाओ से सुसज्जित, क्षेममय, शिव(मगल)मय, और किंकर देवों के दण्डो से उपरक्षित हैं। लिपे-पुते होने के

---

१ पाठान्तर—मलय वृत्ति मे 'कामगमा' पाठ है, जिसका अर्थ किया है—काम-इच्छानुसार गम—प्रवृत्ति करने वाले अर्थात्—स्वेच्छाचारी।

कारण (वे नगरावास) प्रशस्त रहते हैं। (उन नगरावासो पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से लिप्त पाचो अगुलियों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वार-देश के भाग चन्दन के घड़ों से भलीभाति निर्मित होते हैं; (वे नगरावास) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओ के समूह से युक्त होते हैं। पाच वर्णों के सरस सुगन्धित मुक्त पुष्पपुंज से उपचार (अर्चन)-युक्त होते हैं। वे काले अगर, उत्तम चीडा, लोबान, गुग्गल आदि के धूप की महकती हुई सौरभ से रमणीय तथा सुगन्धित, वस्तुओं की उत्तमगन्ध से सुगन्धित, मानो गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान (वे नगरावास लगते हैं।) अप्सरागण के सघो से व्याप्त, दिव्य वाद्यो की ध्वनि से निनादित, पताकाओं की पक्ति से मनोहर, सर्वरत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे, पौंछे, रजरहित, निर्मल, निष्पक, आवरण-रहित छाया (कान्ति) वाले, प्रभायुक्त किरणो से युक्त, उद्योतयुक्त, (प्रकाशमन्न), प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप एव प्रतिरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त नगरावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो के स्थान कहे गए हैं।

(वे स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, जहाँ कि बहुत-से वाण-व्यन्तरदेव निवास करते है। वे इस प्रकार हैं—

१—पिशाच, २—भूत, ३—यक्ष, ४—राक्षस, ५—किन्नर, ६—किम्पुरुष, ७—महाकाय भुजगपति तथा ८—निपुणगन्धव-गीतो में अनुरक्त गन्धर्वगण। (इनके आठ अवान्तर भेद—)

१—अणपर्णिक, २—पणपर्णिक, ३—ऋषिवादित, ४—भूतवादित, ५—क्रन्दित, ६—महा-क्रन्दित, ७—कूष्माण्ड और ८—पतगदेव।

ये अनवस्थित चित्त के होने से अत्यन्त चपल, क्रीडा-तत्पर और परिहास—(द्रव) प्रिय होते हैं। गभीर हास्य, गीत और नृत्य में इनकी अनुरक्ति रहती है। वनमाला, कलगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणो से वे भलीभाति मण्डित रहते हैं। सभी ऋतुओ मे होने वाले सुगन्धित पुष्पो से सुरचित, लम्बी शोभनीय, सुन्दर एव खिलती हुई विचित्र वनमाला से (उनका) वक्षस्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामनानुसार काम-भोगो का सेवन करने वाले, इच्छानुसार रूप एव देह के धारक, नाना प्रकार के वर्णों वाले, श्रेष्ठ विचित्र चमकीले वस्त्रो के धारक, विविध देशो की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं, इन्हे प्रमोद, कन्दर्प (कामक्रीडा) कलह, केलि (क्रीडा) और कोलाहल प्रिय है। इनमें हास्य और विवाद (बोल) बहुत होता है। इनके हाथो मे खड्ग, मुद्गर, शक्ति और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मणियो और रत्नो के विविध चिह्न वाले होते हैं। ये महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाव या महासामर्थ्यशाली, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले होते है। कड़े और बाजूबद से इनकी भुजाएँ मानो स्तब्ध रहती हैं अगद और कुण्डल इनके कपोलस्थल को स्पर्श किये रहते हैं। ये कानो मे कर्णपीठ धारण किये रहते हैं, इनके हाथो मे विचित्र आभूषण एव मस्तक मे विचित्र मालाएँ होती हैं। ये कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी माला एव अनुलेपन धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होते हैं। ये लम्बी वनमालाएँ धारण करते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एव दिव्य लेश्या से दशो दिशाओ को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए वे (वाणव्यन्तर देव) वहाँ (पूर्वोक्त स्थानों में) अपने-अपने लाखो भौमेय नगरावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपनी-

अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से वाणव्यन्तर देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व एव सेनापतित्व करते-कराते तथा उनका पालन करते-कराते हुए वे (वाणव्यन्तर देवगण) महान् उत्सव के साथ नृत्य, गीत और वीणा, तल, ताल (कांसा), त्रुटित, घनमृदग आदि वाद्यों को बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१८९. [१] कहि ण भंते ! पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भंते ! पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाण देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं। ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणितव्वो जाव पडिरूवा। एत्थ णं पिसायाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्डिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-१ प्र.] भते ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

[१८९-उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर के एक सौ योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन (प्रदेश) को छोड़कर, बीच के आठ सौ योजन (प्रदेश)मे, पिशाच देवों के तिरछे असख्यात भूगृह के समान लाखों (भौमेय) नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे भौमेय नगर (नगरावास) बाहर से गोल (वर्तुल), हैं इत्यादि सब वर्णन जैसे सू १७७ मे सामान्य भवनों मे कहा, वैसा ही यहाँ यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (नगरावासों) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असख्यातवें भाग में है, जहाँ कि बहुत-से पिशाच देव निवास करते है। जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तरों का कहा गया है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक जान लेना चाहिए।

[२] काल-महाकाला यऽत्थ दुवे पिसायइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्डिया महज्जुइया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-२] इन्ही (पूर्वोक्त नगरावासों) मे जो दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज—काल और महाकाल, निवास करते हैं, वे 'महर्द्धिक है, महाद्युतिमान हैं,' इत्यादि आगे का समस्त वर्णन, यावत् 'विचरण करते हैं' ('विहरंति') तक सू १८८ के अनुसार कहना चाहिए।

१९०. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससत-सहस्सा भवंतीति मक्खातं ।

ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणियव्वो जाव पडिरूवा । एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति ।

[१९०-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९०-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, सुमेरु पर्वत के दक्षिण मे, इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर का एक सौ योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन छोड कर बीच मे जो आठ सौ योजन (प्रदेश) हैं, उनमें दाक्षिणात्य पिशाच देवो के तिरछे असख्येय भूमिगृह-जैसे (भौमेय) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे (भौमेय) नगर बाहर से गोल हैं, इत्यादि सब कथन जैसे (सू. १७७ में) औघिक (सामान्य) भवनो का कहा, उसी प्रकार यहाँ भी यावत्—'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (पूर्वोक्त नगरावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवो के स्थान गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवे भाग में हैं। इन्ही (स्थानों) में बहुत-से दाक्षिणात्य पिशाच देव निवास करते हैं, 'वे महर्द्धिक हैं', इत्यादि समग्र वर्णन जैसे (सू १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तर देवो का किया है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरति) तक करना चाहिए।

[२] काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसति महिड्ढीए (सु. १८८) जाव पभासेमाणे। से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हमग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं (सु. १८८) जाव विहरति ।

[१९०-२] इन्ही (पूर्ववर्णित स्थानो) में पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल निवास करते हैं, जो महर्द्धिक है, (इत्यादि सब वर्णन सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक समझना चाहिए। वह (दाक्षिणात्य पिशाचेन्द्र काल) तिरछे असंख्यात भूमिगृह जैसे लाखों नगरावासों का, चार हजार सामानिक देवो का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा और भी बहुत-से दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर देवो और देवियो का 'आधिपत्य करता हुआ' यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक (आगे का सारा कथन सू. १८८ के अनुसार करना चाहिए)।

१९१. [१] उत्तरिल्लाणं पुच्छा।

गोयमा! जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया (सु. १९० [१]) तहेव उत्तरिल्लाणं पि। णवरं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं।

[१९१-१ प्र.] भगवन्! उत्तर दिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त पिशाच देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! उत्तर दिशा के पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं?

[१९१-१ उ] गौतम! जैसे (सू १९१-१ मे) दक्षिण दिशा के पिशाच देवो का वर्णन किया है, वैसे ही उत्तर दिशा के पिशाच देवो का वर्णन समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके नगरावास) मेरुपर्वत के उत्तर मे हैं।

[२] महाकाले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसति जाव (सु. १९० [२]) विहरति।

[१९१-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (उत्तर दिशा का) पिशाचेन्द्र पिशाचराज—महाकाल निवास करता है, (जिसका सारा वर्णन) यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक, सू. १९०-२ के अनुसार (समझना चाहिए।)

१९२. एवं जहा पिसायाणं (सु. १८९-१९०) तहा भूयाणं पि जाव गंधव्वाणं। णवरं इंदेसु णाणत्तं भाणियव्वं इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूव-पडिरूवा, जक्खाणं पुण्णभद्द-माणिभद्दा, रक्खसाण भीम-महाभीमा, किण्णराणं किण्णर-किंपुरिसा, किंपुरिसाणं सप्पुरिस-महापुरिसा, महोरगाणं अइकाय-महाकाया, गंधव्वाणं गीतरती-गीतजसे जाव (सु. १८८) विहरति।

काले य महाकाले १ सुरूव पडिरूव २ पुण्णभद्दे य।
अमरवइ माणिभद्दे ३ भीमे य तहा महाभीमे ४ ॥ १४९ ॥
किण्णर किंपुरिसे खलु ५ सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ६।
अइकाय महाकाए ७ गीयरई चेव गीतजसे ८ ॥ १५० ॥

[१९२] इस प्रकार जैसे (सू. १८९-१९० में) (दक्षिण और उत्तर दिशा के) पिशाचो और उनके इन्द्रो (के स्थानो) का वर्णन किया गया, उसी तरह भूत देवो का यावत् गन्धर्वो तक का वर्णन समझना चाहिए। विशेष—इनके इन्द्रो मे इस प्रकार से भेद (अन्तर) कहना चाहिए। यथा—भूतो के (दो इन्द्र)—सुरूप और प्रतिरूप, यक्षो के (दो इन्द्र)—पूर्णभद्र और माणिभद्र, राक्षसों के (दो इन्द्र)—भीम और महाभीम, किन्नरो के (दो इन्द्र)—किन्नर और किम्पुरुष, किम्पुरुषो के (दो इन्द्र) सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगो के (दो इन्द्र)—अतिकाय और महाकाय तथा गन्धर्वों के (दो इन्द्र)—गीतरति और गीतयश; (आगे का इनका सारा वर्णन) सूत्र १८८ के अनुसार, यावत् 'विचरण करता है, (विहरति)' तक समझ लेना चाहिए।

[*संग्रहगाथाओ का अर्थ*—] (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के प्रत्येक के दो-दो इन्द्र क्रमश: इस प्रकार हैं)—१. काल और महाकाल, २ सुरूप और प्रतिरूप, ३. पूर्णभद्र और माणिभद्र इन्द्र, ४. भीम और महाभीम, ५. किन्नर और किम्पुरुष, ६. सत्पुरुष और महापुरुष, ७. अतिकाय और महाकाय तथा ८ गीतरति और गीतयश।

१९३. [१] कहि णं भंते ! अणवण्णियाणं देवाणं [पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं] ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! अणवण्णिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं हेट्ठा य एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसतेसु, एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं जाव (सु. १८८) पडिरूवा। एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं ठाणा। उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे अणवण्णिया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा पिसाया (सु. १८९[१]) जाव विहरंति।

[१९३-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अणपर्णिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! अणपर्णिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९३-१ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर और नीचे एक-एक सौ योजन छोड कर मध्य में आठ-सौ योजन (प्रदेश) मे, अणपर्णिक देवो के तिरछे असख्यात लाख नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे नगरावास (सू १८८ के अनुसार) यावत् प्रतिरूप तक पूर्ववत् समझने चाहिए। इन (पूर्वोक्त स्थानो) में अणपर्णिक देवो के स्थान है। (वे स्थान) उपपात की अपेक्षा मे लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग में है, स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ बहुत-से अणपर्णिक देव निवास करते हैं, वे महर्द्धिक हैं, (इत्यादि आगे का समग्र वर्णन) (सू १८९-१ में) जैसे पिशाचो का वर्णन है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक (समझना चाहिए।)

[२] सन्निहिय-सामाणा यऽत्थ दुवे अणवण्णिदा अणवण्णियकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया जहा काल-महाकाला (सु. १८९ [२])।

[१९३-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानों) में दोनो अणपर्णिकेन्द्र अणपर्णिककुमारराज—सन्निहित और सामान निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सारा वर्णन सू १८९-२ में वर्णित) काल और महाकाल की तरह (समझना चाहिए।)

१९४. एवं जहा काल-महाकालाणं दोण्हं पि दाहिणिल्लाणं उत्तरिल्लाण य भणिया (सु. १९०[२], १९१[२]) तहा सन्निहिय-सामाणाई णं पि भाणियव्वा। संगहणिगाहा—

अणवन्निय १ पणवन्निय २ इसिवाइय ३ भूयवाइया चेव ४।
कंदे ५ महाकंदिय ६ कुहंडे ७ पययदेवा ८ इमे इंदा ॥ १५१ ॥
सण्णिहिया सामाणा १ धाय विधाए २ इसी य इसिपाले ३।
ईसर महेसरे या ४ हवइ सुवच्छे विसाले य ५ ॥ १५२ ॥
हासे हासरई वि य ६ सेते य तहा भवे महासेते ७।
पयते पययपई वि य ८ नेयव्वा आणुपुव्वीए ॥ १५३ ॥

[१९४] इस प्रकार जैसे दक्षिण और उत्तर दिशा के (पिशाचेन्द्र) काल और महाकाल के सम्बन्ध में जैसे (क्रमशः सूत्र १९०-२ और १९१-२ में) कहा है, उसी प्रकार सन्निहित और सामान आदि (दक्षिण और उत्तर दिशा के अणपर्णिक आदि देवों के समस्त इन्द्रों) के विषय में कहना चाहिए।

[संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (वाणव्यन्तर देवो के आठ अवान्तर भेद—) १. अणपर्णिक, २. पणपर्णिक, ३. ऋषिवादिक, ४. भूतवादिक, ५. क्रन्दित, ६. महाक्रन्दित, ७ कुष्माण्ड और ८ पतंगदेव। इनके (प्रत्येक के दो-दो) इन्द्र ये हैं—॥१५१॥ १. सन्निहित और सामान, २ धाता और विधाता, ३ ऋषि और ऋषिपाल, ४ ईश्वर और महेश्वर, ५. सुवत्स और विशाल ॥१५२॥ ६. हास और हासरति, तथा ७ श्वेत और महाश्वेत, और ८. पतग और पतगपति क्रमश. जानने चाहिए ॥१५३॥

विवेचन—समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. १८८ से १९४ तक) मे सामान्य वाणव्यन्तर देवो तथा पिशाच आदि उनके मूल आठ भेदो तथा अणपर्णिक आदि आठ अवान्तर भेदो एव तत्पश्चात् इनके दक्षिण और उत्तर दिशा के देवो तथा इन सोलह के प्रत्येक के दो-दो इन्द्रो के स्थानो, उनकी विशेषताओ, उन सबकी प्रकृति, रुचि, शरीर-वैभव, तथा अन्य ऋद्धि आदि का स्पष्ट वर्णन किया गया है।[1]

ज्योतिष्कदेवों के स्थानों की प्ररूपणा

१९५. [१] कहि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते ! जोइसिया देवा परिवसंति?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्ताणउते जोयणसते उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरे जोयणसतबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसये, एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं विमाणा अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिता सव्वफलियामया अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणि-कणग-रतणभत्तिचित्ता वाउद्धुतविजयवेजयंतीपडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतल-मणुलिहमाणसिहरा जालंतररतण-पंजरुम्मिलिय व्व मणि-कणगथूभियागा वियसियसयवत्तपुंडरीया (य) तिलय-रयणद्धचंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो बाहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिज्ज-तिभागे।

तत्थ णं बहवे जोइसिया देवा परिवसंति, तं जहा—बहस्सती चंदा सूरा सुक्का सणिच्छरा राहू धूमकेऊ बुहा अंगारगा तत्ततवणिज्जकणगवण्णा, जे य गहा जोइसम्मि चारं चरंति केतू य गइरइया अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्तदेवयगणा, णाणासंठाणसंठियाओ य पंचवण्णाओ तारयाओ, ठितलेस्सा चारिणो अविस्साममंडलगई पत्तेयणामंकपागडियचिंधमउडा महिड्ढिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा।

---

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १., पृ ६४ से ६७ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ९६-९७

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १८८) विहरंति ।

[१९५-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक ज्योतिष्क देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भते ! ज्योतिष्क देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९५-१ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग से सात सौ नव्वे (७९०) योजन की ऊचाई पर एक सौ दस योजन विस्तृत एव तिरछे असख्यात योजन मे ज्योतिष्क क्षेत्र है, जहाँ ज्योतिष्क देवो के तिरछे असंख्यात लाख ज्योतिष्कविमानावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे विमान (विमानावास) आधे कवीठ (कपित्थ) के आकार के हैं और पूर्णरूप से स्फटिकमय हैं । वे सामने से चारो ओर ऊपर उठे (निकले) हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत हैं । विविध मणियों, स्वर्ण और रत्नो की छटा से वे चित्र-विचित्र हैं; हवा से उड़ी हुई विजय-वैजयन्ती, पताका, छत्र पर छत्र (अतिछत्र) से युक्त है, वे बहुत ऊँचे, गगनतलचुम्बी शिखरो वाले हैं । (उनकी) जालियो के बीच मे लगे हुए रत्न ऐसे लगते हैं, मानो पीजरे से बाहर निकाले गए हो । वे मणियों और रत्नो की स्तूपिकाओ से युक्त है । उनमे शतपत्र और पुण्डरीक कमल खिले हुए हैं । तिलकों तथा रत्नमय अर्धचन्द्रो से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओं से सुशोभित हैं । वे अदर और बाहर से चिकने हैं । उनके प्रस्तट (पाथड़े) सोने की रुचिर बालू वाले हैं । वे सुखद स्पर्श वाले, श्री से सम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (अतिसुन्दर) हैं ।

इन (विमानावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिष्कदेवो के स्थान कहे गए हैं । (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से—लोक के असख्यातवे भाग मे हैं ।

वहाँ (ज्योतिष्क विमानावासों में) बहुत-से ज्योतिष्क देव निवास करते हैं । वे इस प्रकार हैं—वृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध एव अगारक (मगल), ये तपे हुए तपनीय स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं (अर्थात्— ये किञ्चित् रक्त वर्ण के हैं ।) और जो ग्रह ज्योतिष्कक्षेत्र में गति (संचार) करते हैं तथा गति मे रत रहने वाला केतु, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्रदेवगण, नाना आकारो वाले, पाच वर्णों के तारे तथा स्थितलेश्या वाले, सचार करने वाले, अविश्रान्त (बिना रुके) मडल (वृत्त, गोलाकार) मे गति करने वाले, (ये सभी ज्योतिष्क देव है ।) (इन सब मे से) प्रत्येक के मुकुट में अपने-अपने नाम का चिह्न व्यक्त होता है । 'ये महर्द्धिक होते हैं,' इत्यादि सब वर्णन (सू. १८८ के अनुसार), यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') तक (पूर्ववत् समझना चाहिए) ।

वे (ज्योतिष्क देव) वहाँ (ज्योतिष्कविमानावासों में) अपने-अपने लाखो विमानावासो का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवो का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवो का, अपने-अपने हजारो आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तत्व (अग्रेसरत्व),

करते हुए (आगे का समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार समझना चाहिए।

[२] **चंदिम-सूरिया यऽत्थ दुवे जोईसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं जोइसियविमाणावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरंति।**

[१९५-२] इन्ही (पूर्वोक्त ज्योतिष्कविमानावासो) में दो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज— चन्द्रमा और सूर्य—निवास करते हैं; 'जो महर्द्धिक हैं' (इत्यादि सब वर्णन सू १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') (तक पूर्ववत् समझना चाहिए।) वे वहाँ अपने-अपने लाखो ज्योतिष्कविमानावासो का, चार हजार सामानिक देवो का, सपरिवार चार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से ज्योतिष्क देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व करते हुए यावत् विचरण करते है।

विवेचन—ज्योतिष्क देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू १९५-१, २) मे ज्योतिष्क देवों तथा उनके परिवारो एव उनके चन्द्र, सूर्य नामक दो इन्द्रो के स्थानो, उनकी प्रकृति, विशेषता, प्रभुता एव ऐश्वर्य आदि की प्ररूपणा की गई है।[1]

सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा

१९६. **कहि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! वेमाणिया देवा परिवसंति?**

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुत-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं चउरासीइ विमाणावाससतसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खातं।

ते णं विमाणा सव्वरतणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता। तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा परिवसंति। तं जहा—सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-गेवेज्जगा-ऽणुत्तरोववाइया देवा।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ९९
(ख) पण्णवणासुत्तं भा १ (मूलपाठ) पृ. ६७-७८

ते णं मिग १-महिस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दद्दुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभंक ११-विडिम १२-पागडियचिंधमउडा पसढिलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुंडलुज्जोइयाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गंध-फासा उत्तमवेउव्विणो पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा महिड्ढीया महज्जुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलंबवणमालधरा-दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साण तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१९६ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! वैमानिक देव कहाँ निवास करते हैं?

[१९६ उ.] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्को के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानो में वैमानिक देवो के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एव विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरहित, निर्मल, पक-(या कलक) रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं। इन्ही (विमानावासो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवो के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से वैमानिक देव निवास करते हैं। वे (वैमानिक देव) इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एव (पाच) अनुत्तरौपपातिक देव।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः)—१. मृग, २. महिष, ३. वराह, (शूकर), ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर (मेंढक), ७. हय (अश्व), ८. गजराज, ९ भुजग (सर्प), १० खड्ग (चौपाया वन्य जानवर या गैंडा), ११. वृषभ (बैल) और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलो से उद्योतित मुख वाले, मुकुट

के कारण शोभायुक्त, रक्त आभायुक्त, कमल के पत्र के समान गोरे, श्वेत, सुखद वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श वाले, उत्तम विक्रियाशक्तिधारी, प्रवर वस्त्र, गन्ध, माल्य और अनुलेपन के धारक महर्द्धिक, महाद्युतिमान् महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। कड़े और बाजूबंदों से मानो भुजाओं को उन्होंने स्तब्ध कर रखा है, अगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोलस्थल को सहला रहे हैं, कानो में वे कर्णपीठ और हाथों मे विचित्र कराभूषण धारण किए हुए हैं। विचित्र पुष्पमालाएँ मस्तक पर शोभायमान हैं। वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण किये हुए होते है। उनका शरीर (तेज से) देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से, दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को उद्योतित एव प्रभासित करते हुए, वे (वैमानिक देव) वहाँ अपने-अपने लाखो विमानावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिशक देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, सपरिवार अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदो का, अपनी-अपनी सेनाओ का, अपने-अपने सेनाधिपति देवो का, अपने-अपने हजारो आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से वैमानिक देवों और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशल वादको द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदग आदि वाद्यो की समुत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगो को भोगते हुए विचरण करते है।

१९७. [१] कहि णं भंते! सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सोहम्मगदेवा परिवसंति?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिम-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूणि जोयणसताणि बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणविच्छिण्णे अद्धचंद-संठाणसंठिते अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं, सव्वरयणामए अच्छे जाव (सु. १९६) पडिरूवे। तत्थ णं सोहम्मगदेवाणं बत्तीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु १०६) पडिरूवा।

तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभागे पंच वडेंसया पण्णत्ता। तं जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सोहम्मवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा। एत्थ णं सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे सोहम्मगदेवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं एवं जहेव ओहियाणं

(सु १९६) तहेव एतेसिं पि भाणितव्वं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूण सोहम्मग-कप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[१९७-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्पगत देवों के स्थान कहाँ कहे हैं ? भगवन् ! सौधर्मकल्पगत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९७-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीपनामक द्वीप में सुमेरु पर्वत के दक्षिण मे, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्को के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटा-कोटी योजन ऊपर दूर जाने पर सौधर्म नामक कल्प कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा, उत्तर दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्ध चन्द्र के आकार मे सस्थित, अचियो—ज्योतियो की माला तथा दीप्तियों की राशि के समान वर्ण—कान्ति वाला है। उसकी लम्बाई और चौडाई असंख्यात कोटि योजन ही नही, बल्कि असख्यात कोटाकोटि योजन की है, तथा परिधि भी असख्यात कोटाकोटि योजन की है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, (इत्यादि सब वर्णन), यावत् 'प्रतिरूप है' तक सू. १९६ के अनुसार (समझना चाहिए।) उस (सौधर्मकल्प) मे सौधर्म देवो के बत्तीस लाख विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (इत्यादि सब वर्णन) सू. १९६ के अनुसार यावत् प्रतिरूप हैं, तक, समझना चाहिए।

इन विमानो के बिलकुल मध्यदेशभाग मे (ठीक बीचो-बीच) पाच अवतसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१ अशोकावतसक, २. सप्तपर्णावतसक, ३ चपकावतसक, ४ चूतावतसक और इन चारो के मध्य मे ५-पाचवा सौधर्मावतसक। ये अवतसक पूर्णतया रत्नमय हैं, स्वच्छ है, यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक सब वर्णन सू १९६ के अनुसार समझ लेना चाहिए। इन्ही (अवतसको) मे पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मक देवो के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग में हैं। उनमें बहुत से सौधर्मक देव निवास करते हैं, जो कि 'महर्द्धिक हैं' (इत्यादि शेष वर्णन यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणा') तक (सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् कहना चाहिए।) वे वहाँ अपने-अपने लाखों विमानो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, इस प्रकार जैसे औधिक (सामान्य) वैमानिको के विषय मे (सू. १९६) मे कहा है, वैसे ही इनके विषय मे भी कहना चाहिए। यावत् हजारो आत्मरक्षक देवो का, तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व इत्यादि यावत् विचरण करते हैं ('विहरति') तक (सू. १९६ के अनुसार) करना चाहिए।

[२] सक्के यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाधिवती बत्तीसविमाणावाससतसहस्साधिवती एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबर-वत्थधरे आलइयमाल-मउडे णवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे महिड्ढिए जाव (सु. १९६) पभासेमाणे।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससतसहस्साणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं चउरासीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मगकप्प-वासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु. १९६) विरहइ।

[१९७-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में देवेन्द्र देवराज शक्र निवास करता है; जो वज्रपाणि पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्द्धलोकाधिपति, बत्तीसों लाख विमानों का अधिपति है। ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, जो सुरेन्द्र है, रजरहित स्वच्छ वस्त्र का धारक है, संयुक्त माला और मुकुट पहनता है तथा जिसके कपोलस्थल नवीन स्वर्णमय, सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से विलिखित होते हैं। वह महर्द्धिक है, (इत्यादि आगे का सब वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ, तक (सू १९६ के अनुसार) पूर्ववत् (जानना चाहिए)।

वह (देवेन्द्र देवराज शक्र) वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों का, चौरासी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार चौरासी हजार—अर्थात्—तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ, (इत्यादि सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक पूर्ववत् (समझना चाहिए)।

१९८. [१] कहि णं भंते ! ईसाणगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! ईसाणदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं जाव (सु.१९७ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणविच्छिण्णे एवं जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे।

तत्थ णं ईसाणगदेवाणं अट्ठावीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा।

तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रतणवडेंसए ३ जातरूववडेंसए ४ मज्झे एत्थ ईसाणवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पडिरूवा।

एत्थ णं ईसाणाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। सेसं जहा सोहम्मगदेवाणं जाव (सु. १९७ [१]) विहरंति।

[१९८-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ईशानक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ईशानक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९८-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के उत्तर में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम और रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्कों से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, इस प्रकार (शेष वर्णन) सौधर्म (कल्प के वर्णन) के समान (सू. १९७-१ के अनुसार) यावत्—'प्रतिरूप है' तक समझना चाहिए।

उस (ईशानकल्प) में ईशान देवों के अट्ठाईस लाख विमानावास हैं। वे विमान सर्व-रत्नमय यावत् (पूर्ववत्) प्रतिरूप हैं।

उन विमानावासों के ठीक मध्यदेशभाग में पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१-अंकावतंसक, २-स्फटिकावतंसक, ३-रत्नावतंसक, ४-जातरूपावतंसक और इनके मध्य में ५-ईशानावतंसक। वे (सब) अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं, (यह सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार जानना चाहिए)।

इन्हीं (अवतंसकों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक ईशान देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। शेष सब (वर्णन) सौधर्मक देवों के (सू. १९७-१ में कथित) (वर्णन के) अनुसार यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक (समझना चाहिए)।

[१] ईसाणे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढलोगाधिवती अट्ठावीसविमाणावाससतसहस्साधिवती अरयंबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२]) जाव पभासेमाणे।

से णं तत्थ अट्ठावीसाए विमाणावाससतसहस्साणं असीतीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं असीतीण आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसाणकप्पवासीणं वेमाणियाण देवाणं य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (१९६) विहरंति।

[१९८-२] इस ईशानकल्प में देवेन्द्र देवराज ईशान निवास करता है, शूलपाणि, वृषभ-वाहन, उत्तरार्द्धलोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानावासों का अधिपति, रजरहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, शेष वर्णन (सू. १९७-२ में अंकित) शक्र के (वर्णन के) समान, यावत् 'प्रभासित करता हुआ' तक (समझना चाहिए)।

वह (ईशानेन्द्र) वहाँ अट्ठाईस लाख विमानावासों का, अस्सी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार अस्सी हजार, अर्थात्—तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, अग्रेसरत्व करता हुआ, (आगे का सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (पूर्ववत् समझना चाहिए)।

१९९. [१] कहि णं भंते! सणंकुमारदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सणंकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सणंकुमारे णामं कप्पे पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिण-विच्छिण्णे जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे।

एत्थ णं सणंकुमाराणं देवाणं बारस विमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पडिरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभागे पंच वडेंसगा पण्णत्ता। ते जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सणंकुमारवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा। एत्थ णं सणंकुमारदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे सणंकुमारा देवा परिवसंति महिड्डिया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा विहरंति। णवरं अग्गमहिसीओ णत्थि।

[१९९-१ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! सनत्कुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१९९-१ उ.] गौतम! सौधर्म-कल्प के ऊपर समान (पूर्वापर दक्षिणोत्तररूप) पक्ष (पार्श्व) और समान प्रतिदिशा (विदिशा) में बहुत योजन, अनेक सौ योजन अनेक हजार योजन, सनत्कुमार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है, (इत्यादि सब वर्णन) सौधर्मकल्प के (सू १९७-१ मे उल्लिखित वर्णन के) अनुसार यावद् 'प्रतिरूप है' तक (समझना चाहिए)।

इसी (सनत्कुमारकल्प) मे सनत्कुमार देवो के बारह लाख विमान है, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (सू १९६ के अनुसार पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए)। उन विमानो के एकदम बीचोबीच मे पांच अवतसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१—अशोकावतसक, २—सप्तपर्णावतंसक, ३—चपकावतसक, ४—चूतावतसक और इनके मध्य मे ५—सनत्कुमारावतसक है। वे अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं, (तक का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् समझना चाहिए)। इन (अवतसको) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवो के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग में हैं। उन (स्थानो) मे बहुत-से सनत्कुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रभासित करते हुए विचरण करते हैं' तक पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अग्रमहिषिया नही हैं।

[२] **सणंकुमारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति, अरयंबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस (सु. १९७ [२])। से णं तत्थ बारसण्हं विमाणावाससतसहस्साणं बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं सेसं जहा सक्कस (सु. १९७ [२]) अग्गमहिसीवज्जं। णवरं चउण्हं बावत्तरीण आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरइ।**

[१९९-२] यही देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार निवास करता है, जो रज से रहित वस्त्रों के धारक है, (इत्यादि) शेष वर्णन जैसे (सू १९७-२ मे) शक्र का कहा है, (उसी प्रकार इसका समझना चाहिए)। वह (सनत्कुमारेन्द्र) बारह लाख विमानावासों का, बहत्तर हजार सामानिक देवों का, (इत्यादि) शेष सब वर्णन (जैसे सू. १९७-२ में) शक्रेन्द्र का किया गया है, इसी प्रकार (यहाँ भी) 'अग्रमहिषियों को छोडकर' (करना चाहिए)। विशेषता यह कि चार बहत्तर हजार, अर्थात्—दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देवो का यावत् 'विचरण करता है।' (यह कहना चाहिए)।

२००. [१] कहि णं भंते ! माहिंदाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! माहिंदगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव (सु. १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे णामं कप्पे पाईण-पडीणायए एवं जहेव सणंकुमारे (सु. १९९ [१]), णवरं अट्ठ विमाणावाससतसहस्सा। वडेंसया जहा ईसाणे (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ माहिंदवडेंसए। एवं सेसं जहा सणंकुमारगदेवाणं (सु. १९६) जाव विहरंति।

[२००-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक माहेन्द्र देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! माहेन्द्र देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२००-१ उ] गौतम ! ईशानकल्प के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा मे बहुत योजन, यावत्—(सू १९९-१ के अनुसार) बहुत कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प कहा गया है, पूर्व-पश्चिम में लम्बा इत्यादि वर्णन जैसे (सू. १९९-१ मे) सनत्कुमारकल्प का किया गया है, वैसे इसका भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि इस कल्प मे विमान आठ लाख हैं। इनके अवतसक (सू. १९८-१ में प्रतिपादित) ईशानकल्प के अवतसकों के समान जानने चाहिए। विशेषता यह है कि इनके बीच मे माहेन्द्रअवतंसक है। इस प्रकार शेष सब वर्णन (सू १९६ में वर्णित) सनत्कुमार देवो के समान, यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] माहिंदे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]) जाव विहरंति। णवरं अट्ठण्हं विमाणावाससतसहस्साण सत्तरीए सामाणिय-साहस्सीणं चउण्हं सत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरइ।

[२००-२] यही देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र निवास करता है; जो रज से रहित स्वच्छ—श्वेत वस्त्र-धारक है, इस प्रकार (आगे का समस्त वर्णन सू १९९-२ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के वर्णन की तरह यावत् 'विचरण करता है' तक समझना चाहिए। विशेष यह है कि माहेन्द्र आठ लाख विमानावासो का, सत्तर हजार सामानिक देवो का, चार सत्तर हजार अर्थात्—दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देवो का—(शेष सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' (तक समझना चाहिए।)

२०१. [१] कहि णं भंते ! बंभलोगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! बंभलोगदेवा परिवसंति ? गोयमा ! सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव[1] (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं बंभलोए णामं कप्पे पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिण्णे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिते अच्चिमाली-भासरासिप्पभे अवसेसं जहा सणंकुमाराणं (सु. १९९ [१]), णवरं चत्तारि विमाणावाससतसहस्सा। वडिंसया जहा सोहम्मवडेंसया (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ बंभलोयवडिंसए। एत्थ णं बंभलोगाणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता। सेसं तहेव जाव (सु. १९६) विहरंति।

---

१. 'जाव' और 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय सारा बीच का पाठ ग्राह्य है।

[२०१-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ब्रह्मलोक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०१-१ उ.] गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा मे बहुत योजन यावत् ऊपर दूर जाने पर, वहाँ ब्रह्मलोक नामक कल्प है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का, ज्योतिमाला तथा दीप्तिराशि की प्रभा वाला है। शेष वर्णन, सनत्कुमारकल्प की तरह (सू १९९-१ के अनुसार) समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इस कल्प मे) चार लाख विमानावास है। इनके अवतसक (सू १९७-१ में कथित) सौधर्म-अवतसको के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो अवतसको) के मध्य मे ब्रह्मलोक अवतसक है, जहाँ कि ब्रह्मलोक देवो के स्थान कहे गए हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार (सू. १९६ मे कथित वर्णन के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] बंभे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]) जाव विहरंति। णवरं चउण्हं विमाणावाससतसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०१-२] ब्रह्मलोकावतसक मे देवेन्द्र देवराज ब्रह्म निवास करता है, जो रज-रहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, इस प्रकार जैसे (सू १९९-२ मे) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करता है', तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि (यह ब्रह्मेन्द्र) चार लाख विमानावासों का, साठ हजार सामानिको का, चार साठ हजार अर्थात्—दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत से ब्रह्मलोककल्प के देवो का आधिपत्य करता हुआ (इत्यादि शेष वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए)।

२०२. [१] कहि णं भंते ! लंतगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! लंतगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! बंभलोगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणसयाइं जाव (सु. १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं लंतए णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं पण्णासं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खायं। वडेंसगा जहा ईसाणवडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ लंतगवडेंसए। देवा तहेव जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०२-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! लान्तक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०२-१ उ] गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में अनेक सौ योजन यावत् बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर, लान्तक नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है; (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक (कल्प) का (किया गया) है, (उसी तरह यहाँ भी करना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस कल्प में) पचास

हजार विमानावास हैं, (इनके) अवतसक ईशानावतसका (सू. १९८-१ मे उक्त) के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के मध्य मे (पाचवा) लान्तक अवतसक है। (सू. १९६ मे) (जिस प्रकार सामान्य वैमानिक देवो का वर्णन है,) उसी प्रकार (लान्तक) देवो का भी यावत् 'विचरण करते हैं', तक (वर्णन समझना चाहिए)।

[१] लंतए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे। (सु. १९९ [२]) णवरं पण्णासाए विमाणावाससहस्साणं पण्णासाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य पण्णासाणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०२-२] इस लान्तक अवतसक मे देवेन्द्र देवराज लान्तक निवास करता है, (इसका समग्र वर्णन) (सू. १९९-२ मे अकित) सनत्कुमारेन्द्र की तरह (समझना चाहिए)। विशेष यह है कि (लान्तकेन्द्र) पचास हजार विमानावासो का, पचास हजार सामानिको का, चार पचास हजार अर्थात्—दो लाख आत्मरक्षक देवो का, तथा अन्य बहुत-से लान्तक देवो का आधिपत्य करता हुआ इत्यादि (शेष समग्र वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझ लेना चाहिए)।

२०३. **[१] कहि णं भंते ! महासुक्काणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! महासुक्का देवा परिवसंति ?**

गोयमा ! लंतयस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं महासुक्के णामं कप्पे पण्णत्ते पायीण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिण्णे जहा बंभलोए णवरं चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसगा (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ महासुक्कवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०३-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक महाशुक्र देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! महाशुक्र देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०३-१ उ] गौतम ! लान्तककल्प के ऊपर समान दिशा मे (सू. १९९-१ के आगे का वर्णन) यावत् ऊपर जाने पर, महाशुक्र नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है, इत्यादि, जैसे (सू. २०१-१ मे) ब्रह्मलोक का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (इसमे) चालीस हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। इनके अवतसक (सू. १९७-१ मे उक्त) सौधर्मावतंसक के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के मध्य में (पाचवा) महाशुक्रावतसक है, (इससे आगे का) यावत् 'विचरण करते हैं', तक (का वर्णन) (सू. १९६-१ के अनुसार) (कह देना चाहिए)।

[२] महासुक्के यऽत्थ देविंदे देवराया जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साणं चत्तालीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य चत्तालीसाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०३-२] इस महाशुक्रावतसक में देवेन्द्र देवराज महाशुक्र रहता है, (जिसका सर्व वर्णन सू. १९९ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह महाशुक्रेन्द्र)

चालीस हजार विमानावासो का, चालीस हजार सामानिको का, और चार चालीस हजार, अर्थात् एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवो का अधिपतित्व करता हुआ··· ·(आगे का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए)।

२०४. [१] **कहि णं भंते ! सहस्सारदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सहस्सारदेवा परिवसंति ?**

गोयमा ! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं सहस्सारे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं छव्विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। देवा तहेव (सु. १९७ [१]) जाव वडेंसगा जहा ईसाणस्स वडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ सहस्सारवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०४-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और पर्याप्त सहस्रार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सहस्रार देव कहाँ निवास करते है ?

[२०४-१ उ.] गौतम ! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा से यावत् (सू. १९९-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर, वहाँ सहस्रार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है, (इत्यादि समस्त वर्णन) जैसे (सू २०१-१ मे) ब्रह्मलोक कल्प का है, (उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस सहस्रार कल्प मे) छह हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। (सहस्रार) देवो का वर्णन सू १९७-१ के अनुसार यावत् 'अवतसक है' तक उसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए। इनके अवतसको के विषय मे ईशान (कल्प) के अवतसको की तरह (सू. १९८-१ के अनुसार) जानना चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के बीच मे (पाचवा) 'सहस्रारावतसक' समझना चाहिए। (इससे आगे) यावत् 'विचरण करते हैं' तक का भी वर्णन (सू. १९६ के अनुसार) जान लेना चाहिए।

[२] **सहस्सारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं छण्हं विमाणावाससहस्साणं तीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) आहेवच्चं कारेमाणे विहरंति।**

[२०४-२] इसी स्थान पर देवेन्द्र देवराज सहस्रार निवास करता है। (उसका वर्णन) जैसे (१९२-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का है, उसी प्रकार वर्णन (समझना चाहिए)। विशेष यह है कि (सहस्रारेन्द्र) छह हजार विमानावासों का, तीस हजार सामानिक देवों का और चार तीस हजार, अर्थात्—एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवो का यावत् (सू. १९६ के अनुसार बीच का वर्णन) आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है।

२०५. [१] **कहि णं भंते ! आयण-पाणयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! आणय-पाणया देवा परिवसंति ?**

गोयमा ! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]), उप्पइत्ता एत्थ णं आणय-पाणयनामेणं दुवे कप्पा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता उदीण-दाहिणविच्छिण्णा अद्धचंद-

संठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिप्पभा, सेसं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [१]) जाव पडिरूवा । तत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं चत्तारि विमाणावाससता भवंतीति मक्खायं जाव पडिरूवा । वडिंसगा जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे पाणयवडेंसए। ते णं वडेंसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा (सु. १९६) । एत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे आणय-पाणयदेवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा । ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयाणं जाव (सु. १९६) विहरंति ।

[२०५-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आनत एव प्राणत देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! आनत-प्राणत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०५-१ उ.] गौतम ! सहस्रार कल्प के ऊपर समान दिशा और विदिशा में, (इत्यादि सू. १९९-१ के अनुसार) यावत् ऊपर दूर जा कर, यहाँ आनत एव प्राणत नाम के दो कल्प कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण, अर्द्धचन्द्र के आकार मे सस्थित, ज्योतिमाला और दीप्तिराशि की प्रभा के समान हैं, शेष सब वर्णन (सू १९१-१ में उक्त) सनत्कुमारकल्प के वर्णन की तरह यावत् प्रतिरूप हैं, तक (समझना चाहिए ।) उन कल्पो मे आनत और प्राणत देवो के चार सौ विमानावास हैं, ऐसा कहा है; विमानावासो का वर्णन यावत् प्रतिरूप है, तक पूर्ववत् कहना चाहिए । जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अवतसक सू. १९७-१ मे कहे हैं, इसी प्रकार इनके अवतसक कहने चाहिए । विशेष यह है कि इन (चारों) के बीच मे (पाचवा) प्राणतावतसक है। वे अवतसक पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (बीच का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए । इन (अवतसकों) में पर्याप्त-अपर्याप्त आनत-प्राणत देवो के स्थान कहे गए हैं । ये स्थान तीनों अपेक्षाओं से, लोक के असख्यातवे भाग में है, जहाँ बहुत-से आनत-प्राणत देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, यावत् (बीच का पाठ सू १९६ के अनुसार) 'प्रभासित करते हुए' तक समझ लेना चाहिए । वे (आनत-प्राणत देव) वहाँ अपने-अपने सैकडो विमानो का यावत् आधिपत्य करते हुए विचरते हैं ।

[२] **पाणए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं चउण्हं विमाणावाससयाणं वीसाए सामाणियसाहस्सीणं असीतीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरंति ।**

[२०५-२] यही देवेन्द्र देवराज प्राणत निवास करता है, जिस प्रकार (सू १९९-२ मे) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, (तदनुसार यहाँ भी प्राणतेन्द्र का समझना चाहिए ।) विशेष यह है कि (यह प्राणतेन्द्र) चार सौ विमानावासो का, बीस हजार सामानिक देवो का तथा अस्सी हजार आत्म-रक्षकदेवो का एव अन्य बहुत-से देवो का अधिपतित्व करता हुआ यावत् 'विचरण करता है' तक (का वर्णन सू. १९६ के अनुसार समझना चाहिए) ।

२०६. [१] **कहि णं भंते ! आरण-ऽच्चुताणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! आरण-ऽच्चुता देवा परिवसंति ?**

गोयमा ! आणय-पाणयाणं कप्पाणं उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं एत्थ णं आरणऽच्चुया णामं दुवे

कप्पा पण्णत्ता, पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णप्पभा असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा, एत्थ णं आरण-ऽच्चुताणं देवाणं तिन्नि विमाणावाससता हवंतीति मक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रयणवडेंसए ३ जायरूववडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ अच्चुतवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ णं आरणऽच्चुयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे आरणऽच्चुता देवा जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०६-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आरण और अच्युत देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! आरण और अच्युत देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०६-१ उ.] गौतम! आनत-प्राणत कल्पो के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे, यहाँ आरण और अच्युत नाम के दो कल्प कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण हैं, अर्द्धचन्द्र के आकार मे सस्थित और अर्चिमाली (सूर्य) की तेजोराशि के समान प्रभा वाले है। उनकी लम्बाई-चौडाई असख्यात कोटा-कोटी योजन तथा परिधि भी असख्यात कोटा-कोटी योजन की है। वे विमान पूर्णत· रत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए तथा चिकने किए हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, निरावरण कान्ति से युक्त, प्रभामय, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। उन विमानो के ठीक मध्यप्रदेशभाग मे पाच अवतसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१ अकावतसक, २ स्फटिकावतसक, ३ रत्नावतसक, ४. जातरूपावतसक और इन चारों के मध्य मे, ५. अच्युतावतंसक है। ये अवतसक सर्वरत्नमय हैं, (तथा सू. २०६-१ में कहे अनुसार) यावत् प्रतिरूप हैं। इनमें आरण और अच्युत देवो के पर्याप्तकों एव अपर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। इनमें बहुत-से आरण और अच्युत दव यावत् (सू १९६ के वर्णन के अनुसार) विचरण करते हैं।

[२] अच्चुते यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा पाणए (सु. २०५[२]) जाव विहरति। णवरं तिण्हं विमाणावाससताणं दसण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं आहेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु. १९६) विहरंति।

बत्तीस अट्ठवीसा बारस अट्ठ चउरो सतसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा छ च्च सहस्सा सहस्सारे ॥१५४॥
आणय-पाणकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण-ऽच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥१५५॥

सामाणियसंगहणीगाहा—

चउरासीइ १ असीई २ बावत्तरि ३ सत्तरी य ३ सट्ठी य ५ ।
पण्णा ६ चत्तालीसा ७ तीसा ८ वीसा ९-१० दस सहस्सा ११-१२ ।।१५६।।

एते चेव आयरक्खा चउगुणा ।

[२०६-२] यही अच्युतावतंसक में देवेन्द्र देवराज अच्युत निवास करता है। इसका सारा वर्णन (सू. २०५-२ मे अंकित) प्राणत की तरह, यावत् विचरण करता है, तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि अच्युतेन्द्र तीन सौ विमानावासो का, दस हजार सामानिक देवो का तथा चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है।

(द्वादश कल्प-विमानसंख्या-संग्रहणीगाथाओं का अर्थ—क्रमशः) १.बत्तीस लाख, २. अट्ठाईस लाख, २. बारह लाख, ४. आठ लाख, ५ चार लाख, ६ पचास हजार, ७. चालीस हजार, ८ सहस्रारकल्प में छह हजार, ९-१० आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ, तथा ११-१२ आरण-अच्युत कल्पों मे तीन सौ विमान होते हैं। अन्तिम इन चार कल्पों मे (कुल मिलाकर ४००+३००=७००) सात सौ विमान होते हैं ।।१५४-१५५।।

(द्वादशकल्प) सामानिक (संख्या)—संग्रहणीगाथा (का अर्थ—) १. चौरासी हजार, २ अस्सी हजार, ३. बहत्तर हजार, ४. सत्तर हजार, ५ साठ हजार, ६ पचास हजार, ७ (महाशुक्र मे) चालीस हजार, ८ (सहस्रार मे) तीस हजार, ९-१० बीस हजार, ११-१२ (आरण-अच्युत मे) दस हजार (क्रमशः हैं)। ।।१५६।।

इन्ही बारह कल्पो के आत्मरक्षक इन (सामानिकों) से (क्रमशः) चार-चार गुने हैं।

२०७ कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! आरणच्चुताणं कप्पाणं उप्पिं जाव (सु. २०६ [१] उड्ढं दूरं उप्पाइत्ता एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णाभा सेसं जहा बंभलोगे जाव (सु. २०१ [१]) पडिरूवा। तत्थं णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिज्जइ-भागे। तत्थ णं बहवे हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समज्जतीया सव्वे समजसा सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अप्पेस्सा अपुरोहिया अहमिंदा णाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२०७ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०७ उ.] गौतम ! आरण और अच्युत कल्पो के ऊपर यावत् (सू. २०६-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर अधस्तन-ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयक-विमान—प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-

पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण हैं। वे परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार में संस्थित हैं, सूर्य की तेजोराशि के वर्ण की-सी प्रभा वाले हैं, शेष वर्णन (सू. २०१-१ में अंकित) ब्रह्मलोक-कल्प के समान यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए)। उनमे अधस्तन ग्रैवेयक देवो के एक-सौ ग्यारह विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, (इत्यादि सब वर्णन) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (सू. २०६-१ के अनुसार समझना चाहिए)। यहाँ पर्याप्तक और पर्याप्तक अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उनमें बहुत-से अधस्तन-ग्रैवेयक देव निवास करते हैं, वे सब समान ऋद्धि वाले, सभी समान द्युति वाले, सभी समान यशस्वी, सभी समान बली, सब समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्य (दास) रहित, पुरोहितहीन हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' नाम से कहे गए हैं।

२०८ कहि णं भंते! मज्झिमगाणं गेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायता जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाणं णवरं सत्तुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगाणं देवाणं जाव (सु. २०७) तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। तत्थ णं बहवे मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति जाव (सु. २०७) अहमिंदा नामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!

[२०८ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक मध्य ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं?

[२०८ उ.] गौतम! अधस्तन ग्रैवेयको के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे यावत् ऊपर दूर जाने पर, मध्यम ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयकविमान-प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं; इत्यादि वर्णन जैसा अधस्तन ग्रैवेयको का (सू. २०७ मे) कहा गया है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके) एक सौ सात विमानावास कहे गए हैं। वे विमान (विमानावास) (सू. २०६-१ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए)। यहाँ (इन विमानावासो में) पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवे भाग में हैं। वहाँ बहुत-से मध्यम ग्रैवेयकदेव निवास करते हैं (इत्यादि शेष वर्णन सू. २०७ के अनुसार) यावत् हे आयुष्मन श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं; (तक समझना चाहिए)।

२०९. कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा? मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं उप्पि जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं उवरिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता सेसं जहा हेट्ठिमगेविज्जगाणं

(सु. २०७), नवरं एगे विमाणावाससते भवंतीति मक्खातं। सेसं तहेव भाणियव्वं (सु. २०७) जाव अहमिंदा नामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥१५७॥

[२०९ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उपरितन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०९ उ] गौतम ! मध्यम ग्रैवेयको के ऊपर यावत् (सू २०६-१ अनुसार) दूर जाने पर, वहाँ उपरितन ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं; शेष वर्णन (सू २०७ में कथित) अधस्तन ग्रैवेयकों के समान (जानना चाहिए।) विशेष यह है कि (इनके) विमानावास एक सौ होते हैं, ऐसा कहा है। शेष वर्णन (जैसा सू. २०७ में कहा गया है,) वैसा ही यहाँ यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं; तक कहना चाहिए।

[विमानसंख्याविषयक संग्रहणी गाथार्थ—] अधस्तन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह, मध्यम ग्रैवेयको मे एक सौ सात, उपरितन के ग्रैवेयकों में एक सौ और अनुत्तरौपपातिक देवों के पाच ही विमान है ॥१५७॥

२१०. कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पा तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्ज-विमाणावाससते वीतीवतित्ता तेण परं दूरं गता णीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महतिमहालया विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—विजये १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिते ४ सव्वट्ठसिद्धे ५।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तत्थ णं अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। तत्थ णं बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति सव्वे समिड्डिया सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अपेस्सा अपुरोहिता अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२१० प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अनुत्तरौपपातिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ निवास करते है ?

[२१० उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देवो के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पो तथा तीनो ग्रैवेयकप्रस्तटो के तीन सौ अठारह विमानवासो को पार (उल्लघन) करके उससे आगे सुदूर स्थित, पांच दिशाओ में रज से रहित, निर्मल, अन्धकाररहित एव विशुद्ध बहुत बड़े पाच अनुत्तर (महा) विमान कहे गए है। वे इस प्रकार है—१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४ अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध ।

वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने किये हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, निरावरण छायायुक्त, प्रभा से युक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतयुक्त, प्रसन्नताकारक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। वही पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवो के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। वहाँ बहुत-से अनुत्तरौपपातिक देव निवास करते हैं। हे आयुष्मान् श्रमणो ! वे सब समान ऋद्धिसम्पन्न, सभी समान बली, सभी समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्यरहित, पुरोहित-रहित हैं। वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे जाते है।

विवेचन—सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रो (सू १९६ से २१० तक) में सामान्य वैमानिको से ले कर सौधर्मादि विशिष्ट कल्पोपपन्नो एव नौ ग्रैवेयक तथा पच अनुत्तरौपपातिकरूप कल्पातीत वैमानिको के स्थानो, विमानो, उनकी विशेषताओ, वहाँ वसने वाले देवो, इन्द्रो, अहमिन्द्रो आदि सबका स्फुट वर्णन किया गया है।

सामान्य वैमानिकों की विमानसंख्या—सौधर्म आदि विशिष्ट कल्पोपपन्न वैमानिको के क्रमश. बत्तीस, अट्ठाईस, बारह, आठ, चार लाख विमान आदि ही कुल मिला कर ८४ लाख ९७ हजार २३ विमान, सामान्य वैमानिकों के होते है।

द्वादश कल्पों के देवों के पृथक्-पृथक् मुकुटचिह्न—१ सौधर्म देवो के मुकुट मे मृग का, २ ऐशान देवो के मुकुट में महिष (भैंसे) का, ३ सनतकुमार देवो के मुकुट में वराह (शूकर) का, ४ माहेन्द्र देवो के मुकुट मे सिंह का, ५ ब्रह्मलोक देवो के मुकुट मे छगल (बकरे) का, ६. लान्तक देवो के मुकुट मे दर्दुर (मेढक) का, ७ (महा) शुक्रदेवो के मुकुट मे अश्व का, ८ सहस्रारकल्पदेवो के मुकुट मे गजपति का, ९ आनतकल्पदेवो के मुकुट मे भुजग (सर्प) का, १० प्राणतकल्पदेवों के मुकुट मे खड्ग (वन्य पशु या गेंडे) का, ११ आरणकल्पदेवो के मुकुट में वृषभ (बैल) का और १२ अच्युतकल्पदेवो के मुकुट में विडिम का[1] चिह्न होता है।

सपक्खि सपडिदिसिं की व्याख्या—जिनके पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणरूप पक्ष अर्थात् पार्श्व समान हैं, वे **'सपक्ष'** यानी समान दिशा वाले कहलाते हैं तथा जहाँ प्रतिदिशाएँ—विदिशाएँ समान हैं, वे **'सप्रतिदिश'** कहलाते हैं।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक १००

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५

कल्पों के अवतंसकों का रेखाचित्र—

क्रम	कल्प का नाम	मध्य में	पूर्वदिशा में	दक्षिणदिशा में	पश्चिमदिशा में	उत्तरदिशा में
१	सौधर्मकल्प	सौधर्मावतंसक	अशोकावतंसक	सप्तपर्णावतंसक	चम्पकावतंसक	चूतावतंसक
३	सनत्कुमारकल्प	सनत्कुमारावतंसक	"	"	"	"
५	ब्रह्मलोककल्प	ब्रह्मलोकावतंसक	"	"	"	"
७	महाशुक्रकल्प	महाशुक्रावतंसक	"	"	"	"
(९) १०	(आनत) प्राणतकल्प	प्राणतावतंसक	"	"	"	"
२	ईशानकल्प	ईशानावतंसक	अंकावतंसक	स्फटिकावतंसक	रत्नावतंसक	जातरूपावतंसक
४	माहेन्द्रकल्प	माहेन्द्रावतंसक	"	"	"	"
६	लान्तककल्प	लान्तकावतंसक	"	"	"	"
८	सहस्रारकल्प	सहस्रारावतंसक	"	"	"	"
(११) १२	(आरण) अच्युतकल्प	अच्युतावतंसक	"	"	"	"

'अणिंदा' आदि शब्दों की व्याख्या—'अणिंदा'—जिन देवों के कोई इन्द्र यानी अधिपति नहीं है, वे अनिन्द्र। **'अपेस्सा'**—जिनके कोई दास या भृत्य नहीं है, वे अप्रेष्य। **'अपुरोहिया'**—जिनके कोई पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला नहीं होता, वे अपुरोहित हैं, क्योंकि इन कल्पातीत देवलोकों को किसी प्रकार की अशान्ति नहीं होती। **'अहमिंदा'**—'अहमिन्द्र', जिनमें सबके सब स्वयं इन्द्र हों, वे अहमिन्द्र कहलाते हैं।[1]

तात्पर्य यह है कि बारह कल्पों में जैसा स्वामी-सेवक आदि का भेद होता है, वैसा भेद नव-ग्रैवेयकों एवं अनुत्तरविमानों के देवों में नहीं है। वहाँ के सभी देवों की ऋद्धि आदि समान है, अतएव सभी अपने को इन्द्र-जैसा (स्वाधीन) अनुभव करते हैं। हाँ, सर्वार्थसिद्ध विमान को छोड़ कर उनकी आयु में अन्तर हो सकता है।

२११. कहि णं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ?

गोयमा ! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उड्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता, पणतालीसं जोयणसतसहस्साणि आयाम-

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५-१०६

विक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता। ईसीपब्भाराए णं पुढविए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, ततो अणंतरं च णं माताए माताए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरिमंतेसु मच्छियपत्तातो तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा—ईसी ति वा १ ईसीपब्भारा इ वा २ तणू ति वा ३ तणुतणू ति वा ४ सिद्धी ति वा ५ सिद्धालए ति वा ६ मुत्ती इ वा ७ मुत्तालए ति वा ८ लोयग्गे इ वा ९ लोयग्गथूभिया ति वा १० लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा ११ सव्वपाण-भूत-जीवसत्तसुहावहा इ वा १२।

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेता संखदलविमलसोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिता सव्वज्जुणसुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं सीताए जोयणम्मि लोगंतो। तस्स णं जोयणस्से जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपज्जवसिता अणेगजाति-जरा-मरण-जोणिसंसारकलंकलीभाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचसमतिक्कंता सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

तत्थ वि य ते अवेदा अवेदणा निम्ममा असंगा य।
संसारविप्पमुक्का पदेसनिव्वत्तसंठाणा ॥१५८॥
कहिं पडिहता सिद्धा ? कहिं सिद्धा पइट्ठिता ? ।
कहिं बोंदि चइत्ता णं ? कहिं गंतूण सिज्झई ? ॥१५९॥
अलोए पडिहता सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदि चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झई ॥१६०॥
दीहं वा हुस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१६१॥
जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि।
आसी य पदेसघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥१६२॥
तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होति बोधव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया ॥१६३॥
चत्तारि य रयणीओ रयणितिभागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥१६४॥
एगा य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिता ॥१६५॥

ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं[1] जरा-मरणविप्पमुक्काणं ॥१६६॥
जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा पुट्ठा सव्वे वि लोयंते ॥१६७॥
फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा देस-पदेसेहिं जे पुट्ठा ॥१६८॥
असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥१६९॥
केवलणाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुण-भावे ।
पासंति सव्वतो खलु केवलदिट्ठीहऽणंताहिं ॥१७०॥
न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१७१॥
सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडितं अणंतगुणं ।
ण वि पावे मुत्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं ॥१७२॥
सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे ण माएज्जा ॥१७३॥
जह णाम कोइ मेच्छो णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं उवमाए तहिं असंतीए ॥१७४॥
इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं, णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥१७५॥
जह सव्वकामगुणितं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।
तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥१७६॥
इय सव्वकालतित्ता अतुलं णेव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१७७ ॥
सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगत त्ति य परंपरगत त्ति ।
उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥१७८॥
णित्थिण्णसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा ॥१७९॥[2]

॥ पण्णवणाए भगवईए बिइयं ठाणपयं समत्तं ॥

---

१. ग्रन्थाग्रम् १५००
२. ग्रन्थाग्रम् १५२०

[२११ प्र.] भगवन् ! सिद्धों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सिद्ध कहाँ निवास करते हैं ?

[२११ उ.] गौतम ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपरी स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर बिना व्यवधान के, ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी कही है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन है। उसकी परिधि एक करोड बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनचास योजन के कुछ अधिक है। ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बहुत (एकदम) मध्यभाग मे (लम्बाई-चौड़ाई में) आठ योजन का क्षेत्र है, जो आठ योजन मोटा (ऊँचा) कहा गया है। उसके अनन्तर (सभी दिशाओ और विदिशाओं में)[1] मात्रा-मात्रा से अर्थात्—अनुक्रम से प्रदेशों की कमी होते जाने से, हीन (पतली) होती-होती वह सबसे अन्त में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली, अंगुल के असंख्यातवे भाग मोटी कही गई है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बारह नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) ईषत्, (२) ईषत्प्राग्भारा, (३) तनु, (४) तनु-तनु, (५) सिद्धि (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र, (१०) लोकाग्र-स्तूपिका, या (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी (बोधना) और (१२) सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी श्वेत है, शंखदल के निर्मल चूर्ण के स्वस्तिक, मृणाल, जलकण, हिम, गोदुग्ध तथा हार के समान वर्ण वाली, उत्तान (उलटे किए हुए) छत्र के आकार मे स्थित, पूर्णरूप से अर्जुनस्वर्ण के समान श्वेत, स्फटिक-सी स्वच्छ, चिकनी, कोमल, घिसी हुई, चिकनी की हुई (मृष्ट), निर्मल, निष्पंक, निरावरण छाया (कान्ति) युक्त, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नताजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (सर्वांगसुन्दर) है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी से निःश्रेणीगति से एक योजन पर लोक का अन्त है। उस योजन का जो ऊपरी गव्यूति है, उस गव्यूति का जो ऊपरी छठा भाग है, वहाँ सादि-अनन्त, अनेक जन्म, जरा, मरण, योनिसंसरण (गमन), बाधा (कलंकली भाव), पुनर्भव (पुनर्जन्म), गर्भवासरूप वसति तथा प्रपंच से अतीत (अतिक्रान्त) सिद्ध भगवान् शाश्वत अनागतकाल तक रहते हैं।

[सिद्धविषयक गाथाओं का अर्थ—] वहाँ (पूर्वोक्त सिद्धस्थान में) भी वे (सिद्ध भगवान्) वेदरहित, वेदनारहित, ममत्वरहित, (बाह्य-आभ्यन्तर-) संग (संयोग या आसक्ति) से रहित, संसार (जन्म-मरण) से सर्वथा विमुक्त एवं (आत्म) प्रदेशों से बने हुए आकार वाले हैं ॥१५८॥

'सिद्ध कहाँ प्रतिहत—रुक जाते हैं ? सिद्ध किस स्थान मे प्रतिष्ठित (विराजमान) हैं ? कहाँ शरीर को त्याग कर, कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ? ॥१५९॥

(आगे) अलोक के कारण सिद्ध (लोकाग्र में) रुके हुए (प्रतिहत) हैं। वे लोक के अग्रभाग (लोकाग्र) में प्रतिष्ठित हैं तथा यहाँ (मनुष्य लोक में) शरीर को त्याग कर वहाँ (लोक के अग्रभाग मे) जा कर सिद्ध (निष्ठितार्थ) हो जाते हैं ॥१६०॥

दीर्घ अथवा ह्रस्व, जो अन्तिमभव में संस्थान (आकार) होता है, उससे तीसरा भाग कम सिद्धों की अवगाहना कही गई है ॥१६१॥

इस भव को त्यागते समय अन्तिम समय में (त्रिभागहीन जितने) प्रदेशों में सघन संस्थान (आकार) था, वही संस्थान वहाँ (लोकाग्र में सिद्ध अवस्था में) रहता है, ऐसा जानना चाहिए ।।१६२।।

(जिनकी यहाँ पांच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना थी, उनकी वहाँ) तीन सौ से तेतीस धनुष और एक धनुष के तीसरे भाग जितनी अवगाहना होती है। यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है ।।१६३।।

(पूर्ण) चार रत्नि (मुण्ड हाथ) और त्रिभागन्यून एक रत्नि, यह सिद्धो की मध्यम अवगाहना कही है, ऐसा समझना चाहिए ।।१६४।।

एक (पूर्ण) रत्नि और आठ अंगुल अधिक जो अवगाहना होती है, यह सिद्धो की जघन्य अवगाहना कही है ।।१६५।।

(अन्तिम) भव (चरम शरीर) से त्रिभाग हीन (कम) सिद्धों की अवगाहना होती है। जरा और मरण से सर्वथा विमुक्त सिद्धों का सस्थान (आकार) अनित्थंस्थ होता है। अर्थात् 'ऐसा है' यह नही कहा जा सकता ।।१६६।।

जहाँ (जिस प्रदेश में) एक सिद्ध है, वहाँ भवक्षय के कारण विमुक्त अनन्त सिद्ध रहते है। वे सब लोक के अन्त भाग (सिरे) से स्पष्ट एव परस्पर समवगाढ (पूर्णरूप से एक दूसरे मे समाविष्ट) होते हैं ।।१६७।।

एक सिद्ध सर्वप्रदेशो से नियमत: अनन्तसिद्धो को स्पर्श करता (स्पृष्ट हो कर रहता) है। तथा जो देश-प्रदेशों से स्पृष्ट (होकर रहे हुए) हैं, वे सिद्ध तो (उनसे भी) असख्यातगुणा अधिक हैं ।।१६८।।

सिद्ध भगवान् अशरीरी हैं, जीवघन (सघन आत्मप्रदेश वाले) हैं तथा ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त (सदैव उपयोगयुक्त) रहते हैं; (क्योंकि) साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) उपयोग होना, यही सिद्धों का लक्षण है ।।१६९।।

केवलज्ञान से (सदैव) उपयुक्त (उपयोगयुक्त) होने से वे समस्त पदार्थों को, उनके समस्त गुणो और पर्यायो को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन से सर्वत: [समस्त-पदार्थों को सर्वप्रकार से) देखते हैं ।।१७०।।

अव्याबाध को प्राप्त (उपगत) सिद्धों को जो सुख होता है, वह न तो (चक्रवर्ती आदि) मनुष्यों को होता है, और न ही (सर्वार्थसिद्धपर्यन्त) समस्त देवो को होता है ।।१७१।।

देवगण के समस्त सुख को सर्वकाल के साथ पिण्डित (एकत्रित या सयुक्त) किया जाय, फिर उसको अनन्त गुणा किया जाय तथा अनन्त वर्गों से वर्गित किया जाए तो भी वह मुक्ति-सुख को नही पा सकता (उसकी बराबरी नहीं कर सकता) ।।१७२।।

एक सिद्ध के (प्रतिसमय के) सुखों की राशि, यदि सर्वकाल से पिण्डित (एकत्रित) की जाए, और उसे अनन्तवर्गमूलो से भाग दिया (कम किया) जाए, तो वह (भाजित=न्यूनकृत) सुख भी (इतना अधिक होगा कि) सम्पूर्ण आकाश में नहीं समाएगा ।।१७३।।

जैसे कोई म्लेच्छ (आरण्यक अनार्य) अनेक प्रकार के नगर-गुणों को जानता हुआ भी उसके सामने कोई उपमा न होने से कहने में समर्थ नहीं होता ।।१७४।।

इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है। उसकी कोई उपमा नहीं है। फिर भी कुछ विशेष रूप से इसकी उपमा (सदृशता) बताऊँगा, इसे सुनो ।।१७५।।

जैसे कोई पुरुष सर्वकामगुणित भोजन का उपभोग करके प्यास और भूख से विमुक्त होकर ऐसा हो जाता है, जैसे कोई अमृत से तृप्त हो। वैसे ही सर्वकाल मे तृप्त अतुल (अनुपम), शाश्वत, एव अव्याबाध निर्वाण-सुख को प्राप्त सिद्ध भगवान् (सदैव) सुखी रहते हैं ।।१७६-१७७।।

वे मुक्त जीव सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, पारगत हैं, परम्परागत हैं, कर्मरूपी कवच से उन्मुक्त हैं, अजर, अमर और असग हैं। उन्होंने सर्वदु:खो को पार कर दिया है। वे जन्म, जरा, मरण के बन्धन से सर्वथा मुक्त, सिद्ध (होकर) अव्याबाध एव शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं ।।१७८-१७९।।

विवेचन—सिद्धों के स्थान आदि का निरूपण—प्रस्तुत गाथाबहुल सूत्र (सू. २११) मे शास्त्रकार ने सिद्धों के स्थान, उसकी विशेषता, उसके पर्यायवाचक नाम, सिद्धों के गुण, अवगाहना सुख तथा उनकी विशेषता आदि का निरूपण किया है।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्वर्थक पर्यायवाची नाम—(१) सक्षेप मे कहने के लिए **'इषत्'** नाम है। (२) थोड़ी-सी आगे को झुकी हुई होने से **ईषत्प्राग्भारा** है। (३) शेष पृथ्वियो की अपेक्षा पतली होने से **'तनु'** नाम है। (४) जगत् प्रसिद्ध पतली मक्खी की पांख से भी पतली होने से इसका **'तनुतन्वी'** नाम है। (५) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से इसका नाम **'सिद्धि'** है, (६) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से उपचार से इसका नाम **'सिद्धालय'** भी है। (७-८) इसी प्रकार **'मुक्ति'** और **'मुक्तालय'** नाम भी सार्थक हैं। (९) लोक के अग्रभाग में स्थित होने से **'लोकाग्र'** नाम है। (१०) लोकाग्र की स्तूपिका-समान होने से इसका नाम **'लोकाग्रस्तूपिका'** भी है। (११) लोक के अग्रभाग में होने से उसके आगे जाना रुक जाता है, इसलिए एक नाम **'लोकाग्र-प्रतिवाहिनी'** भी है। (१२) समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए निरुपद्रवकारी भूमि होने से **'सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा'** नाम भी सार्थक है।[1]

सिद्धों के कुछ विशेषणों की व्याख्या—**'सादीया अपज्जवसिता'** = सादि-अपर्यवसित—अनन्त। प्रत्येक सिद्ध सर्वकर्मों का सर्वथा क्षय होने पर ही सिद्ध-अवस्था प्राप्त करता है; इस कारण से सिद्ध सादि (आदि युक्त) हैं, किन्तु सिद्धत्व प्राप्त कर लेने पर कभी उसका अन्त नही होता, इस कारण उन्हें अपर्यवसित—'अनन्त' कहा है। इस विशेषण के द्वारा 'अनादिशुद्ध' पुरुष की मान्यता का निराकरण किया गया है। सिद्धो के रागद्वेषादि विकारो का समूल विनाश हो जाने के कारण उनका सिद्धत्वदशा से प्रतिपात नही होता, क्योंकि पतन के कारण रागादि हैं, जो उनके सर्वथा निर्मूल हो चुके हैं। जैसे बीज के जल जाने पर उससे अकुर की उत्पत्ति नही होती, वैसे ही ससारबीज—रागद्वेषादि के विनष्ट हो जाने से पुन. संसार में आना और जन्ममरण पाना नही होता। इसीलिए उन्हें **'अणेगजाति-जरा-मरण-जोणि-संसार-कलंककलीभाव-पुणब्भव-गब्भवासवसही-पवंचसमतिक्कंता'** कहा गया है। अर्थ स्पष्ट है। **अवेदा** = सिद्ध भगवान् स्त्रीवेद और नपुंसकवेद (काम) से अतीत होते हैं। अर्थात्—शरीर का अभाव होने से उनमें द्रव्यवेद नही रहता और नोकषायमोहनीय का

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०७

अभाव हो जाने से भाववेद भी नही रहता; इसलिए इन्हें **अवेदी** कहा है। **अवेदणा**—साता और असातावेदनीय कर्म का अभाव होने से वे **वेदना से रहित** होते हैं। **'निम्ममा असंगा य'**—ममत्व से तथा बाह्य एवं आभ्यन्तर सग (आसक्ति या परिग्रह) से रहित होने के कारण वे **निर्मम और असंग** होते हैं। **संसारविप्पमुक्का**—संसार से वे सर्वथा मुक्त और अलिप्त है, ऊपर उठे हुए हैं। **पदेसनिव्वत्त-संठाणा**—सिद्धों में जो आकार होता है, वह पौद्गलिक शरीर के कारण नही होता, क्योकि शरीर का वहाँ सर्वथा अभाव है, अत: उसका सस्थान (आकार) आत्मप्रदेशों से ही निष्पन्न होता है। **सव्वकालतित्ता**—सर्वकाल यानी सादि-अनन्तकाल तक वे तृप्त हैं, क्योकि औत्सुक्य से सर्वथा निवृत्त होने से वे परमसंतोष को प्राप्त हैं। **'अतुलं सासयं अव्वाबाहं णेव्वाणं सुहं पत्ता'**—सिद्ध भगवान् अतुल—उपमातीत—अनन्यसदृश शाश्वत्त तथा अव्याबाध (किसी प्रकार की लेशमात्र भी बाधा न होने से) निर्वाण (मोक्ष) सबंधी—सुख को प्राप्त हैं। **'सिद्धत्ति य'**—सित यानी बद्ध जो अष्टप्रकारक कर्म, उसे जिन्होने ध्मात—भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध। सामान्यतया जो कर्म, शिल्प, विद्या, मत्र, योग, आगम, अर्थ, यात्रा, अभिप्राय, तप और कर्मक्षय, इन सबसे सिद्ध होता है,[1] उसे भी उस-उस विशेषणयुक्त कहते हैं, किन्तु यहाँ इन सबकी विवक्षा न करके एक **'कर्मक्षयसिद्ध'** की विवक्षा की गई है। शेष सबको निरस्त करने हेतु **'बुद्ध'** शब्द का प्रयोग किया गया है। **बुद्ध** का अर्थ है—अज्ञान-निद्रा में प्रसुप्त जगत् को स्वय जिन्होने तत्त्वबोध देकर जागृत किया है, सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी होने से उनका स्वभाव ही बोधरूप है। परोपदेश के बिना ही केवलज्ञान के द्वारा स्वत: वस्तुस्वरूप या जीवादितत्त्वो को जान लिया है। अर्हन्त भगवान् भी **'बुद्ध'** होते हैं, इसलिए विशेषण दिया है—**पारगता**—जो ससार से या समस्त प्रयोजनो से पार हो चुके हैं। अतएव कृतकृत्य हैं। अक्रमसिद्धो का निराकरण करने के लिए यहाँ कहा गया है—**'परंपरगता'**—जो परम्परागत हैं। अर्थात्—जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप परम्परा से अथवा मिथ्यात्व से लेकर यथासभव चतुर्थ, षष्ठ, आदि गुणस्थानो को पार करके सिद्ध हुए हैं। **अमरा**—आयुकर्म से सर्वथा रहित होने से वे **अजर-अमर** हैं। देह के अभाव में जन्म, जरा, मरण आदि के बन्धनो से विमुक्त हैं। जन्मजरामरणादि ही दु:ख रूप हैं और सिद्ध इन सब दु:खों से पार हो चुके हैं। इसलिए कहा गया है—**'निस्थिन्नसव्वदुक्खा-जाति-जरा-मरणबंधणो विमुक्का'**। सिद्धों के 'असरीरा, णेव्वाणमुवगया, उम्मुक्ककम्मकवचा, सव्वकालतित्ता' आदि विशेषण प्रसिद्ध हैं, इनके अर्थ भी स्पष्ट हैं।[2]

'अलोए पडिहता सिद्धा' की व्याख्या—सिद्ध भगवान् लोकाग्र के आगे अलोकाकाश होने से अलोक के कारण प्रतिहत हो (रुक) जाते हैं। गति में निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है। वह लोकाकाश में ही है, अलोकाकाश में नही होता। इसलिए ज्यों ही आलोकाकाश प्रारम्भ होता है, सिद्धो की गति में रुकावट आ जाती है। इस प्रकार वे धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण प्रतिहत हो जाते हैं

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक १०८ से ११२ तक

२. (क) सित बद्ध अष्टप्रकार कर्मध्मात भस्मीकृत यैस्ते सिद्धा.।

(ख) 'कम्मे सिप्पे य विज्जाए, मते जोगे य आगमे।
अत्थजत्ताभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इ य॥'

और मनुष्य क्षेत्र का परित्याग करके एक ही समय में अस्पृशद्गति से लोक के अग्रभाग (ऊपरी भाग) में स्थित हो जाते हैं।[1]

चरमभव में सिद्धों का संस्थान—अन्तिम भव मे जो भी दीर्घ (५०० धनुष), ह्रस्व (दो हाथ प्रमाण) अथवा विचित्र प्रकार का मध्यम सस्थान (आकार) उनका होता है, सिद्धावस्था में उससे तीसरा भाग कम आकार (सस्थान) रह जाता है, क्योंकि सिद्धावस्था में मुख, पेट, कान आदि के छिद्र भी भर जाते हैं, आत्मप्रदेश सघन हा जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भवपरित्याग से कुछ पहले सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नाम तीसरे शुक्लध्यान के बल से मुख, उदर आदि के छिद्र भर जाने से जो त्रिभागन्यून संस्थान रह जाता है, वही सस्थान सिद्धावस्था मे बना रहता है।

सिद्धों की अवगाहना—जिन सिद्धों की चरमभव मे अन्तिम समय में ५०० धनुष की अवगाहना होती है, उनकी त्रिभागन्यून होने पर ३३३⅓ धनुष की होती है, यह सिद्धो की **उत्कृष्ट अवगाहना** है। इस सम्बन्ध में एक शंका है, कि जैन इतिहासप्रसिद्ध नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध हुई हैं। नाभिकुलकर के शरीर की अवगाहना ५२५ धनुष की थी, और इतनी ही अवगाहना मरुदेवी की थी; क्योंकि आगमिक कथन है—'सहनन, सस्थान और ऊचाई कुलकरो के समान ही समझनी चाहिए।' अतः सिद्धिप्राप्त मरुदेवी के शरीर की अवगाहना में से तीसरा भाग कम किया जाए तो वह ३५० धनुष सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति मे ऊपर जो उत्कृष्ट अवगाहना ३३३⅓ धनुष बतलाई है, उसके साथ इसकी सगति कैसे बैठेगी ? इसका समाधान यह है कि मरुदेवी के शरीर की अवगाहना नाभिराज से कुछ कम होना सम्भव है; क्योकि उत्तम सस्थान वाली स्त्रियो की अवगाहना उत्तम सस्थान वाले पुरुषो की अवगाहना से अपने अपने समय की अपेक्षा से कुछ कम होती है। इस उक्ति के अनुसार मरुदेवी की अवगाहना ५०० धनुष की मानी जाए तो कोई दोष नही। इसके अतिरिक्त मरुदेवी हाथी के हौदे पर बैठी-बैठी सिद्ध हुई थी, अतएव उनका शरीर उस समय सिकुडा हुआ था। इस कारण अधिक अवगाहना होना सभव नही है। इस प्रकार सिद्धो की जो उत्कृष्ट अवगाहना ऊपर कही गई है, उसमे विरोध नही आता।

सिद्धो की मध्यम अवगाहना चार हाथ पूर्ण और एक हाथ मे त्रिभाग कम है। आगम में जघन्य सात हाथ की अवगाहना वाले जीवो को सिद्धि बताई गई है, इस दृष्टि से यह अवगाहना मध्यम न हो कर जघन्य सिद्ध होती है, इस शका का समाधान यह है कि सात हाथ की अवगाहना वाले जीवो की जो सिद्धि कही गई है, वह तीर्थंकर की अपेक्षा से समझनी चाहिए। सामान्य केवली तो इससे कम अवगाहना वाले भी सिद्ध होते हैं। ऊपर जो अवगाहना बताई गई है, वह सामान्य की अपेक्षा से ही है, तीर्थकरो की अपेक्षा से नही। सिद्धो की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अगुल की है। यह जघन्य अवगाहना कूर्मापुत्र आदि की समझनी चाहिए, जिनके शरीर की अवगाहना दो हाथ की होती है।

भाष्यकार ने कहा है—'उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष वालों की अपेक्षा से, मध्यम अवगाहना ७ हाथ के शरीर वालो की अपेक्षा से और जघन्य अवगाहना दो हाथ के शरीर वालों की अपेक्षा से कही गई है, जो उनके शरीर से त्रिभागन्यून होती है।'

---

१. प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्रांक १०८

सिद्धों का संस्थान अनियत—जरामरणरहित सिद्धों का आकार (संस्थान) अनित्थंस्थ होता है। जिस आकार को इस प्रकार का है, ऐसा न कहा जा सके, वह अनित्थस्थ—यानी अनिर्देश्य कहलाता है। मुख एव उदर आदि के छिद्रों के भर जाने से सिद्धों के शरीर का पहले वाला आकार बदल जाता है, इस कारण सिद्धों का संस्थान अनित्थंस्थ कहलाता है, यही भाष्यकार ने कहा है। आगम में जो यह कहा गया है कि 'सिद्धात्मा न दीर्घ हैं, न ह्रस्व हैं' आदि कथन भी संगत हो जाता है। अतः सिद्धो के संस्थान की अनियतता पूर्वाकार की अपेक्षा से है, आकार का अभाव होने के कारण नही। क्योंकि सिद्धो में संस्थान का एकान्ततः अभाव नहीं है।[1]

सिद्धों का अवस्थान—जहां एक सिद्ध अवस्थित है, वहां अनन्त सिद्ध अवस्थित होते हैं। वे परस्पर अवगाढ होकर रहते हैं, क्योकि अमूर्त्तिक होने से सिद्धो को परस्पर एक दूसरे में समाविष्ट होने में कोई बाधा नही पड़ती। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एक दूसरे मे मिले हुए लोक मे अवस्थित हैं, इसी प्रकार अनन्त सिद्ध एक ही परिपूर्ण अवगाहनक्षेत्र में परस्पर मिलकर लोक में अवस्थित हैं। वे सभी सिद्ध लोकान्त से स्पृष्ट रहते हैं। नियम से अनन्त सिद्ध आत्मा के सर्वप्रदेशों से स्पृष्ट रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अनन्त सिद्ध ऐसे हैं, जो पूर्ण रूप से एक दूसरे से मिले हुए रहते हैं और जिनका स्पर्श—(किंचित्) प्रदेशों से है ऐसे सिद्ध तो उनसे भी असख्यात गुणे अधिक हैं। क्योंकि अवगाढ प्रदेश असख्यात हैं।

सिद्ध, केवलज्ञान से सदैव उपयुक्त—सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान-दर्शन का उपयोग सदैव लगा रहता है, इसलिए वे केवलज्ञानोपयुक्त होकर जानते हैं, अन्तःकरण आदि से नही, क्योंकि वे शुद्ध आत्ममय होने से अन्तःकरणादि से रहित हैं।

सिद्ध : जीवघन कैसे ?—सिद्धों को जीवघन अर्थात् सघन आत्मप्रदेशो वाला, इसलिए कहा गया है कि सिद्धावस्था प्राप्त करने से पूर्व तेरहवे गुणस्थान के अन्तिम काल में उनके मुख, उदर आदि रन्ध्र आत्मप्रदेशो से भर जाते हैं, कही भी आत्मप्रदेशो से वे रिक्त नही रहते।[2]

।। प्रज्ञापनासूत्र : द्वितीय स्थानपद समाप्त ।।

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८ से ११० तक

(ख) कह मरुदेवामाण ? नाभीतो जेण किंचिदूणा सा।
तो किर पंचसयच्चिय अहवा सकोचओ सिद्धा ॥—भाष्यकार

(ग) जेट्ठा उ पचधणुसय-तणुस्स, मज्झा य सत्तहत्थस्स।
देहत्तिभागहीणा जहन्निया जा बिहत्थस्स ॥१॥
सत्तूसियं एसु सिद्धी जहन्नओ कहमिह बिहत्थेसु ?
सा किर तित्थयरेसु, सेयाणं सिज्झमाणाण ॥२॥
ते पुण होज्ज बिहत्था कुम्मापुत्तादयो जहन्नेणं।
अन्ने सवट्टिय सत्तहत्थ सिद्धस्स हीणत्ति ॥३॥—भाष्यकार

(घ) सुसिरपरिपूरणाओ पुव्वागारन्नहावत्थाओ। संठाणमणित्थंत्थं जं भणिय मणिययागारं।
एतोच्चिय पडिस्सेहो सिद्धाइगुणेसु दीहयाईणं। जमणित्थंथं पुव्वागाराविक्खाए नाभावो ॥२॥—भाष्य
दीह वा हुस्से वा।—

२. प्रज्ञापना. म. वृत्ति पत्रांक ११०

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तंपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यपद [अल्पबहुत्वपद]

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह तृतीय पद है, इसके दो नाम है—'बहुवक्तव्यपद' और 'अल्पबहुत्वपद'।

- तत्त्वो या पदार्थों का संख्या की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। उपनिषदो में वेदान्त का दृष्टिकोण बताया है कि विश्व मे एक ही तत्त्व—'ब्रह्म' है, समग्र विश्व उसी का 'विवर्त्त' या 'परिणाम' है, दूसरी ओर साख्यो का मत है कि जीव तो अनेक हैं, परन्तु अजीव एक ही है। बौद्धदर्शन अनेक 'चित्त' और अनेक 'रूप' मानता है। जैनदर्शन मे षड्द्रव्यो की दृष्टि से संख्या का निरूपण ही नही, किन्तु परस्पर एक दूसरे से तारतम्य, अल्पबहुत्व का भी निरूपण किया गया है। अर्थात् कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है? इसका पृथक् पृथक् अनेक पहलुओं से विचार किया गया है। प्रस्तुत पद मे यही वर्णन है।

- इसमें दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि से लेकर महादण्डक तक सत्ताईस द्वारो के माध्यम से केवल जीवो का ही नही, यथाप्रसग धर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्यो का, पुद्गलास्तिकाय का वर्गीकरण करके उनके अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है। षट्खण्डागम मे गति आदि १४ द्वारों से अल्पबहुत्व का विचार है।[1]

- सर्वप्रथम (सू. २१३-२२४ मे) दिशाओ की अपेक्षा से सामान्यत: जीवो के, फिर पृथ्वीकायादि पाच स्थावरो के, तीन विकलेन्द्रियो के, नैरयिको के, सप्त नरको के नैरयिको के, तिर्यंचपचेन्द्रिय जीवों के, मनुष्यो के, भवनपति-वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवो के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व का एवं सिद्धो के भी अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।[2]

- तत्पश्चात् सू. २२५ से २७५ तक दूसरे से तेईसवें द्वार तक के माध्यम से नरकादि चारों गतियों के, इन्द्रिय-अनिन्द्रिययुक्त जीवो के, पर्याप्तक-अपर्याप्तको के, षट्कायिक-अकायिक, अपर्याप्तक-पर्याप्तक, पर्याप्तक-अपर्याप्तको के, बादर-सूक्ष्मषट्कायिकों के, सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी काययोगी-अयोगी के, सवेदक-स्त्रीवेदक-पुरुषवेदक-नपुसक वेदक-अवेदकों के, सकषायी-क्रोध-

---

१. (क) पण्णवणासुत्त भाग-२, प्रस्तावना पृष्ठ ५२ (ख) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३
(ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५२० (घ) प्रज्ञापना-प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. २०३

२. पण्णवणासुत्तं भाग-१, पृ ८१ से ८४ तक

मान-माया-लोभ कषायी-अकषायी के, सलेश्य-षट्लेश्य-अलेश्य जीवों के, सम्यग् मिथ्या-मिश्र दृष्टि के, पांच ज्ञान-तीन अज्ञान से युक्त जीवों के, चक्षुदर्शनादि चार दर्शनो से युक्त जीवो के, संयत-असंयत संयतासंयत-नोसंयत-नोअसंयत-नोसयतासंयत जीवों के, साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के, आहारक-अनाहारक जीवों के, भाषक-अभाषक जीवों के, परीत-अपरीत-नोपरीत-नोअपरीत जीवों के, पर्याप्त-अपर्याप्त-नोपर्याप्त-नोअपर्याप्तकों के, सूक्ष्म-बादर-नोसूक्ष्म-नोबादरो के, संज्ञी-असंज्ञी-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवो के, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक-नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो के, धर्मास्तिकाय आदि षट्द्रव्यो के द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से पृथक्-पृथक् एव समुच्चय जीवों के, चरम-अचरम जीवो के, जीव-पुद्गल-काल-सर्वद्रव्य सर्वप्रदेश-सर्वपर्यायों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।[1]

- इसके पश्चात् सू. २७६ से ३२३ तक चौवीसवें क्षेत्रद्वार के माध्यम से ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक, अधोलोक-तिर्यक्लोक एवं त्रैलोक्य में सामान्य जीवों के, तथा नैरयिक, तिर्यंचयोनिक पुरुष-स्त्री, मनुष्यपुरुष-स्त्री, देव-देवी, भवनपति देव-देवी, वाणव्यन्तर देव-देवी, ज्योतिष्क देव-देवी, वैमानिक देव-देवी, एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय-पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के तथा षट्कायिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

- पच्चीसवे बन्धद्वार (सू ३२५) मे आयुष्यकर्मबन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समवहत-असमवहत, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नोइन्द्रियोयुक्त, एव साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है ।

- छब्वीसवें पुद्गलद्वार में क्षेत्र और दिशाओं की अपेक्षा से पुद्गलों तथा द्रव्यो का एवं द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से परमाणु पुद्गलों एवं सख्यात, असख्यात, और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का तथा एक प्रदेशावगाढ सख्यातप्रदेशावगाढ एव असख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलो का, एकसमयस्थितिक, संख्यातसमयस्थितिक और असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों का एव एकगुण काला, संख्यातगुण काला, असख्यातगुण काला और अनन्तगुण काला आदि पुद्गलो का अल्पबहुत्व प्ररूपित किया गया है ।

- सत्ताईसवें महादण्डकद्वार में समग्रभाव से पृथक्-पृथक् सविशेष जीवो के अल्पबहुत्व का ९८ क्रमो में कथन किया गया है । षट्खण्डागम के महादण्डक द्वार में भी सर्वजीवो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।[2]

- महादण्डक द्वार में समग्ररूप से जीवो की अल्पबहुत्व-प्ररूपणा की है । इस लम्बी सूची पर से फलित होता है कि उस युग में भी आचार्यों ने जीवो की सख्या का तारतम्य बताने का प्रयत्न

---

१. (क) पण्णवणासुत्त भा. १, पृ. ८४ से १०१ तक (ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३ से १६८ तक
२. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. १०१ से ११२ तक (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पृ. ५२-५३ (प्रस्तावना)

किया है तथा मनुष्य हो, देव हो या तिर्यंच हो, सभी में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक मानी गई है। अधोलोक में पहली से सातवी नरक तक क्रमशः जीवों की संख्या घटती जाती है, जबकि ऊर्ध्वलोक में इससे उलटा क्रम है, वहाँ सबसे ऊपर के अनुत्तर विमानवासी देवो की संख्या सब से कम है, फिर नीचे के देवों में क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सौधर्म देवो की संख्या सबसे अधिक बताई गई है। पर मनुष्य लोक के नीचे भवनपति देव हैं, उनकी सख्या सौधर्म से अधिक है, उससे ऊँचे होते हुए भी व्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवो की सख्या उत्तरोत्तर अधिक है। सबसे कम सख्या मनुष्यो की है, इसी कारण मनुष्यभव दुर्लभ माना जाता है। जैसे-जैसे इन्द्रियां कम हैं, वैसे-वैसे जीवो की सख्या अधिक होती है, अर्थात् विकसित जीवो की अपेक्षा अविकसित जीवो की सख्या अधिक है। सिद्ध (पूर्णताप्राप्त) जीवों की संख्या एकेन्द्रिय जीवो से कम है। सबसे नीची सातवें नरक में और सर्वोच्च अनुत्तर देवलोक में सबसे कम जीव हैं, इस पर से ध्वनित होता है, जैसे अत्यन्त पुण्यशाली कम होते हैं, वैसे अत्यन्त पापी भी कम हैं।[1] □

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. ५४ (ख) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५७५

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यतापद (अल्पबहुत्वपद)

द्वारसंग्रह-गाथाएँ

दिशादि २७ द्वारों के नाम

२१२. **दिसि १ गति २ इंदिय ३ काए ४ जोगे ५ वेदे ६ कसाय ७ लेस्सा य ८।**
सम्मत्त ९ णाण १० दंसण ११ संजय १२ उवओग १३ आहारे १४ ॥१८०॥

भासग १५ परित्त १६ पज्जत्त १७ सुहुम १८ सण्णी १९ भवऽत्थिए २०-२१ चरिमे २२।
जीवे य २३ खेत्त २४ बंधे २५ पोग्गल २६ महदंडए २७ चेव ॥१८१॥

[२१२ गाथार्थ--] १ दिक् (दिशा), २. गति, ३. इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या, ९ सम्यक्त्व, १० ज्ञान, ११ दर्शन, १२ सयत, १३. उपयोग, १४. आहार, १५. भाषक, १६. परीत, १७ पर्याप्त, १८. सूक्ष्म, १९ सज्ञी, २०. भव, २१. अस्तिक, २२. चरम, २३ जीव, २४, क्षेत्र, २५. बन्ध, २६. पुद्गल और २७. महादण्डक; (तृतीय पद मे ये २७ द्वार हैं, जिनके माध्यम से पृथ्वीकाय आदि जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की जाएगी) ॥१८१-१८२॥

प्रथम दिशाद्वार : दिशा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२१३. **दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।**

[२१३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोडे जीव पश्चिमदिशा मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिणदिशा मे हैं, (और उनसे) विशेषाधिक (जीव) उत्तर-दिशा मे है।

२१४. [१] **दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया दाहिणेणं, उत्तरेणं विसेसाहिया, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया।**

[२१४-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक जीव दक्षिणदिशा में हैं, (उनसे) उत्तर में विशेषाधिक हैं, (उनसे) पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं, (उनसे भी) पश्चिम में (पृथ्वीकायिक) विशेषाधिक हैं।

[२] **दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा आउक्काइया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।**

[२१४-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े अप्कायिक जीव पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे हैं और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउक्काइया दाहिणुत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया।

[२१४-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े तेजस्कायिक जीव दक्षिण और उत्तर मे हैं, पूर्व में (उनसे) सख्यातगुणा अधिक हैं, (और उनसे भी) पश्चिम में विशेषाधिक हैं।

[४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पुरत्थिमेणं, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया।

[२१४-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वायुकायिक जीव पूर्वदिशा में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर में हैं और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण मे हैं।

[५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१४-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े वनस्पतिकायिक जीव पश्चिम में है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर मे हैं।

२१५. **[१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दक्खिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।**

[२१५-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव पश्चिम मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

[२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१५-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम त्रीन्द्रिय जीव पश्चिमदिशा मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर में है।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१५-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम चतुरिन्द्रिय जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे हैं (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर-दिशा में हैं।

२१६. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं, असंखेज्जगुणा ।

[२१६-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा रयणप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा सक्करप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वालुयप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे हैं ।

[५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पंकप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-५] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[६] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा धूमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-६] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोड़े धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं, एवं (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-७] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

[८] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा अहेसत्तमापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोडे अधःसप्तमा (तमस्तम.प्रभा) पृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

२१७. [१] दाहिणिल्लेहिंतो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-१] दक्षिणदिशा के अध.सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से छठी तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं, और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं ।

[२] दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविणेरइएहिंतो पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाणिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-२] दक्षिणदिशावर्ती तम प्रभापृथ्वी के नैरयिको से पाचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे हैं ।

[३] दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-३] दक्षिणदिशावर्ती धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको से चौथी पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे असख्यातगुणे हैं, (उनसे) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे है ।

[४] दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखिज्जगुणा ।

[२१७-४] दक्षिणात्य पकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से तीसरी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे असख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा मे (उनसे भी) असख्यातगुणे हैं ।

[५] दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखिज्जगुणा, दाहिणेणं असंखिज्जगुणा ।

[२१७-५] दक्षिणदिशा के वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिको से दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा में उनसे भी असख्यातगुणे हैं ।

[६] दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-६] दक्षिणदिशा के शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको से इस पहली रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे असख्यातगुणे हैं और उनसे भी दक्षिणदिशा में असंख्यातगुणे हैं ।

२१८. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पश्चिम मे हैं। पूर्व में (इनसे) विशेषाधिक हैं, दक्षिण मे (इनसे) विशेषाधिक हैं और उत्तर में (इनसे भी) विशेषाधिक हैं।

२१९. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा मणुस्सा दाहिणउत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया।

[२१९] दिशाओं की अपेक्षा सबसे कम मनुष्य दक्षिण एवं उत्तर मे हैं, पूर्व में (उनसे) सख्यातगुणे अधिक हैं और पश्चिमदिशा में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

२२० दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा भवणवासी देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२२०] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोडे भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं। (उनसे) असख्यातगुणे अधिक उत्तर मे हैं और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिण दिशा में हैं।

२२१. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा पुरत्थिमेणं, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया।

[२२१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव पूर्व में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर मे है और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण मे हैं।

२२२. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२२२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोड़े ज्योतिष्क देव पूर्व एव पश्चिम मे हैं, दक्षिण मे उनसे विशेषाधिक हैं और उत्तर में उनसे भी विशेषाधिक हैं।

२२३. [१] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सोहम्मे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।

[२२३-१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प देव सौधर्मकल्प मे पूर्व तथा पश्चिम दिशा में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[२] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा ईसाणे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया।

[२२३-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ईशान-कल्प में पूर्व एवं पश्चिम में हैं। उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[३] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सणंकुमारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-३] दिशाओ की अपेक्षा सबसे अल्प देव सनत्कुमारकल्प मे पूर्व और पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण मे (उनसे भी) विशेषाधिक हैं ।

[४] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा माहिंदे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव माहेन्द्रकल्प मे पूर्व तथा पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असख्यातगुणे हैं और दक्षिण मे (उनसे भी) विशेषाधिक हैं ।

[५] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा देवा बमलोए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२२३-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ब्रह्मलोककल्प मे पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे हैं; दक्षिणदिशा में (उनसे) असख्यातगुणे हैं ।

[६] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा लंतए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-६] दिशाओ को लेकर सबसे थोडे देव लान्तककल्प मे पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं । (उनसे) असख्यातगुणे दक्षिण मे है ।

[७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा महासुक्के कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-७] दिशाओ की दृष्टि से सबसे कम देव महाशुक्रकल्प मे पूर्व, पश्चिम एव उत्तर मे हैं । दक्षिण में (उनसे) असख्यातगुणे हैं ।

[८] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सहस्सारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-८] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम देव सहस्रारकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं । दक्षिण में (उनसे) असख्यातगुणे हैं ।

[९] तेण परं बहुसमोववण्णगा समणाउसो ! ।

[२२३-९] हे आयुष्मन् श्रमणो ! उससे आगे (के प्रत्येक कल्प में, प्रत्येक ग्रैवेयक में तथा प्रत्येक अनुत्तरविमान में चारो दिशाओं में) बहुत (बिलकुल) सम उत्पन्न होने वाले हैं ।

२२४. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा सिद्धा दाहिणुत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया । दारं १ ।।

[२२४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तरदिशा में हैं। पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणे हैं और पश्चिम मे (उनसे) विशेषाधिक हैं। —प्रथमद्वार ।।१।।

विवेचन—प्रथम दिशाद्वार : दिशाओं की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. २१३ से २२४ तक) में से प्रथमसूत्र में दिशा की अपेक्षा से औघिक जीवों के अल्पबहुत्व की और शेष ११ सूत्रो में पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवो से लेकर अनुत्तर विमानवासी वैमानिक देवो तक के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

दिशाओं की अपेक्षा से—आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध में द्रव्यदिशा और भावदिशा के अनेक भेद बताए गए हैं, किन्तु यहां उनमें से क्षेत्रदिशाओ का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि अन्य दिशाएँ यहाँ अनुपयोगी हैं और प्रायः अनियत हैं। क्षेत्रदिशाओ की उत्पत्ति (प्रभव) तिर्यक्लोक के मध्य में स्थित आठ रुचकप्रदेशों से है। वही सब दिशाओं का केन्द्र है।

औघिक जीवों का अल्पबहुत्व—दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा में हैं, क्योकि उस दिशा में बादर वनस्पति की अल्पता है। यहाँ बादर जीवो की अपेक्षा से ही अल्पबहुत्व का विचार किया गया है, सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा से नही, क्योंकि सूक्ष्मजीव तो समग्र लोक मे व्याप्त हैं, इसलिए प्रायः सर्वत्र समान ही हैं। बादर जीवों मे वनस्पतिकायिक जीव सबसे अधिक हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ वनस्पति अधिक है, वहाँ जीवो की संख्या अधिक है, जहाँ वनस्पति की अल्पता है, वहाँ जीवो की सख्या भी अल्प है। वनस्पति वही अधिक होती है, जहाँ जल की प्रचुरता होती है। '**जत्थ जलं तत्थ वणं**' इस उक्ति के अनुसार जहाँ जल होता है, वहाँ वन अर्थात् पनक, शैवाल आदि वनस्पति अवश्य होती है। बादरनामकर्म के उदय से पनक आदि की गणना बादर वनस्पतिकाय मे होने पर भी उनकी अवगाहना अतिसूक्ष्म होने तथा उनके पिण्डीभूत हो कर रहने के कारण सर्वत्र विद्यमान होने पर भी वे नेत्रों से ग्राह्य नही होते। 'जहाँ अप्काय होता है, वहाँ नियमतः वनस्पतिकायिक जीव होते हैं;' इस वचनानुसार समुद्र आदि में प्रचुर जल होता है और समुद्र द्वीपो की अपेक्षा दुगुने विस्तार वाले हैं। उन समुद्रों में भी प्रत्येक मे पूर्व और पश्चिम में क्रमशः चन्द्रद्वीप और सूर्यद्वीप हैं। जितने प्रदेश में चन्द्र-सूर्यद्वीप स्थित हैं, उतने प्रदेश में जल का अभाव है। जहाँ जल का अभाव है, वहाँ वनस्पतिकायिक जीवो का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमदिशा में लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित नामक देव का आवासरूप गौतमद्वीप है, जो लवणसमुद्र से भी अधिक विस्तृत है। वहाँ भी जल का अभाव होने से वनस्पतिकायिकों का अभाव है। इसी कारण पश्चिम दिशा में सबसे कम जीव पाए जाते हैं। पश्चिमदिग्वर्ती जीवो से पूर्वदिशा में विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि पूर्वदिशा में गौतमद्वीप नही है, अतएव वहाँ उतने जीव अधिक हैं, दक्षिणदिशा मे पूर्वदिग्वर्ती जीवों से विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि दक्षिण में चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से प्रचुर जल है, इस कारण वनस्पतिकायिक जीव भी बहुत हैं। उत्तर में दक्षिणदिग्वर्ती जीवों की अपेक्षा विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में संख्यात योजन वाले द्वीपों में से एक द्वीप में सख्यातकोटि-योजन-प्रमाण लम्बा-चौड़ा एक मानस-सरोवर है, उसमे जल की प्रचुरता होने से वनस्पतिकायिक जीवो की बहुलता है। इसी प्रकार जलाश्रित शंखादि द्वीन्द्रिय जीव, समुद्रादितटोत्पन्न शंख आदि के आश्रित चींटी

(पिपीलिका) आदि त्रीन्द्रिय जीव, कमल आदि में निवास करने वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव तथा जलचर मत्स्य आदि पंचेन्द्रिय जीव भी उत्तर में विशेषाधिक हैं।[1]

विशेषरूप से दिशाओं की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—(१) **पृथ्वीकायिकों का अल्पबहुत्व**—दक्षिणदिशा में सबसे कम पृथ्वीकायिक इसलिए हैं कि पृथ्वीकायिक जीव वही अधिक होते हैं, जहाँ ठोस स्थान होता है, जहाँ छिद्र या पोल होती है, वहाँ बहुत कम होते हैं। दक्षिणदिशा में बहुत-से भवनपतियो के भवन और नरकावास होने के कारण छिद्रो और पोली जगहों की बहुलता है। दक्षिण दिशा की अपेक्षा उत्तरदिशा में पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तरदिशा मे भवनपतियों के भवन और नरकावास कम हैं। अत: वहाँ सघन स्थान अधिक है। पूर्वदिशा में चन्द्र-सूर्यद्वीप होने से पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं। इसकी अपेक्षा भी पश्चिम मे पृथ्वीकायिकजीव विशेषाधिक हैं क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्यद्वीप के अतिरिक्त लवणसमुद्रीय गौतमद्वीप भी है।

(२) **अप्कायिकों का अल्पबहुत्व**—पश्चिम में वे सब से कम हैं, क्योंकि पश्चिम मे गौतमद्वीप होने के कारण जल कम है। पूर्व में गौतमद्वीप नही होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं, दक्षिण में चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं और उत्तर मे मानसरोवर होने से जल की प्रचुरता है, इसलिए वहाँ अप्कायिक विशेषाधिक हैं।

(३) **तेजस्कायिकों का अल्पबहुत्व**—दक्षिण और उत्तर दिशा में अग्निकायिक जीव सबसे कम इसलिए हैं कि मनुष्यक्षेत्र मे ही बादर तेजस्कायिक जीवो का अस्तित्व होता है, अन्यत्र नही। उनमें भी जहाँ मनुष्यों की सख्या अधिक होती है, वहाँ पचन-पाचन की प्रवृत्ति अधिक होने से तेजस्कायिक जीवो की अधिकता होती है। दक्षिण में पांच भरत क्षेत्रो तथा उत्तर मे पाच ऐरवत क्षेत्रों मे क्षेत्र की अल्पता होने से मनुष्य कम हैं, अतएव वहाँ तेजस्कायिक भी कम हैं। स्वस्थान में (अर्थात् दोनो मे) प्राय: समान हैं। इन दोनो दिशाओं की अपेक्षा पूर्व मे क्षेत्र सख्यातगुण अधिक होने से तेजस्कायिक पूर्व में संख्यातगुणे अधिक हैं, तथा उनमे भी विशेषाधिक तेजस्कायिक पश्चिमदिशा में हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं, जहाँ मनुष्यो की बहुलता होती है।

(४) **वायुकायिक जीवों का अल्पबहुत्व**—सब से अल्प वायुकायिक जीव पूर्व मे हैं, क्योंकि जहाँ पोल होती है वहीं वायु का संचार होता है, सघन स्थान में नही। पूर्व में सघन (ठोस) स्थान अधिक होने से वायु अल्प है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में वायुकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं। उत्तर मे उससे विशेषाधिक हैं, क्योंकि नारकावासो की वहाँ बहुलता होने से पोल अधिक है। दक्षिण मे उत्तर की अपेक्षा पोल अधिक है, क्योकि दक्षिण में भवनो और नारकावासों की प्रचुरता है, इसलिए दक्षिण में वे विशेषाधिक हैं।

(५) **वनस्पतिकायिक जीवों का अल्पबहुत्व**—वे सबसे कम पश्चिम मे है, क्योंकि पश्चिम में

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३-११४

(ख) अट्ठपएसो रुयगो तिरियलोयस्स मज्झयारम्मि।
एस पभवो दिसाण, एसेव भवे अणुदिसाणं ॥१॥

(ग) 'ते ण वालग्गा सुहुमपणग जीवस्स सरीरोगाहणाहिंतो असखेज्जगुणा।' —अनुयोगद्वारसूत्र

(घ) 'जत्थ आउकाओ, तत्थ नियमा वणस्सइकाइया।'

गौतमद्वीप होने से जल की अल्पता है और जल अल्प होने से वनस्पतिकायिक जीव भी कम हैं। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व मे वनस्पतिकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि पूर्व मे गौतमद्वीप न होने से जल अधिक है। उनसे दक्षिणदिशा मे वनस्पतिकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप का अभाव होने से जल की प्रचुरता है।

(६) **द्वीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम द्वीन्द्रिय पश्चिमदिशा मे हैं, क्योकि वहाँ गौतमद्वीप होने से जल कम है और जल कम होने से शख आदि द्वीन्द्रिय जीव कम हैं। उनसे पूर्वदिशा में विशेषाधक हैं, क्योकि वहाँ गौतमद्वीप का अभाव होने से जल का प्राचुर्य है, इस कारण शख आदि द्वीन्द्रिय जीवों की अधिकता है। दक्षिण मे उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप न होने से जल अधिक है और इस कारण शखादि भी अधिक हैं। उत्तर में तो मानस-सरोवर होने से जलाधिक्य है ही, इसलिए वहाँ द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

(७) **त्रीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—कुथुआ, चीटी आदि त्रीन्द्रिय शखादि-कलेवरो के आश्रित होने से द्वीन्द्रिय जीवो की तरह जलाधिक्य पर निर्भर हैं। इसलिए इनके अल्पबहुत्व का समाधान भी द्वीन्द्रिय की तरह समझ लेना चाहिए।

(८) **चतुरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव भी प्राय: कमल आदि के आश्रित होते हैं और कमल (जलज) भी जलजन्य होने से चतुरिन्द्रिय जीवो की अल्पता-अधिकता भी जलाभाव-जलप्राचुर्य पर निर्भर है। अत. इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी द्वीन्द्रियो की तरह समझना चाहिए।

(९) **नारकों का अल्पबहुत्व**—पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे सबसे कम नारक हैं, क्योकि इन दिशाओ मे पुष्पावकीर्ण नरकावास थोड़े हैं, और वे प्राय. सख्यात योजन विस्तृत हैं। इन दिशाओं की अपेक्षा दक्षिणदिशा मे असख्यात-गुणा नारक हैं, क्योकि दक्षिण मे पुष्पावकीर्णनरकावासो की बहुलता है और वे प्राय असख्यात योजन विस्तृत है। इसके अतिरिक्त कृष्णपाक्षिक जीवो की उत्पत्ति दक्षिणदिशा मे बहुत होती है। ससार में दो प्रकार के जीव हैं—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। जिनका ससार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन मात्र ही शेष है, वे शुक्लपाक्षिक हैं और जिनका ससार (भवभ्रमण) इससे बहुत अधिक है, वे कृष्णपाक्षिक हैं। शुक्लपाक्षिक (परिमित-ससारी) जीव अल्प होते हैं, जबकि कृष्णपाक्षिक जीव अत्यधिक होते हैं। वे क्रूरकर्मा एव दीर्घतर भवभ्रमणकर्ता जीव स्वभावत· दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं। प्राय क्रूरकर्मा भवसिद्धिक जीव भी दक्षिणदिशा में स्थित नारको, तिर्यंचों, मनुष्यों और असुरों आदि के स्थानो में उत्पन्न होते हैं।

(१०) **विशेषरूप से रत्नप्रभादि के नारकों का अल्पबहुत्व**—रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक-भूमि से तमस्तम.प्रभा नामक सप्तम नरकभूमि तक के नारक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे सबसे कम हैं, किन्तु दक्षिण दिशा में उनसे असंख्यातगुणे अधिक हैं। इसका कारण पहले बतलाया जा चुका है।

(११) **सातों नरकपृथ्वियों के जीवों का परस्पर अल्पबहुत्व**—सप्तम नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारको की अपेक्षा इसी पृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नारक असख्यातगुणे अधिक हैं, इसका कारण पहले बताया जा चुका है। सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिको की अपेक्षा छठी नरकपृथ्वी (तम.प्रभा) के पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्वर्ती नैरयिक असख्यातगुणे हैं, इसका कारण यह है कि संसार में सबसे अधिक पापकर्मकारी संज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य सप्तम

नरकपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, किञ्चित् हीन, हीनतर पापकर्मकारी छठी, पांचवी आदि पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं। सर्वोत्कृष्ट पापकर्मकारी सबसे थोड़े हैं; इसलिए सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिण मे सबसे कम नारक हैं, उनसे छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारक असख्येयगुणे हैं; छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिम-उत्तरदिग्वर्ती नारकों की अपेक्षा दक्षिणदिग्वर्ती नारक असख्यातगुणे हैं। कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे क्रमश. पचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम नरक के पूर्वपश्चिमोत्तरदिग्वर्ती तथा दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिक अनुक्रम से असख्यातगुणे समझ लेने चाहिए।

(१२) **तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व अप्कायिक सूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।

(१३) **मनुष्यों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम मनुष्य दक्षिण और उत्तर दिशा मे हैं, क्योंकि इन दिशाओ मे पाच भरत और पाच ऐरावत क्षेत्र छोटे ही हैं। उनसे पूर्वदिशा में सख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ क्षेत्र सख्यातगुणे बड़े हैं। पश्चिम दिशा मे इनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम हैं, जिनमें स्वभावतः मनुष्यो की बहुलता है।

(१४) **भवनवासी देवों का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं, क्योकि इन दोनो दिशाओ में उनके भवन थोडे हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर मे असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि स्वस्थान होने से वहाँ भवन बहुत हैं। दक्षिणदिशा मे इनसे भी असख्यातगुणे हैं, क्योकि वहाँ प्रत्येक निकाय के चार-चार लाख भवन अधिक हैं तथा बहुत-से कृष्णपाक्षिक इसी दिशा मे उत्पन्न होते हैं, अत: वे असख्यातगुणे अधिक हैं।

(१५) **वाणव्यन्तर देवों का अल्पबहुत्व**—जहाँ पोले स्थान है, वही प्राय· व्यन्तरो का सचार होता है, पूर्वदिशा में ठोस स्थान अधिक है, इस कारण वहाँ व्यन्तर थोडे ही हैं। पश्चिमदिशा में उनसे विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामो मे पोल अधिक हैं, उनकी अपेक्षा उत्तरदिशा मे विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ उनके स्वस्थान होने से नगरावासो की बहुलता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योकि दक्षिणदिशा मे उनके नगरावास अत्यधिक हैं।

(१६) **ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम ज्योतिष्क देव पूर्व एव पश्चिम दिशाओ मे होते हैं, क्योकि इन दोनो दिशाओं मे चन्द्र और सूर्य के उद्यान जैसे द्वीपो मे ज्योतिष्क देव अल्प ही होते हैं। दक्षिण मे उनकी अपेक्षा विशेषाधिक है, क्योकि दक्षिण मे उनके विमान अधिक हैं और कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा में ही होते हैं। उत्तरदिशा मे उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योकि उत्तर में मानससरोवर में ज्योतिष्क देवो के क्रीडास्थल बहुत हैं। क्रीडारत होने के कारण वहाँ ज्योतिष्क देव सदैव रहते हैं। मानससरोवर के मत्स्य आदि जलचरो को अपने निकटवर्ती विमानो को देख कर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे किंचित् व्रत अगीकार कर अशनादि का त्याग करके निदान के कारण वहाँ उत्पन्न होते हैं। इस कारण उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा ज्योतिष्क देव विशेषाधिक हैं।

(१७) **सौधर्म आदि वैमानिक देवों का अल्पबहुत्व**—वैमानिक देव सौधर्मकल्प मे सबसे कम पूर्व और पश्चिम मे हैं, क्योकि आवलिकाप्रविष्ट विमान तो चारो दिशाओ मे समान हैं, किन्तु बहुसख्यक और असख्यातयोजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान दक्षिण और उत्तर में ही है, पूर्व और पश्चिम मे नही। इसी कारण पूर्व और पश्चिम में सबसे कम वैमानिक देव हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर में वे असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उत्तर मे असख्यात योजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान बहुत हैं

और उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि कृष्णपाक्षिकों का वहाँ अधिकतर गमन होता है। ईशान, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र कल्प के देवों का भी दिशा की अपेक्षा से अल्पबहुत्व इसी प्रकार है और उनका कारण भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए। ब्रह्मलोककल्प के देव सबसे कम पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, क्योंकि बहुसंख्यक कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं और शुक्लपाक्षिक थोड़े ही होते हैं। दक्षिणदिशा मे उनकी अपेक्षा असख्यातगुणे देव हैं, क्योंकि वहाँ बहुत कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र एव सहस्रार कल्प के देवों का (दिशाओं की अपेक्षा) अल्पबहुत्व एवं कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। सहस्रारकल्प के बाद ऊपर के कल्पों के तथा नौ ग्रैवेयक एव पाच अनुत्तर विमानो के देव चारों दिशाओं में समान हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

(१८) **सिद्धजीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर मे हैं, क्योंकि मनुष्य ही सिद्ध होते हैं, अन्य जीव नही। सिद्ध होने वाले मनुष्य चरम समय में जिन आकाश प्रदेशो में अवगाढ़ (स्थित) होते है, उन्ही आकाशप्रदेशो की दिशा मे ऊपर जाते हैं, उसी सीध में ऊपर जाकर वे लोकाग्र में स्थित हो जाते हैं। दक्षिणदिशा मे पाच भरतक्षेत्रों में तथा उत्तर में पांच ऐरावत क्षेत्रो में मनुष्य अल्प हैं, क्योकि सिद्धक्षेत्र अल्प है। फिर सुषम-सुषमा आदि आरों में सिद्धि प्राप्त नही होती। इस कारण दक्षिण और उत्तर में सिद्ध सबसे कम हैं। पूर्वदिशा में उनसे असख्यातगुणे हैं; क्योकि भरत और ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वविदेह सख्यातगुणा विस्तृत है, इसलिए वहाँ मनुष्य भी सख्यातगुणे हैं, और वहाँ से सर्वकाल मे सिद्धि होती रहती है। उनसे भी पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं; क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे मनुष्यो की अधिकता है।[1]

द्वितीय गतिद्वार : पांच या आठ गतियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२२५. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं देवाणं सिद्धाणं य पंचगति[2] समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा १, नेरइया असंखेज्जगुणा २, देवा असंखेज्जगुणा ३, सिद्धा अणंतगुणा ४, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ५।

[२२५ प्र.] भगवन् ! नारको, तिर्यंचो, मनुष्यो, देवो और सिद्धो की पाँच गतियो की अपेक्षा से सक्षेप मे कौन किनसे अल्प है, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोडे मनुष्य है, २ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) देव असख्यातगुणे हैं, ४ उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं और ५. (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

२२६. एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणुस्साणं मणुस्सीणं देवाणं देवीण सिद्धाण य[3] अट्ठगति समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११६ से ११९ तक

२. '**पंचगति अणुवाएणं समासेणं**' यह पाठान्तर मिलता है। —स.

३. '**अट्ठगति अणुवाएणं समासेणं**' यह पाठान्तर मिलता है। —स.

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ १, मणुस्सा असंखेज्जगुणा २, नेरइया असंखेज्जगुणा ३, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ४, देवा असंखेज्जगुणा ५, देवीओ संखेज्जगुणाओ ६, सिद्धा अणंतगुणा ७, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ८। दारं २ ॥

[२२६ प्र.] भगवन् ! इन नैरयिको, तिर्यञ्चो, तिर्यचिनियो, मनुष्यो, मनुष्यस्त्रियो, देवों देवियों और सिद्धो का आठ गतियो की अपेक्षा से, सक्षेप मे, कौन किनसे अल्प है, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२६ उ] गौतम ! १. सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्री) है, २ (उनसे) मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) तिर्यञ्चनिया असख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे देव असख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) देविया सख्यातगुणी है, ७ (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, और ८ (उनसे भी) तिर्यञ्चयोनिक अनन्तगुणे हैं। **द्वितीय द्वार ॥२॥**

विवेचन—द्वितीय गतिद्वार—पांच या आठ गतियो की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. २२५-२२६) मे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्धि, इन पाच गतियो की अपेक्षा से तथा नारक, तिर्यच, तिर्यचनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध, इन आठ गतियो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पांच गतियों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—गतियो की अपेक्षा से सबसे थोडे मनुष्य है, क्योकि वे ९६ छेदनक-छेद्यराशिप्रमाण ही हैं। उनके नैरयिक असख्यानगुणे है, क्योकि वे अगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल का द्वितीय वर्गमूल से गुणाकार करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी ही घनीकृतलोक को एकप्रादेशिकी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतना ही नारको का प्रमाण है। नैरयिको की अपेक्षा देव असंख्यानगुणे है, क्योकि व्यन्तर और ज्योतिष्क देव प्रतर की असख्यातभागवर्ती श्रेणियो के आकाशप्रदेशो की राशि के तुल्य हैं। सिद्ध उनसे भी अनन्तगुणे है, क्योकि वे अभव्यो से अनन्तगुणे है। सिद्धो से तिर्यञ्च अनन्तगुणे हैं, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही सिद्धो से अनन्तगुणे है।[1]

आठ बोलों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—पाच गतियो के ही अवान्तर भेद करके प्रस्तुत आठ गतिया बता कर उनकी दृष्टि से अल्पबहुत्व का निरूपण करते हैं—सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्रियां) हैं, क्योकि उनकी सख्या सख्यातकोटाकोटी प्रमाण है। उनसे मनुष्य असख्यातगुणे अधिक हैं; क्योंकि इनमें वेद की विवक्षा न करने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का भी समावेश हो जाता है और सम्मूर्च्छनज मनुष्य उच्चार, प्रस्रवण, वमन आदि से लेकर नगर की नालियो (मोरियो) आदि (१४ स्थानो) में असख्येय उत्पन्न होते हैं। मनुष्यो की अपेक्षा नारक असख्यातगुणे हैं, क्योकि मनुष्य उत्कृष्ट सख्या मे श्रेणी के असख्यातवे भागगत प्रदेशो की राशि प्रमाण पाए जाते हैं, जबकि नारक अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशिवर्ती तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूलप्रमाण-श्रेणिगत आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर हैं। अत वे उनसे असख्यातगुणे हैं। नारको से तिर्यंचिनी असख्यातगुणी हैं, क्योकि वे प्रतरासख्येय भाग में रहे हुए असख्यातश्रेणियो के आकाशप्रदेशो के समान है। देव इनसे भी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे असख्येयगुणप्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणिगतप्रदेशो की राशि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११९

प्रमाण हैं। देवों की अपेक्षा देवियां सख्येयगुणी अधिक है, क्योंकि वे देवो से बत्तीसगुणी हैं। देवियो की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे हैं और सिद्धों से तिर्यञ्च अनन्तगुणे अधिक है। इनकी अधिकता का कारण पहले बताया जा चुका है।[1]

तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२२७. **एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाण अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया १, चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, अणिंदिया अणंतगुणा ५, एगिंदिया अणंतगुणा ६, सइंदिया विसेसाहिया ७।

[२२७ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रिययुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रियो में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२२७ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े पचेन्द्रिय जीव हैं, २. (उन से) चतुरिन्द्रिय जाव विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ४. (उससे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ५ (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, ६ (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं और ७. उनसे इन्द्रियसहित जीव विशेषाधिक हैं।

२२८. **एतेसि णं भते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अपज्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा १, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, एगिंदिया अपज्जत्तया अणंतगुणा ५, सइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ६ ।

[२२८ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तको मे कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२८ उ] गौतम ! १. सबसे थोड़े पचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. (उनसे भी) इन्द्रियसहित अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२२९. **एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, एगिंदिया पज्जत्तगा अणंतगुणा ५, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ६ ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२०

[२२९ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२९ उ.] गौतम ! १. सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव हैं, २. उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. उनसे भी इन्द्रियसहित पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२३०. [१] एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा, सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३०-१ प्र.] भगवन् ! इन्द्रियुक्त (सेन्द्रिय) पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-१ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! एगिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगिंदिया अपज्जत्तगा, एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३०-२ प्र.] भगवन् ! इन एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-२ उ.] गौतम ! सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! बेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तगा, बेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२३०-३ उ.] गौतम ! सबसे कम द्वीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेंदिया पज्जत्तगा, तेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-४ प्र.] भगवन् ! इन त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-४ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े त्रीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[५] एतेसि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, चउरिंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-५ प्र.] भगवन् ! इन चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-५ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते ! पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया पज्जत्तगा, पचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-६ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-उ] गौतम ! सबसे अल्प पर्याप्तक पचेन्द्रिय जीव हैं, उनसे अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातगुणे हैं।

२३१. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७, बेंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ८, एगेंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ९, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ११, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया १२, सइंदिया विसेसाहिया १३। दारं ३ ॥

[२३१ प्र.] भगवन् ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३१ उ.] गौतम ! १, सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं। २. (उनसे) पचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ५. (उनसे) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ६. (उनसे) चतुरिन्द्रिय

अपर्याप्तक विसेषाधिक हैं। ७. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ८. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ९. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १०. (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ११. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं १२, (और उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं १३. (तथा उनसे भी) सेन्द्रिय (इन्द्रियवान्) विशेषाधिक हैं।

तृतीय द्वार ॥३॥

विवेचन—तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पाच सूत्रों (सू. २२७ से २३१ तक) मे इन्द्रियो की अपेक्षा से सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय जीवो तक के अल्पबहुत्व को प्ररूपणा विभिन्न पहलुओ से की गई है।

(१) सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम पचेन्द्रिय (पाच इन्द्रियों वाले नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव) जीव हैं, क्योकि वे सख्यात कोटा कोटी-योजनप्रमाण विष्कम्भसूची से प्रमित प्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणीगत आकाश-प्रदेशो की राशि-प्रमाण हैं। उनसे विशेषाधिकार चार इन्द्रियो वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं, क्योकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुर सख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय (चीटी आदि तीन इन्द्रियो वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि वे विष्कम्भसूची से प्रचुरतर सख्यातकोटाकोटी-योजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय (शख आदि दो इन्द्रियो वाले) जीव उनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं, क्योकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुरतम सख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रियो से अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे है, क्योकि वे अनन्त हैं। अनिन्द्रियों से एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव सिद्धो से अनन्तगुणे अधिक हैं। एकेन्द्रिय जीवो से भो सेन्द्रिय (सभी इन्द्रियो वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवो का उसमें समावेश हो जाता है। यह समुच्चय जीवो का अल्पबहुत्व हुआ।

(२) अपर्याप्त समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व—अपर्याप्त पचेन्द्रिय जीव सबसे थोडे है, क्योकि वे एक प्रतर मे जितने भी अगुल के असख्यात भागमात्र खण्ड होते हैं, उतने ही हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक इसलिए है कि वे प्रचुर अगुल के असख्यातभाग खण्डप्रमाण है। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुरतरप्रतरागुल के असख्येयभागखण्ड-प्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त उनसे विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुरतम प्रतरागुल के असख्यातभागखण्डप्रमाण हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे हैं, क्योकि अपर्याप्त वनस्पतिकायिक सदैव अनन्त पाए जाते हैं। इनसे विशेषाधिक सेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हैं, क्योंकि सेन्द्रिय सामान्य जीवो में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि सभी इन्द्रियवान् जीवो का समावेश हो जाता है।

(३) पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव सबसे अल्प है, क्योकि चतु-रिन्द्रिय जीवो की आयु बहुत अल्प होती है, इसलिए अधिक काल तक न रहने से प्रश्न के समय थोड़े ही पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा पचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुर प्रतरांगुल के असख्येयभाग-खण्ड-प्रमाण है। उनसे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर प्रतरागुल के असख्यातभाग-प्रमाण खण्डो के बराबर हैं। उनकी अपेक्षा त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं, क्योंकि वे स्वभावत: प्रचुरतम प्रतरांगुल के सख्यातभागप्रमाण खण्डों के बराबर हैं। उनसे अनन्तगुणे ऐकेन्द्रिय पर्याप्तक हैं, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते हैं। सेन्द्रिय-पर्याप्त उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमें पर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि का भी समावेश हो जाता है।

(४) **पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम सेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव हैं, क्योंकि सेन्द्रियों मे सूक्ष्म-एकेन्द्रिय ही सर्वलोकव्याप्त होने के कारण बहुत है, किन्तु उनमें अपर्याप्त सबसे कम होते हैं। उनकी अपेक्षा सेन्द्रिय-पर्याप्त सख्यातगुणे अधिक हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय अपर्याप्त सबसे कम और पर्याप्त उनसे सख्यातगुणे अधिक है। द्वीन्द्रियों मे पर्याप्तक सबसे कम हैं, क्योकि वे प्रतरागुल के सख्येयभागमात्रखण्ड-प्रमाण है, जबकि द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक प्रतरवर्ती अगुल के असख्येयभागखण्ड-प्रमाण होते हैं। इसके पश्चात् त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो में प्रत्येक में पर्याप्तक सबसे कम हैं, अपर्याप्तक उनसे असख्यातगुणे हैं, कारण वही पूर्ववत् समझना चाहिए।

(५) **समुच्चय में सेन्द्रिय आदि समुदित पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों का अल्पबहुत्व**—इनमे सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे पचेन्द्रिय पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ये तीनो क्रमश. उत्तरोत्तर विशेषाधिक है। उनसे पचेन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त एव द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक क्रमश. उत्तरोत्तर असख्यातगुणे, विशेषाधिक, विशेषाधिक एव विशेषाधिक हैं। आगे क्रमश. एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, एकेन्द्रिय पर्याप्तक सख्यातगुणे, सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक तथा सेन्द्रिय जीव इनसे भी विशेषाधिक होते है। इसके अल्पबहुत्व का कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।[1]

चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व

२३२. एएसि णं भंते ! **सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सतिकाइयाणं तसकाइयाणं अकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, अकाइया अणंतगुणा ६, वणस्सइकाइया असंखगुणा ७, सकाइया विसेसाहिया ८।

[२३२ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३२ उ] गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, ४. (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) अकायिक अनन्तगुणे है, ७ (उनसे) वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, ८. और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक हैं।

२३३. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सतिकाइयाणं तसकाइयाण य अपज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक १२१, १२२

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा १, तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३३ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३३ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे त्रसकायिक अपर्याप्तक है, २ (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, ४. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६ (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७. और (उनसे भी) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है ।

२३४. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं तसकाइयाण य पज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३४ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, तुल्य, बहुत अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३४ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक है, २ (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५ (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ६ (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है ।

२३५. [१] एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सकाइया अपज्जत्तगा, सकाइया पज्जत्तगा संखिज्जगुणा ।

[२३५-१ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्त और अपर्याप्त सकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे सकायिक अपर्याप्तक है, (उनसे) सकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा, पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-२ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विषेषाधिक है ?

[२३५-२ उ] गौतम ! सबमे अल्प पृथ्वोकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! आउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा आउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्प्तिक अप्कायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-उ] गौतम ! सबसे कम अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! तेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा, तेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-४ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक पर्याप्तको और अपर्याप्तको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-४ उ.] गौतम ! सबसे कम अपर्याप्तक तेजस्कायिक हैं । (उनसे) अपर्याप्तक तेजस्कायिक सख्यातगुणे है ।

[५] एतेसि णं भंते ! वाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तगा, वाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-५ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-५ उ] गौतम ! सबसे अल्प अपर्याप्तक वायुकायिक हैं, (उनसे) पर्याप्तक वायुकायिक सख्यातगुणे है ।

[६] एएसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, वणप्फइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-६ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पतिकायिको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-६ उ.] गौतम ! सबसे थोडे अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक है, (उनसे) पर्याप्तक वनस्पतिकायिक संख्यातगुणे हैं।

[७] एतेसि णं भंते ! तसकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३५-७ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रसकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३-५-७ उ] गौतम ! सबसे कम पर्याप्तक त्रसकायिक हैं, (उनसे) अपर्याप्तक त्रसकायिक असख्यातगुणे है।

२३६. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाण तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाण तसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ७, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ८, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ९, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया १०. वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ११, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १२, वणप्फतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा १३, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १३, सकाइया विसेसाधिया १५।

[२३६ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३६ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ७ (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ९ (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १० (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११ (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १२ (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १३ (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५ और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक है।

विवेचन—चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पांच सूत्रो (सू. २३२ से २३६ तक) मे काय की अपेक्षा षट्कायिक, सकायिक, तथा अकायिक जीवों का समुच्चयरूप में, इनके अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का एव पृथक्-पृथक् एव समुदित पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है ।

(१) **षट्कायिक, सकायिक, अकायिक जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े त्रसकायिक हैं, क्योंकि त्रसकायिकों में द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव है, वे अन्य कायो (पृथ्वीकायादि) की अपेक्षा अल्प है । उनसे तेजस्कायिक असख्येयगुणे हैं, क्योकि वे असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं । उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुर असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं । उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुरतर असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं । उनसे वायुकायिक विशेषाधिक है, क्योंकि वे प्रचुरतम असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं । उनकी अपेक्षा अकायिक (सिद्ध भगवान्) अनन्तगुणे हैं, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त हैं । उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है, क्योकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेशराशि-प्रमाण है । उनसे भी सकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमे पृथ्वीकायिक आदि सभी कायवान् प्राणियों का समावेश हो जाता है ।

(२) **सकायिक आदि अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—इनमे सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक से लेकर क्रमशः सकायिक अपर्याप्तक पर्यन्तविशेषाधिक हैं । यहाँ तक के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

(३) **सकायिक आदि पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—इनका अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् युक्ति से समझ लेना चाहिए ।

(४) **सकायिकादि प्रत्येक के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े सकायिक अपर्याप्तक है, उनसे सकायिक पर्याप्तक सख्येयगुणे है । इसी तरह आगे के सभी सूत्रपाठ सुगम है । इन सब मे अपर्याप्तक सबसे थोड़े और उनकी अपेक्षा पर्याप्तक सख्यातगुणे बताए गए हैं, इसका कारण यह है कि पर्याप्तको के आश्रय से अपर्याप्तको का उत्पाद होता है । अर्थात् पर्याप्तक अपर्याप्तको के आधारभूत हैं ।

(५) **समुच्चय में सकायिक आदि समुदित पर्याप्तकों-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व**—इनमे सबसे कम त्रसकायिक पर्याप्तक है, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि पर्याप्त द्वीन्द्रियादि से अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि असख्यातगुणे अधिक हैं । उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुणे हैं, क्योकि वे असख्यात लोकाकाशप्रदेश-प्रमाण हैं । उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एव वायुकायिक अपर्याप्तक क्रमश विशेषाधिक है । पृथ्वीकाय के अपर्याप्तको की आयु अधिक होने से वे तेजस्कायिक अपर्याप्त से अधिक हैं । उनसे अप्काय के अपर्याप्त बहुत अधिक होने से विशेषाधिक हैं । उनसे वायुकायिक अपर्याप्त पूर्वोक्त युक्ति से विशेषाधिक है । उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक हैं, क्योंकि अपर्याप्तको की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं । आगे वनस्पति काय के अपर्याप्तक अनन्तगुणे पर्याप्तक सख्यातगुणे तथा सकायिक पर्याप्त उनसे सख्यातगुणे है । इसका कारण पहले बता चुके है ।[1] यद्यपि इस सूत्र (सू. २३६) के अल्पबहुत्व मे १५ पद हैं, जिनका उल्लेख अन्य प्रतियो मे है, किन्तु वृत्तिकार ने प्रज्ञापनावृत्ति में केवल १२ पदो का ही निर्देश किया है । अतः

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२३

प्रज्ञापनासूत्र (मूलपाठ-टिप्पणसहित) मे अन्य प्रतियों के अनुसार तीन पद अधिक अंकित किये गए हैं—यथा १३ सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १४ (उनसे) सकायिक पर्याप्तक (बीच में वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, के पश्चात्) विशेषाधिक है, तथा १५ सकायिक विशेषाधिक हैं।[1]

कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादरकायद्वार

२३७. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउक्काइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमणिओयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया १, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया अणंतगुणा ६, सुहुमा विसेसाहिया ७।

[२३७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एव सूक्ष्मनिगोदो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३७ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक है, २ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक है, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक है, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं और ७ (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक है।

२३८. एतेसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तगाणं सुहुमपुढविकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमणिगोदापज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा अणतगुणा ६, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७।

[२३८ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १२४

(ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ८८

(ग) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग. २, पृ ७४ एवं ९२

[२३८ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक है, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं; ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म और निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है और ७ (उनसे भी) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२३९. एतेसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तगाणं सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तगाण सुहुमग्राउकाइय-पज्जत्तगाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमनिगोदपज्जत्तगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउक्काइया पज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसा-हिया २, सुहुमग्राउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, सुहुमणिग्रोया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणतगुणा ६, सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाधिया ७।

[२३९ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३९ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असख्यात-गुणे हैं, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) विशेषाधिक सूक्ष्म पर्याप्तक जीव हैं।

२४० [१] एतेसि णं भते ! सुहुमाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा, सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो मे कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-१ उ] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव हैं, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा सखेज्ज-गुणा।

[२४०-२ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है !

[२४०-२ उ] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते ! सुहुमआउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-३ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-३ उ] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक है, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-४ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तको मे से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-४ उ] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-५ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-५ उ] गौतम ! सबसे थोडे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक जीव है, (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते ! सुहुमवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-६ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है।

[२४०-६ उ.] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[७] एएसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा।

[२४०-७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोद के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

२४१. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ५, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ८, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ९, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा १०, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तया अणंतगुणा ११, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया १२, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा १३, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमा विसेसाहिया १५।

[२४१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एव सूक्ष्म निगोदों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४१ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं और १५. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

२४२ एतेसि णं भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरग्राउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादर-तसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया १, बादरा तेउकाइया असंखेज्जगुणा २. पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरा निगोवा असंखेज्जगुणा ४, बादरा पुढविकाइया असंखेज्जगुणा ५, बादरा आउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरा वाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, बादरा वणप्फइकाइया अणंतगुणा ८, बादरा विसेसाहिया ९ ।

[२४२ प्र] भगवन् ! इन बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेज-स्कायिको, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४२ उ.] गौतम ! १. सबके थोडे बादर त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्येयगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर निगोद असंख्येयगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असख्येयगुणे हैं, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक असख्येयगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक, असख्येयगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्प-तिकायिक अनन्तगुणे हैं, और ९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं ।

२४३. एतेसि णं भंते ! बादरअपज्जत्तगाणं बादरपुढविकाइयअपज्जत्तगाणं बादरआउकाइय-अपज्जत्तगाणं बादरतेउकाइयअपज्जत्तगाणं बादरवाउकाइयअपज्जत्तगाणं बादरवणप्फइकाइयअज्जत्त-गाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाणं बादरनिगोदापज्जत्तगाणं बादरतसकाइयापज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्ज-गुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ८, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया ९ ।

[२४३ प्र.] भगवन् ! इन बादर अपर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तको, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, बादर निगोद-अपर्याप्तको एव बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४३ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वी-

कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ९. (उनसे भी) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४४. एतेसि णं भंते ! बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइय-पज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाण पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पज्जत्तया १. बादरतसकाइया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा २, पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बायरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४. बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखिज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा ८, बायरपज्जत्तया विसेसाहिया ९।

[२४४ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तको, बादर अप्कायिक-पर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-पर्याप्तको, बादर वनस्पति-कायिक-पर्याप्तको, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, बादर निगोद-पर्याप्तकों एव बादर त्रसकायिक-पर्याप्तको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४४ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक है, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे है, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ९. बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४५. [१] एतेसि णं भंते ! बादराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा, बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२४५-१ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-१ उ.] गौतम ! सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२४५-२ प्र.] भगवन् ! इन बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-२ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तगा, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-३ प्र.] भगवन् ! इन बादर अप्कायिक-पर्याप्तको और अपर्याप्तकों मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-३ उ] गौतम ! सबसे कम बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया, बादरतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ।

[२४५-४ प्र.] भगवन् ! इन बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-४ उ] गौतम ! सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है ।

[५] एतेसि णं भंते ! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तगा, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-५ प्र.] भगवन् ! इन बादर वायुकायिक-पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४५-५ उ] गौतम ! सबसे अल्प बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं और (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है ।

[६] एतेसि णं भंते ! बादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-६ प्र.] भगवन् ! इन बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२४५-६ उ.] गौतम ! सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[७] एतेसि णं भंते ! पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-७ प्र.] भगवन् ! प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[८] एतेसि णं भंते ! बादरनिगोदाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-८ प्र.] भगवन् ! इन बादर निगोद-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४५-८ उ.] गौतम ! सबसे अल्प बादर निगोद-पर्याप्तक हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे बादर निगोद-अपर्याप्तक हैं ।

[९] एएसि णं भंते ! बादरतसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया पज्जत्तगा, बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-९ प्र.] भगवन् ! इन बादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-९ उ.] गौतम ! सबसे कम बादर त्रसकायिक-पर्याप्तक हैं (और उनसे) बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

२४६. एएसि णं भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, बादरतेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १०, बादरनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १४, बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा १५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १७, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया १८, बादरा विसेसाहिया १९ ।

[२४६ प्र.] भगवन् ! इन बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिको, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिको, बादर-वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिको, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४६ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं । २ (उनसे) बादर-त्रसकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। ३. (उनसे) बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं । ४· (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। ५. (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं । ६. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है । ७. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं । ८ (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। ९. (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। १० (उनसे) प्रत्येक-शरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है। ११. (उनसे) बादर-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है। १२· (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है । १३ (उनसे) बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है। १४ (उनसे)बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १५. (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १६. (उनसे) बादर-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। १७ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं । १८ (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं और १९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं।

२४७. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणप्फइकाइयाणं पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया १, बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया असंखेज्ज-

गुणा ५, बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा असंखेज्जगुणा १२, बादरवणस्सइकाइया अणंतगुणा १३. बादरा विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा विसेसाहिया १६ ।

[२४७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्मजीवो, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिको, सूक्ष्म-तेजस्कायिको, सूक्ष्मवनस्पतिकायिको, सूक्ष्मनिगोदो तथा बादरजीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिको, बादर-वायुकायिको, बादर-वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर-निगोदों और बादर-त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४७ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर-त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) बादरनिगोद असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक असख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर-अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक असख्यातगुणे हैं, ९ (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, १० (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ११ (उनसे) सूक्ष्म-वायुकायिक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद असंख्यातगुणे हैं, १३ (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं १४. (उनसे) बादर-जीव विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं १६. (और उनसे भी) सूक्ष्म-जीव विशेषाधिक हैं ।

२४८. एतेसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तयाणं सुहुमपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं सुहुमआउकाइयाणं अपज्जत्ताणं सुहुमतेउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं सुहुमणिगोदापज्जत्तयाणं बादरापज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयापज्जत्तयाणं बादरआउकाइयापज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं बादरणिगोदापज्जत्तयाणं बादरतसकाइयापज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा १३, बादर अपज्जत्तगा विसेसाहिया १४, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६ ।

[२४८ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४८ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादरत्रसकायिक-अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८ (उनसे) सूक्ष्मतेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९ (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्मवायुकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है, १३ (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६ सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४९. एतेसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तयाणं सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइय-पज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमनिगोयपज्जत्तयाणं बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइयपज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाण बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढ-विकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ११, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा १३, बादरा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा १५, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १६।

[२४९ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों,

सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तकों, बादर-पर्याप्तकों, बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, बादर-अप्कायिक-पर्याप्तकों, बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, बादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों, बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, प्रत्येक-शरीर बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, बादर-निगोद-पर्याप्तकों और बादरत्रसकायिक-पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४९ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रस-कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-पृथ्वी-कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७ (उनसे) बादर-वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४ (उनसे) बादर-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६. सूक्ष्म-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२५०. [१] एएसि णं भंते ! सुहुमाणं बादराण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा १, बादरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म और बादर जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-१ उ.] गौतम ! १. (इनमें) सबसे थोड़े बादर पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं और ४. (उनसे भी) सूक्ष्म पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[२] एएसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं बादरपुढविकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा १, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-२ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों और बादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-२ उ] गौतम ! १ सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एएसि णं भंते ! सुहुमग्राउकाइयाण बादरग्राउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरग्राउकाइया पज्जत्तया १, बादरग्राउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमग्राउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमग्राउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-३ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिको और बादर अप्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-३ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं; ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[४] एएसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-४ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिको और बादर तेजस्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-४ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे भी) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते सुहुमवाउकाइयाणं बादरवाउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तया १, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-५ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिको तथा बादर वायुकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक हैं, ४. (और उनसे भी) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते ! सुहुमवणस्सतिकाइयाणं बादरवणस्सतिकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तया १, बादरवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-६ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तको में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५०-६ उ.] गौतम ! १ सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक जीव असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[७] **एतेसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं बादरनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा १, बायरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमनिगोया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोदो एव बादर निगोदों के पर्याप्तको तथा अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-७ उ.] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर निगोद-पर्याप्तक हैं, २, (उनसे) बादर निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

२५१. **एएसि णं भंते ! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाण सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराणं बादरपुढविकाइयाण बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सतिकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कररे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तया असखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, बादरतेउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १०, बायरणिगोया अपज्जत्तया असंखेज्ज गुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बायरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १४, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १५, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १७, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १८, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा १९, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २०, सुहुमआउकाइया

पज्जत्तया विसेसाहिया २१, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया २२, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा २४, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा २५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया २६, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २७, बादरअपज्जत्तया विसेसाहिया २८, बादरा विसेसाहिया २९, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३०, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ३१, सुहुमवणप्फतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ३२, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ३३, सुहुमा विसेसाहिया ३४। दारं ४ ॥

[२५१ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-जीवों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिको, सूक्ष्म-तेजस्कायिको, सूक्ष्म-वायुकायिको, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिको, सूक्ष्म-निगोदो, बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिको, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वनस्पतिकायिको, प्रत्येक शरीर-बादर-वनस्पतिकायिको, बादर-निगोदो और बादर-त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तको में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५१ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्येयगुणे हैं, ५ (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-अप्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ९. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १० (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १२ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १३ (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १४ (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १६ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १८ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १९. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, २०. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २१. (उनसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २२ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, २४ (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, २५. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, २६. (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २७ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, २८. (उनसे) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २९ (उनसे) बादर जीव विशेषाधिक हैं, ३०. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३१. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं; ३२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, (और उनसे भी) ३४. सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं। चतुर्थ-द्वार ॥४॥

विवेचन—कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादर-कायद्वार—प्रस्तुत १५ सूत्रो (सू. २३७ से २५१ तक) में सूक्ष्म और बादर को लेकर कायद्वार के माध्यम से विभिन्न पहलुओं से अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

१. समुच्चय में सूक्ष्म जीवों का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव सबसे अल्प है, वे असख्यात लोकाकाश प्रदेश के बराबर हैं। इनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुर असख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रचुर असख्येय लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक है; क्योंकि वे प्रचुरतम असख्यात लोकाकाश प्रदेश-प्रमाण है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं। जो अनन्तजीव एक शरीर के आश्रय में रहते हैं, वे निगोद जीव कहलाते हैं। निगोद दो प्रकार के होते हैं— सूक्ष्म और बादर। सूरणकन्द आदि मे बादर निगोद हैं, सूक्ष्म निगोद समस्त लोक में व्याप्त हैं। वे एक-एक गोलक में असख्यात-असंख्यात होते हैं। इसलिए वे वायुकायिकों से असंख्यात-गुणे हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येकनिगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनकी अपेक्षा सामान्य सूक्ष्मजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि का भी उनमे समावेश हो जाता है।

२. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व भी पूर्वोक्त क्रम से समझ लेना चाहिए।

३. सूक्ष्म पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—इसके अल्पबहुत्व का क्रम भी पूर्ववत् है।

४. सूक्ष्म से लेकर सूक्ष्मनिगोद तक के पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—इनके प्रत्येक के अल्पबहुत्व में सूक्ष्म अपर्याप्तक सबसे कम हैं और उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं। सूक्ष्म जीवो में अपर्याप्तको की अपेक्षा पर्याप्तक जीव चिरकालस्थायी रहते हैं। इसलिए वे सदैव अधिक सख्या में पाए जाते हैं।

५. समुदितरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्-कायिक अपर्याप्त है, कारण पहले बता चुके हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमश. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक है, विशेषाधिक का अर्थ है—थोड़ा अधिक; न दुगुना, न तिगुना। इनकी विशेषाधिकता का कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी (सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की) अपेक्षा सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, अपर्याप्त से पर्याप्त सख्यातगुणे अधिक होते हैं। यह पहले कहा जा चुका है। अत उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक एव सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः पृथ्वीकायिक हैं, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है, क्योंकि वे अतिप्रचुर सख्या में है। उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक सख्यातगुणे है क्योकि सूक्ष्म जीवो मे अपर्याप्तकों से पर्याप्त सामान्यतः सख्यातगुणे अधिक होते है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक निगोद मे वे अनन्त-अनन्त होते है। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि का भी उनमे समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं इसका कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि पर्याप्तको का भी उनमे समावेश है। उनसे सूक्ष्म जीव विशेषाधिक है, क्योकि उनमे सूक्ष्म पर्याप्तकों-अपर्याप्तको, सभी का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्माश्रित पाच सूत्र हुए। अब बादराश्रित पांच सूत्र इस प्रकार हैं—

६. समुच्चय में बादर जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर त्रसकायिक है, क्योकि द्वीन्द्रियादि हो बादर त्रस हैं, और वे शेष कायो से अल्प है। उनसे बादर तेजस्कायिक असख्यातगुणे

हैं, क्योंकि वे असख्यात लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे हैं, क्योकि बादर तेजस्कायिक तो सिर्फ मनुष्यक्षेत्र मे ही होते हैं जबकि प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिको का क्षेत्र उनसे असख्यातगुणा अधिक है। प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद में बताया है कि स्वस्थान में ७ घनोदधि, ७ घनोदधिवलय, इसी तरह अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिरछे लोक आदि मे जहाँ-जहाँ जलाशय होते हैं, वहाँ सर्वत्र बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तको के स्थान हैं। जहाँ बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तको के स्थान हैं, वही इनके अपर्याप्तको के स्थान होते हैं। अत. क्षेत्र असख्यातगुणा होने से वे भी असख्यातगुणे हैं। उनसे बादर निगोद असख्यातगुणे हैं, क्योकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहनावाले होने के कारण जल मे शैवाल आदि के रूप मे सर्वत्र पाए जाते हैं। इनकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योकि वे आठो पृथ्वियो में तथा विमानो, भवनो एव पर्वतो आदि मे विद्यमान हैं। बादर अप्कायिक उनसे भी अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योकि समुद्रो मे जल की प्रचुरता होती है। उनकी अपेक्षा बादर वायुकायिक असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि सभी पोली जगहो मे वायु विद्यमान रहती है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योकि बादर निगोद मे अनन्त जीव होते हैं। बादर जीव उनसे विशेषाधिक होते हैं, क्योकि बादर द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवो का उनमें समावेश होता है।

७-८. बादर अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—बादर जीवो के अपर्याप्तको एव पर्याप्तको के अल्पबहुत्व का क्रम भी प्राय. पूर्वसूत्र (सू. २४२) के समान है। बादर पर्याप्तको के अल्पबहुत्व में सिर्फ प्रारम्भ मे अन्तर है—वहाँ सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक के बदले बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं। शेष सब पूर्ववत् ही है। इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

९. बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—बादर जीवो मे एक-एक पर्याप्तक के आश्रित असख्येय बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं, इस नियम से बादर जीवो, बादर पृथ्वीकायिको आदि मे सर्वत्र पर्याप्तको से अपर्याप्तक असख्यातगुणे अधिक होते हैं।

१०. समुच्चितरूप से बादर, बादर पृथ्वीकायिकादि पर्याप्तक-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, बादर त्रसकायिक पर्याप्तक उनसे असख्यातगुणे हैं, बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक, बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, बादर अप्कायिक पर्याप्तक एवं बादर वायुकायिक पर्याप्तक क्रमश उत्तरोत्तर असख्य-गुणे हैं। इनके अल्पबहुत्व को पूर्वोक्त युक्तियो से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुणे हैं, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद मे वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनकी अपेक्षा समुच्चय बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमें बादर तेजस्कायिक आदि सभी का समावेश हो जाता है। बादर पर्याप्तो की अपेक्षा बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्येयगुणे हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक एव बादर क्रमश. उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, इसका कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

११. समुच्चय में सूक्ष्म-बादरों का अल्पबहुत्व—(सू २४७ के अनुसार) सबसे कम बादर त्रसकायिक हैं, उसके बाद बादर वायुकायिकपर्यन्त बादरगत विकल्पो का अल्पबहुत्व पूर्ववत् समझना चाहिए। तदनन्तर सूक्ष्म निगोदपर्यन्त सूक्ष्मगत विकल्पों का अल्पबहुत्व पूर्ववत् जान लेना चाहिए। उसके पश्चात् बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि का भी उनमे

समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे हैं; क्योकि बादर निगोदो से सूक्ष्म निगोद असख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, क्योकि सूक्ष्म तेजस्कायिकादि का भी उनमें समावेश हो जाता है।

१२–१३. सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू. २४८ मे अनुसार) अपर्याप्तको मे सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्त हैं। उसके पश्चात् बादर तेजस्कायिक, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं। इसका स्पष्टीकरण द्वितीय अपर्याप्तकसूत्र की तरह समझना चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तकों से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर असख्यात लोकाकाशप्रदेशो के बराबर हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं; इसका समाधान सूक्ष्मपंचसूत्री मे द्वितीयसूत्रवत् समझ लेना चाहिए। सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तकों से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त जीवो का सद्-भाव है। उनसे सामान्यतः बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर त्रसकायिक अपर्याप्तको का भी उनमे समावेश है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, क्योकि बादर निगोद-अपर्याप्तकों से सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्मापर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमें सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तको का भी समावेश हो जाता है। पर्याप्तको मे (सू. २४९ के अनुसार) बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक सबसे थोडे हैं। उसके पश्चात् बादर त्रसकायिक, बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक एवं बादर वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः असख्यातगुणे हैं, क्योकि बादर वायुकायिक असख्यातप्रतर-प्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उसके पश्चात् सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश· विशेषाधिक हैं। सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तको से सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, क्योकि वे अतिप्रचुर होने से प्रत्येक गोलक में विद्यमान हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमे सूक्ष्म तेजस्कायिकादि पर्याप्तकों का भी समावेश होता है।

१४. सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(सूत्र २५० के अनुसार) सबसे कम बादर पर्याप्तक है, क्योकि वे परिमित क्षेत्रवर्ती है, उनसे बादर अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, क्योकि एक-एक बादर पर्याप्तक के आश्रित असख्यात बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं, उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है, क्योकि सर्वलोक मे व्याप्त होने के कारण उनका क्षेत्र असख्यातगुणा है; उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, क्योकि चिरकालस्थायी रहने के कारण वे सदैव संख्यातगुणे पाए जाते हैं। इसी प्रकार आगे सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एवं निगोदो के पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की घटना कर लेनी चाहिए।

१५. समुदितरूप में सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू २५१ के अनुसार) सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक हैं, क्योकि कुछ समय कम आवलिका-समयो से गुणित आवलिका-समयवर्ग में जितनी समयराशि होती है, वे उतने प्रमाण हैं। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि प्रतर में जितने अंगुल के संख्यातभाग-मात्र खण्ड होते हैं, ये उतने

प्रमाण हैं। उनसे बादरत्रसकायिक अपर्याप्त असख्यातगुणे हैं। जो पूर्ववत् युक्ति से समझना चाहिए। उनसे प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वायुकायिक-पर्याप्तक यथोत्तरक्रम से असख्यातगुणे हैं। इसके समाधान के लिए पूर्ववत् युक्ति सोच लेनी चाहिए। उनसे बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं; क्योकि वे असंख्यात लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उसके बाद प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर-पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से असख्यातगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त सख्यातगुणे हैं, क्योकि सूक्ष्मो मे अपर्याप्तों की अपेक्षा पर्याप्त ओघतः ही सख्येयगुणे होते है। उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक एव सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से विशेषाधिक है। उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुररूप मे सर्वलोक मे होते है। उनसे पूर्व नियमानुसार सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं; यह भी पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योकि उनमें बादर पर्याप्त तेजस्कायिकादि का भी समावेश हो जाता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्येयगुणे है, क्योकि प्रत्येक-बादर निगोद के आश्रित असख्यात बादर निगोद-अपर्याप्तक उत्पन्न होते है। उनकी अपेक्षा सामान्यतया बादर विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पर्याप्तको का समावेश भी होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुणे है, क्योकि बादरनिगोदो से सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे होते ही है। उनसे सामान्यतया सूक्ष्म-अपर्याप्तक सख्यातगुणे है; क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के अपर्याप्तको का भी उनमे समावेश होता है। उनमे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्यातगुणे है, क्योकि इनके अपर्याप्तों से पर्याप्त सख्यातगुणे होते है। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमें पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश होता है। उनकी अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्तविशेषणरहित केवल सूक्ष्म (सामान्य) विशेषाधिक है, क्योंकि इनमें पर्याप्त-अपर्याप्त दोनो का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म-बादर-समुदायगत अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।[1]

॥ चतुर्थ कायद्वार समाप्त ॥

पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सजोगीणं मणजोगीणं वइजोगीणं कायजोगीणं अजोगीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी १, वइजोगी असंखेज्जगुणा २, अजोगी अणंतगुणा ३, कायजोगी अणंतगुणा ४, सजोगी विसेसाहिया ५। दारं ५॥

[२५२ प्र.] भगवन् ! इन सयोगी (योगसहित), मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

---

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ युक्त) भा. १, पृ ८८ से ९६ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक पृ १२४ से १३४ तक

[२५२ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प जीव मनोयोग वाले हैं, २. (उनसे) वचनयोग वाले जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अयोगी अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) काययोगी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५ सयोगी विशेषाधिक हैं। —पचम द्वार ॥५॥

विवेचन—पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५२) में सयोगी, अयोगी, मनो-वचन-काययोगी की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सबसे कम मनोयोगी जीव हैं, क्योंकि सज्ञीपर्याप्त जीव ही मनोयोग वाले होते हैं और वे थोड़े ही हैं। उनसे वचनयोगी असख्यातगुणे हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि वचनयोगी सज्ञीजीवों से असख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अयोगी अनन्तगुणे हैं, क्योकि सिद्धजीव अनन्त हैं। उनसे काययोग वाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योकि अकेले वतस्पतिकायिकजीव ही सिद्धो से अनन्त हैं। यद्यपि अनन्त निगोदजीवों का एक शरीर होता है, तथापि उसी शरीर से सभी आहारादि ग्रहण करते हैं, इसलिए उन सभी के काययोगी होने के कारण उनके अनन्तगुणत्व में कोई बाधा नही आती। उनकी अपेक्षा सामान्यत: सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योकि सयोगी मे द्वीन्द्रिय मे लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव आ जाते हैं।[1]

छठा वेदद्वार : वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५३. एएसि णं भंते ! जीवाणं सवेदगाणं इत्थीवेदगाणं पुरिसवेदगाणं नपुंसकवेदगाणं अवेदगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा १, इत्थीवेदगा संखेज्जगुणा २, अवेदगा अणंतगुणा ३, नपुंसगवेदगा अणतगुणा ४, सवेयगा विसेसाहिया ५। दारं ६ ॥

[२५३ प्र] भगवन् ! इन सवेदी (वेदसहित), स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी और अवेदी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५३ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे जीव पुरुषवेदी हैं, २. (उनसे) स्त्रीवेदी संख्यातगुणे है, ३ (उनसे) अवेदी अनन्तगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा) नपुसकवेदी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५ सवेदी विशेषाधिक हैं। छठा द्वार ॥६॥

विवेचन—छठा वेदद्वार: वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५३) में वेदद्वार के माध्यम से जीवों मे अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है।

सबसे थोड़े पुरुषवेदी हैं, क्योकि सज्ञी तिर्यञ्चो, मनुष्यों और देवो मे ही पुरुषवेद पाया जाता है। उनसे स्त्रीवेदी जीव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि जीवाभिगमसूत्र में कहा है—"तिर्यंच-योनिक पुरुषो की अपेक्षा तिर्यंचयोनिक स्त्रिया तीन गुनी और त्रि-अधिक होती हैं तथा मनुष्यपुरुषो से मनुष्यस्त्रिया सत्तावीसगुणी एव सत्तावीस अधिक होती हैं, एव देवो से देवियां (देवागनाएँ) बत्तीसगुणी तथा बत्तीस अधिक होती हैं।" इनकी अपेक्षा अवेदक (सिद्ध) अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद से रहित, नौवें गुणस्थान के कुछ ऊपरी भाग से आगे के सभी जीव तथा सिद्ध जीव; ये सभी अवेदी कहलाते हैं, और सिद्ध जीव अनन्त हैं। अवेदको की अपेक्षा नपुसक-वेदी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि नारक, एकेन्द्रिय जीव आदि सब नपुंसकवेदी होते हैं और अकेले

---

१. प्रज्ञापनासूत्र. मलय. वृत्ति, पत्रांक १३४

वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं, जो सब नपुंसकवेदी ही हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यतः सवेदी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदी सभी जीवों का उनमें समावेश हो जाता है।[1]

सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२५४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सकसाईणं कोहकसाईणं माणकसाईणं मायकसाईणं लोभकसाईणं अकसाईण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अकसायी १, माणकसायी अणंतगुणा २, कोहकसायी विसेसाहिया ३, मायकसाई विसेसाहिया ४, लोहकसाई विसेसाहिया ५, सकसाई विसेसाहिया ६ । दारं ७ ॥

[२५४ प्र.] भगवन् ! इन सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५४ उ] गौतम ! १. सबसे थोडे जीव अकषायी हैं, २. (उनसे) मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं, ३ (उनसे) क्रोधकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ४. उनसे मायाकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ५ उनसे लोभकषायी विशेषाधिक हैं और (उनसे भी) ६ सकषायी जीव विशेषाधिक है।

विवेचन—सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५४) में कषाय की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

कषायों की अपेक्षा जीवों की न्यूनाधिकता—अकषायी—कषायपरिणाम से रहित जीव सबसे कम हैं, क्योकि कतिपय क्षीणकषायी आदि गुणस्थानवर्ती मनुष्य एव सिद्ध जीव ही कषाय से रहित होते हैं। उनसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे इसलिए हैं कि छहो जीव-निकायो में मानकषाय पाया जाता है। उनसे क्रोधकषाय वाले, मायाकषाय वाले एव लोभकषाय वाले क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, क्योकि क्रोधादिकषायो के परिणाम का काल यथोत्तर विशेषाधिक है। पूर्व-पूर्व कषायो का उत्तरोत्तर कषायों मे क्रमशः सद्भाव है ही तथा लोभकषायी की अपेक्षा सकषायी जीव विशेषाधिक है, क्योंकि सामान्य कषायोदय वाले जीव कुछ अधिक ही हैं, उनमे मानादि कषायोदय वाले सभी जीवों का समावेश हो जाता है।

सकषायी शब्द का विशेषार्थ—कषाय शब्द से कषायोदय अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टि से सकषाय का अर्थ होता है—कषायोदयवान् या जिसमे वर्तमान मे कषाय विद्यमान है वह, अथवा जिसमे विपाकावस्था को प्राप्त कषायकर्म के परमाणु अपने उदय को प्रदर्शित कर रहे है, वह जीव।[2]

१, (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३४-१३५

(ख) तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिरिक्खजोणिय-इत्थीओ तिगुणीओ, तिरूवाहियाओ य । तहा मणुस्सपुरिसेहिंतो मणुस्सइत्थीओ सत्तावीसगुणीओ सत्तावीसरूवुत्तराओ य, तथा देवपुरिसेहिंतो देवित्थीओ बत्तीसगुणाओ बत्तीसरूवुत्तराओ ॥
— जीवाभिगमसूत्र

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३५

अष्टम लेश्याद्वार : लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५५. एएसि णं भंते ! जीवाणं सलेस्साणं किण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काउलेस्साणं तेउलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साणं अलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा १, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा २, तेउलेस्सा संखेज्जगुणा ३, अलेस्सा अणंतगुणा ४, काउलेस्सा अणंतगुणा ५, णीललेस्सा विसेसाहिया ६, किण्हलेस्सा विसेसाहिया ७, सलेस्सा विसेसाधिया ८। दारं ८॥

[२५५ प्र.] भगवन् ! इन सलेश्यो, कृष्णलेश्या वालो, नीललेश्या वालो, कापोतलेश्या वालों तेजोलेश्या वालो, पद्मलेश्या वालो, शुक्ललेश्या वालों एव लेश्यारहित (अलेश्य) जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५५ उ.] गौतम ! १ सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, २ (उनसे) पद्मलेश्या वाले सख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले जीव सख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) लेश्यारहित जीव अनन्तगुणे हैं, ५ (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं, ६ (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं ; ७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, ८. (उनसे) सलेश्य जीव विशेषाधिक हैं।

अष्टमद्वार ॥ ८ ॥

विवेचन—अष्टम लेश्याद्वार: लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५५) मे सलेश्य, पृथक्-पृथक् षट्लेश्यायुक्त एव अलेश्य जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, क्योंकि शुक्ललेश्या लान्तक से ले कर अनुत्तर वैमानिक देवों तक मे, कतिपय गर्भज कर्मभूमि के संख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों में तथा कतिपय सख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यंच-स्त्रीपुरुषो में ही पाई जाती है। उनकी अपेक्षा पद्मलेश्या वाले जीव सख्यातगुणे हैं, क्योकि पद्मलेश्या सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक-कल्प वासी देवो मे, बहुसख्यक गर्भज-कर्मभूमिज सख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य-स्त्रीपुरुषो मे तथा गर्भज-तिर्यञ्च-स्त्रीपुरुषो में पाई जाती है और ये समुदित सनत्कुमार देव आदि, लान्तकदेव आदि से संख्यातगुणे अधिक हैं। उनसे तेजोलेश्या वाले सख्यातगुणे हैं, क्योकि समस्त सौधर्म, ईशान-कल्प के वैमानिक देवो में, सभी ज्योतिष्क देवों मे तथा कतिपय भवनपति, वाणव्यन्तर, गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रियों और मनुष्यों में, बादर-पर्याप्त-एकेन्द्रियों मे तेजोलेश्या पाई जाती है। यद्यपि ज्योतिष्कदेव भवनवासी देवो तथा सनत्कुमार आदि देवों से असंख्यातगुणे होने से तेजोलेश्या वाले जीव असंख्यातगुणे कहने चाहिए, तथापि पद्मलेश्या वालो से तेजोलेश्या वाले जीव सख्यातगुणे ही हैं। यह कथन केवल देवो की लेश्याओ को लेकर नही किया गया है, अपितु समग्रजीवों को लेकर किया गया है, इसलिए पद्मलेश्या वालो मे देवो के अतिरिक्त बहुत-से तिर्यञ्च भी सम्मिलित हैं। इसी तरह तेजोलेश्या वालो में भी हैं, और पद्मलेश्या वाले तिर्यञ्च भी बहुत हैं। अतएव उनसे तेजोलेश्या वाले सख्यातगुणे ही अधिक हो सकते हैं, असंख्यातगुणे नही। तेजोलेश्या वालों से अलेश्य (लेश्यारहित—सिद्ध) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धजीव अनन्त हैं। उनसे कापोतलेश्या वाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीवों मे भी कापोतलेश्या सम्भव है और वनस्पतिकायिक

जीव सिद्धो से अनन्तगुणे है। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योकि नीललेश्या वाले जीव कापोतलेश्या वालो से प्रचुरतर होते हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रभूततम हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यत. सलेश्य जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि सलेश्य मे नीललेश्यादि वाले सभी लेश्यावान् जीवो का समावेश हो जाता है।[1]

नौवाँ दृष्टि (सम्यक्त्व) द्वार : तीन दृष्टियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५६. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सम्मद्दिट्ठीणं मिच्छद्दिट्ठीण सम्मामिच्छादिट्ठीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सम्मामिच्छद्दिट्ठी १, सम्मद्दिट्ठी अणंतगुणा २, मिच्छद्दिट्ठी अणंतगुणा ३। दारं ९ ॥

[२५६ प्र.] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एव सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५६ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है, २. (उनसे) सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं और ३. (उनसे भी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं। नौवाँ दृष्टिद्वार ॥९॥

विवेचन—नौवाँ दृष्टिद्वार : तीन दृष्टियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५६) मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि की अपेक्षा जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सबसे थोडे सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीव है, क्योकि मिश्रदृष्टि के परिणाम का काल अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है, अतएव बहुत ही अल्पकाल होने से प्रश्न के समय वे थोडे मे पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध अनन्त है और वे सम्यग्दृष्टियो मे ही सम्मिलित हैं। सम्यग्दृष्टियो की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकायिक आदि जीव सिद्धो से अनन्तगुणे है और वनस्पतिकायिक मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।[2]

दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान और अज्ञान की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२५७. एतेसि णं भंते ! जीवाण आभिणिबोहियणाणीण सुतणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्जवणाणीण केवलणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, केवलणाणी अणंतगुणा ४।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३५-१३६

(ख) ' 'पम्हलेसा गब्भवक्कतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेउलेसा गब्भवक्कतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेउलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ।'

प्रज्ञापना महादण्डक (म वृ पृ. १३६)

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक १३७

[२५७ प्र.] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मन.पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५७ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प मन:पर्यवज्ञानी हैं, २. (उनसे) अवधिज्ञानी असख्यातगुणे हैं, ३. आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी और श्रुतज्ञानी; ये दोनो तुल्य हैं और (अवधिज्ञानियों से) विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ।

२५८. एतेसि णं भंते ! जीवाणं मइअण्णाणीणं सुतअण्णाणीण विहंगणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा विभंगणाणी १, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी दो वि तुल्ला अणतगुणा २ ।

[२५८ प्र.] भगवन् ! इन मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[२५८ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे विभंगज्ञानी हैं, २. मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो तुल्य हैं और (विभगज्ञानियो से) अनन्तगुणे हैं ।

२५९. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्जवणाणीण केवलणाणीणं मतिअण्णाणीण सुतअण्णाणीणं विभंगनाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, विहंगणाणी असंखेज्जगुणा ४, केवलणाणी अणंतगुणा ५, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा ६ । दारं १० ॥

[२५९ प्र.] भगवन् ! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभगज्ञानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५९ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प मन:पर्यवज्ञानी जीव हैं, २ (उनसे) अवधिज्ञानी असख्यातगुणे हैं, ३. आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो तुल्य है और (अवधिज्ञानियो से) विशेषाधिक है, ४. (उनसे) विभगज्ञानी असंख्यातगुणे है, ५. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, ६ मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी, दोनो तुल्य हैं और (केवलज्ञानियो से) अनन्तगुणे हैं ।

दशम (ज्ञान) द्वार ॥१०॥

विवेचन—दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान-अज्ञान की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२५७ से २५९ तक) मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान की दृष्टि से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

ज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े मन:पर्यायज्ञानी हैं, क्योंकि मन·पर्यवज्ञान आमर्ष-औषधि आदि ऋद्धिप्राप्त सयमी पुरुषो को ही होता है । उनकी अपेक्षा अवधिज्ञानी असख्यातगुणे हैं, क्योंकि अवधिज्ञान नारको, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यों और देवो को भी होता है । उनसे आभिनिबोधिक-

ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो विशेषाधिक है, क्योकि जिन संज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो को अवधिज्ञान नही होता है, उन्हे भी आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो सकते है। इन दोनो ज्ञानों को परस्पर तुल्य कहने का कारण यह है कि ये दोनो ज्ञान परस्पर सहचर हं।[1] इन दोनो ज्ञानियो से केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध केवलज्ञानी होते है और वे अनन्त हैं।

अज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे विभगज्ञानी है, क्योकि विभगज्ञान मिथ्यादृष्टि नैरयिकों व देवो और किन्ही-किन्ही तिर्यंचपचेन्द्रियो और मनुष्यो को ही होता है। विभगज्ञान की अपेक्षा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान दोनो अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे अनन्त होते है। स्वस्थान मे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों तुल्य हैं, क्योकि ये दोनो अज्ञान परस्पर सहचर हैं।[2]

ज्ञानी और अज्ञानी दोनों का सामुदायिकरूप से अल्पबहुत्व—सबसे थोड मन:पर्यवज्ञानी हैं, तथा उनसे आगे का अल्पबहुत्व पूर्ववत् ही पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। मति-श्रुतज्ञानियों से विभंगज्ञानी जीव असख्यातगुणे हैं, क्योकि देवगति और मनुष्यगति मे सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। तथा देवो और नारको मे जो सम्यग्दृष्टि होते है, वे अवधिज्ञानी और मिथ्यादृष्टि विभगज्ञानी होते हैं, इस दृष्टि से विभगज्ञानी उनसे असख्यातगुणे हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध अनन्त होते हैं। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योकि मति-श्रुत-अज्ञानी वनस्पतिकायिकजीव भी होते हैं, और सिद्धो से भी अनन्तगुणे हैं। स्वस्थान मे ये दोनो अज्ञान परस्पर तुल्य हैं।[3]

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२६०. एतेसि णं भंते ! जीवाणं चक्खुदंसणीणं अचक्खुदंसणीणं ओहिदंसणीणं केवलदंसणीण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओहिदंसणी १, चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा २, केवलदंसणी अणंतगुणा ३, अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ४। दारं ११॥

[२६० प्र.] भगवन् ! इन चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६० उ.] गौतम ! १ सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव हैं, २. (उनसे) चक्षुदर्शनी जीव असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे है, (और उनसे भी) ४. अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे हैं।

ग्यारहवाँ (दर्शन) द्वार ॥११॥

विवेचन—ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६०) में चार दर्शनो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

---

१. **'जत्थ मइनाणं, तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं, तत्थ मइनाणं'**

२. **'जत्थ मइ-अन्नाणं, तत्थ सुय अन्नाणं, जत्थ सुय-अन्नाणं तत्थ मइ-अन्नाणं।'**

—प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव इसलिए हैं कि अवधिदर्शन देवों, नारकों और कतिपय संज्ञी-तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों को ही होता है। उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि चक्षुदर्शन सभी देवों, नारकों, गर्भज मनुष्यों, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रियों, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रियों और चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होता है। उनकी अपेक्षा केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनकी अपेक्षा भी अचक्षुर्दर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अचक्षुर्दर्शनियों में वनस्पतिकायिक भी है, जो अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[1]

बारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व

२६१. एतेसि णं भंते ! जीवाणं संजयाणं असंजयाणं संजयासंजयाणं नोसंजयनोअसंजयनो-संजतासंजताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा संजता १, संजयासंजता असंखेज्जगुणा २, नोसंजतनोअसंजत-नोसंजतासंजता अणंतगुणा ३, असंजता अणंतगुणा ४। दारं १२ ॥

[२६१ प्र] भगवन् ! इन संयतों, असंयतों, संयतासंयतों और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२६१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प संयत जीव है, २. (उनसे) संयतासंयत असंख्यातगुणे है, ३ (उनसे) नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ४. असंयत जीव अनन्तगुणे हैं। बारहवाँ (संयत) द्वार ॥१२॥

विवेचन—बारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६१) में संयत, असंयत, संयतासंयत एवं नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत की दृष्टि से जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे थोड़े संयत हैं, क्योंकि मनुष्यलोक में वे उत्कृष्टतः (अधिक से अधिक) कोटिसहस्र-पृथक्त्व, अर्थात्—दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ तक ही पाए जाते हैं।[2] उनकी अपेक्षा संयतासंयत (देशविरत) असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्य के अतिरिक्त असंख्यात तिर्यंचपंचेन्द्रियों में भी देशविरति पाई जाती है। उनसे नोसंयत-नोअसंयत (नोसंयतासंयत) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जो संयत, असंयत तथा संयतासंयत तीनों नहीं कहे जा सकते, ऐसे सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव भी असंयत हैं और वे अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[3]

तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउत्ता १, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा २। दारं १३ ॥

---

१. प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १३८

२. 'कोडिसहस्सपुहुत्त मणुयलोए संजयाण'—प्रज्ञापना म. वृत्ति, पृ. १३८

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

[२६२ प्र.] भगवन् ! इन साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग-युक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६२ उ] गौतम ! १. सबसे अल्प अनाकारोपयोग वाले जीव हैं, २ (उनसे) साकारोपयोग वाले जीव सख्यातगुणे हैं ।　　　　तेरहवाँ (उपयोग) द्वार ।।१३।।

विवेचन—तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोग की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६२) मे साकारोपयोगयुक्त और अनाकारोपयोगयुक्त जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

अनाकारोपयोग का काल थोडा होता है, जबकि साकारोपयोगकाल उससे असख्यातगुणा अधिक होता है । इसीलिए कहा गया है कि पृच्छासमय मे अनाकारोपयोग-(दर्शनोपयोग) काल थोड़ा होने से वे बहुत थोडे पाए जाते हैं, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग-(ज्ञानोपयोग) उपयुक्त जीव सख्यातगुणे होते है । क्योकि साकारोपयोगकाल लम्बा होने से पृच्छा के समय वे बहुत सख्या में पाये जाते हैं ।[1]

चौदहवाँ आहारद्वार : आहारक-अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व

२६३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आहारगाणं अणाहारगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणाहारगा १, आहारगा असंखेज्जगुणा २ । दारं १४ ।।

[२६३ प्र] भगवन् ! इन आहारको और अनाहारकजीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६३ उ] गौतम ! १ सबसे कम अनाहारक जीव हैं, २ (उनसे) आहारक जीव असख्यातगुणे है ।　　　　चौदहवाँ (आहार) द्वार ।।१४।।

विवेचन—चौदहवाँ आहारद्वार : आहार की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६३) में आहारक-अनाहारक जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

सबसे थोडे अनाहारक जीव हैं, क्योकि विग्रहगति करते हुए जीव, समुद्घातप्राप्त केवली और अयोगी सिद्ध जीव ही अनाहारक होते हैं ।[2] उनकी अपेक्षा आहारक जीव असख्यातगुणे हैं । प्रश्न हो सकता है कि आहारक जीवो मे वनस्पतिकायिक भी हैं और वे सिद्धो से अनन्त हैं, तो अनाहारको से वे अनन्तगुणे क्यो नही बताए गए ? असख्यातगुणे ही क्यो बताए गए ? इसका समाधान यह है कि सूक्ष्म निगोद सब मिलकर भी असख्यात हैं, उसमे भी वे अन्तर्मुहूर्त्त समय की राशि के तुल्य हैं, तथा सदैव विग्रहगति मे ही रहते हैं, इसलिए उनमे अनाहारक भी बहुत अधिक होते है और वे समग्रजीवराशि के असंख्येयभाग के तुल्य होते हैं । अत उनकी अपेक्षा आहारकजीव असख्यातगुणे ही हैं, अनन्तगुणे नही ।[3]

१- प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

२ **विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य ।**
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ।। —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १३८

३. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२६४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं भासगाणं अभासगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा भासगा १, अभासगा अणंतगुणा २ । दारं १५ ।।

[२६४ प्र.] भगवन् ! इन भाषक और अभाषक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[२६४ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प भाषक जीव हैं, २. (उनसे) अनन्तगुणे अभाषक हैं।
पन्द्रहवाँ (भाषक) द्वार ।।१५।।

विवेचन -- पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र मे भाषक और अभाषक जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

भाषक और अभाषक की व्याख्या—जो जीव भाषालब्धि-सम्पन्न हैं, वे भाषक और जो भाषालब्धि-विहीन है, वे अभाषक कहलाते हैं ।

भाषकों की अपेक्षा अभाषक अनन्तगुणे क्यों ?—भाषक जीव द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव है, जबकि अभाषको मे एकेन्द्रिय जीव हैं, जिनमें अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त है, इसलिए भाषकों से अभाषक अनन्तगुणे कहे गए है ।[1]

सोलहवाँ परित्तद्वार : परित्त आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं परित्ताणं अपरित्ताणं नोपरित्तनोअपरित्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा परित्ता १, नोपरित्त-नोअपरित्ता अणंतगुणा २, अपरित्ता अणंतगुणा ३ । दारं १६ ।।

[२६५ प्र] भगवन् ! इन परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६५ उ] गौतम ! १. सबसे थोड़े परीत जीव है, २. (उनसे) नोपरीत-नोअपरीत जीव अनन्तगुणे हैं और ३ (उनसे भी) अपरीत जीव अनन्तगुणे है ।
—सोलहवाँ (परीत्त) द्वार ।।१६।।

विवेचन—सोलहवाँ परीतद्वार : परीत आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६५) में परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवों की न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है ।

परीत आदि की व्याख्या—परीत का सामान्यतया अर्थ होता है—परिमित या सीमित । इस दृष्टि से 'परीत' दो प्रकार के बताए गए हैं—भवपरीत और कायपरीत । **भवपरीत** उन्हे कहते हैं,

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक १३९

जिनका ससार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध-पुद्गलपरावर्तनमात्र रह गया है । 'कायपरीत' कहते हैं—प्रत्येकशरीरी को। भवपरीत शुक्लपाक्षिक होते हैं और कायपरीत प्रत्येकशरीरी होते हैं। अपरीत उन्हें कहते हैं—जिनका ससार परीत—परिमित न हुआ हो, ऐसे जीव कृष्णपाक्षिक होते हैं।

परीत आदि की दृष्टि से अल्पबहुत्व—पूर्वोक्त दोनो प्रकार के परीत जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि समस्त जीवो की अपेक्षा शुक्लपाक्षिक एव प्रत्येकशरीरी कम हैं। उनकी अपेक्षा नोपरीत-नोअपरीत अर्थात् इन दोनो से अलग सिद्ध भगवन् हैं, जो कि अनन्त हैं, इसलिए अनन्तगुणे हैं और उनसे अपरीत यानी कृष्णपाक्षिक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं। वे सिद्धो से अनन्तगुणे हैं।[1]

सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार : पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व

२६६. एएसि णं भंते ! जीवाणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं नोपज्जत्तनोअपज्जत्ताणं य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा १, अपज्जत्तगा अणंतगुणा २, पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ३ । दारं १७ ॥

[२६६ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६६ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव है, २ (उनसे) अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं, (और उनसे भी) ३ पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे हैं।

सत्रहवाँ (पर्याप्त) द्वार ॥ १७ ॥

विवेचन—सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार : पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत (२६६वे) सूत्र मे पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों को न्यूनाधिकता—सबसे कम नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, क्योकि पर्याप्ति और अपर्याप्ति से रहित सिद्ध है, जो पर्याप्तको और अपर्याप्तको से कम है। उनकी अपेक्षा से अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि साधारणवनस्पतिकायिक सिद्धो से अनन्तगुणे हैं, जो सर्वकाल में अपर्याप्तक ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे है।[2]

अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार : सूक्ष्म आदि को दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६७. एएसि णं भंते ! जीवाणं सुहुमाणं बादराणं नोसुहुमनोबादराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा णोसुहुमणोबादरा १, बादरा अणंतगुणा २, सुहुमा असंखेज्जगुणा ३ । दारं १८ ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

[२६७ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं।

[२६७ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर जीव हैं, २. (उनसे) बादर जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ६. सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं। अठारहवाँ (सूक्ष्म) द्वार ॥१८॥

विवेचन—अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२६७) में सूक्ष्म, बादर एवं नोसूक्ष्म-नोबादर जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सूक्ष्मद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात् सिद्धजीव हैं, क्योकि वे सूक्ष्म जीवराशि और बादर जीवराशि के अनन्तभाग के बराबर हैं। उनसे बादरजीव अनन्तगुणे हैं, क्योकि बादर निगोदजीव सिद्धो से अनन्तगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म जीव असख्यातगुणे हैं, क्योकि बादरनिगोदो की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद असख्यातगुणे अधिक हैं।[1]

उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व

२६८. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सण्णीणं असण्णीणं नोसण्णीनोअसण्णीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सण्णी १, णोसण्णीणोअसण्णी अणंतगुणा २, असण्णी अणंतगुणा ३। दारं १९ ॥

[२६८ प्र.] भगवन् ! सज्ञी, असज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसज्ञी जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६८ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प सज्ञी जीव हैं, २. (उनसे) नोसज्ञी-नोअसंज्ञी जीव अनन्तगुणे है (और उनसे भी) ३. असज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं। उन्नीसवाँ (सज्ञी) द्वार ॥ १९ ॥

विवेचन—उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६८) मे सज्ञी, असज्ञी और नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे कम सज्ञी जीव हैं, क्योकि विशिष्ट मन वाले जीव ही संज्ञी होते हैं और ऐसे जीव सबसे कम हैं। सज्ञियो की अपेक्षा नोसज्ञी-नोअसज्ञी (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा असज्ञीजीव अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकाय आदि जीव अनन्त हैं, जो सिद्धो से भी अनन्तगुणे हैं।[2]

बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व

२६९. एतेसि णं भंते ! जीवाणं भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाण णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अभवसिद्धिया १, णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिया अणंतगुणा २, भवसिद्धिया अणंतगुणा ३। दारं २० ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

[२६९ प्र.] भगवन् ! इन भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धि-नोअभवसिद्धिक जीवो मे से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६९ उ] गौतम ! १. सबसे थोडे अभवसिद्धिक जीव है, २ (उनसे) नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे है और (उनसे भी) ३ भवसिद्धिक जीव अयन्तगुणे हैं।

बीसवाँ (भव) द्वार ।।२०।।

विवेचन—बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६९) मे भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

सबसे कम अभवसिद्धिक—अभव्य—मोक्षगमन के अयोग्य जीव है, क्योकि वे जघन्य युक्तानन्तक प्रमाण वाले है। अनुयोगद्वार के अनुसार—'उत्कृष्ट परीतानन्त में एक रूप (संख्या) मिलाने से **'जघन्य युक्तानन्तक'** होता है, अभवसिद्धिक उतने ही है।'[1] उनकी अपेक्षा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक अनन्तगुणे हैं, क्योक जो भव्य भी नही और अभव्य भी नही, ऐसे जीव सिद्ध हैं और वे अजघन्योत्कृष्ट युक्तानन्तक-परिमाण है, इस कारण वे अनन्त है। उनकी अपेक्षा भवसिद्धिक—भव्य—मोक्षगमनयोग्य जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध एक भव्यनिगोदराशि के अनन्तभागकल्प होते हैं और ऐसी भव्य जीवनिगोदराशियाँ लोक मे असख्यात है।[2]

इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार : अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्य का अल्पबहुत्व

२७०. **एतेसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय य एए तिन्नि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाय दव्वट्ठयाए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ३, अद्धासमए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे।

[२७० प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल) इन द्रव्यो मे से, द्रव्य की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७० उ] गौतम ! १. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीनों ही तुल्य है तथा द्रव्य की अपेक्षा मे सबसे अल्प हैं, २. (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ३ (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ४ (और इससे भी) अद्धा-समय (कालद्रव्य) द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है।

२७१ **एएसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं पदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

---

१. 'उक्कोसए परित्ताणंतए रूवे पक्खित्ते जहन्नय जुत्ताणंतयं होइ, अभवसिद्धिया वि तत्तिया चेव'—अनुयोगद्वार

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १४०

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दो वि तुल्ला पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए पदेसट्ठताए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए पदेसट्ठाए अणंतगुणे ३, अद्धासमए पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ४, आयासत्थिकाए पदेसट्ठताए अणंतगुणे ५ ।

[२७१ प्र] हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और अद्धासमय; इन (द्रव्यो) में से प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७१ उ.] गौतम ! १. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं और सबसे थोडे है, २ (इनको अपेक्षा) जीवास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ३ (इसकी अपेक्षा) पुद्‌गलास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ४. (इसकी अपेक्षा) अद्धा-समय (काल) प्रदेशापेक्षया अनन्तगुण है; ५ (इससे) आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुण है ।

२७२. [१] एतस्स णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगे धम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-१ प्र.] भगवन् ! इस धर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत तुल्य अथवा विशेषाधिक है ।

[२७२-१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक धर्मास्तिकाय (द्रव्य) है और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है ।

[२] एतस्स णं भंते ! अधम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगे अधम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-२ प्र] भगवन् ! इस अधर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-२ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक अधर्मास्तिकाय (द्रव्य) है; और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है ।

[३] एतस्स णं भंते ! आगासत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगे आगासत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए अणंतगुणे ।

[२७२-३ प्र] भगवन् ! इस आकाशास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-३ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक आकाशास्तिकाय (द्रव्य) है और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है ।

[४] एतस्स णं भंते ! जीवत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-४ प्र.] भगवन्! इस जीवास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-४ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से असख्यातगुण है ।

[५] एतस्स णं भंते ! पोग्गलत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-५ प्र] भगवन् ! इस पुद्गलास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की दृष्टि से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-५ उ] गौतम ! १. सबसे अल्प पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से है, २ प्रदेशो की अपेक्षा से वही असख्यातगुणा है ।

[६] श्रद्धासमए ण पुच्छिज्जइ पदेसाभावा ।

[२७२-६] काल (अद्धा-समय) के सम्बन्ध मे प्रश्न नही पूछा जाता, क्योकि उसमे प्रदेशो का अभाव है ।

२७३. एतेसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एते णं तिण्णि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दोण्णि वि तुल्ला पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणा २, जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ३, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ४, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ५, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे ६, अद्धासमए दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ७, आगासत्थिकाए पएसट्ठयाए अणंतगुणे ८ । दारं २१ ॥

[२७३ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल), इनमे से द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७३ उ.] गौतम ! १ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय, ये तीन (द्रव्य) तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं, २. (इनसे) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनो प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं तथा असख्यातगुणे हैं, ३. (इनसे) जीवास्तिकाय, द्रव्य

की अपेक्षा अनन्तगुण है, ४. वह प्रदेशो की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है, ५. (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ६ वही (पुद्गलास्तिकाय) प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुण है। ७. अद्धा-समय (काल) (उससे) द्रव्य और प्रदेशा की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ८ और (इससे भी) आकाशास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुण है। इक्कीसवाँ (अस्तिकाय) द्वार ॥२१॥

विवेचन—इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार: अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्यों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २७० से २७३ तक) मे द्रव्य, प्रदेशो व द्रव्य और प्रदेशो—दोनों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से षड्द्रव्यों का अल्पबहुत्व—(१) धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्य, द्रव्य रूप से एक-एक सख्या वाले होने से सबसे अल्प हैं। जीवास्तिकाय इन तीनों से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जीव अनन्त हैं और वे प्रत्येक पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणा है, क्योकि परमाणु, द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि पृथक्-पृथक् द्रव्य स्वतन्त्र द्रव्य है, और वे सामान्यतया तीन प्रकार के हैं—प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत। इनमे से सिर्फ प्रयोगपरिणत पुद्गल जीवो की अपेक्षा अनन्तगुणे है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीव अनन्त-अनन्त ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय आदि कर्मपरमाणुओ (स्कन्धो) से आवेष्टित-परिवेष्टित (सम्बद्ध) है, जैसा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) मे कहा है[1]—'सबसे थोडे प्रयोगपरिणत पुद्गल हैं, उनसे मिश्रपरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं और उनसे भी विस्रसापरिणत अनन्तगुणे हैं।' अत. यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलास्तिकाय, द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय द्रव्य से अनन्तगुणा है। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-काल द्रव्यरूप से अनन्तगुणा है; क्योकि एक ही परमाणु के भविष्यत् काल मे द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी सख्यातप्रदेशी असख्यातप्रदेशी, और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के साथ परिणत होने के कारण एक ही परमाणु के भावीसयोग अनन्त हैं और पृथक्-पृथक् कालो मे होने वाले वे अनन्त सयोग केवलज्ञान से ही जाने जा सकते है। जैसे एक परमाणु के अनन्त सयोग होते है, वैसे द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि सर्वपरमाणुओं के प्रत्येक के अनन्त-अनन्त सयोग भिन्न-भिन्न कालो में होते हैं। ये सब परिणमन मनुष्यलोक (क्षेत्र) के अन्तगत होते हैं। इसलिए क्षेत्र की दृष्टि से एक-एक परमाणु के भावी सयोग अनन्त हैं। जैसे—यह परमाणु अमुक काल मे अमुक आकाश-प्रदेश में अवगाहन करेगा, दूसरे समय मे किसी दूसरे आकाश-प्रदेश में। जैसे—एक परमाणु के क्षेत्र की दृष्टि से विभिन्नकालवर्ती अनन्त भावीसयोग हैं, वैसे ही अनन्तप्रदेशस्कन्धपर्यन्त द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो के प्रत्येक के एक-एक आकाशप्रदेश मे अवगाहन-भेद से भिन्न-भिन्न कालो मे होने वाले भावीसयोग अनन्त हैं। इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी यह परमाणु इस आकाशप्रदेश में एक समय की स्थिति वाला, दो आदि समयो की स्थिति वाला है, इस प्रकार एक परमाणु के एक आकाशप्रदेश मे असख्यात भावीसंयोग होते है, इसी तरह सभी आकाशप्रदेशो मे प्रत्येक परमाणु के असंख्यात-असख्यात भावीसयोग होते हैं, फिर पुन पुनः उन आकाशप्रदेशो मे काल का परावर्त्तन होने पर और काल अनन्त होने से, काल की अपेक्षा से भावी सयोग अनन्त होते हैं। जैसे एक परमाणु के क्षेत्र एव काल की अपेक्षा से भावीसंयोग होते है तथा सभी द्विप्रदेशी स्कन्धादि परमाणुओं के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त सयोग होते हैं। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा से भी समझ लेना चाहिए। यथा—यह परमाणु अमुक काल मे एक गुण काला होगा। इस प्रकार एक ही परमाणु के

---

१. 'सव्वत्थोवा पुग्गला पयोगपरिणया, मीसपरिणया अणतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा।'—व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

भाव की अपेक्षा से भिन्न-भिन्नकालीन अनन्त संयोग समझ लेने चाहिए। एक परमाणु की तरह सभी परमाणुओं एव द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो के पृथक्-पृथक् अनन्त सयोग भाव की अपेक्षा से भी होते हैं। इस प्रकार विचार करने पर एक ही परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-विशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावीसमय सिद्ध होते हैं और जो बात एक परमाणु के विषय मे है, वही सब परमाणुओ एव द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो के सम्बन्ध मे भी समझ लेनी चाहिए। यह सब परिणमनशील काल नामक वस्तु के बिना, और परिणमनशील पुद्गलास्तिकाय आदि वस्तुओ के बिना सगत नही हो सकता।[1]

जिस प्रकार परमाणु, द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो मे से प्रत्येक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी अद्धाकाल प्रतिपादित किये गए हैं, इसी प्रकार भूत अद्धाकाल भी समझ लेने चाहिए।[2]

(२) धर्मास्तिकाय आदि का प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व— धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं, क्योंकि दोनो के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के जितने ही हैं। अत अन्य द्रव्यो से इनके प्रदेश सबसे कम हैं। इन दोनो से जीवास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, क्योकि जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनमें से प्रत्येक जीवद्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय प्रदेशो को अपेक्षा से अनन्तगुण है। क्योकि पुद्गल की अन्य वर्गणाओ को छोड दिया जाए और केवल कर्मवर्गणाओ को ही लिया जाए तो भी जीव का एक-एक प्रदेश अनन्त-अनन्त कर्मपरमाणुओ (कर्मस्कन्ध प्रदेशो) से आवृत है। कर्मवर्गणा के अतिरिक्त औदारिक, वैक्रिय आदि अन्य अनेक वर्गणाएँ भी है। अतएव सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि जोवास्तिकाय के प्रदेशो से पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा भी अद्धाकाल के प्रदेश अन्तगुणे हैं, क्योकि पहले कहे अनुसार एक-एक पुद्गलास्तिकाय के उस-उस (विभिन्न) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के साथ सम्बन्ध के कारण अतीत और अनागत का काल अनन्त-अनन्त है। अद्धाकाल की अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुण हैं, क्योंकि अलोकाकाश सभी और अनन्त और असीम है।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि का अल्पबहुत्व- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय ये दोनो द्रव्य की दृष्टि से थोडे हैं, क्योकि ये दोनो एक-एक द्रव्य ही हैं। किन्तु प्रदेशो की अपेक्षा से द्रव्य से असख्यातगुणे हैं, क्योकि दोनो असख्यातप्रदेशी हैं। आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से सबसे कम है, क्योकि वह एक है, मगर प्रदेशो की अपेक्षा से वह अनन्तगुण है क्योकि उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। जोवास्तिकाय द्रव्य को दृष्टि से अल्प है और प्रदेशो की दृष्टि से असख्यातगुण है, क्योकि एक-एक जीव के लोकाकाश के प्रदेशो के तुल्य असख्यात-असख्यात प्रदेश हैं। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय कम है, क्योकि प्रदेश से द्रव्य कम ही होते हैं, प्रदेशो की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणे हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि लोक में अनन्तप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध बहुत है, अतएव पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशो से अनन्तगुण होना चाहिए,

---

१ सयोगपुरस्कारश्च नाम भाविनि हि युज्यते काले।
न हि संयोगपुरस्कारो ह्यसतां केचिदुपपन्न ॥१॥ — प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १४१

२. प्रज्ञापना मलय वृत्ति पत्राक १४१

इसका समाधान यह है कि द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध सबसे स्वल्प हैं, परमाणु आदि अत्यधिक हैं। आगे प्रज्ञापनासूत्र में कहा जाएगा[1]—"सबसे कम द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, द्रव्यदृष्टि से परमाणुपुद्गल अनन्तगुणे हैं। द्रव्यदृष्टि से सख्यातप्रदेशी स्कन्ध सख्यातगुणे हैं और असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं।" इस पाठ के अनुसार जब समस्त पुद्गलास्तिकाय का प्रदेशदृष्टि से चिन्तन किया जाता है, तब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अत्यन्त कम और परमाणु अत्यधिक तथा पृथक्-पृथक् द्रव्य होने से असंख्यप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओ की अपेक्षा असख्यातगुणे हैं। अतः प्रदेशों की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा ही हो सकता है, अनन्तगुणा नही।

कालद्रव्य के विषय में द्रव्य और प्रदेशों के अल्पबहुत्व को लेकर प्रश्न ही नही उठाना चाहिए, क्योकि काल के प्रदेश नही होते। काल सिर्फ द्रव्य ही है, उसके प्रदेश नही होते, क्योकि जब परमाणु परस्पर सापेक्ष (एकमेक) होकर परिणत होते हैं, तभी उनका समूह स्कन्ध कहलाता है और उसके अवयव प्रदेश कहलाते हैं। यदि वे परमाणु परस्पर निरपेक्ष हो तो उनके समूह को स्कन्ध नही कह सकते। अद्धा-समय (काल) परस्पर निरपेक्ष हैं, स्कन्ध के समान परस्पर (पिंडित) सापेक्ष द्रव्य नही हैं। जब वर्तमान समय होता है तो उसके आगे-पीछे के समय का अभाव होता है। अतएव उनमें स्कन्धरूप परिणाम का अभाव है। अतएव अद्धा-समय (कालद्रव्य) के प्रदेश नही होते।

धर्मास्तिकायादि का एक साथ द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम द्रव्य-दृष्टि से अधर्मास्तिकाय आदि तीनो द्रव्य हैं, क्योंकि तीनो एक-एक द्रव्य हैं। इनकी अपेक्षा प्रदेशो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनो तुल्य व असख्यातगुणे हैं, क्योकि दोनो के प्रदेश असख्यात-असख्यात है। इन दोनो से जीवास्तिकाय द्रव्यदृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि जीवद्रव्य अनन्त हैं। उनसे जीवास्तिकाय प्रदेशदृष्टि से असंख्यातगुणा है, क्योंकि प्रत्येक जीव के असख्यात-असख्यात प्रदेश होते हैं। प्रदेशरूप जीवास्तिकाय से द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय अनन्तगुणा है, क्योकि जीव के एक-एक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गलद्रव्य सम्बद्ध हैं। द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय से प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-समय (काल) द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार अनन्तगुणा है, इसकी अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि आकाशा-स्तिकाय सभी दिशाओ मे अनन्त है, उसकी कही सीमा नही है; जबकि अद्धा-समय (काल) सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में होता है।[2]

बाईसवाँ चरमद्वार : चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व

२७४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं चरिमाणं अचरिमाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा १, चरिमा अणंतगुणा २। दारं २२ ॥

---

१. 'सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।' —प्रज्ञापना पद ३, सू ३३०

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४२-१४३

[२७४ प्र.] भगवन् ! इन चरम और अचरम जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७४ उ.] गौतम ! अचरम जीव सबसे थोड़े हैं, (उनमे) चरम जीव अनन्तगुणे है ।

बावीसवाँ (चरम) द्वार ।।२२।।

विवेचन—बावीसवाँ चरमद्वार—चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व—चरम और अचरम की व्याख्या—जिन जीवो का इस ससार मे चरम—अन्तिम भव (जन्म-मरण) सभव हैं, वे चरम कहलाते हैं अथवा जो जीव योग्यता से भी चरम भव (निश्चितरूप से मोक्ष) के योग्य हैं, वे भव्य भी चरम कहलाते हैं । अचरम (चरमभव के अभाव वाले) अभव्य हैं या जिनका अब चरमभव (शेष) नही हैं, वे अचरम-सिद्ध कहलाते हैं ।

चरम और अचरम का अल्पबहुत्व—सबसे कम अचरम जीव है, क्योकि अभव्य और सिद्ध दोनो प्रकार के अचरम मिलकर भी अजघन्योत्कृष्ट अनन्त होते हैं; जबकि उभयविध चरम (चरमशरीरी तथा भव्यजीव) उनकी अपेक्षा अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त-परिमाण हैं ।[1]

तेईसवाँ जीवद्वार : जीवादि का अल्पबहुत्व

२७५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं पोग्गलाणं श्रद्धासमयाणं सव्वदव्वाणं सव्वपदेसाणं सव्वपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा १, पोग्गला अणंतगुणा २, श्रद्धासमया अणंतगुणा ३, सव्वदव्वा विसेसाहिया ४, सव्वपदेसा अणंतगुणा ५, सव्वपज्जवा अणंतगुणा ६ । दारं २३ ।।

[२७५ प्र.] भगवन् ! इन जीवो, पुद्गलो, अद्धा-समयो, सर्वद्रव्यो, सर्वप्रदेशो और सर्वपर्यायो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७५ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प जीव हैं, २ (उनसे) पुद्गल अनन्तगुण हैं, ३ (उनसे) अद्धा-समय अनन्तगुणे हैं, ४ (उनसे) सर्वद्रव्य विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ६ सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं । तेईसवाँ (जीव) द्वार ।।२३।।

विवेचन—तेईसवाँ जीवद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२७५) में जीव, पुद्गल, काल, सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्वपर्याय, इनके परस्पर अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

जीवादि के अल्पबहुत्व की युक्तिसंगतता—सबसे कम जीव, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल तथा उनसे भी अनन्तगुणे काल (अद्धासमय), इस सम्बन्ध मे पूर्वोक्त युक्ति से विचार कर लेना चाहिए । अद्धासमयो से सर्वद्रव्य विशेषाधिक है, क्योंकि पुद्गलो से जो अद्धासमय अनन्तगुणे कहे गए हैं, वह प्रत्येक अद्धासमय द्रव्य है, अत· द्रव्य के निरूपण मे वे भी ग्रहण किये जाते हैं । साथ ही अनन्त जीव-द्रव्यो, समस्त पुद्गल द्रव्यों, धर्म, अधर्म एव आकाशास्तिकाय, इन सभी का द्रव्य मे समावेश हो जाता है, ये सभी मिल कर भी अद्धासमयों से अनन्तवें भाग होने से उन्हें मिला देने पर भी सर्वद्रव्य, अद्धासमयों से विशेषाधिक हैं । उननी अपेक्षा सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योंकि आकाश अनन्त है ।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

प्रदेशों से सर्वपर्याय अनणतगुणे हैं, क्योकि एक-एक आकाशप्रदेश में अनन्त-अनन्त अगुरुलघुपर्याय होते हैं।[1]

चौबीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्प-बहुत्व

२७६ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[२७६] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम जोव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे हैं, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यग्लोक में असख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे (तीनो लोकों में अर्थात् तीनो लोको का स्पर्श करने वाले) असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्येयगुणे हैं, ६ (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२७७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया तेलोक्के १, अहेलोकतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अहेलोए असंखेज्जगुणा ३।

[२७७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे नैरयिकजीव त्रैलोक्य में हैं, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (और उनसे भी) अधोलोक में असख्यातगुणे है।

२७८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[२७८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प तिर्यचयोनिक (पुरुष) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं, ६ (और उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२७९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ तिरिक्खजोणिणीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२७९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम तिर्यंचिनी (तिर्यचस्त्री) ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य में सख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में सख्यातगुणी है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

२८०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा मणुस्सा तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोडे मनुष्य त्रैलोक्य मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक में सख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८१] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोडी मनुष्यस्त्रियाँ (नारियाँ) त्रैलोक्य मे हैं, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में सख्यातगुणी हैं, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी हैं, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में सख्यातगुणी हैं।

२८२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २. तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८२] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े देव ऊर्ध्वलोक में है, २ (उनसे) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२८३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) असख्यातगुणी ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी हैं।

२८४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा भवणवासी देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८४] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोड़े भवनवासी देव ऊर्ध्वलोक में हैं, (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे है, ६. (और (उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२८५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ भवणवासिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ५, अधोलोए असंखेज्जगुणाओ ६।

[२८५] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़ी भवनावासिनी देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में सख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी हैं, ६ (और उनसे भी अधोलोक मे असख्यातगुणी हैं।

२८६. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अहेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव ऊर्ध्वलोक में है, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६. (और (उनसे भो) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२८७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाणमंतरीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखिज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणाओ ४, अधोलोए संखिज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखिज्जगुणाओ ६।

[२८७] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोड़ी वाणव्यन्तर देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में सख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणी है, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६ (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी हैं।

२८८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में सख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं।

२८९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ जोइसिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए-संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ६।

[२८९] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प ज्योतिष्क देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी हैं, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी है, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी हैं।

२९०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा[1] उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, अधेलोए संखेज्जगुणा ४, तिरियलोए संखेज्जगुणा ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२९०] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २. (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ४. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में सख्यातगुणे हैं, ६ (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक में असख्यातगुणे है।

२९१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वेमाणिणीओ देवीओ उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोए संखिज्जगुणाओ ४, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाओ ६।

[२९१] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प वैमानिक देवियाँ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २. (उनसे) त्रैलोक्य में सख्यातगुणी है, ३. (उनसे)) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणी है।

२९२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६।

[२९२] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोड़े एकेन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक हैं।

२९३ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए-असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६।

---

१. ग्रन्थाग्रम् २०००

[२९३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, और ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाहिया ६।

[२९४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ उनसे ऊर्ध्वलोक में असख्यातगुणे हैं, ६, और (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक हैं।

२९५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया उड्ढलोए २, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९५] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक में सख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२९६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया अपज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२९७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य में असख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में सख्यातगुणे हैं।

२९८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोडे त्रीन्द्रिय ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, और ६ (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२९९. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तेइंदिया अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४ अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९९] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे संख्यातगुणे हैं।

३००. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३००] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प त्रीन्द्रिय-पर्याप्त जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०१] क्षेत्र की दृष्टि से १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य में असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में सख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोडे चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य में असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में सख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

३०३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरिय-लोए संखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अहेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अहोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०३] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनकी अपेक्षा भो) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

३०४. खेत्ताणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचिदिया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प पचेन्द्रिय त्रैलोक्य मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं।

३०५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिदिया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०५] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रैलोक्य मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में सख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक में सख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं।

३०६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्ज-गुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े पचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में सख्यातगुणे है, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यात-गुणे हैं ६ और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं।

३०७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया उड्ढलोयतिरियलोय १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा, ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३०७] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोडे पृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असख्यातगुणे हैं, और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३०८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाधिया ६।

[३०८] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक है।

३०९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३०९] क्षेत्र के अनुसार १. पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव सबसे अल्प ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक है, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक हैं।

३१०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[३१०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोडे अप्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य मे (उनसे) असंख्यातगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक में (इनसे) असख्यातगुणे हैं, ६. (और इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक मे हैं।

३११. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोय असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३११] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम अप्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा भी) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) उर्ध्वलोक में असख्यातगुणे हैं और ६. अधोलोक में (उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।

३१२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोय-तिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. अप्कायिक-पर्याप्त जीव उर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में सबसे कम हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक से विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ६ और (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक है।

३१३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. तेजस्कायिक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २. (उनको अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५. ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) असख्यातगुणे है, और ६. अधोलोक मे (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

३१४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १. अधेलोय-तिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

(३१४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प तेजस्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्-लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (इनसे) असख्यातगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक मे (इनसे) असख्यातगुणे हैं, ६. और (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक मे है।

३१५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउक्काइया पज्जत्तया उड्ढलोए १, अधेलोए-तिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक-में हैं, २ [उनकी अपेक्षा] अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३ तिर्यक्लोक में (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और (उनकी अपेक्षा भी) ६. अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइयाउड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१६] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प वायुकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (इनसे) विशेषाधिक है, ३ तिर्यक्लोक मे (इनसे) असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य में (इनसे) असख्यातगुणे है, ५ (इनसे) उर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं, ६ और (इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक मे हैं।

३१७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २. तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ वायुकायिक-अपर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनकी अपेक्षा) विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य में अर्थात् तीनो लोको का स्पर्श करने वाले जीव (उनकी अपेक्षा भी) असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं और ६ (उनको अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३१८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोडे वायुकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (इनकी अपेक्षा) विशेषाधिक हैं, ३ (इनकी अपेक्षा) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४. (इनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ (इनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक में हैं और (इनकी अपेक्षा भी) ६ अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३१९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोय विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६ ।

[३१९] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २. (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य मे (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५ ऊर्ध्वलोक में (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं ६ और अधोलोक के (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

३२० खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३२०] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जाव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) असंख्यातगुणे हैं तथा ६ अधोलोक में (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।

३२१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२१] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प वनस्पतिकायिक- पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्-लोक मे हैं, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक मे हैं, ६ (और उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३२२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अहेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३२२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े त्रसकायिक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे हैं, ३ (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे अधोलोक-तिर्यक्-लोक हैं, ४ ऊर्ध्वलोक मे (इनसे) सख्यातगुणे हैं, ५ अधोलोक मे (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे है, ६ और (इनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे हैं।

३२३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधेलोएतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्ज-गुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३२३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम त्रसकायिक अपर्याप्तक जीव त्रैलोक्य मे है, २. (उनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ अधोलोक-तिर्यलोक में (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे है, ४ ऊर्ध्वलोक में (उनसे) सख्यातगुणे है, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यात-गुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे है।

३२४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४. अधेलोए संखेज्ज-गुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६। दारं २४॥

[३२४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प त्रसकायिक-पर्याप्तक जीव त्रैलोक्य मे है, २ ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक मे (उनसे) असख्यातगुणे है, ३. अधोलोक तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे है, ४ ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) संख्यातगुणे है, ५ अधोलोक में (उनसे) सख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ६ तिर्यक्लोक में असख्यातगुणे है।

—चौवीसवाँ (क्षेत्र) द्वार ॥२४॥

विवेचन—चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से उर्ध्वलोकाविगत विविध जीवों का अल्प बहुत्व—प्रस्तुत ४९ सूत्रों (सू. २७६ से ३२४ तक) में क्षेत्र के अनुसार ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् तथा त्रैलोक्यादि विविध लोकों में चौवीसदण्डकवर्ती जीवो के अल्पबहुत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

'खेत्ताणुवाएणं' की व्याख्या—क्षेत्र के अनुपात अर्थात् अनुसार अथवा क्षेत्र की अपेक्षा से विचार करना क्षेत्रानुपात कहलाता है।

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक आदि पदों की व्याख्या—जैनशास्त्रानुसार सम्पूर्ण लोक चतुर्दश रज्जू-परिमित है। उसके तीन विभाग किए जाते है—उर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक (मध्यलोक) और अधोलोक। रुचकों के अनुसार इनके विभाग (सीमा) निश्चित होते हैं। जैसे—रुचक के नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन ऊपर **तिर्यक्लोक** है। तिर्यक्लोक के नीचे **अधोलोक** है और तिर्यक्लोक के ऊपर **ऊर्ध्व-लोक** है। ऊर्ध्वलोक कुछ न्यून सात रज्जू-प्रमाण है और अधोलोक कुछ अधिक सात रज्जू-प्रमाण है। इन दोनों के मध्य मे १८०० योजन ऊँचा **तिर्यग्लोक** है। ऊर्ध्वलोक का निचला आकाश-प्रदेशप्रतर और तिर्यक्लोक का सबसे ऊपर का आकाश-प्रदेशप्रतर है, वही **उर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक** कहलाता है; अर्थात् रुचक के समभूभाग से नौ सौ योजन जाने पर, ज्योतिश्चक्र के ऊपर तिर्यग्लोकसम्बन्धी एक-प्रदेशी आकाशप्रतर है, वह **तिर्यग्लोक का प्रतर है**। इसके ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर **उर्ध्व-लोक-प्रतर** कहलाता है। इन दोनो प्रतरो को **ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक** कहते हैं। अधोलोक के ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर और तिर्यग्लोक के नीचे का एकप्रदेशी आकाशप्रतर **अधोलोक-तिर्यक्लोक** कहलाता है। त्रैलोक्य का अर्थ है—तीनो लोक; यानी तीनो लोको को स्पर्श करने वाला। इस प्रकार क्षेत्र (समग्रलोक) के ६ विभाग समझने के लिए कर दिये है—(१) ऊर्ध्वलोक, (२) तिर्यग्लोक, (३) अधोलोक, (४) ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक, (५) अधोलोक-तिर्यक्लोक और (६) त्रैलोक्य।[1]

क्षेत्रानुसार लोक के उक्त छह विभागों मे जीवों का अल्पबहुत्व—ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे सबसे कम जीव हैं, क्योकि यहाँ का प्रदेश (क्षेत्र) बहुत थोड़ा है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे जीव विशेषाधिक है, क्योकि विग्रहगति करते हुए या वही पर स्थित जीव विशेषाधिक ही हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक में जीव असख्यातगुणे हैं, क्योकि ऊपर जिन दो क्षेत्रो का कथन किया गया है, उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक का विस्तार असख्यातगुणा है। तिर्यग्लोक के जीवो की अपेक्षा तीनो लोको का स्पर्श करने वाले जीव असख्यातगुणे हैं। जो जीव विग्रहगति करते हुए तीनो लोको को स्पर्श करते हैं, उनकी अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे जीव इसलिए हैं कि उपपातक्षेत्र की वहाँ अत्यन्त बहुलता है। उनकी अपेक्षा अधोलोकवर्ती जीव विशेषाधिक है, क्योकि अधोलोक का विस्तार सात रज्जू से कुछ अधिक प्रमाण है।[2]

क्षेत्रानुसार चार गतियों के जीवों का अल्पबहुत्व—(१) नरकगतीय अल्पबहुत्व—सबसे कम नरकगति के जीव त्रैलोक्य में अर्थात्—तीनों लोक को स्पर्श करने वाले हैं। यह शका हो सकती है,

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्राक १४४

२. (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४४

(ख) 'सव्वत्थोवा जीवा णोपज्जत्ता-णोअपज्जत्ता, अपज्जत्ता अणंतगुणा, पज्जत्ता संखेज्जगुणा'

—प्रज्ञापना. मूलपाठ टिप्पण भा १, पद ३

कि नारक जीव तीनों लोकों को स्पर्श करने वाले कैसे हो सकते हैं, क्योंकि वे तो अधोलोक मे ही स्थित हैं, तथा वे सबसे कम कैसे हैं ? इसका समाधान यह है कि मेरुपर्वत के शिखर पर अथवा अंजन या दधिमुखपर्वतादि के शिखर पर जो वापिकाएँ हैं, उनमे रहने वाले जो मत्स्य आदि नरक मे उत्पन्न होने वाले हैं, वे मरणकाल में इलिकागति से अपने आत्मप्रदेशो को फैलाते हुए तीनो लोको का स्पर्श करते हैं, और उस समय वे नारक ही कहलाते हैं, क्योंकि तत्काल ही उनकी उत्पत्ति नरक मे होने वाली होती है, और वे नरकायु का वेदन करते हैं। ऐसे नारक थोडे ही होते हैं, इसलिए उन्हें सबसे कम कहा है। त्रिलोकस्पर्शी नारको की अपेक्षा पूर्वोक्त अधोलोकतिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे नारक हैं; क्योकि असख्यात द्वीप-समुद्रो मे रहने वाले बहुत-से पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जब नरको में उत्पन्न होते हैं, तब इन दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, इस कारण वे त्रैलोक्यस्पर्शी नारको से असख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र असख्यातगुणा है। मेरु आदि क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात द्वीप-समुद्ररूप क्षेत्र असख्यातगुणा है। (२) **तिर्यंचगतिक अल्पबहुत्व**—सबसे कम तिर्यञ्च ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे हैं, क्योंकि ये तिर्यग्लोक के उपरिलोकवर्ती और ऊर्ध्वलोक के अधोलोकवर्ती दो प्रतरों मे हैं, उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में—अधोलोक के ऊपरी और तिर्यग्लोक के निचले दो प्रतरो में—विशेषाधिक हैं। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक, त्रैलोक्य एव ऊर्ध्वलोक मे उत्तरोत्तर क्रमश: असख्यातगुणे हैं। त्रैलोक्यसस्पर्शी तिर्यंचो की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक (ऊर्ध्वलोकसज्ञक प्रतर मे) असख्यातगुणे तिर्यञ्च हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक में विशेषाधिक हैं। **तिर्यंचस्त्रियाँ**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम तिर्यंचिनी ऊर्ध्वलोक का स्पर्श करने वाली हैं, क्योकि मेरु आदि की वापी आदि मे भी पचेन्द्रिय स्त्रियाँ विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र अल्प है। अतएव वे सबसे कम कही गई हैं, इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के दो प्रतरो को स्पर्श करने वाली) तिर्यंचस्त्रियाँ असख्यातगुणी हैं। इसका कारण यह है कि सहस्रार देवलोक तक के देव, गर्भजपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च स्त्रियो मे उत्पन्न हो सकते हैं और शेष काया के जीव भी उनमे उत्पन्न हो सकते हैं। जब सहस्रार देवलोक तक के देव या शेष काया के जीव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में पचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे तिर्यंचस्त्री की आयु का वेदन करते है। इसके अतिरिक्त तिर्यक्लोकवर्ती पचेन्द्रिय-तिर्यंच-स्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक मे देवरूप से या अन्य किसी रूप में उत्पन्न होने वाली होती हैं, तब वे मारणान्तिक समुद्घात करके अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशो को फैलाती हैं। उस समय वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरों को स्पर्श करती हैं। उस समय वे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कहलाती हैं, अतएव असख्यातगुणी कही गई हैं। इनकी अपेक्षा त्रैलोक्य में—त्रिलोक का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ तिर्यंचस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं। जब अधोलोक से भवनवासी, वाणव्यन्तर, नैरयिक तथा अन्यकायो के जीव ऊर्ध्वलोक मे पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते हैं, अथवा ऊर्ध्वलोक से कोई देवादि अधोलोक मे तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं और वे समुद्घात करके अपने आत्मप्रदेशों को दण्डरूप में फैलाते हुए तीनो लोकों का स्पर्श करते हैं। ऐसे जीव बहुत है, अतएव त्रैलोक्य मे तिर्यंच-स्त्री को संख्यातगुणी कहना सुसगत है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक का स्पर्श करने वाली तिर्यग्योनिकस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक है। बहुत-से नैरयिक आदि समुद्घात किये बिना ही तिर्यक्लोक में तिर्यञ्चपंचेन्द्रियस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते हैं; तथा तिर्यग्लोकवर्ती जीव अधोलौकिक ग्रामो में तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, उस समय वे पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते हैं, और तिर्यंचस्त्री के आयुष्य का वेदन करते हैं, अत: उन्हे सख्यातगुणी कहा है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक में अर्थात्—अधोलोक के प्रतर में विद्यमान तिर्यञ्चस्त्रियाँ सख्यातगुणी हे। अधोलौकिक

ग्राम और सभी समुद्र एक हजार योजन अवगाह वाले हैं। अतः नौ सौ योजन से नीचे मत्सी आदि तिर्यञ्चयोनिकस्त्रियो के स्वस्थान होने से वे प्रचुर सख्या मे हैं। इस कारण उन्हें संख्यातगुणी कहा है। उनका क्षेत्र भी सख्यातगुणा अधिक है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यक्लोक में तिर्यञ्चस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं। (३) **मनुष्यगतिविषयक अल्पबहुत्व**—क्षेत्रापेक्षया विचार करने पर त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) मनुष्य सबसे कम है, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलौकिक ग्रामो मे उत्पन्न होने वाले और मारणान्तिक समुद्घात करने वालो में से कोई-कोई समुद्घातवश बाहर निकाले हुए स्वात्म-प्रदेशो से तीनो लोको का स्पर्श करते है। कोई-कोई वैक्रिय या आहारक समुद्घात को प्राप्त होकर विशेष प्रयत्न के द्वारा बहुत दूर तक ऊपर और नीचे अपने आत्मप्रदेशों को फैलाते है, केवली-समुद्घात को प्राप्त थोड़े-से मानव तीनो लोको को स्पर्श करते है। इस कारण सबसे कम मनुष्य त्रिलोक में है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक दो प्रतरो को स्पर्श करने वाले मनुष्य असख्यातगुणे है। वैमानिक देव अथवा अन्य काय वाले जीव यथासम्भव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में मनुष्यरूप मे उत्पन्न होते है, तब वे पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है। इसके अतिरिक्त विद्याधर आदि भी जब मेरु आदि पर गमन करते है, तब उनके शुक्र, शोणित आदि पुद्गलों में सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति होती है, और वे विद्याधर रुधिरादिपुद्गलो के साथ सम्मिश्र होकर जब लौटते है, तब पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है, वे सख्या में अधिक होते है, इस कारण असख्यातगुणे है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरो को स्पर्श करने वाले मनुष्य असख्यातगुणे है, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे स्वभावत ही बहुत-से मनुष्यो का सद्भाव है। अत जो तिर्यक्लोक से मनुष्यों या अन्य कायो से आकर अधोलौकिक ग्रामो मे गर्भज मनुष्य या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होने वाले है, अथवा अधोलौकिक ग्रामो से या अधोलोकवर्त्ती किसी अन्य स्थान से तिर्यक्लोक में गर्भज या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होते हुए मनुष्य पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है। अतएव इन्हे सख्यातगुणे कहे है। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे मनुष्य सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि सौमनस आदि वनो मे क्रीडा आदि करने के लिए प्रचुरतर विद्याधरो एवं चारणमुनियो का गमनागमन होता है, और उनके यथायोग रुधिरादिपुद्गलो के योग से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति होती है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे सख्यातगुणे मनुष्य है, क्योकि अधोलोक स्वस्थान होने से वहाँ अधिकता होनी स्वाभाविक है। इनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे मनुष्य अधिक है, क्योकि तिर्यग्लोक का क्षेत्र सख्यातगुणा अधिक है, और मनुष्यो का वह स्वस्थान है, इस कारण अधिकता सम्भव है।

मनुष्यस्त्रियों का क्षेत्र की अपेक्षा से अल्पबहुत्व--सबसे कम मनुष्यस्त्रियाँ तीनो लोक को स्पर्श करने वाली हैं, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे उत्पन्न होने वाली मारणान्तिक-समुद्घात-वश जब वे अपने आत्मप्रदेशो को बाहर निकालती है, अथवा जब वे वैक्रियसमुद्घात या केवली-समुद्घात करती है, तब तीनो लोको का स्पर्श करती है और ऐसी मनुष्यस्त्रियाँ अत्यन्त कम होती हैं, इस कारण सबसे थोडी मनुष्यस्त्रियाँ त्रैलोक्य मे बताई गई है। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक दो प्रतरों का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ सख्यातगुणी होती है। वैमानिकदेव अथवा शेष कायवाले कोई जीव जब ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे मनुष्यस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाले होते है, तथा तिर्यग्लोकगत मनुष्यस्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न होते समय मारणान्तिक समुद्घात करती है, तब दूर तक ऊपर अपने आत्मप्रदेशो को फैलाती है, फिर भी तब तक जो कालगत नहीं हुई है, वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करती है, और वे दोनो प्रकार की स्त्रियाँ बहुत अधिक होती

हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक पूर्वोक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करने वाली मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी होती हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक से मनुष्यस्त्रीपर्याय से या अन्य पर्याय से अधोलौकिक ग्रामों में अथवा अधोलौकिक ग्राम से तिर्यग्लोक में मनुष्यस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाली होती हैं, उनमें से कई अधोलौकिक ग्रामों में अवस्थान करके भी उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करती हैं। ऐसी स्त्रियां पूर्वोक्तप्रतरद्वय की स्त्रियों से बहुत अधिक होती हैं। इनकी अपेक्षा भी वे ऊर्ध्वलोक में (ऊर्ध्वलोक नामक प्रतरगत) मनुष्यस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक हैं; क्योंकि सौमनस आदि वनों में क्रीड़ार्थ बहुत-सी विद्याधरियो का गमन सम्भव है। अधोलोक में उनकी अपेक्षा भी सख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंकि वहाँ स्वस्थान होने से प्रचुरतर होती हैं। उनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक में वे संख्यातगुणी हैं, क्योंकि वहाँ क्षेत्र भी संख्यातगुणा अधिक है, और स्वस्थान भी है। (४) **देवगति के जीवों का अल्पबहुत्व**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम देव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि वहाँ वैमानिक जाति के देव ही रहते हैं, और वे थोडे हैं, और जो भवनपति आदि देव तीर्थंकरों के जन्मोत्सवादि पर मन्दरपर्वतादि पर जाते हैं, वे भी स्वल्प ही होते हैं, इस कारण सबसे थोड़े देव ऊर्ध्वलोक में हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक दो प्रतरो में असंख्यातगुणे देव हैं; ये दोनों प्रतर ज्योतिष्कदेवों के निकटवर्ती हैं, अतएव उनके स्वस्थान हैं। इसके अतिरिक्त भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्कदेव सुमेरु आदि पर गमन करते हैं; अथवा सौधर्म आदि कल्पों के देव अपने स्थान मे आते-जाते हैं; या सौधर्म आदि देवलोको मे देवरूप से उत्पन्न होने वाले देव, जो देवायु का वेदन कर रहे होते हैं, वे जब अपने उत्पत्तिदेश मे जाते हैं, तब पूर्वोक्त दोनों प्रतरो का स्पर्श उन्हे होता है। ऐसे देव पूर्वोक्त देवो से असख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य मे (लोकत्रयस्पर्शी) देव सख्यातगुणे हैं, क्योकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तथारूप विशेष प्रयत्न से जब वैक्रियसमुद्घात करते हैं, तब तीनो लोकों का स्पर्श करते हैं। वे पूर्वोक्त प्रतरद्वय-सस्पर्शी देवों से सख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय का स्पर्श करने वाले देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योंकि ये दोनों प्रतर भवनपति और वाणव्यन्तर देवो के निकटवर्ती होने से स्वस्थान हैं, तथा बहुत-से स्वभवनस्थित भवनपतिदेव तिर्यग्लोक में गमनागमन करते हैं, उद्वर्तन करते हैं; तथा वैक्रियसमुद्घात करते हैं; अथवा तिर्यग्लोकवर्ती पचेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्य भवनपतिरूप में उत्पन्न होने वाले होते है, और भवनपति की आयु का वेदन करते हैं, तब उनके पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता हैं। ऐसे जीव बहुत होने के कारण संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में देव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलोक भवनपतिदेवो का स्वस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में रहने वाले देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक ज्योतिष्क और वाणव्यन्तरदेवों का स्वस्थान है। **देवियों का अल्पबहुत्व**—देवियों का अल्पबहुत्व भी सामान्यतया देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[1]

भवनपति आदि देव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(१) पूभवनपतिदेव सबसे कम ऊर्ध्वलोक में हैं; क्योंकि, कोई-कोई भवनपतिदेव अपने वैभव के संगतिकदेव की निश्रा से सौधर्मादि देवलोकों में जाते हैं। कई-कई मेरुपर्वत पर तीर्थंकरजन्ममहोत्सवादि के निमित्त से, तथा अंजन, दधिमुख आदि पर्वतों पर आष्टाह्निक महोत्सव के निमित्त से एवं कई मन्दरादि पर क्रीड़ा के निमित्त जाते हैं। परन्तु ये सब स्वल्प होते हैं; इसलिए ऊर्ध्वलोक में भवनपतिदेव सबसे कम हैं।

१. प्रज्ञापनासूत्र. मलय. वृत्ति, पत्रांक १४६ से १४८ तक

उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोकतिर्यग्लोक नामक दो प्रतरो में असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि तिर्यग्लोकस्थ-भवनपतिदेव वैक्रियसमुद्घात करते हैं, तब वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं, तथा तिर्यग्लोकस्थ जो भवनपति मारणान्तिकसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक में सौधर्मादि देवलोकों में बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिक, बादरपर्याप्त-अप्कायिक एव बादरपर्याप्त-वनस्पतिकायिक रूप से अथवा शुभमणि-प्रकारों में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे अपने भव की ही आयु का वेदन करते हैं, पारभविक पृथ्वीकायिकादि की आयु का नही, तब वे भवनपति ही कहलाते हैं उस समय वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं । इस प्रकार के वे भवनपतिदेव ऊर्ध्वलोक में गमनागमन करने से और दोनों प्रतरो के समीपवर्ती उनका क्रीड़ास्थान होने से वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों को स्पर्श करते हैं, इसलिए ये पूर्वोक्त देवो से असख्यातगुणे हैं । इनकी अपेक्षा त्रिलोकस्पर्शी भवनपति देव सख्यातगुणे होते हैं । ऊर्ध्वलोक मे रहे हुए जो तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय भवनपति रूप से उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे तथा स्वस्थान में तथाविध प्रयत्न विशेष से वैक्रिय समुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब वे त्रैलोक्यस्पर्श करते हैं । वे संख्यातगुणे इसलिए हैं कि अन्य स्थान में समुद्घात करने वालों की अपेक्षा स्वस्थान में समुद्घात करने वाले संख्यातगुणे होते हैं । अधोलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक प्रतरद्वय में इनकी अपेक्षा भी वे असख्यातगुणे होते हैं । तिर्यग्लोक इनके स्वस्थान से निकटवर्ती होने से गमनागमन होने के कारण तथा स्वस्थान में स्थित रहते हुए भी क्रोधादि कषायसमुद्घातवश गमन होने से बहुत-से भवनपतिदेव पूर्वोक्त दोनो प्रतरों का स्पर्श करते हैं । उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे वे असख्यातगुणे हैं, क्योंकि तीर्थंकर समवसरणादि में वन्दननिमित्त, रमणीय द्वीपो में क्रीडा के निमित्त वे तिर्यग्लोक मे आते हैं, और आते हैं तो चिरकाल तक भी रहते हैं उनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे असख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलोक तो भवनवासियो का स्वस्थान है । भवनवासीदेवो की तरह ही **भवनवासीदेवियों** का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए । **व्यन्तरदेव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर व्यन्तर देव सबसे कम ऊर्ध्वलोक में हैं, पाण्डकवन आदि मे कुछ ही व्यन्तरदेव पाये जाते हैं । उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक रूप दो प्रतरो मे असख्यातगुणे हैं कुछ व्यन्तरों के स्वस्थान के अन्तर्गत होने से तथा कई व्यन्तरों के स्वस्थान के निकट होने से तथा बहुत-से व्यन्तरो के मेरु आदि पर गमनागमन होने से उनके पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है । इन सब की सामूहिक रूप से विचारणा करने पर वे अत्यधिक हो जाते हैं । उनकी अपेक्षा त्रिलोकवर्ती व्यन्तर संख्यातगुणे हैं, क्योकि तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रिय समुद्घात करने पर वे आत्मप्रदेशो से तीनो लोको को स्पर्श करते हैं, और ऐसे व्यन्तरदेव पूर्वोक्त देवो से अत्यधिक हैं, इसलिए सख्यातगुणे हैं । उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-सज्ञक प्रतरद्वय में असख्यातगुणे हैं, क्योंकि ये दोनो प्रतर बहुत-से व्यन्तरो के स्वस्थान हैं, इसलिए इनका स्पर्श करने वाले व्यन्तर बहुत अधिक होने से असख्यातगुणे हैं । इनकी अपेक्षा अधोलोक में वे सख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामो मे उनका स्वस्थान है, तथा अधोलोक में बहुत से व्यन्तरों का क्रीड़ानिमित्त गमन भी होता है । इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में वे सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है ही । इसी प्रकार **व्यन्तरदेवियों का अल्पबहुत्व** समझ लेना चाहिए । **ज्योतिष्कदेव पृथक्-पृथक् देवियों का अल्पबहुत्व**—क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि कुछ ही ज्योतिष्क देवों का तीर्थंकरजन्ममहोत्सव निमित्त, या अंजन-दधिमुखादि पर अष्टाह्निका-निमित्त अथवा कतिपय देवो का मन्दराचलादि पर क्रीड़ानिमित्त गमन होता है । उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, उन दोनों प्रतरों

को कई ज्योतिष्कदेव स्वस्थान में स्थित रहे हुए स्पर्श करते हैं, कोई वैक्रियसमुद्घात करके आत्म-प्रदेशों से उनका स्पर्श करते हैं, कोई ऊर्ध्वलोक में आते-जाते उनका स्पर्श करते हैं। इस कारण दोनों प्रतरों का स्पर्श करने वाले ऊर्ध्वलोकगत देवों से असंख्यातगुणे हैं। उनसे त्रैलोक्यवर्ती ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि जो ज्योतिष्कदेव तथाविध तीव्र प्रयत्नवश वैक्रिय समुद्घात करते हैं, वे तीनों लोकों को अपने आत्मप्रदेशों से स्पर्श करते हैं; वे स्वभावतः अत्यधिक हैं, इस कारण पूर्वोक्त देव संख्यातगुणे हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय-संस्पर्शी ज्योतिष्कदेव असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादिनिमित्त या अधोलोक में क्रीडानिमित्त आते-जाते हैं, तथा बहुत-से देव अधोलोक से ज्योतिष्कदेवो में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इसलिए पूर्वोक्त देवों से ये देव असख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलोक मे क्रीडा के लिए या अधो-लौकिक ग्रामो मे समवसरणादि के लिए चिरकाल तक रहते है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असख्यातगुणे है, क्योकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है। इसी प्रकार **ज्योतिष्कदेवियों के अल्प-बहुत्व** का भी विचार कर लेना चाहिए। **वैमानिक देव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रा-नुसार विचार करने पर सबसे अल्प वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक प्रतरद्वय में हैं, क्योंकि अधोलोक-तिर्यग्लोकवर्ती जो जीव वैमानिकों में उत्पन्न होते है, तथा जो वैमानिक तिर्यग्लोक में गमनागमन करते है, एव जो उक्त दोनो प्रतरो मे स्थित क्रीडास्थान मे आश्रय लेकर रहते हैं, और जो तिर्यग्लोक में रहे हुए ही वैक्रियसमुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, वे तथाविधप्रयत्न-विशेष से अपने आत्मप्रदेशो को ऊर्ध्वदिशा मे निकालते है, तब पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते है, ऐसे वैमानिक देव बहुत ही अल्प होते हैं, इसलिए सबसे कम वैमानिक देव पूर्वोक्तप्रतरद्वय में है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यवर्ती वैमानिक पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार संख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-सज्ञक दो प्रतरो मे सख्यातगुणे है, क्योंकि उनका अधोलौकिक ग्रामों मे तीर्थंकर समवसरणादि मे गमनागमन होने से तथा उक्त दो प्रतरो में होने वाले समवसरणादि में अवस्थान के कारण बहुत-से देवो के उक्त दोनो प्रतरों का स्पर्श होता है, उनकी अपेक्षा अधोलोक तथा तिर्यग्लोक में उत्तरोत्तर क्रमशः सख्यातगुणे हैं, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बहुत से देवों का उभयत्र समवसरणादि तथा क्रीड़ा-स्थानों में अवस्थान होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे अधिक है, क्योकि ऊर्ध्वलोक तो उनका स्वस्थान ही है, वहाँ तो अत्यधिक होना स्वाभाविक है।

वैमानिक देवियों का अल्पबहुत्व भी देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[1]

क्षेत्रानुसार एकेन्द्रियादि जीवों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(१) **एकेन्द्रिय जीवों का अल्प-बहुत्व**—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय अपर्याप्तक एव एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक प्रतरद्वय में है। कई एकेन्द्रिय जीव वही स्थित रहते है, कई ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में तथा तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले जब मारणान्तिकसमुद्-घात करते है, तब वे उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते है, वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए सबसे अल्प उक्त प्रतरद्वय में बताये गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, क्योंकि अधो-लोक से तिर्यग्लोक में या तिर्यग्लोक से अधोलोक में इलिकागति से उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। वहीं रहने वाले एकेन्द्रिय भी ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में अधिक होते है, उनसे

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४९ से १५१ तक

भी अधिक अधोलोक से तिर्यग्लोक में उत्पन्न होने वाले जीव पाए जाते है। इस कारण उक्त दोनों प्रतरों में विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे एकेन्द्रिय असख्यातगुणे हैं, क्योकि उक्त प्रतरद्वय के क्षेत्र से तिर्यग्लोक का क्षेत्र असख्यातगुणा अधिक है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी असंख्यातगुणे हैं। क्योंकि बहुत-से एकेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे और अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते हैं, और उनमें से बहुत-से मारणान्तिक-समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेश-दण्डों को फैला कर तीनो लोकों को स्पर्श करते हैं, इस कारण वे असंख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे वे असख्यातगुणे हैं, क्योंकि उपपातक्षेत्र अत्यधिक है। उनसे अधोलोक मे विशेषाधिक हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोकगत क्षेत्र से अधोलोकगत क्षेत्र विशेषाधिक हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

(२) **द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक-पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व**— क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योकि ऊर्ध्वलोक मे एकदेश—मेरुशिखर की वापी आदि में ही शख आदि द्वीन्द्रिय पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-सज्ञक प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे हैं, क्योंकि जो ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे या तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक मे द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होने वाले होते है, द्वीन्द्रियायु का अनुभव कर रहे होते है, तथा इलिकागति से उत्पन्न होते हैं, अथवा जो द्वीन्द्रिय तिर्यग्लोक से ऊध्वलोक मे, या ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में द्वीन्द्रियरूप से या अन्य किसी रूप से उत्पन्न होने वाले हो, जिन्होंने पहले मारणान्तिकसमुद्घात किया हो, अतएव जो द्वीन्द्रियायु का वेपन कर रहे हो, समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेशो को जिन्होने दूर तक फैलाया हो, और जो प्रतरद्वय के अधिकृतक्षेत्र मे ही रह रहे हैं, ऐसे जीव उक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करते हैं, और वे अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असख्यातगुणे अधिक कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी द्वीन्द्रिय असख्यातगुणे होते हैं, क्योकि द्वीन्द्रियो के उत्पत्तिस्थान अधोलोक मे बहुत हैं, तिर्यग्लोक मे और भी अधिक हैं। उनमे से अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रिय रूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय पहले मारणान्तिक समुद्घात किये होते हैं, वे समुद्घातवश अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशो को फैला देते हैं, तथा द्वीन्द्रियायु का वेदन करते हैं तथा जो द्वीन्द्रिय या शेष काय वाले ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होते हुए द्वीन्द्रियायु का अनुभव करते हैं, वे त्रैलोक्यस्पर्शी और अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार अधोलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे हैं। उनसे उत्तरोत्तर-क्रमश: अधोलोक एव तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे है। जैसे औधिक द्वीन्द्रिय-अल्पबहुत्वसूत्र कहा गया है, वैसे ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इन सबके अपर्याप्तको एव पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए।

औधिक पंचेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर सबसे कम पचेन्द्रिय त्रैलोक्यसस्पर्शी है, क्योकि वे ही पचेन्द्रियजीव तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं, जो ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हो रहे हों, पचेन्द्रियायु का वेदन कर रहे हों और इलिकागति से उत्पन्न होते हो, अथवा ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में पचेन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होते हुए जिन्होंने मारणान्तिक समुद्घात किया हो, उस समुद्घात के समय अपने उत्पत्तिदेशपर्यन्त जिन्होंने आत्मप्रदेशों को फैलाया हो और जो पंचेन्द्रियायु का अनुभव करते हों। वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए उन्हें सब से थोड़े कहा गया है। उनकी अपेक्षा

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उपपात या समुद्घात के द्वारा इन दो प्रतरों का स्पर्श करने वाले अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अत्यधिक उपपात या समुद्घात द्वारा इन दोनों प्रतरों का अत्यधिक स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वहाँ वैमानिको का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा अधोलोक में सख्यातगुणे अधिक इसलिए हैं कि वहाँ नैरयिकों का अवस्थान है। उनसे तिर्यग्लोक में असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि वहाँ सम्मूर्छिम, जलचर, खेचर आदि का, व्यन्तर व ज्योतिष्क देवों का तथा सम्मूर्छिम मनुष्यो का बाहुल्य है। इसी तरह **पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवों** के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए। **पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव** सबसे कम हैं—ऊर्ध्वलोक मे, क्योंकि वहां प्रायः वैमानिक देवो का ही निवास है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-रूप प्रतरद्वय में असख्यातगुणे हैं, क्योंकि उक्त प्रतरद्वय के निकटवर्ती ज्योतिष्कदेवों का तद्गतक्षेत्राश्रित व्यन्तर देवों का तथा तिर्यञ्चपंचेन्द्रियो का, एव वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिष्को, तथा विद्याधर—चारणमुनियो तथा तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवों का ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक में गमनागमन होता है, तब इन दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य-स्पर्शी सख्यातगुणे हैं, क्योंकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक तथा अधोलोकस्थ विद्याधर जब तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रियसमुद्घात करते हैं, और अपने आत्मप्रदेशो को ऊर्ध्वलोक मे फैलाते हैं, तब वे तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। इस कारण वे सख्यातगुणे कहे गए हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक में सख्यातगुणे है। बहुत-से व्यन्तरदेव, स्वस्थान-निकटवर्ती होने से भवनपति, तिर्यग्लोक या ऊर्ध्वलोक में व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अधोलौकिक ग्रामो में समवसरणादि मे या, अधोलोक मे क्रीड़ार्थ गमनागमन करते है, तथा समुद्रों में किन्ही-किन्ही पचेन्द्रियतिर्यञ्चों का स्वस्थान निकट होने से तथा कतिपय तिर्यञ्चपचेन्द्रियजीवो के वही रहने के कारण उक्त दोनों प्रतरो का स्पर्श होता है। अतएव ये सख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में सख्यातगुणे हैं, क्योकि वहाँ नैरयिको तथा भवनपतियो का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो, ज्योतिष्को और व्यन्तरों का निवास है।[1]

पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावरों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—पृथ्वीकायिक आदि के औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक मिल कर १५ सूत्र हैं। इन १५ ही सूत्रों में उल्लिखित अल्प-बहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्वोक्त एकेन्द्रिय सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

त्रसकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—त्रसकायिक औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पंचेन्द्रियसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[2]

पच्चीसवाँ बन्धद्वार : आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व

३२५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं अबंधगाणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं सुत्ताणं जागराणं समोहयाणं असमोहयाणं सातावेदगाणं असातावेदगाणं इंदियउवउत्ताण नोइंदियउव-उत्ताणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसा-हिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र. मलय. वृत्ति, पत्रांक १५१ से १५४ तक
२. वही, मलय., वृत्ति, पत्रांक १५५

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा १, अपज्जत्तया संखेज्जगुणा २, सुत्ता संखेज्जगुणा ३, समोहता संखेज्जगुणा ४, सातावेदगा संखेज्जगुणा ५, इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा ६, अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ७, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ८, नोइंदियउवउत्ता विसेसाहिया ९, असातावेदगा विसेसाहिया १०, असमोहता विसेसाहिया ११, जागरा विसेसाहिया १२, पज्जत्तया विसेसाहिया १३, आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया १४ । दारं २५ ॥

[३२५ प्र.] भगवन् ! इन आयुष्यकर्म के बन्धको और अबन्धकों, पर्याप्तको और अपर्याप्तको, सुप्त और जागृत जीवों, समुद्घात करने वालो और न करने वालो, सातावेदको और असातावेदकों, इन्द्रियोपयुक्तों और नो-इन्द्रियोपयुक्तो, साकारोपयोग मे उपयुक्तो और अनाकारोपयोग में उपयुक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३२५ उ] गौतम ! १. सबसे थोड़े आयुष्यकर्म के बन्धक जीव हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अपर्याप्तक सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) सुप्तजीव सख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात वाले सख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) सातावेदक सख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) अनाकारोपयुक्त सख्यातगुणे है, ८. (उनकी अपेक्षा) साकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ९. (उनकी अपेक्षा) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव विशेषाधिक है, १०. (उनकी अपेक्षा) असातावेदक विशेषाधिक हैं, ११. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात न करते हुए जीव विशेषाधिक है. १२. (उनकी अपेक्षा) जागृत विशेषाधिक है, १३ (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, १४, (और उनकी अपेक्षा भी) आयुष्यकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है ।

पच्चीसवां (बन्ध) द्वार ॥ २५ ॥

विवेचन—पच्चीसवां बन्धद्वार--बन्धद्वार के माध्यम से आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (३२५) मे आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समुद्घात-कर्ता-अकर्ता, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नो-इन्द्रियोपयुक्त एवं साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त, सामूहिक रूप से इन सात युगलो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—आयुष्यकर्म के बन्धक जीव सबसे अल्प इसलिए है कि आयुष्यकर्म के बन्ध का काल प्रतिनियत और स्वल्प है । अनुभूयमान भव के आयुष्य का तीसरा भाग अवशेष रहने पर अथवा उस तीसरे भाग मे से तीसरा भाग आदि अवशेष रहने पर ही जीव परभव का आयुष्य बाधते है । अत. त्रिभागो मे से दो भाग अबन्धकाल और एक भाग बन्धकाल है और वह बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है । आयुष्यकर्म-बन्धको की अपेक्षा अपर्याप्तक सख्यातगुणे कहे गए है । अपर्याप्तको से सुप्त जीव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सुप्तजीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनो मे पाये जाते है और अपर्याप्तक की अपेक्षा पर्याप्तक संख्यातगुणे अधिक हैं । सुप्त जीवों की अपेक्षा समवहत (समुद्घात वाले) जीव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि बहुत-से पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव सदा मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाए जाते हैं । समवहत जीवो से सातावेदक जीव सख्यातगुणे है; क्योकि आयुष्यबन्धक, अपर्याप्तक और सुप्त जीवो में भी साता का वेदन करने वाले उपलब्ध होते हैं । सातावेदको की अपेक्षा इन्द्रियोपयुक्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियों का उपयोग लगाने वाले सातावेदकों के अतिरिक्त असातावेदकों मे भी पाए जाते है । उनकी अपेक्षा

अनाकारोपयोगयुक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग वालो और नो-इन्द्रियोपयोग वालो; दोनों में अनाराकारोपयोग पाया जाता है। अनाकारोपयुक्तों की अपेक्षा साकारोपयुक्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योंकि अनाकारोपयोग की अपेक्षा साकारोपयोग का काल अधिक है। साकारोपयुक्त जीवो की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयोग-उपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि इनमें नो-इन्द्रियोपयोग और अनाकारोपयोग वाले दोनों सम्मिलित हैं। इनकी अपेक्षा असातावेदक विशेषाधिक है, क्योंकि इन्द्रियोपयोग युक्त जीव भी असातावेदक होते हैं। असातावेदको मे असमवहत (समुद्‌घात न किए हुए) विशेषाधिक होते हैं; क्योंकि सातावेदक भी असमवहत होते हैं, इस कारण असमवहतो की विशेषाधिकता है। इनकी अपेक्षा जागृत विशेषाधिक है, क्योकि कतिपय समवहत जीव भी जागृत होते हैं। जागृतों की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योकि कतिपय सुप्तजीव भी पर्याप्तक है। बहुत-से जीव ऐसे भी हैं, जो जागृत न होते हुए—अर्थात् सुप्त होते हुए भी पर्याप्तक है। जो जागृत हैं, वे तो पर्याप्त ही होते है, किन्तु सुप्त जीवों के विषय में ऐसा नियम नही है। पर्याप्तक जीवों की अपेक्षा आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है, क्योंकि अपर्याप्तक भी आयुकर्म के अबन्धक होते हैं।[1]

प्रत्येक युगल का अल्पबहुत्व—(१) आयुष्यकर्म के **बन्धक** कम है, अबन्धक उनसे असख्यातगुणे अधिक है, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बन्धकाल की अपेक्षा अबन्धकाल अधिक है। बन्धकाल सिर्फ तीसरा भाग और वह भी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र होता है। इस कारण बन्धकों की अपेक्षा अबन्धक सख्यातगुणे अधिक है। (२) **अपर्याप्तक जीव** अल्प है, पर्याप्तक उनसे सख्यातगुणे अधिक है; यह कथन सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि सूक्ष्म जीवों में बाह्य व्याघात न होने से बहुसख्यक जीवो की निष्पत्ति (उत्पत्ति) और अल्प जीवो की अनिष्पत्ति (अनुत्पत्ति) होती है। (३) **सुप्त** जीव कम हैं, जागृत जीव उनकी अपेक्षा सख्यातगुणे अधिक है। यह कथन सूक्ष्म एकेन्द्रियो की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि अपर्याप्त जीव तो सुप्त ही पाए जाते हैं, जबकि पर्याप्तक जागृत भी होते है। (४) **समवहत** जीव थोड़े है, उनकी अपेक्षा असमवहत जीव असंख्यातगुणे अधिक है। यहाँ मारणान्तिक समुद्‌घात से **समवहत** ही लिए गए है और मारणान्तिक समुद्‌घात मरणकाल में ही होता है, शेष समय में नही; वह भी सब जीव नही करते। अतएव समवहत थोड़े ही कहे गए है; असमवहत अधिक, क्योंकि उनका जीवनकाल अधिक हैं। (५) इसी प्रकार सातावेदक जीव कम है, क्योकि साधारणशरीरी जीव बहुत है और प्रत्येकशरीरी अल्प है। अधिकांश साधारणशरीरी जीव असातावेदक होते है, इस कारण सातावेदक कम है। प्रत्येकशरीरी जीवों में तो सातावेदकों की बहुलता है और असातावेदकों की अल्पता है। अतएव सातावेदक कम और असातावेदक उनसे सख्यातगुणे अधिक हैं। (६) इन्द्रियोपयुक्त कम है, नो-इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे अधिक है, क्योंकि इन्द्रियोपयोग तो वर्तमानविषयक ही होता है, इस कारण उसका काल स्वल्प है। नो-इन्द्रियोपयोग अतीत-अनागतकाल-विषयक भी होता है। अत: उसका समय बहुत है, इस कारण नो-इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे कहे गए है। (७) अनाकार (दर्शन) उपयोग का काल अल्प होने से अनाकारोपयोग वाले अल्प है, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग वाले का काल संख्यातगुणा होने से साकारोपयोग वाले संख्यातगुणे अधिक है।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६-१५७

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६

छब्बीसवाँ पुद्गलद्वार : पुद्गलों, द्रव्यों आदि का द्रव्यादि विविध अपेक्षाओं से अल्प-बहुत्व

३२६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए अणंतगुणा २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया ३, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३२६] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम पुद्गल त्रैलोक्य मे हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में (उनसे) अनन्तगुणे हैं, अधोलोक-तिर्यग्लोक मे विशेषाधिक हैं, ४ तिर्यग्लोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ६ (और उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३२७. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला उड्ढदिसाए १, अधेदिसाए विसेसाहिया २, उत्तर-पुरत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ३, दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ४, पुरत्थिमेण असंखेज्जगुणा ५, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया ६, दाहिणेणं विसेसाहिया ७, उत्तरेणं विसेसाहिया ८ ।

[३२७] दिशाओ के अनुसार १ सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा मे हैं, २ (उनसे) अधोदिशा मे विशेषाधिक हैं, ३ उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनो मे तुल्य हैं, (पूर्वोक्त दिशा से) असख्यात-गुणे हैं, ४. दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनो में तुल्य हैं और (पूर्वोक्त दिशाओ से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्वदिशा मे असख्यातगुणे है, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिमदिशा मे विशेषाधिक हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) दक्षिण मे विशेषाधिक हैं, (और उनकी अपेक्षा भी) ८. उत्तर मे विशेषाधिक हैं ।

३२८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाइं दव्वाइं तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए अणंतगुणाइं २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहियाइं ३, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाइं ४, अधेलोए अणंतगुणाइं ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाइं ६ ।

[३२८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक है, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असख्यातगुणे अधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में अनन्तगुणे हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे हैं ।

३२९. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवाइं दव्वाइं अधेदिसाए १, उड्ढदिसाए अणंतगुणाइं २, उत्तर-पुरत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्लाइं असंखेज्जगुणाइं ३, दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थि-मेण य दो वि तुल्लाइं विसेसाहियाइं ४, पुरत्थिमेणं असंखेज्जगुणाइं ५, पच्चत्थिमेणं विसेसाहियाइं ६, दाहिणेणं विसेसाहियाइं ७, उत्तरेणं विसेसाहियाइं ८ ।

[३२९] दिशाओ के अनुसार, १. सबसे थोड़े द्रव्य अधोदिशा में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं, ३ उत्तरपूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं, (पूर्वोक्त ऊर्ध्वदिशा

से) असंख्यातगुणे हैं, ४. दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम, दोनों में तुल्य हैं तथा (पूर्वोक्त दो दिशाओं से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्व में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिम में विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) दक्षिण में विशेषाधिक हैं, ८ (और उनकी अपेक्षा भी) उत्तर में विशेषाधिक हैं।

३३०. एतेसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपदेसियाणं असंखेज्जपदेसियाणं अणंतपदेसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठताए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४; पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा पएसट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसिया खंधा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए १, ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा २, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठअपदेसट्ठयाए अणंतगुणा ३, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ५, असंखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ६, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ७।

[३३० प्र.] भगवन् ! इन १. परमाणुपुद्‌गलो तथा २. सख्यातप्रदेशिक, ३. असंख्यातप्रदेशिक और ४ अनन्तप्रदेशिक स्कन्धो मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से, और द्रव्य एवं प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३० उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं। **प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेशापेक्षया हैं, २ (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्‌गल अप्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। **द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे अल्प, द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) वे (अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्‌गल, द्रव्य एव अप्रदेश की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (संख्यातप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ७. वे (असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध) प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं।

३३१. एतेसि णं भंते ! एगपदेसोगाढाणं संखेज्जपएसोगाढाणं असंखेज्जपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए १, संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; पएसट्ठयाए— सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठपएसट्ठयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ५।

[३३१ प्र.] भगवन् ! इन एकप्रदेशावगाढ़, संख्यातप्रदेशावगाढ और असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गलों में द्रव्य की अपेक्षा से प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य एव प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३१ उ.] गौतम ! १. सबसे कम द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्‌गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशों में अवगाढ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ३, (उनकी अपेक्षा) द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशों मे अवगाढ़ पुद्‌गल असंख्यात हैं । **प्रदेशों की दृष्टि से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम, प्रदेशों की अपेक्षा से, एक प्रदेशावगाढ पुद्‌गल हैं, २ (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, प्रदेशों की अपेक्षा से, सख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं । **द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम एकप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल, द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से हैं, २. (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे है, ३. (उनकी अपेक्षा) वे (सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल) ही प्रदेश की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल) ही, प्रदेश की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं ।

३३२. एतेसि णं भंते ! एगसमयठितीयाणं संखेज्जसमयठितीयाणं असंखेज्जसमयठितीयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; पदेसट्ठयाए— सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए— सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठपदेसट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ५।

[३३२ प्र.] भगवन् ! इन एक समय को स्थिति वाले, सख्यात समय की स्थिति वाले और असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गलों मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से एव द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३२ उ.] गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प एक समय की स्थिति वाले पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यात समय को स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। **प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम, एक समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से हैं, २. (उनकी अपेक्षा) सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं। **द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से सबसे कम पुद्गल, एक समय की स्थिति वाले हैं, २. सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) वे संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल) ही प्रदेशों की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ४. (इनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (और इनसे भी) वे (असख्यात-समयस्थितिक पुद्गल) ही प्रदेशो की अपेक्षा असख्यातगुणे हैं।

३३३. एतेसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं संखेज्जगुणकालगाणं असंखेज्जगुणकालगाणं अणतगुणकालगाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पवेसट्ठयाए दव्वट्ठपवेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! जहा परमाणुपोग्गला (सु. ३३०) तह भाणितव्वा। एवं संखेज्जगुणकालयाण वि। एवं सेसा वि वण्ण-गंध-रसा भाणितव्वा। फासाणं कक्खड-मउय-गरुय-लहुयाणं जधा एगपदेसोगाढाणं (सु. ३३१) भणितं तहा भाणितव्वं। अवसेसा फासा जधा वण्णा भणिता तधा भाणितव्वा। दारं २६।

[३३३ प्र.] भगवन् ! इन एकगुण काले, सख्यातगुणे काले, असंख्यातगुणे काले और अनन्तगुण काले पुद्गलों में से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार परमाणुपुद्गलों के विषय मे (सू. ३३० मे) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इसी प्रकार सख्यातगुणे काले (एव असख्यातगुण काले तथा अनन्तगुण काले) पुद्गलों के विषय मे भी (पूर्ववत् सू. ३३० के अनुसार) समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष वर्ण (नीले, लाल, पीले आदि) तथा (समस्त) गन्ध एव रस के (एकगुण से अनन्तगुण तक के) पुद्गलों के अल्पबहुत्व के सम्बन्ध में कहना चाहिए तथा कर्कश, मृदु (कोमल), गुरु और लघु स्पर्शों के (अल्पबहुत्व के) विषय मे भी जिस प्रकार (सू. ३३१ में) एकप्रदेशावगाढ आदि का (अल्पबहुत्व) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। अवशेष (चार) स्पर्शों के विषय में जैसे वर्णों का (अल्पबहुत्व) कहा है, वैसे ही कहना चाहिए। छब्बीसवाँ (पुद्गल) द्वार ॥२६॥

विवेचन—छब्बीसवाँ पुद्गलद्वार—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ३२६ से ३३३ तक) में पुद्गलद्वार के माध्यम से क्षेत्र एवं दिशा की अपेक्षा से पुद्गलो और द्रव्यों के तथा द्रव्य, प्रदेश, एवं द्रव्यप्रदेश की दृष्टि से परमाणुपुद्गल, संख्यातप्रदेशी आदि के एकप्रदेशावगाढ से असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों

तक के एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलो तक तथा विविध वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श के पुद्गलों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

क्षेत्रानुसार पुद्गलों का अल्पबहुत्व—त्रैलोक्यस्पर्शी पुद्गल द्रव्य सबसे थोड़े इसलिए बताए हैं कि महास्कन्ध ही त्रैलोक्यव्यापी होते हैं और वे अल्प ही हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-संज्ञक प्रतरद्वय में अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं, क्योकि इन दोनों प्रतरो में अनन्त संख्यातप्रदेशी, अनन्त असंख्यातप्रदेशी और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध स्पर्श करते है, इसलिए द्रव्यार्थतया वे अनन्तगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक दो प्रतरो में वे विशेषाधिक हैं, क्योकि इनका क्षेत्र आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) मे कुछ विशेषाधिक है। उनसे तिर्यग्लोक में पुद्गल असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि इसका क्षेत्र (पूर्वोक्त से) असख्यातगुणा है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणा हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक के क्षेत्र से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असख्यातगुणा अधिक है। उनसे अधोलोक मे विशेषाधिक पुद्गलद्रव्य हैं, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र कुछ अधिक है। ऊर्ध्वलोक कुछ कम ७ रज्जूप्रमाण है, जबकि अधोलोक कुछ अधिक ७ रज्जूप्रमाण है।

दिशाओं के अनुसार पुद्गलद्रव्यों का अल्पबहुत्व—सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा में है, क्योकि रत्नप्रभापृथ्वी के समतल भूभाग वाले मेरुपर्वत के मध्य मे जो अष्टप्रदेशात्मक रुचक से निकली हुई और लोकान्त को स्पर्श करने वाली चतुःप्रदेशात्मक (चार प्रदेश वाली) ऊर्ध्वदिशा है। उसमे सबसे कम पुद्गल हैं। अधोदिशा भी रुचक से निकलती है और वह चतु:प्रदेशात्मक और लोकान्त तक भी है, किन्तु ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा वह कुछ विशेषाधिक है, इसलिए वहाँ पुद्गल विशेषाधिक है। उनसे उत्तरपूर्व तथा दक्षिणपश्चिम में प्रत्येक में असख्यातगुणे अधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो दोनो तुल्य हैं, यद्यपि ये दोनो दिशाएँ रुचक से निकली हैं तथा मुक्तावली के आकार की हैं, तथापि ये तिर्यग्लोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के अन्त तक जा कर समाप्त होती हैं, इसलिए इनका क्षेत्र असख्यातगुणा होने से वहाँ पुद्गल भी असख्यातगुणे हैं। इनसे दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम दोनो मे प्रत्येक में विशेषाधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो ये परस्पर तुल्य हैं। इनमे विशेषाधिक पुद्गल होने का कारण यह है कि सौमनस एव गधमादन पर्वतो के सात-सात कूटों (शिखरो) पर तथा विद्युत्प्रभ और माल्यवान् पर्वतों के नौ-नौ कूटो पर कोहरे, ओस आदि के सूक्ष्मपुद्गल बहुत होते हैं, इसलिए इन दोनो दिशाओ में पूर्वोक्त दिशाओ से पुद्गल विशेषाधिक हैं। इनसे पूर्व दिशा मे असख्येयगुणे हैं, क्योकि पूर्व मे क्षेत्र असंख्येयगुणा है। उनसे पश्चिम में विशेषाधिक हैं, क्योकि अधोलोकिक ग्रामो में पोलार होने से वहाँ पुद्गल बहुत होते हैं। पश्चिम की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ भवन तथा पोल अधिक हैं। उनसे उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तर में संख्यातकोटा-कोटी योजन लम्बा-चौड़ा मानससरोवर है, जहाँ जलचर तथा काई, शैवाल आदि बहुत प्राणी हैं, उनके तैजस-कार्मणशरीर के पुद्गल अत्यधिक पाए जाते हैं। इस कारण पश्चिम से उत्तर में विशेषाधिक पुद्गल कहे गए हैं।[1]

क्षेत्रानुसार सामान्यतः द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य-स्पर्शी हैं, क्योंकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, महास्कन्ध और जीवास्तिकाय में से मारणान्तिक समुद्घात से अतीव समवहत जीव ही त्रैलोक्यस्पर्शी होते हैं और वे अल्प हैं। इसलिए ये सबसे कम हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरों में अनन्तगुणे द्रव्य हैं,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १५८-१५९

क्योंकि इन दोनों प्रतरों को अनन्त पुद्गलद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य स्पर्श करते हैं। इन दोनों प्रतरों की अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक प्रतरों मे कुछ अधिक द्रव्य हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे द्रव्य अधिक हैं। क्योंकि वह क्षेत्र असंख्यातगुणा विस्तृत है। उनकी अपेक्षा अधोलोक में अनन्तगुणे अधिक द्रव्य हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्रामों में काल है, जिसका सम्बन्ध विभिन्न परमाणुओं, संख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के पर्यायों के साथ होने के कारण प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनन्त प्रकार का होता है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योकि अधोलोकिक ग्राम-प्रमाण खण्ड कालद्रव्य के आधारभूत मनुष्यलोक मे संख्यात पाए जाते हैं।

दिशाओं की अपेक्षा से सामान्यः द्रव्यों का अल्पबहुत्व—सामान्यतया सबसे कम द्रव्य अधोदिशा में हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत का पांच सो योजन का स्फटिकमय काण्ड है, जिसमे चन्द्र और सूर्य की प्रभा के होने से तथा द्रव्यों के क्षण आदि काल का प्रतिभाग होने से तथा पूर्वोक्त नोति से प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यों के साथ काल अनन्त होने से द्रव्य का अनन्तगुणा होना सिद्ध है। ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा उत्तरपूर्व—ईशानकोण में तथा दक्षिणपश्चिम—नैर्ऋत्यकोण में असख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ के क्षेत्र असख्यातगुणा हैं, किन्तु इन दोनों दिशाओं में बराबर-बराबर ही द्रव्य हैं, क्योकि इन दोनों का क्षेत्र बराबर है। इन दोनों की अपेक्षा दक्षिणपूर्व—आग्नेयकोण में तथा उत्तरपश्चिम—वायव्यकोण में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि इन दिशाओं मे विद्युत्प्रभ एव माल्यवान् पर्वतों के कूट के आश्रित कोहरे, ओस आदि श्लक्ष्ण पुद्गलद्रव्य बहुत होते हैं। इनकी अपेक्षा पूर्वदिशा में असंख्यातगुणा क्षेत्र अधिक होने से द्रव्य भी असख्यातगुणे अधिक हैं। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ अधोलोकिक ग्रामो में पोल होने के कारण बहुत-से पुद्गलद्रव्यो का सद्भाव है। उसकी अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योकि वहाँ बहुसख्यक भुवनो के रन्ध्र (पोल) हैं। दक्षिण से उत्तरदिशा में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ मानससरोवर में रहने वाले जीवो के आश्रित[1] तैजस और कार्मण वर्गणा के पुद्गल-स्कन्ध द्रव्य बहुत हैं।

संख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशी-परमाणुपुद्गलों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्रों में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है। पाठ सुगम है। यहाँ सर्वत्र अल्प-बहुत्व-भावना में पुद्गलो का वैसा स्वभाव ही कारण माना गया है।

क्षेत्र की प्रधानता से पुद्गलों का अल्पबहुत्व—एकप्रदेश में अवगाढ (आकाश के एक प्रदेश में स्थित) पुद्गल (द्रव्यापेक्षया) सबसे कम हैं। यहाँ क्षेत्र की प्रधानता से विचार किया गया है। इस-लिए आकाश के एक प्रदेश मे जो भी परमाणु, सख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाढ हैं, उन सब को एक ही राशि मे परिगणित करके **'एकप्रदेशावगाढ़'** कहा गया है। इस दृष्टि से संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल पूर्वोक्त की अपेक्षा द्रव्यविवक्षा से संख्यातगुणे हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि आकाश के दो प्रदेशों में द्व्यणुक भी रहता है, त्र्यणुक भी और असंख्यात प्रदेशी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रहता है, किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा से उन सबकी एक ही राशि है। इसी प्रकार तीन प्रदेशों में त्र्यणुक से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक रहते हैं, उनकी भी एक राशि समझनी चाहिए। इस दृष्टि से एकप्रदेशावगाढ पुद्गलों की अपेक्षा द्विप्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ़ की

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५९

अपेक्षा त्रिप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्य, इसी प्रकार चारप्रदेशावगाढ, पंचप्रदेशावगाढ, यावत् संख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गलद्रव्य द्रव्य की विवक्षा से उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यविवक्षा से असख्यातगुणे हैं, क्योंकि असख्यात के असंख्यात भेद कहे गए हैं। इसी प्रकार द्रव्यार्थतासूत्र, प्रदेशार्थतासूत्र एव द्रव्यप्रदेशार्थता सूत्र सुगम होने से सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए।

काल एवं भाव की दृष्टि से पुद्गलों का अल्पबहुत्व—**काल की अपेक्षा से**—एक समय की स्थिति से लेकर अनन्तसमयों तक की स्थिति वाले पुद्गलो का अल्पबहुत्व भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए। **भाव की अपेक्षा से**—काले आदि ५ वर्ण, दो गन्ध, तिक्त, कटु आदि पांच रस और शीत, उष्ण स्निग्ध और रूक्ष इन बोलो का अल्पबहुत्व मूलपाठ में कथित काले वर्ण के समान समझ लेना चाहिए। एकगुण काले पुद्गलो के अल्पबहुत्व की वक्तव्यता सामान्य पुद्गलों की तरह कहनी चाहिए। यथा—१. सबसे कम अनन्तप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले है, २. द्रव्य की अपेक्षा से परमाणु-पुद्गल एकगुण काले अनन्तगुणे हैं, (उनसे) सख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले सख्यातगुणे हैं, उनसे असख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले असख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से समझना चाहिए। कर्कश, मृदु, गुरु और लघु स्पर्श का प्रत्येक का अल्पबहुत्व एकप्रदेश-अवगाढ के समान समझना चाहिए। यथा—एकप्रदेशावगाढ एक गुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से सबसे कम हैं, उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ एकगुण कर्कशस्पर्श पुद्गल द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणे हैं, उनसे असख्यातप्रदेशा-वगाढ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से असख्यातगुणे हैं, इत्यादि। इसी प्रकार सख्यातगुण कर्कशस्पर्श असंख्यातगुण कर्कशस्पर्श एव अनन्तगुण कर्कशस्पर्श के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए।[1]

सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : विभिन्न विवक्षाओं से सर्वजीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण—

३३६. अह भंते ! सव्वजीवप्पबहु महादंडयं वत्तइस्सामि—सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया मणुस्सा १, मणुस्सीओ संखेज्जगुणाओ २, बादरतेउक्काइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, अणुत्तरोव-वाइया देवा असंखेज्जगुणा ४, उवरिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ५, मज्झिमगेवेज्जगा देवा संखेज्ज-गुणा ६, हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ७, अच्चुते कप्पे देवा संखेज्जगुणा ८, आरणे कप्पे देवा संखेज्जगुणा ९, पाणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा १०, आणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा ११, अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १२, छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १३, सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १४, महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १५, पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १६, लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १७, चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १८, बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १९, तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २०, माहिंदकप्पे देवा असंखेज्जगुणा २१, सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २२, दोच्चाए सक्करप्पभाय पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २३, सम्मुच्छिममणुस्सा असंखेज्जगुणा २४, ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २५, ईसाणे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २६, सोहम्मे कप्पे देवा संखेज्जगुणा २७, सोहम्मे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २८, भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा २९, भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ३०, इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा ३१,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १६१

जहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा असंखेज्जगुणा ३२, जहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३३, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा ३४, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३५, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा ३६, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३७, वाणमंतरा देवा संखेज्जगुणा ३८, वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ३९, जोइसिया देवा संखेज्जगुणा ४०, जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणा ४१, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४२, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४३, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४४, चउरिंदिया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४५, पंचेंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४६, बेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४७, तेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४८, पंचिंदिया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४९, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५०, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५१, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५२, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५३, बादरणिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५६, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५७, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५८, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५९, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६०, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६१, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६२, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६३, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६४, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६५, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६६, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ६८, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७०, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७१, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७२, सुहुमणिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा ७३, अभवसिद्धिया अणंतगुणा ७४, परिवडितसम्मत्ता[1] अणंतगुणा ७५, सिद्धा अणंतगुणा ७६, बादरवणस्सतिकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा ७७, बादरपज्जत्तया विसेसाहिया ७८, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७९, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया ८०, बादरा विसेसाहिया ८१ सुहुमवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८२, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ८३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तयासंखेज्जगुणा ८४, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ८५, सुहुमा विसेसाहिया ८६, भवसिद्धिया विसेसाहिया ८७, निगोदजीवा विसेसाहिया ८८, वणप्फतिजीवा विसेसाहिया ८९, एगिंदिया विसेसाहिया ९०, तिरिक्खजोणिया विसेसाहिया ९१, मिच्छद्दिट्ठी विसेसाहिया ९२, अविरता विसेसाहिया ९३, सकसाई विसेसाहिया ९४, छउमत्था विसेसाहिया ९५, सजोगी विसेसाहिया ९६, संसारत्था विसेसाहिया ९७, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८ । दारं २७ ।।

।। पण्णवणाए भगवईए तइयं बहुवत्तव्वयपयं समत्तं ।।

---

1. पाठान्तर—'सम्मत्ता' के स्थान में 'सम्मद्दिट्ठी' पद मिलता है ।

[३३४] हे भगवन् ! अब मैं समस्त जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले महादण्डक का वर्णन करूंगा—१. सबसे कम गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) हैं, २. (उनसे) मानुषी (मनुष्यस्त्री) संख्यातगुणी अधिक हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) बादर तेजस्कायिक–पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अनुत्तरोपपातिक देव असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊपरी ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) मध्यमग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) निचले ग्रैवेयकदेव सख्यातगुणे हैं, ८. अच्युतकल्प-देव (उनसे) सख्यातगुणे हैं, ९ आरणकल्प के देव (उनसे) सख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) प्राणतकल्प के देव सख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) आनतकल्प के देव सख्यातगुणे हैं, १२. (उनकी अपेक्षा) सबसे नोचो सप्तम पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक सख्यातगुणे हैं, १४ (उनकी अपेक्षा) सहस्रारकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, १५. (उनकी अपेक्षा) महाशुक्रकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, १६ (उनकी अपेक्षा) पांचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, १७. (उनसे) लान्तककल्प के देव असख्यातगुणे हैं, १८. (उनको अपेक्षा) चौथी पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, १९. (उनसे) ब्रह्मलोककल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २०. (उनसे) तीसरी बालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, २१. (उनसे) माहेन्द्रकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २२, (उनकी अपेक्षा) सनत्कुमारकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २३ (उनसे) दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, २४. (उनकी अपेक्षा) सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यात गुणे हैं, २५. (उनसे) ईशानकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २६. ईशानकल्प की देविया (उनसे) सख्यातगुणी हैं, २७. (उनकी अपेक्षा) सौधर्मकल्प के देव सख्यातगुणे हैं, २८. (उनकी अपेक्षा) सौधर्म कल्प की देविया सख्यातगुणी हैं, २९. (उनकी अपेक्षा) भवनवासी देव असख्यातगुणे हैं, ३०, (उनसे) भवनवासी देविया सख्यातगुणी हैं, ३१. (उनसे) प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, ३२. (उनकी अपेक्षा) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-पुरुष असंख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक स्त्रियां असख्यातगुणी हैं, ३४ (उनसे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय–तिर्यञ्चयोनिक पुरुष सख्यातगुणे हैं, ३५. (उनसे) स्थलचर–पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रिया सख्यातगुणी हैं, ३६. (उनकी अपेक्षा) जलचर-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष सख्यातगुणे हैं, ३७. उनसे जलचर-पचेन्द्रिये-तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ सख्यातगुणी हैं, ३८. (उनसे) वाणव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं, ३९ (उनकी-अपेक्षा) वाणव्यन्तर स्त्रियां सख्यातगुणी हैं, ४० (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देव सख्यातगुणे हैं, ४१. (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देविया संख्यातगुणी हैं, ४२ (उनसे) खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं, ४३ (उनकी अपेक्षा) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक नपुसक सख्यातगुणे हैं, ४४. (उनसे) जलचर–पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकनपुसक संख्यातगुणे अधिक हैं, ४५. (उनकी अपेक्षा चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ४६. (उनको अपेक्षा) पचेन्द्रिय–पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४७. (उनकी अपेक्षा) द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४८ (उनकी अपेक्षा) त्रीन्द्रिय–पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४९. (उनकी अपेक्षा) पचेन्द्रिय अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५०. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५१ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५२. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५३. (उनकी अपेक्षा) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५४. बादर निगोद-पर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५६ (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५८. बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ५९. प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६०.

(उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६१. बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे है, ६२. बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६३. (उनकी अपेक्षा) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६४. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६५. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६६. (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६७. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६८. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ६९. (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७१. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ७४. (उनकी अपेक्षा) अभवसिद्धिक (अभव्य) अनन्तगुणे हैं, ७५ (उनसे) सम्यक्त्व से भ्रष्ट (प्रतिप्रतित) अनन्तगुणे हैं, ७६ (उनकी अपेक्षा) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, ७७. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७८. (उनसे) बादरपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७९. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८०. (उनकी अपेक्षा) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ८१ (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं, ८२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है, ८३. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म-अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ८४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, ८५ (उनसे) सूक्ष्म-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८६. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, ८७ (उनसे) भवसिद्धिक (भव्य) विशेषाधिक है, ८८ (उनकी अपेक्षा) निगोद के जीव विशेषाधिक है, ८९. (उनसे) वनस्पति जीव विशेषाधिक है, ९०. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ९१. (उनसे) तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक है, ९२ (उनसे) मिथ्यादृष्टि-जीव विशेषाधिक है, ९३ (उनसे) अविरत जीव विशेषाधिक है, ९४. (उनकी अपेक्षा) सकषायी जीव विशेषाधिक है, ९५. (उनसे) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक है, ९६. (उनकी अपेक्षा) सयोगी जीव विशेषाधिक है, ९७. (उनकी अपेक्षा) ससारस्थ जीव विशेषाधिक है, ९८. (उनकी अपेक्षा) सर्वजीव विशेषाधिक हैं।

सत्ताईसवाँ (महादण्डक) द्वार ॥ २७ ॥

विवेचन—सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : सर्व जीवों के अल्पबहुत्व का विविध विवक्षाओं से निरूपण—प्रस्तुत सूत्र (३३४) में महादण्डकद्वार के निमित्त से विविध विवक्षाओं से समस्त जीवो के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है।

महादण्डक के वर्णन की अनुज्ञा—शिष्य को गुरु की अनुज्ञा लेकर ही शास्त्र प्ररूपणा या व्याख्या करनी चाहिए। इस दृष्टि से श्री गौतमस्वामी महादण्डक का वर्णन करने की अनुमति लेकर कहते है कि—भगवन्! मैं जीवो के अल्पबहुत्व के प्रतिपादक महादण्डक का वर्णन करता हूँ अथवा रचना करता हूँ।[1]

समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का क्रम—(१) गर्भज जीव सबसे कम इसलिए है कि उनकी सख्या संख्यात-कोटाकोटि परिमित है। (२) उनकी अपेक्षा मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक है, क्योंकि मनुष्यपुरुषों की अपेक्षा सत्ताईसगुणी और सत्ताईस अधिक होती है।[2] (३) उनसे बादर

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६३

२. 'सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिआ चेव' —प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १६३ में उद्धृत

तेजस्कायिक पर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे कतिपय वर्ग कम आवलिकाघन-समय-प्रमाण हैं। (४) उनकी अपेक्षा अनुत्तरौपपातिक देव असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। (५) उनकी अपेक्षा उपरितन ग्रैवेयकत्रिक के देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे बृहत्तर क्षेत्रपल्योपम के संख्यातवें भाग में रहे हुए आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। इसे जानने का मापदण्ड है उत्तरोत्तर विमानों की अधिकता। अनुत्तर देवों के ५ विमान हैं, किन्तु ऊपर के तीन ग्रैवेयकों में सौ विमान हैं और प्रत्येक विमान में असख्यात देव हैं। नीचे-नीचे के विमानों में अधिक-अधिक देव होते हैं, इसीलिए अनुत्तर-विमानवासी देवों की अपेक्षा ऊपरी तीन ग्रैवेयकों के देव सख्यातगुणे हैं। आगे भी आनतकल्प के देवों (६ से ११) तक उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। यद्यपि आरण और अच्युत कल्प समश्रेणी मे स्थित हैं और दोनों की विमानसख्या समान है तथापि स्वभावतः कृष्णपक्षी जीव प्रायः दक्षिणदिशा मे उत्पन्न होते हैं, उत्तरदिशा में नही और कृष्णपाक्षिक जीव शुक्लपाक्षिकों की अपेक्षा अधिक होते हैं। इसीलिए अच्युत से आरण प्राणत, और आनत कल्प के देव उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक हैं। (१२) उनकी अपेक्षा सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिक असख्येयगुणे हैं, क्योकि वे श्रेणी के असंख्यातवें भाग में स्थित आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमशः (१३) छठी नरक के नारक, (१४) सहस्रारकल्प के देव, (१५) महाशुक्रकल्प के देव, (१६) पंचम धूमप्रभा नरक के नारक, (१७) लान्तककल्प के देव, (१८) चतुर्थ पंकप्रभानरक के नारक, (१९) ब्रह्मलोककल्प के देव, (२०) तृतीय बालुकाप्रभा नरक के नारक, (२१) माहेन्द्र-कल्प के देव, (२२) सनत्कुमारकल्प के देव, (२३) दूसरी शर्कराप्रभा नरक के नारक असख्यात-असख्यातगुणे हैं। सातवी पृथ्वी से लेकर दूसरी पृथ्वी तक के नारक प्रत्येक अपने स्थान मे प्ररूपित किये जाएँ तो सभी घनीकृत लोकश्रेणी के असख्यातवे भाग में स्थित आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर हैं, मगर श्रेणी के असंख्यातवें भाग के भी असख्यात भेद होते हैं। अतः इनसे सर्वत्र उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा अल्पबहुत्व कहने में कोई विरोध नही आता। शेष सब युक्तियाँ पूर्ववत् समझनी चाहिए। (२४) उनकी अपेक्षा सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, क्योकि अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित तीसरे वर्गमूल में जितनी प्रदेशराशि होती हैं, उतने प्रमाण में सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते हैं। (२५) उनसे ईशानकल्प देव संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। (२६) ईशानकल्प की देवियाँ उनसे संख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंकि देवियाँ देवो से बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक होती हैं। (२७) इनसे सौधर्मकल्प के देव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमान हैं, जबकि सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं, (२८) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार सौधर्मकल्प की देवियाँ देवो से बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होने से संख्यातगुणी हैं। (२९) इनकी अपेक्षा भवनवासी देव असख्यातगुणे हैं। अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के तीसरे वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल में जितने प्रदेशो की राशि होती है, उतनी प्रमाण वाली घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतनी ही संख्या भवनपति देवों और देवियो की है। (३०) देवों की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होती हैं,[1] इस कारण भवनवासी देवियाँ संख्यातगुणी हैं। (३१) उनकी अपेक्षा

१. (क) 'बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवीओ।'
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६४

रत्नप्रभापृथ्वी के नारक असंख्यातगुणे हैं। वे अंगुलमात्र परिमित क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल की जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी श्रेणियों में रहे हुए आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३२) उनकी अपेक्षा खेचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च पुरुष असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवे भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३३) उनकी अपेक्षा खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, क्योंकि तिर्यञ्चों में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियां तीन गुणी और तीन अधिक होती हैं।[1] (३४) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पुरुष सख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे बृहत्तर प्रतर के असख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों की आकाश-प्रदेशराशि के बराबर हैं। (३५) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से संख्यातगुणी हैं। (३६) उनकी अपेक्षा जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यंचपुरुष संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि वे बृहत्तम प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असख्यातश्रेणियो की आकाशप्रदेशराशि के तुल्य हैं। (३७) उनकी अपेक्षा जलचर-तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से सख्यातगुणी हैं। (३८-३९) उनकी अपेक्षा वाणव्यन्तर देव एव देवी उत्तरोत्तर क्रमशः सख्यातगुण हैं। क्योकि सख्यात योजन कोटाकोटीप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने ही सामान्य व्यन्तरदेव हैं। देवियाँ देवों से बत्तीसगुणा और बत्तीस अधिक होती हैं। (४०) उनकी अपेक्षा ज्योतिष्क देव (देवी सहित) सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे सामान्यतः २५६ अंगुलप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने हैं।[2] (४१) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार इनसे ज्योतिष्क देवियाँ संख्यातगुणी हैं। (४२) इनकी अपेक्षा पर्याप्त चतुरिन्द्रिय सख्यातगुणे हैं, क्योकि वे अंगुल के असख्यातवे भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर मे होते हैं, उतने हैं। (४३-४४-४५) उनकी अपेक्षा स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यंच नपु सक, जलचर पचेन्द्रियतिर्यंच-नपु सक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, क्रमश. उत्तरोत्तर सख्यातगुणे हैं। (४६ से ५२) उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक और द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये सब अंगुल के असख्यातवें भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने प्रमाण मे होते हैं, किन्तु अगुल के असख्यातभाग के असख्यात भेद होते हैं। अतः अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय पर्यन्त उत्तरोत्तर अगुल का असख्यातवां भागकम अंगुल का असख्यातवां भाग लेने पर कोई दोष नही। (५३ से ६८ तक) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक, बादर निगोद-पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, बादर अप्कायिक-पर्याप्तक, बादर वायुकायिक-पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक, प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद-अपर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक और सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए तथा अपर्याप्तक सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म स्वभावतः

---

१. (क) 'तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिओ मुणेयव्वा ।'

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६५

२. (क) 'छप्पन्नदोसयंगुल सूइपएसेहिं भाइयं पयरं । जोइसिएहिं होरइ ।'

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६६

अधिक होते हैं। प्रज्ञापना की संग्रहणी में कहा गया है—बादर जीवों में अपर्याप्त अधिक होते हैं, तथा सूक्ष्म जीवो में समुच्चरूप से पर्याप्तक अधिक होते हैं। (६९ से ७३ तक) उनकी अपक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं। उनको अपेक्षा सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक-संख्यातगुणे अधिक हैं। यद्यपि अपर्याप्त तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त सूक्ष्म निगोद पर्यन्त जीव सामान्यरूप से असख्यात लोकाकाशों की प्रदेशराशि प्रमाण (तुल्य) अन्यत्र कहे गए हैं, तथापि लोक का असख्ययेयत्व भी असख्यात भेदो से युक्त होने के कारण यह अल्पबहुत्व संगत ही है। (७४) उनकी अपेक्षा अभव्य अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्त-अनन्तक प्रमाण हैं। (७५) उनसे भ्रष्टसम्यग्दृष्टि अनन्तगुणे हैं, (७६) उनसे सिद्ध अनन्तगुणे है, (७७) उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। (७८) उनकी अपेक्षा सामान्यतः बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें बादर पर्याप्तक-पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश हो जाता है। (७९) उनसे बादर वनस्पति-कायिक-अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योकि एक एक बादर निगोद पर्याप्त के आश्रय से असख्यात-असख्यात बादर निगोद-अपर्याप्त रहते है। (८०) उनकी अपेक्षा बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमे बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश हो जाता है। (८१) उनसे सामान्यतः बादर विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमे पर्याप्त-अपर्याप्तक दोनों का समावेश हो जाता है। (८२) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। (८३) उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमें सूक्ष्म अपर्याप्तक पृथ्वीकायादि का भी समावेश हो जाता है। (८४) उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, क्योकि पर्याप्तक सूक्ष्म, अपर्याप्तक सूक्ष्म से स्वभावत· सदैव संख्यातगुणे पाये जाते हैं। (८५) उनकी अपेक्षा सामान्यरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि भी सम्मिलित है। (८६) उनसे भी पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित (सामान्य) सूक्ष्म विशेषाधिक है, क्योंकि इनमे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीव सम्मिलित हैं। (८७) उनकी अपेक्षा भव्य जीव विशेषाधिक है, क्योकि जघन्य युक्त अनन्तक प्रमाण अभव्यो को छोड़कर शेष सभी भव्य हैं। (८८) उनकी अपेक्षा निगोद जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि भव्य और अभव्य अतिप्रचुरता से सूक्ष्म और बादर निगोद जीवराशि मे ही पाए जाते हैं अन्यत्र नही। अन्य सभी मिलकर असंख्यात लोकाकाशप्रदेशो की राशि-प्रमाण ही होते हैं। (८९) उनकी अपेक्षा वनस्पतिजीव विशेषाधिक हैं, क्योकि सामान्य वनस्पतिकायिकों मे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव भी सम्मिलित हैं। (९०) वनस्पति जीवों की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमें सूक्ष्म एव बादर पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश है। (९१) एकेन्द्रियो की अपेक्षा तिर्यञ्चजीव विशेषाधिक है, क्योकि तिर्यञ्च सामान्य मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त सभी तिर्यञ्च सम्मिलित हैं। (९२) तिर्यञ्चों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि विशेषाधिक हैं, क्योकि थोड़े-से अविरत सम्यग्दृष्टि आदि संज्ञी तिर्यञ्चो को छोडकर शेष सभी तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि हैं, इसके अतिरिक्त अन्य गतियों के मिथ्यादृष्टि भी यहाँ सम्मिलित हैं, जिनमे असख्यात नारक भी हैं। (९३) मिथ्या-दृष्टि जीवों की अपेक्षा अविरत जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि इनमें अविरत सम्यग्दृष्टि भी समाविष्ट हैं। (९४) अविरत जीवों की अपेक्षा सकषाय जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि सकषाय जीवों में देशविरत और दशम गुणस्थान तक के सर्वविरत जीव भी सम्मिलित है। (९५) उनकी अपेक्षा छद्मस्थ विशेषाधिक हैं, क्योंकि उपशान्तमोह आदि भी छद्मस्थों में सम्मिलित हैं। (९६) सकषाय जीवों

की अपेक्षा सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सयोगीकेवली गुणस्थान तक के जीवों का समावेश हो जाता है। (९७) सयोगियो की अपेक्षा संसारी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि संसारी जीवो में अयोगीकेवली भी हैं और (९८) संसारी जीवो की अपेक्षा सर्वजीव विशेषाधिक हैं, क्योकि सर्वजीवों मे सिद्धों का भी समावेश हो जाता है।[1]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : तृतीय बहुवक्तव्यतापद समाप्त ॥

---

१. (क) 'तत्तो नपुंसग खहयरा संखेज्जा थलयर-जलयर-नपुंसगा चउरिन्दिय तओ पणबितिपज्जत्त किंचि अहिया।' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १६६ में उद्धृत

(ख) 'जीवाणमपज्जत्ता बहुतरगा बायराण विन्नेया।
सुहमाण य पज्जत्ता ओहेण य केवली बिंति॥' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प, १६७ में उद्धृत

(ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय . वृत्ति पत्रांक १६६ मे १६८ तक।

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

प्राथमिक

- ☐ प्रज्ञापनासूत्र के इस चतुर्थपद मे जीवों के जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त नारक आदि पर्यायो में अव्यवच्छिन्न रूप से कितने काल तक अवस्थान (स्थिति या टिकना) होता है ?, इसका विचार किया गया है। अर्थात् इस पद में जीवों के जो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि विविध पर्याय हैं, उनकी आयु का विचार है। यों तो जीवद्रव्य (आत्मा) नित्य है, परन्तु वह जो नानारूप (नाना जन्म) धारण करता है। वे पर्यायें अनित्य हैं। वे कभी न कभी तो नष्ट होती ही हैं। इस कारण उनकी स्थिति का विचार करना पड़ता है। यही तथ्य यहा प्रस्तुत किया गया है। 'स्थिति' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी इस प्रकार का है—आयुकर्म की अनुभूति करता हुआ जीव जिस (पर्याय) में अवस्थित रहता है, वह स्थिति है। इसलिए स्थिति, आयुःकर्मानुभूति और जीवन, ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं।[1]
- ☐ यद्यपि मिथ्यात्वादि से गृहीत तथा ज्ञानावरणीयादि रूप में परिणत कर्मपुद्गलों का जो अवस्थान है, वह भी 'स्थिति' नाम से प्रसिद्ध है, तथापि यहाँ नारक आदि व्यपदेश की हेतु 'आयुष्यकर्मानुभूति' ही'स्थिति' शब्द का वाच्य है, क्योंकि नरकगति आदि तथा पचेन्द्रियजाति आदि नामकर्म के उदय के आश्रित नारकत्व आदि पर्याय कहलाती है, किन्तु यहाँ नरक आदि क्षेत्र को अप्राप्त जीव नरकायु आदि के प्रथम समय के संवेदनकाल से ही नारकत्व आदि कहलाने लगता है। अतः उस-उस गति के आयुष्यकर्म की अनुभूति को ही स्थिति मानी गई है। आयुष्य-कर्म की अनुभूति (आयु) सिर्फ ससारी जीवों को ही होती है, इसलिए इस पद में ससारी जीवो की ही स्थिति का विचार किया गया है। सिद्ध तो सादि-अपर्यवसित होते हैं, अतः उनकी आयु का विचार अप्राप्त होने से नही किया गया है तथा अजीवद्रव्य के पर्यायो की स्थिति का भी विचार इस पद में नही किया गया है, क्योंकि अजीवों के पर्याय जीवो की तरह आयु की अनुभूति पर आश्रित नही हैं और न उनके पर्याय जीवों की आयु की तरह काल की दृष्टि से अमुक सीमा में निर्धारित किये जा सकते हैं।
- ☐ स्थिति (आयु) का विचार यहाँ सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट, दो प्रकार से किया गया है।
- ☐ प्रस्तुत पद मे स्थिति का निर्देशक्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम जीव की उन-उन सामान्य पर्यायों को लेकर, तत्पश्चात् उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद करके आयु का विचार किया गया है।[2]

---

१. 'स्थीयते-अवस्थीयते अनया आयुःकर्मानुभूत्येति स्थितिः।
स्थितिरायुःकर्म्मानुभूतिर्जीवनमिति पर्याय.। —प्रज्ञापना, म. वृत्ति, पृ. १६९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १६९ (ख) पण्णवणा. भा. २ प्रस्तावना, पृ. ५८

☐ इस पद में सर्वप्रथम सामान्य नारक, तत्पश्चात् रत्नप्रभादि विशिष्ट नारकों की, भवनवासी देवो की, पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों की, द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियों की, विभिन्न पंचेन्द्रियतिर्यंचो की, फिर विविध मनुष्यों की, समस्त वाणव्यन्तर देवों की, समस्त ज्योतिष्कदेवों की, तत्पश्चात् वैमानिक देवों की एवं नौ ग्रैवेयक तथा पंच अनुत्तरविमानवासी देवों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

☐ स्थिति विषयक पाठ पर से फलित होता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की स्थिति (आयु) कम है। नारको और देवों की स्थिति मनुष्य और तिर्यंच की अपेक्षा अधिक है। एकेन्द्रिय में तेजस्कायिक की सबसे कम और पृथ्वीकायिक की स्थिति सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय की तथा चतुरिन्द्रिय से भी त्रीन्द्रिय की स्थिति कम मानी गई है, यह रहस्य केवलिगम्य है।[1] ☐☐

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ११२ से (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, परिशिष्ट पृ. ५८

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

नैरयिकों की स्थिति की प्ररूपणा

३३५. [१] नेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[३३५-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-१ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पज्जत्तयणेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-३ उ] गौतम ? (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

३३६. [१] रयणप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवमं ।

[३३६-१ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३६-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम कही गई है।

[२] अपज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३३६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की कही गई है।

३३७. [१] सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।

[३३७-१ प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३३७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३३७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की (कही गई) है।

३३८. [१] वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

[३३८-१ प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-१ उ.] गौतम ! जघन्य तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है ।

३३९. [१] पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागणोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ।

[३३९-१ प्र.] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-१ उ.] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-पकप्रभापृथ्वा के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त्त की हे ।

[३] पज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-पकप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है ।

३४०. [१] धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ।

[३४०-१ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-१ उ] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४०-२ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४०-३ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की है।

३४१. [१] तमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

[३४१-१ प्र] भगवन् ! तप.प्रभापृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४१-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयतमप्पभापुढविनेइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४१-२ प्र.] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४१-३ प्र.] भगवन् ! तम:प्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है।

३४२. [१] अधेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३४२-१ प्र.] भगवन् ! अध.सप्तम (तमस्तमःप्रभा) पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-१ उ.] गौतम ! जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की (कही गई) है।

[२[अपज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाणं भते ! केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक-अध.सप्तम(तमस्तम.प्रभा) पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

विवेचन—नैरयिकों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ३३५ से ३४२ तक) मे सामान्य नारको, सात नरकभूमियो मे रहने वाले नारको और फिर उनके अपर्याप्तको तथा पर्याप्तको की स्थिति पृथक्-पृथक् प्ररूपित की गई है।

अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा—अन्य ससारी जीवो की तरह नैरयिको की भी दो दशाएँ हैं—अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा। अपर्याप्तदशा दो प्रकार से होती है—लब्धि से और करण से। नारक, देव तथा असख्यातवर्षो की आयु वाले तिर्यञ्च एव मनुष्य करण से ही अपर्याप्त होते हैं, लब्धि से नही। ये उपपात काल में ही कुछ काल तक करण से अपर्याप्त समझने चाहिए। शेष तिर्यञ्च या मनुष्य लब्धि और करण—दोनो प्रकार मे उपपातकाल मे अपर्याप्तक हो सकते है। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपर्याप्तक अवस्था जघन्यत: और उत्कृष्टत. अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहती है। उसके बाद पर्याप्तदशा आ जाती है। इसलिए सामान्य स्थिति में से अपर्याप्तदशा की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति को कम कर देने पर शेष स्थिति पर्याप्तको की रह जाती है। जैसे—प्रथम नरकपृथ्वी में सामान्य स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। इसमें से अपर्याप्तदशा की

अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति कम कर देने पर पर्याप्त अवस्था की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की होती है। आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।[1]

पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति, आगे-आगे की जघन्य—पहले-पहले की नरकपृथ्वी की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही अगली-अगली नरकपृथ्वी की जघन्य स्थिति है। जैसे—प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है, वही द्वितीय शर्कराप्रभापृथ्वी की जघन्य स्थिति है।[2]

देवों और देवियों की स्थिति की प्ररूपणा

३४३. [१] देवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३४३-१ प्र.] भगवन् ! देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४३-१ उ.] गौतम ! (देवो की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक देवो की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-देवो की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

३४४. [१.] देवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १७०

(ख) नारगदेवा तिरिमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ।
एए अपज्जत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥१॥
सेसा य तिरिमणुया लद्धिं पप्पोववायकाले य।
दुहओ वि य भयइयव्वा पज्जत्तियरे य जिणवयणे ॥२॥

—प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, प. १७० में उद्धृत

२. प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ. ४५०

[३४४-१ प्र.] भगवन् ! देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४४-१ उ.] गौतम ! (देवियो की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तगदेवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४४-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४४-३ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४४-३ उ.] गौतम! (पर्याप्तक देवियो की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

विवेचन—देवों और देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ३४३-३४४) द्वारा देवो, देवियों और उनके अपर्याप्तको और पर्याप्तको की स्थिति का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—देवो की अपेक्षा देवियो की स्थिति (आयु) कम है, यह इस पाठ पर से फलित होता है।

भवनवासियों की स्थिति की प्ररूपणा

३४५. [१] भवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं ।

[३४५-१ प्र] भगवन् ! भवनवासी देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४५-१ उ.] गौतम ! जन्वय दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयभवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

[३४५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पज्जत्तयभवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक भवनवासी देवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३४५-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४६. [१] भवणवासिणीणं भंते देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

[३४६-१ प्र.] भगवन् ! भवनवासी देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की है ?

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३४६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहुर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तकभवनवासी देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-३ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढे चार पल्योपम की है।

३४७. [१] असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं।

[३४७-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त असुरकुमार देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३४७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४८. [१] असुरकुमाराणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं ।

[३४८-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४८-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं ।

[३४८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[६] पज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढे चार पल्योपम की है।

३४९. [१] नागकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं ।

[३४९-१ प्र.] भगवन् ! नागकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दो पल्योपमों की है ।

[२] अपज्जत्तयाणं भंते ! नागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त नागकुमारो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयाणं भंते ! नागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त नागकुमारों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है ।

३५०. [१] नागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं ।

[३५०-१ प्र.] भगवन् ! नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तियाणं नागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त नागकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं नागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम में अन्तर्मुहूर्त्त कम की है ।

३५१. [१] सुवण्णकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं ।

[३५१-१ प्र.] भगवन् ! सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५१-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक सुपर्णकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५१-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सुपर्णकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है ।

३५२. [१] सुवण्णकुमारीणं भंते ! देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूण पलिओवम ।

[३५२-१ प्र.] भगवन् ! सुपर्णकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवम अंतोमुहुत्तूणं ।

[३५२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पल्योपम की है।

३५३. एवं एएणं अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पज्जत्तसुत्ततयं देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराणं जहा णागकुमाराणं (सु. ३४९)।

[३५३] इस प्रकार इस अभिलाप से (इसी कथन के अनुसार) औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र (आगे के भवनवासी) देवों और देवियों के विषय में, यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमारों (के कथन) की तरह समझ लेना चाहिए।

विवेचन—सामान्य देव-देवियों तथा भवनवासी देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू ३४३ से ३५३ तक) मे सामान्य देव-देवियो, औधिक भवनवासी देव-देवियों तथा असुरकुमार से स्तनितकुमार देव-देवियो (पर्याप्तक-अपर्याप्तकसहित) तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३५४. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

[३५४-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

[२] **अपज्जत्तयपुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिणी पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तयपुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

३५५. [१] सुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५५-१ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[२] अपज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-३ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३५६. [१] बादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।

[३५६-१ प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५६-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५६-२ प्र.] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

३५७. [१] आउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

[३५७-१ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५७-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त अप्कायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५७-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक अप्कायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३५८. सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य जहा सुहुमपुढविकाइयाणं (सु. ३५५) तहा भाणितव्वं।

[३५८] सूक्ष्म अप्कायिको के औघिक (सामान्य), अपर्याप्तको और पर्याप्तको की स्थिति जैसी सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की (सू ३५५ में) कही, वैसी कहनी चाहिए।

३५९. [१] बादरआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

[३५९-१ प्र.] भगवन् ! बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयबादरआउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-२ उ.] गौतम (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

[३५९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३६०. [१] तेउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६०-१ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन (अहोरात्र) की है।

[२] अपज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६०-२ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक अपर्याप्तकों की स्थिति कितने काल कही गई है ?

[३६०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६१. सुहुमतेउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६१] सूक्ष्म तेजस्कायिकों के औधिक (सामान्य), अपर्याप्त और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६२. [१] बादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६२-१ प्र.] भगवन् ! बादर तेजस्कायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रिदिन की है।

[२] अपज्जत्तयबादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है।

[३६२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६३ [१] वाउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

[३६३-१ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६३-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६४. [१] सुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[३६४-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] अपज्जत्तयसुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६४-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३६५ [१] बादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं ।

[३६५-१ प्र.] भगवन् ! बादर वायुकायिको की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६५-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३६५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त तक की होती है ।

[३] पज्जत्तयबादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६६. [१] वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६६-१ प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

३६७. सुहुमवणप्फइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्ताण पज्जत्ताण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६७] सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के औघिक, अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६८. [१] बादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६८-१ प्र] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३६८-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है ।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति की प्ररूपणा—प्रस्तुत १५ सूत्रों (सू. ३५४ से ३६८ तक) में पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक औधिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सूक्ष्म, बादर आदि भेदो की स्थिति की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की गई है ।

इनमे तेजस्कायिक जीवो की तीन अहोरात्रि की उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है, उसका रहस्य यह है कि तेजस्कायिक जीव अग्नि के रूप मे जलते और बुझते प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं । इसी कारण अन्य एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा आयुष्य अत्यन्त अल्प है ।

द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३६९. [१] बेइंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं ।

[३६९-१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३६९-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६९-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[३६९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह वर्ष की है ।

त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३७०. [१] **तेइंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाइं ।

[३७०-१ प्र.] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट उनपचास रात्रि दिन की है ।

[२] **अपज्जततेइंदियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०२-उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **पज्जत्ततेइंदियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७०-२ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात्रि-दिन की है ।

चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा

३७१. [१] **चउरिंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[३७१-१ प्र.] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-१ उ.] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है ।

[२] **अपज्जत्तयचउरिंदियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७१-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **पज्जत्तयचउरिंदियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७१-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-३] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छह मास की है ।

विवेचन— विकलेन्द्रियों की स्थिति का निरूपण— प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ३३९ से ३७१ तक) में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तको की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति-प्ररूपणा--

३७२. [१] **पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३७२-१ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७२-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] **अपज्जत्तयपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है।

[३७२-२ उ] गौनम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तगपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७२-३ उ] गौनम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३७३. [१] **सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७३-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

(२) **अपज्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७४. [१] गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३७४-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तगर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७४-३ प्र] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३७४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

३७५. [१] जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७५-१ प्र] भगवन् ! जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७५-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपज्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितनी स्थिति कही गई है ?

[३७५-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७६. [१] सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७६-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७७. [१] गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७७-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७७-१ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३७७-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७७-३ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एव उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३७८. [१] चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३७८-१ प्र] भगवन् ! चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७८-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है ।

३७९. [१] सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं ।

[३७९-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७९-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एवं उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७९-२ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति भी और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम चौरासी हजार वर्ष की है।

३८०. [१] गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३८०-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-२ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३८१. [१] उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३८१-१ प्र.] भगवन् ! उर.परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जत्तयउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८१-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३८१-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३८२. [१] सम्मुच्छिमसामण्णपुच्छा कायव्वा ।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं ।

[३८२-१ प्र.] भगवन् ! सामान्य सम्मूर्च्छिम उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की है ।

[२] सम्मुच्छिमअपज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८२-२ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक उर.परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही कई है ?

[३८२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार वर्ष की है।

३८३. [१] **गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३८३-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़पूर्व) की है।

[२] **अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है।

[३८३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८४. [१] **भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३८४-१ प्र.] भगवन् ! भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] **अपज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३८४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की ह और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३८५. [१] सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ।

[३८५-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बयालीस हजार वर्ष की है ।

३८६. [१] गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३८६-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८६-३ प्र.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८७. [१] खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिग्रोवमस्स असंखेज्जइभागो।

[३८७-१ प्र.] भगवन् ! खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३८७-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्येयभाग की है।

[२] अपज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३८७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३८७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिग्रोवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो।

[३८७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवे भाग की है।

३८८. [१] सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं।

[३८८-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८८-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तमुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्ष की है।

३८९. [१] गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो ।

[३८९-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८९-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो ।

[३८९-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

विवेचन—तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत १८ सूत्रों (सू ३७२ से ३८९) में तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवो के विभिन्न प्रकारों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

मनुष्यों की स्थिति की प्ररूपणा

३९०. [१] मणुस्साणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णी पलिओवमाइं ।

[३९०-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्यो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३९०-१ उ.] गौतम ! (मनुष्यो की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तगमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्यो की स्थिति कितने काल की है ?

[३९०-२ उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक मनुष्यो की स्थिति कितने काल को कही गई है ?

[३९०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३९१. सम्मुच्छिममणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३९२. [१] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३९२-१ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

विवेचन—मनुष्यों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. ३९० से ३९२ तक) में सामान्य, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सम्मूर्च्छिम तथा गर्भज (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) मनुष्यो की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति-प्ररूपणा

३९३. [१] वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[३९३-१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-१ उ] गौतम ! (वाणव्यन्तर देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयवाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं वाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

३९४. [१] वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[३९४-१ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९४-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं भंते ! वाणमंतरीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की है ।

विवेचन—वाणव्यन्तर देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू ३९३-३९४) में वाणव्यन्तर देवों तथा देवियों (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति-प्ररूपणा

३९५. [१] जोइसियाणं भंते ! देवाण केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं ।

[३९५-१ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९५-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[३९५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।

३९६. [१] जोइसिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्समब्भहियं ।

[३९६-१ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९६-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

३९७. **[१] चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं।

[३९७-१ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३९७-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चौथाई भाग है, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९७-२ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] चंदविमाणे णं पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९७-३ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितनी कही गई है ?

[३९७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।[1]

३९८. [१] चंदविमाणे णं भंते ! देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिग्रोवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिग्रोवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहियं ।

[३९८-१ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग है और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९८-२ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान मे अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की हे।

[३] चंदविमाणे णं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिग्रोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिग्रोवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९८-३ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

३९९. [१] सूरविमाणे णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिग्रोवमं, उक्कोसेणं पलिग्रोवमं वाससहस्समब्भहियं ।

[३९९-१ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. चन्द्रविमान मे चन्द्रमा उत्पन्न होता है, इसलिए वह चन्द्रविमान कहलाता है। चन्द्रविमान मे चन्द्र के अतिरिक्त सभी उसके परिवारभूत देव होते हैं। उन परिवारभूत देवो की जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट किन्ही इन्द्र, सामानिक आदि की लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। चन्द्रदेव की उत्कृष्ट स्थिति तो मूलपाठ मे उक्त है ही। इसी प्रकार सूर्यादि के विमानो के विषय मे समझ लेना चाहिए।

—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १७५

[३९९-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९९-२ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण पलिओवमं वाससहस्स-मब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९९-३ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

४००. [१] सूरविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससतेहि-मब्भहियं।

[४००-१ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) पल्योपम के चतुर्थभाग की है और उत्कृष्ट पाच सौ वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[४००-२ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससतेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[४००-३ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान में पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की है।

४०१. [१] गहविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[४०१-१ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०१-२ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] गहविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०१-३ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०१-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

४०२. [१] गहविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं।

[४०२-१ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०२-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०२-२ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे कितने काल की स्थिति अपर्याप्त देवियो की कही है ?

[४०२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं गहविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०२-३ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में पर्याप्तक देवियों की कितने काल तक की स्थिति कही है ?

[४०२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपल्योपम की है ।

४०३. [१] **णक्खत्तविमाणे देवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं ।

[४०३-१ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-१ उ.] गौतम ? जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है ।

[२] **णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०३-२ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **णक्खत्तविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[४०३-३ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध-पल्योपम की है ।

४०४. [१] **णक्खत्तविमाणे देवीणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं चउभागपलिओवमं ।

[४०४-१ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान में देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०४-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग है और उत्कृष्ट कुछ अधिक चौथाई पल्योपम की है ।

[२] **णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०४-२ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] नक्खत्तविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०४-३ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-३ उ.] गौतम ! जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग से कुछ अधिक की है।

४०५. [१] ताराविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं।

[४०५-१ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट चौथाई पल्योपम की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०५-२ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूणं।

[४०५-३ प्र.] भगवन् ! ताराविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है।

४०६. [१] ताराविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

[४०६-१ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०६-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०६-२ प्र.] भगवन् ! ताराविमान मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल को कही गई है ?

[४०६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[४०६-३ प्र] भगवन् ! ताराविमान में पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-३ उ.] गौतम ! जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवे भाग से कुछ अधिक है ।

विवेचन—ज्योतिष्क देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. ३९५ से ४०६ तक) मे ज्योतिष्क देवो और देवियो के (औघिक, अपर्याप्तको एव पर्याप्तको) की तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमानो के देव-देवियो (औघिक, अपर्याप्तकों के और पर्याप्तको) की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

वैमानिक देवों की स्थिति की प्ररूपणा

४०७. [१] वेमाणियाणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[४०७-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०७-१ उ] गौतम ! (वैमानिक देवो की स्थिति) जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक वैमानिक देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४०७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४०७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है ।

४०८. [१] वेमाणिणीण भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिग्रोवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिग्रोवमाइं ।

[४०८-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचपन पल्योपमो की है ।

[२] अपज्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०८-२ प्र.] भगवन् ! वैमानिक अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिग्रोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिग्रोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४०८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपमो की है ।

४०९. [१] सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिग्रोवमं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ।

[४०९-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प (देवलोक) में, देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट दो सागरोपम की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४०९-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिग्रोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४०९-३ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की है ।

४१०. [१] सोहम्मे कप्पे देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं ।

[४१०-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में देवियो को स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचास पल्योपमो की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।[1]

[४१०-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१०-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकाल की पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमो की है ।

४११. [१] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ।

[४११-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४११-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४११-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

---

१. ग्रन्थाग्रम् २५००

[४११-३ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-३ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात पल्योपम की है।

४१२. [१] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

[४१२-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपमों की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[४१२-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१२-३ प्र.] भगवन्। सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमों की है।

४१३. [१] ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं।

[४१३-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प में देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे अपज्जत्ताणं देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१३-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकाल में अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१३-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की है।

४१४. **[१] ईसाणे कप्पे देवीणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

[४१४-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे देवीणं अपज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[४१४-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१४-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

४१५. **[१] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं।

[४१५-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में परिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है।

[२] **ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१५-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे परिगृहीता अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाण देवीणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिग्रोवमं अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेणं नव पलिग्रोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१५-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे परिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम नौ पल्योपम की है ।

४१६. [१] **ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिग्रोवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिग्रोवमाइं ।

[४१६-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है ।

[२] **ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१६-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं पज्जत्तियाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिग्रोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिग्रोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१६-३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सातिरेक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है ।

४१७. [१] सणंकुमारे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ।

[४१७-१ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१७-१ उ.] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है ।

[२] सणंकुमारे कप्पे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१७-२ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सणंकुमारे कप्पे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१७-३ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है ।

४१८. [१] माहिंदे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त साहियाइं सागरोवमाइं ।

[४१८-१ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ।

[४१८-१ उ.] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

[२] माहिंदे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१८-२ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प में अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक का कही गई है ?

[४१८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] माहिंदे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१८-३ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम से कुछ अधिक की है।

४१९. [१] बंभलोए कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं।

[४१९-१ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-१ उ.] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है।

[२] बंभलोए अपज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१९-२ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] बंभलोए पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१९-३ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोक मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है।

४२०. [१] लंतए कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउदस सागरोवमाइं।

[४२०-१ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२०-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है।

[२] लंतए अपज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२०-२ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] लंतए पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२०-३ प्र] भगवन् ! लान्तककल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की है ।

४२१. [१] महासुक्के देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चोद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं ।

[४२१-१ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-१ उ.] गौतम ! जघन्य चौदह सागरोपम की तथा उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की है ।

[२] महासुक्के अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमहुत्तं ।

[४२१-२ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] महासुक्के पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२१-३ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्रह सागरोपम की है ।

४२२. [१] सहस्सारे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ।

[४२२-१ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प मे देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है ।

[२] सहस्सारे पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२२-२ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प में अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सहस्सारे पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२२-३ प्र] भगवन् ! सहस्रारकल्प में पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्त-मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की है।

४२३. [१] आणए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ।

[४२३-१ प्र] भगवन् ! आनतकल्प के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की है।

[२] आणए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२३-२ प्र.] भगवन् ! आनतकल्प मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आणए पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२३-३ प्र] भगवन् ! आनतकल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्त-मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की है।

४२४. [१] पाणए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ।

[४२४-१ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प में देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-१ उ.] गौतम ! जघन्य उन्नीस सागरोपम को है और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की है।

[२] पाणए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२४-२ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पाणए पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२४-३ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की है।

४२५. **[१] आरणे देवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ।

[४२५-१ प्र] भगवन् ! आरणकल्प में देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२५-१ उ] गौतम ! जघन्य बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की है।

[२] आरणे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२५-२ प्र] भगवन् ! आरणकल्प में अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आरणे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वीसं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२५-३ प्र] भगवन् ! आरणकल्प में पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की है।

४२६. [१] अच्चुए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ।

[४२६-१ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प मे देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-१ उ.] गौतम ! जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है ।

[२] अच्चुए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२६-२ प्र] भगवन् ! अच्युतकल्प में अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] अच्चुते पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२६-३ प्र] भगवन् ! अच्युतकल्प में पर्याप्तकदेवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है ।

४२७. [१] हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं ।

[४२७-१ प्र] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले ग्रैवेयकत्रिक में नीचे वाले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२७-१ उ.] गौतम ! (सबसे निचली ग्रैवेयकत्रिक के नीचे के देवो की स्थिति) जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है ।

[२] हेट्ठिमहेट्ठिमअपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२७-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[४२७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] हेट्ठिमहेट्ठिमपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२७-३ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोमम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की है ।

४२८. [१] हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ।

[४२८-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-१ उ.] गौतम ! जघन्य तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की है ।

[२] हेट्ठिममज्झिमअपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२८-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२८-३ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की है ।

४२९. [१] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं ।

[४२९-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे के त्रिक में ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-१ उ.] गौतम ! जघन्य चौवीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की है ।

[२] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२९-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण चउवीस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२९-३ प्र] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की है।

४३०. [१] **मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं पणुवीणं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइ।

[४३०-१ प्र.] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन (बीच के त्रिक मे सबसे निचले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३०-१ उ.] गौतम ! जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की है।

[२] **मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[४३०-२ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवो को स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण पणुवीसं सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३०-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[४३०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की है।

४३१. [१] **मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जण्णेणंह छव्वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं।

[४३१-१ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम (बीच के त्रिक के बिचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-१ उ.] गौतम ! जघन्य छब्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की है।

[२] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२१-२ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३१-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं छब्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३१-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की है।

४३२. [१] **मज्झिमउवरिमगेवेज्जाणं देवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ।

[४३२-१ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितन (बीच के त्रिक मे सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४३२-१ उ] गौतम ! जघन्य सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की है।

[२] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३२-१ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३२-३ प्र.] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थिति कही है ?

[४३२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तमुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की है ।

४३३. [१] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ।

[४३३-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन (ऊपर के त्रिक के निचले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[४३३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३३-२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल को कही गई है ?

[४३३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३३-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की है ।

४३४. [१] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं ।

[४३४-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम (ऊपर के त्रिक मे बीच वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-१ उ.] गौतम ! जघन्य उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३४-२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३४-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३४-३ प्र] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की है ।

४३५. [१] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ।

[४३५-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन (ऊपर के त्रिक के सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक-देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-१ उ.] गौतम ! जघन्य तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३५-२ प्र] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३५-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है ।

४३६. [१] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिएसु णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[४३६-१ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३६-१ उ.] गौतम ! (इन सब देवों की स्थिति) जघन्य इकतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है ।

[२] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३६-२ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में (स्थित) अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाण पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३६-३ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानो मे स्थित पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३६-३ उ.] गौतम ! (इनकी स्थिति) जघन्य अन्तमुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है ।

४३७. **[१] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?**

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ?

[४३७-१ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[४३७-१ उ.] गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

[२] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३७-२ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं पज्जत्ताणं [भंते !] केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिती पण्णत्ता ।

।। पण्णवणाए भगवईए चउत्थं ठिइपयं समत्तं ।।

[४३७-३ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-३ उ.] गौतम ! इनकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

विवेचन—वैमानिक देवगणों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत इकतीस सूत्रों (सू. ३०७ से ३३७ तक) में वैमानिक देवों के निम्नोक्त प्रकार से स्थिति का निरूपण किया गया है—(१) वैमानिक देवों (औघिक, अपर्याप्त एव पर्याप्त) की; (२) वैमानिक देवियों (औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्त) की (३) तथा सौधर्मकल्प से लेकर अच्युतकल्प तक के देवों (औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की तथा सौधर्म एव ईशान कल्प की देवियों (औघिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, परिगृहीता, अपरिगृहीता) की और (४) नौ सूत्रों में नौ प्रकार के ग्रैवेयकों (औघिक, अपर्याप्त एव पर्याप्त) की तथा (५) विजय, वैजयन्त, जयन्त एव अपराजित देवो एव सर्वार्थसिद्ध देवो (औघिक, अपर्याप्तक एव पर्याप्तक) की स्थिति ।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : चतुर्थ स्थितिपद समाप्त ॥

□□

पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं)

पंचम विशेषपद (पर्यायपद)

प्राथमिक

☐ प्रज्ञापनासूत्र का यह पंचम 'विशेषपद' अथवा 'पर्यायपद' है।

☐ 'विशेष' शब्द के दो अर्थ फलित होते हैं—(१) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्—प्रकार और (२) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्—पर्याय।

☐ प्रथम पद में जीव और अजीव, इन दो द्रव्यों के प्रकार, भेद-प्रभेद सहित बताये गए हैं। उसकी यहाँ भी संक्षेप में (सू. ४३९ एवं ५००-५०१ में) पुनरावृत्ति की गई है। वह इसलिए कि प्रस्तुत पद मे यह बात स्पष्ट करनी है कि जीव और अजीव के जो प्रकार हैं, उनमें से प्रत्येक के अनन्त पर्याय हैं। यदि प्रत्येक के अनन्त पर्याय हों तो समग्र जीवों या समग्र अजीवों के अनन्त पर्याय हों, इसमें कहना ही क्या ?

☐ इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा जाने पर भी इस पद के सूत्रों में कहीं भी विशेष शब्द का प्रयोग नही किया गया, समग्र पद में 'पर्याय' शब्द उनके लिए प्रयुक्त हुआ है। जैनशास्त्रो मे भी यत्र-तत्र 'पर्याय' शब्द को अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे ग्रन्थकार ने एक बात सूचित कर दी है—वह यह है कि पर्याय या विशेष में कोई अन्तर नही है। जो नाना प्रकार के जीव या अजीव दिखाई देते हैं, वे सब द्रव्य के ही पर्याय हैं। फिर भले ही वे सामान्य के विशेषरूप—प्रकाररूप हों या द्रव्यविशेष के पर्याय रूप हों। जीव के जो नारकादि भेद बताए हैं, वे सभी प्रकार उस-उस जीव द्रव्य के पर्याय हैं, क्योंकि अनादिकाल से जीव अनेक बार उस-उस रूप मे उत्पन्न होता है। जैसे किसी एक जीव के वे पर्याय हैं, वैसे समस्त जीवो की योग्यता समान होने से उन सब ने नरक, तिर्यञ्च आदि रूप में जन्म लिया ही है। इस प्रकार जिसे प्रकार या भेद अथवा विशेष कहा जाता है, वह प्रत्येक जीवद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय ही है, वह जीव की एक विशेष अवस्था, पर्याय या परिणाम ही है।

प्रस्तुत में 'पर्याय' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(१) प्रकार या भेद अर्थ में तथा (२) अवस्था या परिणाम अर्थ में। जीवसामान्य के नारक आदि अनेक भेद-विशेष हैं, अत: उन्हें जीव के पर्याय कहे हैं और जीवसामान्य के अनेक परिणाम—पर्याय भी हैं, इस कारण उन्हें भी जीव के पर्याय कहे हैं। इसी प्रकार अजीव के विषय में भी समझ लेना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रकार से 'पर्याय' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है तथा पर्याय और विशेष दोनों एकार्थक माने हैं। जैनागमों में पर्याय शब्द ही प्रचलित था, किन्तु वैशेषिकदर्शन में 'विशेष' शब्द का प्रयोग[1] होने लगा था, अत: उस शब्द का प्रयोग पर्याय अर्थ में एवं वस्तु

---

१. देख तर्कसंग्रह तथा वैशेषिकदर्शन

के भेद अर्थ में भी हो सकता है, यह सूचित करने हेतु आचार्य ने इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा हो, यह भी संभव है।

- शास्त्रकारों ने पर्याय शब्द का प्रयोग करके सूचित किया है कि कोई भी द्रव्य पर्यायशून्य कदापि नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी पर्यायावस्था में ही होता है। जिसे द्रव्य कहा जाता है, उस का भी प्रस्तुत पद में पर्याय के नाम से ही परिचय कराया गया है। सारांश यह है कि द्रव्य और पर्याय में अभेद है, इसे ध्वनित करने के लिए शास्त्रकार ने द्रव्य के प्रकार के लिए भी पर्याय शब्द का प्रयोग (सू. ४३९, ५०१ में) किया है।

- यों द्रव्य और पर्याय का कथंचित् अभेद होते हुए भी शास्त्रकार को यह स्पष्ट करना था कि द्रव्य और पर्याय में भेद भी है। ये सब पर्याय या परिणाम किसी एक ही द्रव्य के नहीं हैं, इस की सूचना पृथक्-पृथक् द्रव्यो की सख्या और पर्यायों की संख्या में अन्तर बताकर की है। जैसे कि शास्त्रकार ने नारक असख्यात (सू. ४३९) कहे, परन्तु नारक के पर्याय अनन्त कहे हैं। जीवों के जो अनेक प्रकार हैं, उनमें वनस्पति और सिद्ध, ये दो प्रकार ही ऐसे हैं, जिनके द्रव्यों की संख्या अनन्त है। इस कारण समग्रभाव से जीवद्रव्य अनन्त कहा जा सकता है, परन्तु उन-उन प्रकारों में उक्त दो के सिवाय सभी द्रव्य असंख्यात हैं, अनन्त नही। फिर भी उन सभी प्रकारो के पर्यायों की सख्या अनन्त है, यह इस पद में स्पष्ट प्रतिपादित है।[1]

- वेदान्तदर्शन की तरह जैनदर्शन के अनुसार जीव द्रव्य एक नहीं, किन्तु अनन्त हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस दृष्टि से जीवसामान्य जैसी कोई स्वतंत्र एक वस्तु (इकाई) नही है, परन्तु अनेक जीवों में जो चैतन्यधर्म दिखाई देते हैं, वे ही हैं, तथा वे नाना हैं और उस-उस जीव मे ही व्याप्त हैं और वे धर्म अजीव से जीव को भिन्न करने वाले हैं। इसलिए अनेक होते हुए भी समानरूप से अजीव से जीव को भिन्न सिद्ध करने का कार्य करने वाले होने से सामान्य कहलाते हैं। यह सामान्य तिर्यक्-सामान्य है जो एक समय में अनेक व्यक्तिनिष्ठ होता है। जैनदर्शनानुसार एक द्रव्य अनेकरूप में परिणत हो जाता है, जैसे—कोई एक जीव (द्रव्य) नारक आदि अनेक परिणामों (पर्यायों) को धारण करता है। ये परिणाम कालक्रम से बदलते रहते हैं, किन्तु जीव-द्रव्य ध्रुव है, उसका कभी नाश नहीं होता, नारकादि-पर्यायो के रूप में उसका नाश होता है। नारकादि अनेक पर्यायो को धारण करते हुए भी वह कभी अचेतन नही होता। इस जीवद्रव्य को सामान्य-ऊर्ध्वतासामान्य कहा है, जो अनेक कालो में एक व्यक्ति में निष्ठ होता है और उस सामान्य के नाना पर्याय-परिणाम या विशेष अथवा भेद हैं। इस अपेक्षा से व्यक्तिभेदों का सामान्य तिर्यक्सामान्य है, जबकि कालिकभेदो का सामान्य ऊर्ध्वतासामान्य है; जो द्रव्य के नाम से जाना जाता है और एक है तथा अभेदज्ञान मे निमित्त बनता है, जबकि तिर्यक्सामान्य अनेक हैं, और समानता में निमित्त बनता है। निष्कर्ष यह है कि जीवसामान्य अनेक जीवों की अपेक्षा से तिर्यक्सामान्य है, जबकि एक ही जीव के नानापर्यायों की अपेक्षा से वह ऊर्ध्वता-सामान्य है।[2]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं मूल, सू. ४३८ से ४५४,
   (ख) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १७९-२०२

२. न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-प्रस्तावना पृ. २५-३१, आगम युग का जैनदर्शन, पृ. ७६-८६.

इसी प्रकार अजीवद्रव्य कोई पृथक् एक ही द्रव्य नहीं है, परन्तु अनेक अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं, वे सब जीव से भिन्न हैं, अत: उस अर्थ मे उनकी समानता (एकता नही, अमुक अपेक्षा से एकता)[1] अजीवद्रव्य कहने से व्यक्त होती है। इस कारण वह सामान्य अजीवद्रव्यतिर्यक्-सामान्य है। तथा इस तिर्यक्सामान्य के पर्याय, विशेष या भेद वे ही प्रस्तुत मे जीव और अजीव के पर्याय, विशेष या भेद हैं, यह समझना चाहिए।[2]

□ संसारी जीवो मे कर्मकृत जो अवस्थाएँ, जिनके आधार से जीव पुद्गलो से सम्बद्ध होता है, उस सम्बन्ध को लेकर जीव की विविध अवस्थाएँ—पर्याय बनती हैं। वे पौद्गलिक पर्यायें भी व्यवहारनय से जीव की पर्याय मानी गई हैं। ससारी अवस्था में जीव और पुद्गल अभिन्न-से प्रतीत होते हैं, यह मानकर जीव के पर्यायो का वर्णन है। जैसे स्वतत्र रूप से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की विविधता के कारण पुद्गल के अनन्त पर्याय (सू. ५१९ मे) बताए हैं, वैसे ही जब वे ही पुद्गल जीव से सम्बद्ध होते है, तब वे सब जीव के पर्याय (सू. ४४० में) माने गए हैं, क्योकि जब वे जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, तब पुद्गल मे होने वाले परिणमन में जीव भी कारण है, इस कारण वे पर्याय पुद्गल के होते हुए भी जीव के माने गए हैं। संसारी अवस्था में अनादिकाल से प्रचलित जीव और पुद्गल का कथचित् अभेद भी है। कर्मोदय के कारण ही जीवों में आकार, रूप आदि की विविधता है, और नाना पर्यायो का सर्जन होता है। अत. जीव ज्ञानादिस्वरूप होते हुए भी वह अनन्तपर्याययुक्त है।

□ प्रस्तुत पद मे जीव और अजीव द्रव्यो के भेदो और पर्यायो का निरूपण है। जीव-अजीव के भेदो के विषय मे तो प्रथमपद मे निरूपण था ही, किन्तु उन प्रत्येक भेदो में जो अनन्तपर्याय हैं, उनका प्रतिपादन करना इस पचम पद की विशेषता है। प्रथम पद मे भेद बताए गए, तीसरे पद में उनकी संख्या बताई गई, किन्तु तृतीयपद मे सख्यागत तारतम्य का निरूपण मुख्य होने से किस विशेष की कितनी सख्या है, यह बताना बाकी था, अत प्रस्तुत पद मे उन-उन भेदो की तथा बाद में उन-उन भेदो के पर्यायो की सख्या भी बता दी गई है। सभी द्रव्यभेदो की पर्यायसंख्या तो अनन्त है, किन्तु भेदो की सख्या में कितने ही सख्यात हैं, असंख्यात हैं, तो कई अनन्त (वनस्पतिकायिक और सिद्धजीव) भी हैं।[3]

□ जीवद्रव्य के नारक आदि भेदो के पर्यायो का विचार अनेक प्रकार से, अनेक दृष्टियों से किया गया है, और उनमे जैनदर्शनसम्मत अनेकान्त दृष्टि का उपयोग स्पष्ट है। जैसे—जीव के नारकादि जिन भेदों के पर्यायो का निरूपण है, उसमें निम्नोक्त दस दृष्टियो का सापेक्ष वर्णन किया गया है, अर्थात्—नारकादि जीवो के अनन्तपर्यायो की संगति बताने के लिए दसो दृष्टियों से पर्यायों की संख्या बताई गई है। उनमें कितनी ही दृष्टियो से सख्यात, तो कई दृष्टियो से असख्यात और कई दृष्टियो से अनन्त सख्या होती है। अनन्तदर्शक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकार ने नारकादि प्रत्येक के पर्यायों को अनन्त कहा है, क्योंकि उस दृष्टि से सबसे अधिक पर्याय घटित होते हैं। तथा उन-उन संख्याओ का सीधा प्रतिपादन नही किया

---

१ 'एगे आया' इत्यादि स्थानांगसूत्र वाक्य कल्पित एकता के हैं।

२. पण्णवणासुत्त मूल सू ४३९, ५९१

३. पण्णवणा. मूल, सू. ४४०

गया, किन्तु एक नारक को दूसरे नारक के साथ तुलना करके वह सख्या फलित की गई है। जैसे कि दस दृष्टियों का क्रम से वर्णन इस प्रकार है—(१) **द्रव्यार्थता**—द्रव्य दृष्टि से कोई नारक, अन्य नारकों से तुल्य है। अर्थात्—द्रव्यापेक्षया कोई नारक एक द्रव्य है, वैसे ही अन्य नारक भी एक द्रव्य है। निष्कर्ष यह कि किसी भी नारक को द्रव्य दृष्टि से एक ही कहा जाता है, उसकी सख्या एक से अधिक नहीं होती, अतः वह सख्यात है। (२) **प्रदेशार्थता**—प्रदेश की अपेक्षा से भी नारक जीव परस्पर तुल्य हैं। अर्थात्—जैसे एक नारक जीव के प्रदेश असंख्यात हैं, वैसे अन्य नारक के प्रदेश भी असख्यात है, न्यूनाधिक नही। (३) **अवगाहनार्थता**—अवगाहना (जीव के शरीर की ऊँचाई) की दृष्टि से विचार किया जाए तो एक नारक अन्य नारक से हीन, तुल्य या अधिक भी होता है, और वह असंख्यात-संख्यात भाग हीनाधिक या सख्यात-असख्यातगुण हीनाधिक होता है। निष्कर्ष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (५) **स्थिति की अपेक्षा से**—विचारणा भी अवगाहना की तरह ही है। अर्थात्—वह पूर्वोक्त प्रकार से चतुःस्थान हीनाधिक या तुल्य होती है। निष्कर्ष यह है कि स्थिति की दृष्टि से भी नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (**५ से ८) कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, एवं स्पर्श की अपेक्षा से**—वर्णादि की अपेक्षा से भी नारक के अनन्तपर्याय बनते हैं, क्योंकि एकगुण कृष्ण आदि वर्ण तथैव गन्ध, रस और स्पर्श से लेकर अनन्तगुण कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, और स्पर्श होना सम्भव है। इस प्रकार वर्णादि चारों के प्रत्येक प्रकार की दृष्टि से नारक के अनन्त पर्याय घटित हो सकने से उसके अनन्त पर्याय कहे हैं। (**९-१०) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से**—ज्ञान (अज्ञान) और दर्शन की दृष्टि से भी नारक के अनन्त पर्याय हैं, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। आचार्य मलयगिरि कहते हैं—इन दसो दृष्टियो का समावेश चार दृष्टियो में किया जा सकता है। जैसे—द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता का **द्रव्य में**, अवगाहना का **क्षेत्र में**, स्थिति का **काल में** तथा वर्णादि एव ज्ञानादि का **भाव में** समावेश हो सकता है।[1]

☐ इसी प्रकार आगे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि को लेकर चौवीस दण्डक जीवों के पर्यायों की विचारणा की गई है।[2]

☐ इसके पश्चात्—अजीव के दो भेद—अरूपी अजीव और रूपी अजीव करके रूपी अजीव के परमाणु, स्कन्ध, देश और स्कन्धप्रदेश, यो चार प्रकार होते हुए भी यहाँ मुख्यतया परमाणुपुद्गल (निरंशी अश) और स्कन्ध (अनेक परमाणुओं का एकत्रित पिण्ड) दो के ही पर्यायो का निरूपण किया गया है।

☐ प्रथमपद में पुद्गल (रूपी अजीव), जो नाना प्रकारों में परिणत होता है, उसका निरूपण है, जबकि इस पद मे, बताए गए रूपी अजीव-भेदो के पर्यायों की संख्या का निरूपण है। सर्वप्रथम समग्रभाव से रूपी अजीव के पर्यायों की संख्या अनन्त बता कर फिर परमाणु द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के प्रत्येक के अनन्त पर्याय कहे हैं। इन सबके पर्यायों का विचार जीव की तरह द्रव्य,

---

१. पण्णवणासुत्तं मू. पा. सू. ४५५ से ४९९ तक तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद-प्रस्तावना पृ. ६३-६४

२. पण्णवणासुत्त मूल पा. सू. ५१९, ५४० तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद की प्रस्तावना पृ. ६२

क्षेत्र, काल, और भाव अथवा पूर्वोक्त दस दृष्टियो से किया गया है। परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध तक के पर्यायों का निरूपण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, तथापि अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक से लेकर असंख्यातप्रदेश मे समा सकता है। इसे प्रदीप के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। इस प्रकार परमाणु की तरह स्कन्धों की स्थिति एक समय से लेकर असख्यात काल से अधिक नही है। वर्णादि पर्याय भी अनन्त हैं। तदनन्तर स्थिति, अवगाहना और वर्णादिकृत भेदो मे भी जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम, इन तीन प्रकारों की अपेक्षा से भी पर्याय का विचार किया है।[1]

अन्य दर्शनीय मान्यता से अन्तर—यह है कि द्रव्य के यदि पर्याय (परिणाम) होते हैं तो वह द्रव्य कूटस्थनित्य नही, किन्तु परिणामिनित्य मानना चाहिए। परमाणुवादी नैयायिक वैशेषिक परमाणु को कूटस्थनित्य मानते हैं जबकि जैनदर्शन परिणामिनित्य मानता है। तथा स्कन्ध और परमाणु में अवयव-अवयवी का आत्यन्तिक भेद भी जैनदर्शन नहीं मानता, न ही परमाणु में पार्थिवपरमाणु आदि के रूप मे जाति-भेद मानता है, तथा परमाणु में रूप रसादि चारों का होना अनिवार्य मानता है।[2]

---

१. पण्णवणासुत्त मू. पा सू ५०० से ५५८ तक तथा प्रज्ञापना म वृत्ति पत्रांक २४२

२. पण्णवणासुत्तं भा. २, पंचमपद प्रस्तावना, पृ. ६७

पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं)

पांचवाँ विशेषपद (पर्यायपद)

पर्यायों के प्रकार और अनन्तजीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण

४३८. कतिविहा णं भंते ! पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता । तं जहा—जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य ।

[४३८ प्र.] भगवन् ! पर्यव या पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[४३८ उ.] गौतम ! पर्यव (पर्याय) दो प्रकार के कहे गये हैं । वे इस प्रकार—(१) जीव-पर्याय और (२) अजीवपर्याय ।

जीव-पर्याय

४३९. जीवपज्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! णो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जीवपज्जवा नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! असंखेज्जा नेरइया, असंखेज्जा असुरा, असंखेज्जा नागा, असंखेज्जा सुवण्णा, असंखेज्जा विज्जुकुमारा, असंखेज्जा अग्गिकुमारा, असंखेज्जा दीवकुमारा, असंखेज्जा उदहिकुमारा, असंखेज्जा दिसाकुमारा, असंखेज्जा वाउकुमारा, असंखेज्जा थणियकुमारा, असंखेज्जा पुढविकाइया, असंखेज्जा आउकाइया, असंखेज्जा तेउकाइया, असंखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणप्फइकाइया, असंखेज्जा बेइंदिया, असंखेज्जा तेइंदिया, असंखेज्जा चउरिंदिया, असंखेज्जा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया, असंखेज्जा मणुस्सा, असंखेज्जा वाणमंतरा, असंखेज्जा जोइसिया, असंखेज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति ते णं णो संखेज्जा णो असंखेज्जा, अणंता ।

[४३९ प्र.] भगवन् ! जीवपर्याय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

[४३९ उ.] गौतम ! (वे) न (तो) संख्यात हैं, और न असंख्यात हैं, (किन्तु) अनन्त हैं ।

[प्र.] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीवपर्याय, न संख्यात हैं, न असंख्यात (किन्तु) अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! असंख्यात नैरयिक हैं, असंख्यात असुर (असुरकुमार) हैं, असंख्यात नाग (नागकुमार) हैं, असंख्यात सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार हैं, असंख्यात विद्युत्कुमार हैं, असंख्यात अग्निकुमार हैं, असंख्यात द्वीपकुमार हैं, असंख्यात उदधिकुमार हैं, असंख्यात दिशाकुमार हैं, असंख्यात वायुकुमार हैं, असंख्यात स्तनितकुमार हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक हैं, असंख्यात अप्कायिक हैं, असंख्यात तेजस्-कायिक हैं, असंख्यात वायुकायिक हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं, असंख्यात

त्रीन्द्रिय हैं, असंख्यात चतुरिन्द्रिय हैं, असख्यात पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक है, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यन्तर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असख्यात वैमानिक देव हैं और अनन्त-सिद्ध हैं।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वे (जीवपर्याय) सख्यात नही, असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं।

विवेचन—पर्याय के प्रकार और अनन्त जीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ४३८-४३९) में पर्याय के दो प्रकारो तथा जीवपर्याय की अनन्तता का युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

पर्याय : स्वरूप और समानार्थक शब्द—यद्यपि पिछले पद मे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि के रूप में जीवो की स्थितिरूप पर्याय का प्रतिपादन किया गया है, तथापि औदयिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावरूप जीवपर्यायो का तथा पुद्गल आदि अजीव-पर्यायो का निश्चय करने के लिए इस पद का प्रतिपादन किया गया है। जीव और अजीव दोनो द्रव्य हैं। द्रव्य का लक्षण 'गुण-पर्यायवत्त्व' कहा गया है। इसीलिए इस पद में जीव और अजीव दोनों के पर्यायों का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म; ये प्राय: समानार्थक शब्द हैं।

पर्यायों का परिमाण जानने की दृष्टि से गौतम स्वामी इस प्रकार का प्रश्न करते हैं कि जीव के पर्याय सख्यात है, असख्यात हैं या अनन्त है ? भगवान् ने जीव के पर्याय अनन्त इसलिए बताए कि जब पर्याय वाले (वनस्पतिकायिक, सिद्ध जीव आदि) अनन्त हैं तो पर्याय भी अनन्त हैं। यद्यपि वनस्पतिकायिको और सिद्धो को छोड कर नैरयिक आदि सभी असख्यात-असख्यात हैं, किन्तु उक्त दोनो अनन्त है, इस अपेक्षा से जोव के पर्याय समुच्चय रूप से अनन्त ही कहे जाएगे। सख्यात या असंख्यात नही।[1]

नैरयिकों के अनन्तपर्याय : क्यों और कैसे ?

४४०. नेरइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले; ओगाहणट्ठताए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जभागब्भहिए वा संखेज्जभागब्भहिए वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा; ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—अइ हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जइभागमब्भहिए वा संखेज्जइभागमब्भहिए वा संखेज्जइगुणब्भहिए वा असंखेज्जइगुणब्भहिए वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जदि हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जइभागहीणे वा संखेज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणंतभाग-

1. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १७९

मब्भहिए वा असंखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा; णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए; आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभंगणाणपज्जवेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति नेरइयाणं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४० प्र.] भगवन् ! नैरयिको के कितने पर्याय (पर्यव) कहे गए हैं ?

[४४० उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि नैरयिको के पर्याय अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! एक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है । प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से—कथचित् (स्यात्) हीन, कथचित् तुल्य और कथचित् अधिक (अभ्यधिक) है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है; या सख्यातगुणा हीन है, अथवा असख्यातगुणा हीन है । यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है या संख्यातभाग अधिक है; अथवा सख्यातगुणा अधिक या असख्यातगुणा अधिक है ।

स्थिति की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन है; अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन है । अगर अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक है; अथवा संख्यातगुण अधिक या असख्यातगुण अधिक है ।

कृष्णवर्ण-पर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है, तो अनन्तभाग हीन, असख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन होता है; अथवा सख्यातगुण हीन, असख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक होता है; अथवा संख्यातगुण अधिक, असख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है ।

नीलवर्णपर्यायो, रक्तवर्णपर्यायो, पीतवर्णपर्यायो, हारिद्रवर्णपर्यायों और शुक्लवर्णपर्यायों की अपेक्षा से—(विचार किया जाए तो एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है । सुगन्धपर्यायो और दुर्गन्धपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक है । तिक्तरसपर्यायों, कटुरसपर्यायों, काषायरसपर्यायो, आम्लरसपर्यायो तथा मधुररसपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है । कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदु-स्पर्शपर्यायो, गुरुस्पर्शपर्यायो, लघुस्पर्शपर्यायो, शीतस्पर्शपर्यायो, उष्णस्पर्शपर्यायों, स्निग्धस्पर्श-

पर्यायों तथा रूक्ष-स्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है।

(इसी प्रकार) आभिनिबोधिकज्ञानपर्यायो, श्रुतज्ञानपर्यायो, अवधिज्ञानपर्यायो, मति-अज्ञान-पर्यायो, श्रुत-अज्ञानपर्यायो, विभगज्ञानपर्यायों, चक्षुदर्शनपर्यायों, अचक्षुदर्शनपर्यायों तथा अवधिदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है, कि 'नारकों के पर्याय सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त कहे हैं।'

विवेचन—नैरयिकों के अनन्त पर्याय : क्यों और कैसे ?—प्रस्तुत सूत्र मे अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एव क्षायोपशमिकभावरूप ज्ञानादि के पर्यायो की अपेक्षा से हीनाधिकता का प्रतिपादन करके नैरयिको के अनन्तपर्यायो को सिद्ध किया गया है।

प्रश्न का उद्भव और समाधान—सामान्यत: जहाँ पर्यायवान् अनन्त होते हैं, वहाँ पर्याय भी अनन्त होते हैं, किन्तु जहाँ पर्यायवान् (नारक) अनन्त न हों (असख्यात हो), वहाँ पर्याय अनन्त कैसे होते हैं ? इस आशय से यह प्रश्न श्रीगौतमस्वामी द्वारा उठाया गया है। भगवान् के द्वारा उसका समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के पर्यायो की अपेक्षा से किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से नारकों में तुल्यता—प्रत्येक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की दृष्टि मे तुल्य है, अर्थात्—प्रत्येक नारक एक-एक जीव-द्रव्य है। द्रव्य की दृष्टि से उनमें कोई भेद नही है। इस कथन के द्वारा यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक नारक अपने आप मे परिपूर्ण एव स्वतत्र जीव द्रव्य है। यद्यपि कोई भी द्रव्य, पर्यायो से सर्वथा रहित कदापि नही हो सकता, तथापि पर्यायो की विवक्षा न करके केवल शुद्ध द्रव्य की विवक्षा की जाए तो एक नारक से दूसरे नारक मे कोई विशेषता नही है।

प्रदेशो की अपेक्षा से भी नारको मे तुल्यता—प्रदेशो की अपेक्षा से भी सभी नारक परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि प्रत्येक नारक जीव लोकाकाश के बराबर असख्यातप्रदेशी होता है। किसी भी नारक के जीवप्रदेशो मे किञ्चित् भी न्यूनाधिकता नही है। सप्रदेशी और अप्रदेशी का भेद केवल पुद्गलो मे है, परमाणु अप्रदेशी होता है, तथा द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि स्कन्ध सप्रदेशी होते हैं।

क्षेत्र (अवगाहना) की अपेक्षा से नारकों में हीनाधिकता—अवगाहना का अर्थ सामान्यतया आकाशप्रदेशो को अवगाहन करना—उनमे समाना होता है। यहाँ उसका अर्थ है—शरीर की ऊँचाई। अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) की अपेक्षा से सब नारक तुल्य नही है। जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल की है। आगे-आगे की नरकपृथ्वियो मे उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है। सातवी नरकपृथ्वी मे अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की है। इस दृष्टि से किसी नारक से किसी नारक की अवगाहना हीन है, किसी की अधिक है, जबकि किसी की तुल्य भी है। यदि कोई नारक अवगाहना से हीन (न्यून) होगा तो वह असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन होगा, अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन होगा, किन्तु यदि कोई नारक अवगाहना में अधिक होगा तो असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक

होगा, अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक होगा। यह हीनाधिकता चतु:स्थानपतित कहलाती है। नारक असंख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातभाग अधिक या असख्यातभाग अधिक इस प्रकार से होते हैं, जैसे—एक नारक की अवगाहना ५०० धनुष की है और दूसरे की अवगाहना है—अगुल के असख्यातवे भाग कम पांच सौ धनुष की। अगुल का असख्यातवाँ भाग पाच सौ धनुष का असख्यातवाँ भाग है। अत: जो नारक अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है, वह पाच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातभाग हीन** है, और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला दूसरे नारक से **असंख्यातभाग अधिक** है। इसी प्रकार एक नारक ५०० धनुष की अवगाहना वाला है, जबकि दूसरा उससे दो धनुष कम है, अर्थात् ४९८ धनुष की अवगाहना वाला है। दो धनुष पाच सौ धनुष का सख्यातवाँ भाग है। इस दृष्टि से दूसरा नारक पहले नारक से **संख्यातभाग हीन** हुआ, जबकि पहला (पांच सौ धनुष वाला) नारक दूसरे नारक (४९८ धनुष वाले) से **संख्यातभाग अधिक** हुआ। इसी प्रकार कोई नारक एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाला है और दूसरा पूरे पाच-सौ धनुष की अवगाहना वाला है। एक सौ पच्चीस धनुष के चौगुने पांच सौ धनुष होते हैं। इस दृष्टि से १२५ धनुष की अवगाहना वाला, ५०० धनुष की अवगाहना वाले नारक से **संख्यातगुण हीन** हुआ और पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला, एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले नारक से **संख्यातगुण अधिक** हुआ। इसी प्रकार कोई नारक अपर्याप्त अवस्था में अंगुल के असंख्यातवे भाग की अवगाहना वाला है और दूसरा नारक पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। अगुल का असख्यातवाँ भाग असख्यात से गुणित होकर पाच सौ धनुष बनता है। अत: अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना वाला नारक परिपूर्ण पाच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक से **असंख्यातगुण हीन** हुआ और पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला नारक, अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना वाले नारक से **असंख्यातगुण अधिक** हुआ।

काल (स्थिति) की अपेक्षा से नारकों की न्यूनाधिकता—स्थिति (आयुष्य की अनुभूति) की अपेक्षा से कोई नारक किसी दूसरे नारक मे कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। अवगाहना की तरह स्थिति की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातगुणा या असख्यातगुणा हीन होता है, अथवा असख्यातभाग या सख्यातभाग अधिक अथवा सख्यातगुणा या असख्यातगुणा अधिक स्थिति वाला चतु.स्थानपतित होता है। उदाहरणार्थ—एक नारक पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है। अत: एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से **असंख्यातभाग हीन** हुआ, जबकि परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, एक दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से **असंख्यातभाग अधिक** हुआ; क्योकि एक-दो समय, सागरोपम के असख्यातवे भाग मात्र हैं। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, और दूसरा है—पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इस दृष्टि से पल्योपमो से हीन स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नारक से **संख्यातभाग हीन** स्थिति वाला हुआ, जबकि दूसरा, पहले से **संख्यातभाग अधिक** स्थिति वाला हुआ। इस प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा है—एक सागरोपम की स्थिति वाला। इनमें एक सागरोपम-स्थिति वाला, तेतीस सागरोपम-स्थिति वाले नारक से संख्यातगुण-हीन हुआ,

क्योंकि एक सागर को तेतीस सागर से गुणा करने पर तेतीस सागर होते है। इसके विपरीत तेतीस सागरोपम-स्थिति वाला नारक एक सागरोपम स्थिति वाले नारक से **संख्यातगुण अधिक** हुआ। इसी प्रकार एक नारक दस हजार वर्ष की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक है—तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस हजार को असख्यात वार गुणित करने पर तेतीस सागरोपम होते है। अतएव दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नारक, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक की अपेक्षा **असख्यातगुण हीन** स्थिति वाला हुआ, जबकि उसकी अपेक्षा तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला **असंख्यातगुण अधिक स्थिति** वाला हुआ।

भाव की अपेक्षा से नारकों की षट्स्थानपतित हीनाधिकता—(१) **कृष्णादि वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से**—पुद्गल-विपाकी नामकर्म के उदय से होने वाले औदयिक भाव का आश्रय लेकर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की हीनाधिकता की प्ररूपणा की गई है। यथा—(१) कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से एक नारक दूसरे नारक से अनन्तभागहीन, असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन होता है, अथवा सख्यातगुणहीन, असख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन होता है। यदि अधिक होता है तो अनन्तभाग, असख्यातभाग या सख्यातभाग अधिक होता है अथवा सख्यातगुण, असख्यातगुण या अनन्तगुण अधिक होता है। यह षट्स्थानपतित हीनाधिकता है। इस षट्स्थानपतित हीनाधिकता में जो जिससे अनन्तभाग-हीन होता है, वह सर्वजीवानन्तक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उसे अनन्तवे भाग से हीन समझना चाहिए। जो जिससे असख्यातभाग हीन है, असख्यात लोकोकाश-प्रदेश प्रमाणराशि से भाग करने पर जो लब्ध हो, उतने भाग कम समझना चाहिए। जो जिससे सख्यातभाग हीन हो, उसे उत्कृष्टसख्यक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उससे हीन समझना चाहिए। गुणनसख्या मे जो जिससे सख्येयगुणा होता है, उसे उत्कृष्टसख्यक के साथ गुणित करने पर जो (गुणनफल) राशिलब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे असख्यातगुणा है, उसे असख्यात-लोकाकाश प्रदेशो के प्रमाण जितनी राशि से गुणित करना चाहिए और गुणाकार करने पर जो राशि लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे अनन्तगुणा है, उसे सर्वजीवानन्तक से गुणित करने पर जो सख्या लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। इसी तरह नीलादि वर्णों के पर्यायो की अपेक्षा से एक नारक से दूसरे नारक की षट्स्थानपतित हीनाधिकता घटित कर लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायो की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक की अपेक्षा षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। वह भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। तिक्तादिरस के पर्यायो की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है, इसी तरह कर्कश आदि स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा भी हीनाधिकता होती है, यह समझ लेना चाहिए।

क्षायोपशमिक भावरूप पर्यायो की अपेक्षा से हीनाधिकता—मति आदि तीन ज्ञान, मति अज्ञानादि तीन अज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से भी कोई नारक किसी अन्य नारक से हीन, अधिक या तुल्य होता है। इनकी हीनाधिकता भी वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से उक्त हीनाधिकता की तरह षट्स्थानपतित के अनुसार समझ लेनी चाहिए। आशय यह है कि जिस प्रकार पुद्गलविपाकी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले औदयिकभाव को लेकर नारको को षट्स्थानपतित कहा है, उसी प्रकार जीवविपाकी ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १८१-१८२

होने वाले क्षायोपशमिक भाव को लेकर आभिनिबोधिक ज्ञान आदि पर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि समझ लेनी चाहिए।[1]

षट्स्थानपतितत्व का स्वरूप—यद्यपि कृष्णवर्ण के पर्यायो का परिमाण अनन्त है, तथापि असत्कल्पना से उसे दस हजार मान लिया जाए और सर्वजीवानन्तक को सौ मान लिया जाए तो दस हजार में सौ का भाग देने पर सौ की सख्या लब्ध होती है। इस दृष्टि से एक नारक के कृष्ण-वर्णपर्यायो का परिमाण मान लो दस सहस्र है और दूसरे के सौ कम दस सहस्र है। सर्वजीवानन्तक में भाग देने पर सौ की सख्या लब्ध होने से वह अनन्तवाँ भाग है, अत. जिस नारक के कृष्णवर्ण के पर्याय सौ कम दस सहस्र है वह पूरे दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायो वाले नारक की अपेक्षा **अनन्तभागहीन** कहलाता है। उसकी अपेक्षा से दूसरा पूर्ण दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायो वाला नारक **अनन्तभाग-अधिक** है। इसी प्रकार दस सहस्र परिमित कृष्णवर्ण के पर्यायो मे लोकाकाश के प्रदेशों के रूप मे कल्पित पचास से भाग दिया जाए तो दो सौ सख्या आती है, यह असंख्यातवाँ भाग कहलाता है। इस दृष्टि से किसी नारक के कृष्णवर्ण-पर्याय दो सौ कम दस हजार हैं और किसी के पूरे दस हजार है। इनमें से दो सौ कम दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाला नारक पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **असंख्यातगुणभागहीन** कहलाता है और परिपूर्ण कृष्ण वाला नारक, दो सौ कम दस सहस्र वाले की अपेक्षा **असंख्यातभागअधिक** कहलाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त दस सहस्रसख्यक कृष्णवर्ण-पर्यायो में सख्यातपरिमाण के रूप मे कल्पित दस सख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र संख्या लब्ध होती है। यह सख्या दस हजार का सख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय मे सख्यात परिमाण के रूप मे कल्पित दस सख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र सख्या लब्ध होती है। यह सख्या दस हजार का सख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय ९ हजार है और दूसरे नारक के दस हजार है, तो नौ हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, पूर्ण दस हजार कृष्णपर्यायवाले नारक से **संख्यातभागहीन** हुआ; तथा उसकी अपेक्षा परिपूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाला नारक **संख्यातभाग-अधिक** हुआ। इस प्रकार एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय एक सहस्र हैं, दूसरे नारक के दस सहस्र है। यहा उत्कृष्ट सख्या के रूप मे कल्पित दस सख्या को हजार से गुणाकार करने पर दससहस्रसख्या आती है। इस दृष्टि से एक सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, दससहस्रसख्यक कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **संख्यातगुणहीन** है और उसकी अपेक्षा दस सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **असंख्यातगुण-अधिक** है। इसी प्रकार एक नारक के कृष्णपर्यायों का परिमाण दो सौ है, और दूसरे के कृष्णवर्णपर्यायों का परिमाण दस हजार है। दो सौ का यदि असख्यात रूप से कल्पित पचास के साथ गुणा किया जाए तो दस हजार होता है। अत· दो सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्णवर्ण–पयर्य वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातगुण हीन** है और उसकी अपेक्षा दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **असंख्यातगुणा अधिक** है। इसी प्रकार मान लो, एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय सौ हैं, और दूसरे के दस हजार हैं। सर्वजीवान्तक परिमाण के रूप मे परिकल्पित सौ को सौ से गुणाकार किया जाय तो दस हजार सख्या होती है। अतएव सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्ण वर्णवाले नारक से **अनन्तगुणा हीन** हुआ और उसकी अपेक्षा दूसरा **अनन्तगुणा अधिक** हुआ।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८२

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८३

निष्कर्ष—यहाँ कृष्णवर्ण आदि पर्यायो को लेकर जो षट्स्थानपतित हीनाधिक्य बताया गया है, उससे स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि जब एक कृष्णवर्ण को लेकर ही अनन्तपर्याय होते हैं तो सभी वर्णों के पर्यायों का तो कहना ही क्या ? इसके द्वारा यह भी सूचित कर दिया है कि जीव स्वनिमित्तक एवं परनिमित्तक विविध परिणामो मे युक्त होता है। कर्मोदय से प्राप्त शरीर के अनुसार उसके (जीव के) आत्मप्रदेशो मे सकोच-विस्तार तो होता है, किन्तु हीनाधिकता नही होती।[1]

असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के अनन्त पर्याय

४४१. असुरकुमाराणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एव णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहिं, सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीतफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुतणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभंगणाणपज्जवेहिं, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४१ उ.] गौतम ! उनके अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'असुरकुमारो के पर्याय अनन्त हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; इसी प्रकार नीलवर्ण-पर्यायो, रक्त (लोहित) वर्ण-पर्यायों, हारिद्रवर्ण-पर्यायो, शुक्लवर्ण-पर्यायो की अपेक्षा से; तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से; तिक्तरस-पर्यायो, कटुरस-पर्यायो, कषायरस-पर्यायो, आम्लरस-पर्यायों एवं मधुरस-पर्यायो की अपेक्षा से, तथा कर्कशस्पर्श-पर्यायो, मृदुस्पर्श-पर्यायो, गुरुस्पर्श-पर्यायो, लघुस्पर्श-पर्यायो, शोतस्पर्श-पर्यायो, उष्णस्पर्श-पर्यायो, स्निग्धस्पर्श-पर्यायो, और रूक्षस्पर्श-पर्यायो की अपेक्षा से तथा आभिनिबोधिकज्ञान-पर्यायो, श्रुतज्ञान-पर्यायो, अवधिज्ञान-पर्यायों, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञान-पर्यायो, विभगज्ञान-पर्यायो, चक्षुदर्शनपर्यायो, अचक्षुदर्शन-पर्यायो और अवधि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८४

दर्शन-पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है। हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि असुरकुमारो के पर्याय अनन्त कहे हैं।

४४२. एवं जहा नेरइया जहा असुरकुमारा तहा नागकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[४४२] इसी प्रकार जैसे नैरयिको के (अनन्तपर्याय कहे गए हैं,) और असुरकुमारो के कहे हैं, उसी प्रकार नागकुमारो से लेकर यावत् स्तनितकुमारो के (अनन्तपर्याय कहने चाहिए।)

विवेचन—असुरकुमार आदि भवनपतिदेवों के अनन्तपर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रो (४४१-४४२) मे असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपतियो के अनन्तपर्यायो का, नैरयिको के अतिदेश-पूर्वक सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असुरकुमारों के पर्यायों की अनन्तता—एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से पूर्वोक्त सूत्रानुसार द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना और स्थिति के पर्यायो की दृष्टि के पूर्ववत् चतु स्थानपतित हीनाधिक हैं तथा कृष्णादिवर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध, तिक्त आदि रस, कर्कश आदि स्पर्श एव ज्ञान, अज्ञान एव दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हैं। आशय यह है कि कृष्णवर्ण को लेकर अनन्तपर्याय होते हैं, तो सभी वर्णो के पर्यायो का तो कहना ही क्या ? इस हेतु से असुरकुमारो के[1] अनन्तपर्याय सिद्ध हो जाते हैं।

पांच स्थावरों (एकेन्द्रियों) के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा

४४३. पुढविकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिए अब्भइए—जदि हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे या असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जतिभाग-अब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भहिए वा असंखेज्जगुणअब्भहिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए -जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जभागअब्भतिए वा संखेज्जभागअब्भतिए वा संखेज्जगुणअब्भतिए वा, वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[४४३ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, (आत्म) प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा-२, पृ. ५७६ से ५७९ तक

अथवा संख्यातगुण हीन है, या असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है या संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है अथवा असंख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, या संख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है, या संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है। वर्णों (के पर्यायों) गन्धों, रसों और स्पर्शों (के पर्यायों) की अपेक्षा से, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञानपर्यायों एवं अचक्षुदर्शनपर्यायों की अपेक्षा से (एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से) षट्स्थानपतित है।

४४४. आउकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४४ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४४ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अप्कायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४५. तेउक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तेउक्काइए तेउक्काइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४५ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४५ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहा जाता है कि तेजस्कायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक तेजस्कायिक, दूसरे तेजस्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है।

स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४६. वाउक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिते।

[४४६ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४६ उ.] गौतम ! (वायुकायिक जीवों के) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'वायुकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक वायुकायिक, दूसरे वायुकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४७. वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति वणप्फइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वणप्फइकाइए वणप्फइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति वणस्सतिकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४४७ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४७ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है किन्तु वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान

और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित (हीनाधिक) है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

विवेचन—पांच स्थावरों के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ४४३ से ४४७ तक) में पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पाचो एकेन्द्रिय स्थावरों के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के पर्यायों की अनन्तता : विभिन्न अपेक्षाओं से—मूलपाठ में पूर्ववत् अवगाहना को अपेक्षा से चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित तथा समस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एवं मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर इन सब एकेन्द्रिय जीवो के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्तपर्याय सिद्ध किये गए हैं। जहाँ (अवगाहना में) चतुःस्थानपतित हीनाधिकता है, वहाँ एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से असंख्यातभाग, संख्यातभाग अथवा संख्यातगुण या असख्यातगुण हीन होता है, अथवा असख्यातभाग, संख्यातभाग, या सख्यातगुण अथवा असख्यातगुण अधिक होता है। यद्यपि पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण होती है, किन्तु अगुल के असख्यातवे भाग के भी असख्यात भेद होते हैं, इस कारण पृथ्वीकायिक जीवो की पूर्वोक्त चतुःस्थानपतित हीनाधिकता में कोई विरोध नही है।

जहाँ (स्थिति में) **त्रिस्थानपतित हीनाधिकता** होती है, वहाँ पृथ्वीकायिकादि मे हीनाधिकता इस प्रकार समझनी चाहिए—एक एकेन्द्रिय दूसरे एकेन्द्रिय से असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुणा हीन होता है अथवा असख्यातभाग अधिक, सख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है। इनकी स्थिति मे चतुःस्थानपतित हीनाधिकता नही होती, क्योकि इनमे असख्यात-गुणहानि और असंख्यातगुणवृद्धि सम्भव नही है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि की सर्वजघन्य आयु क्षुल्लकभवग्रहणपरिमित है। क्षुल्लकभव का परिमाण दो सौ छप्पन आवलिकामात्र है। दो घडी का एक मुहूर्त्त होता है। और इस एक मुहूर्त्त मे ६५५३६ भव होते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि की उत्कृष्ट स्थिति भी सख्यात वर्ष की ही होती है। अतः इनमे असंख्यातगुणा हानि-वृद्धि (न्यूनाधिकता) नही हो सकती। अब रही बात असख्यातभाग, सख्यातभाग और सख्यातगुणा हानिवृद्धि की, वह इस प्रकार है। जैसे—एक पृथ्वीकायिक की स्थिति परिपूर्ण २२ हजार वर्ष की है, और दूसरे की एक समय कम २२००० वर्ष की है, इनमें से परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक को अपेक्षा, एक समय कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक असंख्यातभाग हीन कहलाएगा, जबकि दूसरा असख्यातभाग अधिक कहलाएगा। इसी प्रकार एक की परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति है, जबकि दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कम २२००० वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि बाईस हजार वर्ष का सख्यातवाँ भाग है। अतः पूर्ण २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२ हजार वर्ष की स्थिति वाला सख्यात-भाग हीन है और उसकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला संख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकायिक की पूरी २२००० वर्ष की स्थिति है, और दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त की, एक मास की, एक वर्ष की या एक हजार वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि किसी नियत सख्या से गुणाकार करने पर २२००० वर्ष की सख्या होती है। अतः अन्तर्मुहूर्त्त आदि की आयुवाला पृथ्वीकायिक, पूर्ण बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा संख्यातगुण-हीन है और इसकी अपेक्षा २२००० वर्ष की

स्थिति वाला पृथ्वीकायिक संख्यातगुण अधिक है। इसी प्रकार अप्कायिक से वनस्पतिकायिक तक के एकेन्द्रिय जीवों को अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

भावों (वर्णादि या मति-अज्ञानादि के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता होती है, वहाँ उसे इस प्रकार समझना चाहिए—एक पृथ्वीकायिक आदि, दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन और संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुण-हीन और अनन्तगुणहीन तथा अनन्तभाग-अधिक, असंख्यातभाग-अधिक और संख्यातभाग-अधिक तथा संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा और अनन्तगुणा अधिक है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के वर्णादि या मतिअज्ञानादि विभिन्न भावपर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता की तरह अप्कायिक आदि एकेन्द्रियजीवो की षट्स्थानपतित हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

इन सब दृष्टियो से पृथ्वीकायिकादि प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव के पर्यायों की अनन्तता सिद्ध होती है।[1]

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का निरूपण

४४८. बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्ज-गुणमब्भइए वा असंखेज्जगुणमब्भइए वा; ठितीए तिट्ठाणवडिते; वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहि-यणाण-सुतणाण-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४८ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४८ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक द्वीन्द्रिय जीव दूसरे द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन होता है, (तो) या तो असंख्यातभाग हीन होता है, या सख्यातभाग-हीन होता है, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होता है। अगर अधिक होता है तो असंख्यातभाग अधिक, या संख्यातभाग अधिक, अथवा सख्यातगुणा या असंख्यातगुणा अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित हीनाधिक होता है, तथा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के तथा आभिनि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८६

बोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित (हीनाधिक) है।

४४९. एवं तेइंदिया वि।

[४४९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवो के (पर्यायो की अनन्तता के) विषय मे समझना चाहिए।

४५०. एवं चउरिंदिया वि। णवरं दो दंसणा-चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं च।

[४५०] इसी तरह चतुरिन्द्रिय जीवो (के पर्यायो) की अनन्तता होती है। विशेष यह है कि उनमें चक्षुदर्शन भी होता है। (अतएव इनके पर्यायों की अपेक्षा से भी चतुरिन्द्रिय की अनन्तता समझ लेनी चाहिए)।

४५१. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा नेरइयाणं तहा भाणितव्वा।

[४५१] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो के पर्यायो का कथन नैरयिको के समान (४४० सूत्रानुसार) कहना चाहिए।

विवेचन—विकलेन्द्रिय एवं तिर्यचपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायो का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ४४८ से ४५१ तक) मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्यायों का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायों के हेतु—इन सब मे द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर समानता होने पर भी अवगाहना की दृष्टि से पूर्ववत् चतु स्थानपतित, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित एव वर्णादि के तथा मतिज्ञानादि के पर्यायो की दृष्टि मे षट्स्थान-पतित न्यूनाधिकता होती है, इस कारण इनके पर्यायो की अनन्तता स्पष्ट है।[1]

मनुष्यों के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा

४५२. मणुस्साणं भंते! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! मणुस्से मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहणाण-मणपज्जवणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

[४५२ प्र.] भगवन्! मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[४५२ उ] गौतम! (उनके) अनन्तपर्याय कहे है।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मनुष्यों के अनन्तपर्याय हैं?'

---

१. प्रज्ञापनासूत्र. म. वृत्ति, पत्रांक १८६

[उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की दृष्टि से भी चतु:स्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मन:पर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा केवलज्ञान के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, तीन अज्ञान तथा तीन दर्शन (के पर्यायों) की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन—मनुष्यों के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४५२) में अवगाहना और स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानों, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर तथा द्रव्य, प्रदेश तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से परस्पर तुल्यता बता कर मनुष्यों के अनन्त पर्याय सिद्ध किए गए हैं।[1]

चार ज्ञान, तीन अज्ञान, और तीन दर्शनों की हीनाधिकता—पाच ज्ञानों में से चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन क्षायोपशमिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सब मनुष्यो का क्षयोपशम समान नही होता। क्षयोपशम में तरतमता को लेकर अनन्तभेद होते हैं। अतएव इनके पर्याय षट्स्थानपतित हीनाधिक कहे गए हैं, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक है। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के सर्वथा क्षीण होने पर ही उत्पन्न होते हैं, अतएव उनमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नही होती। जैसा एक मनुष्य का केवलज्ञान या केवलदर्शन होता है, वैसा ही सभी का होता है, इसीलिए केवलज्ञान और केवलदर्शन के पर्याय तुल्य कहे हैं।[2]

स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित कैसे—पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और मनुष्यो की स्थिति अधिक से अधिक तीन पल्योपम की होती है। पल्योपम असंख्यात हजार वर्षों का होता है। अत: उसमे असख्यातगुणी वृद्धि और हानि सम्भव होने से उसे चतु.स्थानपतित कहा गया है।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा

४५३. वाणमंतरा ओगाहणट्ठयाए ठितीए य चउट्ठाणवडिया, वण्णादीहिं छट्ठाणवडिता।

[४५३] वाणव्यन्तर देव अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) कहे गए हैं तथा वर्ण आदि (के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४५४. जोइसिय-वेमाणिया वि एवं चेव। नवरं ठितीए तिट्ठाणवडिता।

[४५४] ज्योतिष्क और वैमानिक देवों (के पर्यायों) की हीनाधिकता भी इसी प्रकार (पूर्वसूत्रानुसार समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि इन्हें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) समझना चाहिए।

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त), पृ. १३९-१४०

२. (क) प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक १८९. (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६१२-६१३

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रों (४५३, ४५४) में वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के अनन्त पर्याय बताने हेतु उनकी यथायोग्य चतुःस्थानपतित षट्स्थानपतित तथा त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

वाणव्यन्तरों की चतुःस्थानपतित तथा ज्योतिष्क-वैमानिकों की त्रिस्थानपतित हीनाधिकता—वाणव्यन्तरों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अतः वह भी चतुःस्थानपतित हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्को और वैमानिको की स्थिति में त्रिस्थान पतित हीनाधिकता ही होती है; क्योंकि ज्योतिष्कों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है। अतएव उनमें असंख्यातगुणी हानि-वृद्धि सम्भव नही है। वैमानिको की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। एक सागरोपम दस कोडाकोड़ी पल्योपम का होता है। अतएव वैमानिकों मे भी असंख्यातगुणी हानिवृद्धि सम्भव नही है। इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होते है।[2]

विभिन्न अपेक्षाओं से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के पर्याय

४५५. [१] **जहण्णोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?**

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-१ उ.] गौतम (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नारको के अनन्त पर्याय है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थान पतित (हीनाधिक) है, और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] **उक्कोसोगाहणयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?**

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति उक्कोसोगाहणयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १४०

२. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८६

गोयमा ! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जइभागमब्भहिए वा संखेज्जइभागमब्भहिए वा, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५५-२ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-२ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य हैं; किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है या संख्यातभाग हीन है । यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, अथवा सख्यातभाग अधिक है । वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जगुणअब्भतिए वा असंखेज्जगुणअब्भतिए वा, ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए असंखेज्जतिभागअब्भइए वा संखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भइए वा असंखेज्जगुणअब्भहिए वा, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्को सोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४५५-३ प्र.] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-३ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला एक नारक, अन्य मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो, असख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है, या सख्यातगुण हीन है, अथवा असख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक है, या असख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन है, या असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है अथवा सख्यातभाग अधिक है, या सख्यातगुण अधिक है, अथवा असख्यातगुण अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे हैं।'

४५६. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहण्णट्ठितीयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णट्ठितीए नेरइए जहण्णट्ठितीयस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले नारको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५६-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनो की अपेक्षा षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसट्ठितीए वि।

[४५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक के विषय में भी यथायोग्य तुल्य, चतुःस्थानपतित, षट्स्थानपतित आदि कहना चाहिए।

[३] अजहण्णुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले नारक के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

४५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए नेरइए जहण्णगुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४५७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले नैरियकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला नैरयिक, दूसरे जघन्यगुण काले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि 'जघन्यगुण काले नारको के अनन्त पर्याय कहे हैं।'

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (नारको के पर्यायो के विषय मे भी) समझ लेना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[४५७-३] इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले नैरयिक के पर्यायो के विषय में जान लेना चाहिए। विशेष इतना ही है कि काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

४५८. एवं अवसेसा चत्तारि वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४५८] यों काले वर्ण के पर्यायों की तरह शेष चारो वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी (समझ लेना चाहिए।)

४५९. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! णेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणओहिणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५९-१ उ.] गौतम ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुः-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से (भी) चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा तीन दर्शनो की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४५९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के (पर्यायो के विषय में समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव । नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४५९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से भी स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४६०. एवं सुतणाणी ओहिणाणी वि । णवरं जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णत्थि ।

[४६०] श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरयिकों के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानीपर्यायवत्) जानना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके ज्ञान होता है, उसके अज्ञान नही होता ।

४६१. जहा णाणा तहा अण्णाणा वि भाणितव्वा । नवरं जस्स अण्णाणा तस्स णाणा न भवंति ।

[४६१] जिस प्रकार त्रिज्ञानी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे कहा, उसी प्रकार त्रिअज्ञानी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके अज्ञान होते हैं, उसके ज्ञान नही होते ।

४६२. [१] जहण्णचक्खुदंसणीणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णचक्खुदंसणी णं नेरइए जहण्णचक्खुदंसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहिं तुल्ले, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६२-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक के अनन्त-पर्याय कहे हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है; वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की अपेक्षा से, षट्स्थानपतित है । चक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसचक्खुदंसणी वि ।

[४६२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टचक्षुदर्शनी नैरयिको (के पर्यायो के विषय मे भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसचक्खुदंसणी वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६२-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) चक्षुदर्शनी नैरयिकों के (पर्यायों के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।) विशेष इतना ही है कि स्वस्थान में भी वह षट्स्थानपतित होता है ।

४६३. एवं अचक्खुदंसणी वि ओहिदंसणी वि ।

[४६३] चक्षुदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों की तरह ही अचक्षुदर्शनी नैरयिकों एवं अवधि-दर्शनी नैरयिको के पर्यायों के विषय में जानना चाहिए ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय—प्रस्तुत ९ सूत्रों (सू. ४५५ से ४६३ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि से युक्त नारको के पर्यायों का कथन किया गया है ।

जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य—जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक नारक, दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, क्योकि 'प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याय वाला होता है,' इस न्याय से नारकजीवद्रव्य एक होते हुए भी अनन्तपर्याय

वाला हो सकता है। अनन्तपर्याय वाला होते हुए भी वह द्रव्य से एक है, जैसे कि अन्य नारक एक-एक हैं। इसी प्रकार प्रत्येक नारक जीव लोकाकाशप्रमाण असख्यात प्रदेशों वाला होता है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा से भी वह तुल्य हैं, तथा अवगाहना की दृष्टि से भी तुल्य है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का एक ही स्थान है, उसमें तरतमता-हीनाधिकता सभव नही है।

स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले नारकों की स्थिति में समानता का नियम नही है। क्योंकि एक जघन्य अवगाहना वाला नारक १० हजार वर्ष की स्थितिवाला रत्नप्रभापृथ्वी में होता है और एक उत्कृष्ट स्थितिवाला नारक सातवी पृथ्वी में होता है। इसलिए जघन्य या उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक स्थिति की अपेक्षा असख्यातभाग या सख्यात-भाग हीन अथवा सख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन भी हो सकता है। अथवा असख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक अथवा सख्यातगुण या असख्यातगुण अधिक भी हो सकता है। इसलिए स्थिति की अपेक्षा से नारक चतु.स्थानपतित होते हैं।

जघन्य अवगाहना वाले नारक को तीन ज्ञान या तीन अज्ञान कैसे ?—कोई गर्भज-सज्ञी-पचेन्द्रिय जीव नारको मे उत्पन्न होता है, तब वह नरकायु के वेदन के प्रथम समय में ही पूर्वप्राप्त औदारिकशरीर का परिशाटन करता है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् अविग्रह से या विग्रह से गमन करके वह वैक्रियशरीर धारण करता है, किन्तु जो सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपचेन्द्रिय जीव नरक में उत्पन्न होता है, उसे उस समय विभगज्ञान नही होता। इस कारण जघन्य अवगाहना वाले नारक को भजना से दो या तीन अज्ञान होते हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित—उत्कृष्ट अवगाहना वाले सभी नारको की स्थिति समान ही हो, या असमान ही हो, ऐसा नियम नही है। असमान होते हुए यदि हीन हो तो वह या तो असख्यातभागहीन होता है या सख्यातभागहीन और अगर अधिक हो तो असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक होता है। इस प्रकार स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित हीनाधिकता समझनी चाहिए। यहाँ सख्यातगुण और असख्यातगुण हीनाधिकता नही होती, इसलिए चतुःस्थानपतित सम्भव नही है, क्योकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक ५०० धनुष्य की ऊँचाई वाले सप्तम नरक मे ही पाए जाते है; और वहाँ जघन्य बाईस और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। अतएव इस स्थिति मे सख्यात-असख्यातभाग हानिवृद्धि हो सकती है, किन्तु सख्यात-असख्यातगुण हानि-वृद्धि की सभावना नही है।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियम से—उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारको में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमत. होते हैं, भजना से नही क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारको में सम्मूर्च्छिम असज्ञीपचेन्द्रिय की उत्पत्ति नही होती। अत उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि हो तो तीन अज्ञान नियमत. होते हैं।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना का अर्थ—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की अवगाहना अजघन्य-अनुत्कृष्ट या मध्यम अवगाहना कहलाती है। इस अवगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के समान नियत एक स्थान नही है। सर्वजघन्य अवगाहना अंगुल के

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ६३२ से ६३८

असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य की होती है। इन दोनों के बीच की जितनी भी अवगाहनाएं होती हैं, वे सब मध्यम अवगाहना की कोटि मे आती है। तात्पर्य यह है कि मध्यम अवगाहना सर्वजघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग अधिक से लेकर अंगुल के असंख्यातवे भाग कम पांच सौ धनुष की समझनी चाहिए। यह अवगाहना सामान्य नारक की अवगाहना के समान चतु:स्थानपतित हो सकती है।[1]

जघन्य स्थिति वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से तुल्य—जघन्य स्थिति वाले एक नारक से, जघन्यस्थिति वाला दूसरा नारक स्थिति की दृष्टि से समान होता है; क्योकि जघन्य स्थिति का एक ही स्थान होता है, उसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता सभव नही है।

जघन्य स्थिति वाले नारक अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित—एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से अवगाहना मे पूर्वोक्त व्याख्यानुसार चतु.स्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि उनमें अवगाहना जघन्य अगुल के असंख्यातवे भाग से लेकर उत्कृष्ट ७ धनुष तक पाई जाती है।

मध्यम स्थिति वाले नारकों की स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हीनाधिकता—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले नारको की स्थिति तो परस्पर तुल्य कही गई है, मगर मध्यम स्थिति वाले नारको की स्थिति मे परस्पर चतु स्थानपतित हीनाधिक्य है, क्योंकि मध्यम स्थिति तारतम्य से अनेक प्रकार की है। मध्यमस्थिति मे एक समय अधिक दस हजार वर्ष से लेकर एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति परिगणित है। इसलिए इसका चतु स्थानपतित हीनाधिक होना स्वाभाविक है।[2]

कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से नारकों की तुल्यता—जिस नारक मे कृष्णवर्ण का सर्वजघन्य अश पाया जाता है, वह दूसरे सर्वजघन्य अश कृष्णवर्ण वाले के तुल्य ही होता है, क्योकि जघन्य का एक ही रूप है, उसमे विविधता या हीनाधिकता नही होती।

ज्ञान और अज्ञान दोनों एक साथ नहीं रहते—जिस नारक मे ज्ञान होता है, उसमें अज्ञान नही होता और जिसमे अज्ञान होता है उसमे ज्ञान नही होता, क्योकि ये दोनो परस्पर विरुद्ध हैं। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को अज्ञान होता है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह मिथ्यादृष्टि नही होता और जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह सम्यक् दृष्टि नही होता।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनपति देवों के पर्याय

४६४. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असुरकुमाराणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणगस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले,

---

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६३८ से ६३९

२. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४४ से ६४७

३. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९ (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४९, ६५४

पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादीहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाणपज्जवेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६४-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६४-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, वर्ण आदि की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान एव अवधिज्ञान के पर्यायों, तीन अज्ञानो तथा तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि । एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाए वि । नवरं उक्कोसोगाहणए वि असुरकुमारे ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[४६४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमारो के (पर्यायो के) विषय मे (समझ लेना चाहिए ।) तथा इसी प्रकार मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले असुरकुमारो के (पर्यायो के सम्बन्ध मे जान लेना चाहिए ।) विशेष यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुर-कुमार भी स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) हैं ।

४६५. एवं जाव थणियकुमारा ।

[४६५] असुरकुमारो (के पर्यायो की वक्तव्यता) की तरह ही यावत् स्तनितकुमारो तक (के पर्यायो की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए ।)

विवेचना—जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनवासियो के पर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. ४६४-४६५) मे असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले दशाविध भवनपतियो के अनन्त पर्यायो का सयुक्तिक निरूपण किया गया है ।

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट एकेन्द्रियों के पर्याय

४६६. [१] **जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?**

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पुढविकाइए जहण्णोगाहणगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय प्ररूपित किये गए हैं ?

[४६६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय प्ररूपित किये गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, दो अज्ञानो की अपेक्षा से एव अचक्षुदर्शन के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[४६६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो का कथन भी करना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४६६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीव स्वस्थान मे अर्थात् अवगाहना की अपेक्षा से भी चतु:स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४६७. **[१] जहण्णट्ठितीयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा।**

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णट्ठितीयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पुढविकाइए जहण्णठितीयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं मति-अण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिते।

[४६७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[४६७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[४६७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिते ।

[४६७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वे स्वस्थान मे त्रिस्थानपतित हैं ।

४६८. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पुढविकाइए जहण्णगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाण-वडिते ।

[४६८-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक जीवो (के पर्यायो के परिमाण) की पृच्छा है !

[४६८-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ] गौतम ! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु.स्थान पतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है; काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; एव दो अज्ञानो और अचक्षुदर्शन के पर्यायो से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४६८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पृथ्वीकायिक जीवो के (पर्यायो के विषय में कथन करना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६८-२] मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४६९. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४६९] इसी प्रकार (पृथक्-पृथक् जघन्य-मध्यम-उत्कृष्टगुण वाले) पांच वर्णों, दो गन्धों,

पांच रसों और आठ स्पर्शों (से युक्त पृथ्वीकायिकों के पर्यायो) के विषय में (पूर्वोक्तसूत्रानुसार) कहना चाहिए ।

४७०. [१] जहण्णमतिअण्णाणीणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णमतिअण्णाणीणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णमतिअण्णाणी पुढविकाइए जहण्णमतिअण्णाणिस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, मतिअण्णाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिते ।

[४७०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७०-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित है; तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; मति-अज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) श्रुत-अज्ञान के पर्यायो तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[२] एवं उक्कोसमतिअण्णाणी वि ।

[४७०-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसमइअण्णाणी वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४७०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायो) के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि यह स्वस्थान अर्थात् मति-अज्ञान के पर्यायो में भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

४७१. एवं सुयअण्णाणी वि । अचक्खुदंसणी वि एवं चेव ।

[४७१] (जिस प्रकार जघन्यादियुक्त मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायो के विषय में कहा गया है) उसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी तथा अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए ।

४७२. एवं जाव वणप्फइकाइयाणं ।

[४७२] (जिस प्रकार जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम-मति श्रुतज्ञानी एवं अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक-पर्यायों के विषय मे कहा गया है,) उसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।)

विवेचन—जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादियुक्त पृथ्वीकायिक आदि पंच स्थावरों की पर्यायविषयक प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. ४६६ से ४७२ तक) मे जघन्य मध्यम एव उत्कृष्ट अवगाहना से लेकर अचक्षुदर्शन तक से युक्त पृथ्वीकायिक आदि पाच एकेन्द्रिय जीवों का पर्याय-विषयक कथन किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक आदि का अवगाहना की दृष्टि से पर्याय-परिमाण—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते हैं। किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिकादि अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान में परस्पर चतुःस्थानपतित होते हैं। अर्थात्—एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहनावाले पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थान-पतित होता है, क्योकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है। जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भांति उसका एक ही स्थान नही होता। कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव में पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते हैं। इस प्रकार के स्वस्थान में असख्यात वर्षों का आयुष्य संभव होने से असंख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन या असंख्यातगुणहीन होता है, अथवा असख्यातभाग अधिक, सख्यात भाग अधिक या सख्यातगुण अधिक अथवा असंख्यातगुण अधिक होता है; इस प्रकार चतुःस्थानपतित होता है। इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मति-श्रुताज्ञान एवं अचक्षुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित होती है।[1]

जघन्यादि स्थिति आदि वाले पृथ्वीकायिकादि का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण—स्थिति की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि, तथा मति-श्रुताज्ञान के एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य नही होता है; क्योकि पृथ्वीकायिक आदि की स्थिति सख्यातवर्ष की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिको की वक्तव्यता के प्रसंग में कही जा चुकी है। इसलिए जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले पृथ्वीकायिक आदि परस्पर यदि हीन हो तो असख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यातभाग-अधिक, सख्यातभाग-अधिक अथवा सख्यातगुण-अधिक होता है। वह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार असख्यातगुण हीन या अधिक नही होता।[2]

पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि में दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा क्यों?—पृथ्वी-कायिक आदि में सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं, इनमें सम्यक्त्व नही होता, और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि में उत्पन्न होता है। अतएव उनमे दो अज्ञान ही पाए जाते हैं। इसी कारण यहाँ

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६७५ से ६७८

२. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६७९-६८०

दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि में चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन भी नहीं होता। इसलिए यहां केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है।[1]

मध्यम वर्णादि से युक्त गुण वाले पृथ्वीकायिकादि का पर्यायपरिमाण—जैसे जघन्य और उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमें न्यूनाधिकता का सम्भव, नहीं उस प्रकार से मध्यम कृष्णवर्ण का स्थान एक नही है। एक अंश काला कृष्णवर्ण आदि जघन्य होता है और सर्वाधिक अंशों वाला कृष्ण वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनो के मध्य में कृष्णवर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे—दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला, अनन्तगुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णों तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे कृष्ण वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त हैं। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्टगुण वाले कृष्णादि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यमगुण कृष्णवर्ण आदि के पर्याय अनन्त हैं। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यमगुण कृष्णवर्ण हो, तो भी उनमें अनन्तगुणहीनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान में भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिकों की तरह अन्य एकेन्द्रियों का पर्याय-विषयक निरूपण—सूत्र ४७२ में बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवो के जघन्य, उत्कृष्ट एव मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की दृष्टि से पर्यायो की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों के पर्याय

४७३. [१] **जहण्णोगाहणगाणं भंते ! बेइंदियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७३-१ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा-२, पृ. ६८२

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा ३, पृ ६८२ से ६८४

३. (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६८८

जीव से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्ण, गंध रस एवं स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि। णवरं णाणा णत्थि।

[४७३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना वाले मे ज्ञान नही होता, इतना अन्तर है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए। णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिते।

[४७३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के पर्यायो की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है।

४७४. [१] जहण्णठितीयाणं भंते! बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जहण्णठितीयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठितीए बेइंदिए जहण्णठितीयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७४-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय हैं?

[४७४-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस दृष्टि से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय के अनन्त पर्याय कहे हैं?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है; तथा वर्ण, गंध रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञानों एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि। णवरं दो णाणा अब्भइया।

[४७४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियजीवों का भी (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि इनमें दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए जहा उक्कोसठितीए। णवरं ठितीए तिट्ठाणवडिते।

[४७४-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय के विषय में कहा गया

है, उसी प्रकार मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के पर्याय के विषय में कहना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है।

४७५. [१] जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए बेइंदिए जहण्णगुणकालयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिते।

[४७५-१ प्र.] जघन्यगुण कृष्णवर्ण वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्यगुण काले द्वीन्द्रियों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्वीन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्यगुण काले द्वीन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित (न्यूनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्णों तथा गंध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से; दो ज्ञान, दो अज्ञान एव अचक्षुदर्शन पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४७५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले द्वीन्द्रियों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४७५-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट गुण काले द्वीन्द्रिय जीवों का (पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

४७६. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४७६] इसी तरह पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्शों का (पर्याय विषयक) कथन करना चाहिए।

४७७. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! बेंदियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठ-

याए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध--रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४७७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य-आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षया तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा अचक्षुदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४७७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवो के (पर्यायों के विषय मे कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४७७-३] मध्यम-आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इस प्रकार से करना चाहिए किन्तु वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४७८. एवं सुतणाणी वि, सुतअण्णाणी वि, मतिअण्णाणी वि, अचक्खुदंसणी वि । णवरं जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि । जत्थ दंसणं तत्थ णाणा वि अणाण्णा वि ।

[४७८] इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, मति-अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी द्वीन्द्रिय जीवो के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए । विशेषता यह है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ अज्ञान नही होते, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान नही होते । जहाँ दर्शन होता है, वहाँ ज्ञान भी हो सकते हैं और अज्ञान भी ।

४७९. एवं तेइंदियाण वि ।

[४७९] द्वीन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कई अपेक्षाओं से कहा गया है, उसी प्रकार त्रीन्द्रिय के पर्याय-विषय में भी कहना चाहिए ।

४८०. चउरिंदियाण वि एवं चेव । णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं ।

[४८०] चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि इनके चक्षुदर्शन अधिक है । (शेष सब बातें द्वीन्द्रिय की तरह हैं ।)

विवेचन—जघन्यादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ४७३ से ४८० तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय चतुःस्थानपतित क्यों?—मध्यम अवगाहना वाला एक द्वीन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले दूसरे द्वीन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य नही होता, अपितु चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवगाहना सब एक-सी नही होती, एक मध्यम अवगाहना दूसरी मध्यम अवगाहना से संख्यातभाग हीन, असंख्यातभाग हीन, संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन तथा इसी प्रकार चारो प्रकार से अधिक भी हो सकती है। मध्यम अवगाहना अपर्याप्त अवस्था के प्रथम समय के अनन्तर ही प्रारम्भ हो जाती है। अतएव अपर्याप्तदशा में भी उसका सद्भाव होता है। इस कारण सास्वादनसम्यक्त्व भी मध्यम अवगाहना के समय सभव है। इसी से यहाँ दो ज्ञानो का भी सद्भाव हो सकता है। जिन द्वीन्द्रियों मे सास्वादन सम्यक्त्व नही होता, उनमें दो अज्ञान होते हैं।

जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रियों में दो अज्ञान की ही प्ररूपणा—जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो में दो अज्ञान ही पाए जाते हैं, दो ज्ञान नहीं, क्योंकि जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय जीव लब्धि-अपर्याप्तक होता है, लब्धि-अपर्याप्तकों के सास्वादनसम्यक्त्व उत्पन्न नही होता, इसका कारण यह है कि लब्धिअपर्याप्तक जीव अत्यन्त सक्लिष्ट होता है और सास्वादन सम्यक्त्व किंचित् शुभ-परिणामरूप है। अतएव सास्वादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय रूप मे उत्पाद नही होता।

उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों में दो ज्ञानों की प्ररूपणा—उत्कृष्टस्थितिक द्वीन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतएव जो वक्तव्यता जघन्यस्थितिक द्वीन्द्रियों के पर्यायविषय में कही है, वही उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों की भी समझनी चाहिए, किन्तु उनमें दो ज्ञानों के पर्यायों की भी प्ररूपणा करना चाहिए।

मध्यमस्थिति वाले द्वीन्द्रियों की वक्तव्यता—इनसे सम्बन्धित पर्यायपरिमाण की वक्तव्यता उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के समान समझनी चाहिए, किन्तु इसमें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित कहना चाहिए, क्योंकि सभी मध्यमस्थिति वालो की स्थिति तुल्य नही होती।

जघन्यगुणकृष्ण द्वीन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित—एक जघन्यगुण कृष्ण, दूसरे जघन्यगुण कृष्ण से स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, क्योंकि द्वीन्द्रिय की स्थिति संख्यात-वर्षों की होती है, इसलिए वह चतुःस्थानपतित नही हो सकता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी और सब प्ररूपणा तो जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी के समान ही है, किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह स्वस्थान में भी षट्स्थान-पतित हीनाधिक होता है। जैसे उत्कृष्ट और जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का एक-एक ही पर्याय है, वैसे मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का नहीं, क्योंकि उसके तो अनन्त हीनाधिकरूप

पर्याय होते हैं ।[1] त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्ररूपणा यथायोग्य द्वीन्द्रियों की तरह समझ लेना चाहिए ।

जघन्य अवगाहनादि वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय प्ररूपणा

४८१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोगाहणयस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८१-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८१-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता कि 'जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पचेन्द्रिय तिर्यंच, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, अज्ञानों और दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । णवरं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेषता इतनी ही है कि तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि । णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए ।

[४८१-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचो का (पर्यायविषयक) कथन (किया गया) है, उसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय-

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्रांक १९३
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी भा. २, पृ. ७०१ से ७०७

तिर्यञ्चों (से सम्बन्धित पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि ये अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित हैं, तथा स्थिति की दृष्टि से चतु:स्थानपतित हैं।

४८२. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णठितीयस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४८२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८२-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्यस्थिति वाला पचेन्द्रियतिर्यञ्च दूसरे जघन्यस्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, दो अज्ञान एव दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा।

[४८२-२] उत्कृष्टस्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यंचो का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि इनमे दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शनो (की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दंसणा।

[४८२-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो का (पर्याय विषयक कथन भी) इसी प्रकार (पूर्ववत करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से (यह) चतु:स्थानपतित हैं, तथा (इनमे) तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनो (की प्ररूपणा करनी चाहिए)।

४८३. [१] जहण्णगुणकालगाणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पचेंदियतिरिक्ख-

ओणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते ठितीए, चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणकृष्ण पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय हैं ?

[४८३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'जघन्यगुणकृष्ण पचेन्द्रियतिर्यंचों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला पचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्यगुण काले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एव तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४८३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के (पर्यायो के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि वे स्वस्थान (कृष्णगुणपर्याय) मे भी षट्-स्थानपतित है ।

४८४. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा ।

[४८४] इस प्रकार पाचो वर्णों, दो गन्धो, पाच रसो और आठ स्पर्शों से (युक्त तिर्यञ्ज-पचेन्द्रियो के पर्यायों के विषय मे कहना चाहिए ।)

४८५. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिते ।

[४८५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्याय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि । णवरं ठितीए तिट्ठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णी दंसणा, सट्ठाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणवडिते ।

[४८५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी पचेन्द्रिय-तिर्यंचो का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तीन ज्ञान, तीन दर्शन तथा स्वस्थान मे तुल्य है, शेष सब मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी । णवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८५-३] मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपचेन्द्रियों का पर्यायविषयक कथन, उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो की तरह समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है; तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४८६. एवं सुतणाणी वि ।

[४८६] जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहा है, उसी प्रकार (जघन्यादियुक्त) श्रुतज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

४८७. जहण्णोहिणाणीणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोहिणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोहिणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणिअस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं आभिणिबोहियणाण-सुतणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, ओहिणाणपज्जवेहिं, तुल्ले, अण्णाणा णत्थि, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४८७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गध, रस और स्पर्श के पर्यायो और आभिनिबोधिकज्ञान तथा श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है। (इसमे) अज्ञान नही कहना चाहिए। चक्षुदर्शन-पयायो और अचक्षुदर्शन पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

[४८७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो का (पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४८७-३] मध्यम अवधिज्ञानी (पचेन्द्रियतिर्यञ्चो) की (भी पर्यायप्ररूपणा) इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४८८. जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहिणाणी। ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि अत्थि त्ति भाणितव्वं।

[४८८] जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यचपचेन्द्रिय की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता है, उसी प्रकार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञन्नी की है, जैसी अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय-प्ररूपणा है, वैसी ही विभगज्ञानी की है। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता) आभिनिबोधिकज्ञानी की तरह है। अवधिदर्शनी की (पर्याय-वक्तव्यता) अवधिज्ञानी की तरह है। (विशेष बात यह है कि) जहाँ ज्ञान है, वहाँ अज्ञान नही है; जहाँ अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नही है, जहाँ दर्शन हैं, वहाँ ज्ञान भी हो सकते है, अज्ञान भी हो सकते हैं, ऐसे कहना चाहिए।

विवेचन—जघन्य-अवगाहनादि विशिष्ट पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू. ५८१ से ५८८ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो की, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, ज्ञानाज्ञानदर्शनयुक्त आदि विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय आयु सम्बन्धी काल मर्यादा (स्थिति) की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, चतु:स्थानपतित नही, क्योकि जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च संख्यात वर्षों की आयु वाला

ही होता है, असंख्यातवर्षों की आयु वाले के जघन्य अवगाहना नहीं होती। इसी कारण यहां जघन्य अवगाहनावान् तिर्यंचपचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित कहा गया है, जिसका स्वरूप पहले बताया जा चुका है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में अवधि या विभंगज्ञान नहीं—जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त होता है, और अपर्याप्त होकर अल्पकाल वाले जीवो मे उत्पन्न होता है, इसलिए उसमें अवधिज्ञान या विभगज्ञान सभव नही। इस कारण से यहाँ दो ज्ञानो और दो अज्ञानों का ही उल्लेख है। यद्यपि आगे कहा जाएगा कि कोई जीव विभगज्ञान के साथ नरक से निकलकर सख्यात वर्षों की आयु वाले पचेन्द्रियतिर्यंचो में उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाकायवालो में ही उत्पन्न हो सकता है, अल्पकाय वालो मे नही। इसलिए कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। अवगाहना में षट्स्थानपतित होता नही है।

मध्यम अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवगाहना एवं स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित—चूंकि मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की होती है, अतः उसमे संख्यात-असख्यातगुणहीनाधिकता हो सकती है तथा मध्यम अवगाहना वाला असख्यात वर्ष की आयुवाला भी हो सकता है, इसलिए स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपतित है।

उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की पर्यायवक्तव्यता—उत्कृष्ट स्थितिवाले पचेन्द्रियतिर्यंच तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते है, अतः उनमें दो ज्ञान दो अज्ञान होते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं, वे वैमानिक को आयु बांध लेते है, तब दो ज्ञान होते हैं। अब आशय से उनमे दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान कहे हैं।[1]

मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित—मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपचेन्द्रिय सख्यात अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, क्योकि एक समय कम तीन पल्योपम की आयुवाला भी मध्यमस्थितिक कहलाता है। अतः वह चतुःस्थानपतित है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित—असंख्यात वर्ष की आयु वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे भी अपनी भूमिका के अनुसार जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान पाए जाते हैं। इसी प्रकार सख्यातवर्ष की आयु वालो में जघन्य मतिश्रुतज्ञान सभव होने से यहाँ स्थिति की अपेक्षा से इसे चतु.स्थानपतित कहा है।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—क्योकि आभिनिबोधिक ज्ञान के तरतमरूप पर्याय अनन्त होते है। अतएव उनमें अनन्तगुणहीनता-अधिकता भी हो सकती हैं।

मध्यम अवधिज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्वस्थान में षट्स्थानपतित—इसका मतलब है—वह स्वस्थान अर्थात् मध्यम अवधिज्ञान मे षट्स्थानपतित होता है। एक मध्यम अवधिज्ञानी दूसरे मध्यम-अवधिज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय से **षट्स्थानपतितहीना** अधिक हो सकता है।

विभंगज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—चूंकि अवधिज्ञान और विभंगज्ञान असंख्यातवर्ष की आयु वाले को नही होता, अतः अवधिज्ञान और विभगज्ञान मे नियम से[2] त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, म. वृत्ति, पत्रांक १९३-१९४ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा. २, पृ. ७२१ से ७२७ तक

२. (क) म. वृत्ति, पत्रांक १९४ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा. २, पृ. ७२८ से ७३७ तक

जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादि वाले मनुष्यों की पर्यायप्ररूपणा

४८९. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए मणूसे जहण्णोगाहणगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गन्ध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

[४८९-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र.] ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, एव तीन ज्ञान, दो अज्ञान और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । नवरं ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे, अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागमब्भहिते; दो णाणा दो अण्णाणा दो दंसणा ।

[४८९-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो असख्यातभागहीन होता है, यदि अधिक हो तो असख्यातभाग अधिक होता है । उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणाए वि एवं चेव । नवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, आइल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४८९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यो का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९० [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए मणुस्से जहण्णठितीयस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४९०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९०-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा मे तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानो और दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि । नवरं दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा ।

[४९०-२] उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो के (पर्यायों के विषय में) भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि (उनमे) दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन (पाए जाते) हैं ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, आदिल्लेहिं चउनाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४९०-३] मध्यमस्थिति वाले मनुष्यो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, एव तीन अज्ञानो और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए मणूसे जहण्णगुणकालगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गन्ध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४९१-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९१-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्यगुण काले मनुष्यो के अनन्त-पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला मनुष्य दूसरे जघन्यगुण काले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवशिष्ट वर्णों, गन्धो, रसो और स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; चार ज्ञानो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४९१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले मनुष्यों के (पर्यायों के) विषय मे भी (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४९१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले मनुष्यो का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित हैं।

४९२. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४९२] इसी प्रकार पाच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस एव आठ स्पर्श वाले मनुष्यो का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

४९३. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणपज्जवेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४९३-१ प्र] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९३-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक-ज्ञानी

मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि। नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, तिहिं णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४९३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यो की पर्यायो के विषय मे जानना चाहिए।) विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा तीन ज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी। णवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४९३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो के पर्यायो के विषय मे उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो की तरह ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं, तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

४९४. एवं सुतणाणी वि।

[४९४] इसी प्रकार (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) श्रुतज्ञानी (मनुष्यो) के (पर्यायो के) विषय मे (सारा पाठ कहना चाहिए।)

४९५. [१] जहण्णोहिणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?

गोयमा! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठिईए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले, मणपज्जवणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

[४९५-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[४९५-१ उ.] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं (कि जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के अनन्त-पर्याय हैं)?

[उ] गौतम! एक जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित (पाठान्तर की दृष्टि से 'त्रिस्थानपतित') है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध,

रस और स्पर्श के पर्यायों एवं दो ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, मनःपर्यवज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

[४९५-२] इसी प्रकार का (कथन) उत्कृष्ट अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय मे (कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[४९५-३] इसी प्रकार मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि पाठान्तर की अपेक्षा से—'अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्वस्थान में वह षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४९६. जहा ओहिणाणी तहा मणपज्जवणाणी वि भाणितव्वे। नवरं ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए। जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मतिअण्णाणी सुतअण्णाणी य भाणितव्वे। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि भाणियव्वे। चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी। ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि।

[४९६] जैसा (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय मे कहा, वैसा ही (जघन्यादियुक्त) मनःपर्यायज्ञानी (मनुष्यो) के (पर्यायो के) विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से (वह) त्रिस्थानपतित है। जैसा (जघन्यादियुक्त) आभिनिबोधिक ज्ञानियो के पर्यायो के विषय मे कहा है, वैसा ही मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय में (कहना चाहिए।) जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) अवधिज्ञानी (मनुष्यो) का (पर्याय-विषयक) कथन किया है, उसी प्रकार विभगज्ञानी (मनुष्यो) का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी (मनुष्यो) का (पर्यायविषयक) कथन आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के समान है। अवधिदर्शनी का (पर्यायविषयक) कथन अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायविषयक कथन) के समान है। जहाँ ज्ञान होते हैं, वहाँ अज्ञान नही होते जहाँ अज्ञान होते हैं, वहा ज्ञान नही होते और जहाँ दर्शन हैं, वहां ज्ञान एवं अज्ञान दोनो में से कोई भी सभव है।

४९७. केवलणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ केवलणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! केवलनाणी मणूसे केवलणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेहिं य तुल्ले।

[४९७ प्र.] भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९७ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक केवलज्ञानी मनुष्य, दूसरे केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, एव केवलज्ञान के पर्यायो और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

४९८ एवं केवलदंसणी वि मणूसे भाणियव्वे।

[४९८] (जैसे केवलज्ञानी मनुष्यो के पर्याय के विषय में कहा गया,) वैसे ही केवलदर्शनी मनुष्यों के (पर्यायो के) विषय में कहना चाहिए।

विवेचन—मनुष्यो के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ४८९ से ४९८ तक) मे जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान आदि वाले मनुष्य के पर्यायो की विविध अपेक्षाओ से प्ररूपणा की गई है।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्य स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य नियम से सख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है, इस दृष्टि से वह त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होता है, अर्थात् वह असख्यात-सख्यातभाग एव सख्यातगुण हीनाधिक ही होता है।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्यों में तीन ज्ञानों और दो अज्ञानों की प्ररूपणा—किसी तीर्थंकर का अथवा अनुत्तरौपपातिक देव का अप्रतिपाती अवधिज्ञान के साथ जघन्य अवगाहना में उत्पाद होता है, तब जघन्य अवगाहना में भी अवधिज्ञान पाया जाता है। अतएव यहाँ तीन ज्ञानों का कथन किया गया है, किन्तु नरक से निकले हुए जीव का जघन्य अवगाहना में उत्पाद नही होता, क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए जघन्य अवगाहना मे विभंगज्ञान नहीं पाया जाता; इस कारण यहाँ (मूलपाठ मे) दो अज्ञानो की ही प्ररूपणा की गई है।

उत्कृष्ट अवगाहनावाले मनुष्य की स्थिति की दृष्टि से हीनाधिकतुल्यता—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की अवगाहना तीन गव्यूति (कोस) की होती है और उनकी स्थिति होती है—जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्योपम की। तीन पल्योपम का असंख्यातवां भाग, तीन पल्योपमो का असंख्यातवां ही भाग है। अतएव पल्योपम का असख्यातवां भाग कम तीन पल्योपम वाला मनुष्य, तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्य से असंख्यात भाग हीन होता है और पूर्ण तीन पल्योपम वाला मनुष्य उससे असख्यातभाग अधिक स्थिति वाला होता है। इनमें अन्य किसी प्रकार की हीनता या अधिकता सम्भव नही है। इस प्रकार के किन्ही दो मनुष्यो मे कदाचित् स्थिति की तुल्यता भी होती है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में दो ज्ञान और दो अज्ञान की प्ररूपणा—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यो में मति और श्रुत, ये दो ही ज्ञान अथवा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान, ये दो ही अज्ञान और दो ही दर्शन पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य

असंख्यातवर्ष की आयु वाले होते हैं, और असंख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्य में न तो अवधिज्ञान ही हो सकता है और न ही विभंगज्ञान, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है ।

मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य अवगाहनापेक्षया चतुःस्थानपतित—मध्यम अवगाहना संख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है और असख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है। असख्यातवर्ष की आयु वाला मनुष्य भी एक या दो गव्यूत (गाऊ) की अवगाहना वाला होता है । अत· अवगाहना की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपतित कहा गया है ।

चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम-अवगाहनायुक्त मनुष्य षट्स्थानपतित--मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यव, ये चारो ज्ञान द्रव्य आदि की अपेक्षा रखते हैं तथा क्षयोपशमजन्य हैं । क्षयोपशम में विचित्रता होती है, अतएव उनमें तरतमता होना स्वाभाविक है । इसी कारण चारो ज्ञानो की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्यो में षट्स्थानपतित हीनाधिकता बताई गई है ।[1]

केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से वे तुल्य हैं—समस्त आवरणो के पूर्णतया क्षय से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञान मे किसी प्रकार की तरतमता नही होती; इसलिए केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्य तुल्य हैं ।

जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही क्यों ?—सिद्धान्तानुसार सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही जघन्य स्थिति के होते हैं और वे नियमतः मिथ्यादृष्टि होते हैं । इस कारण जघन्यस्थिति वाले मनुष्यो मे दो अज्ञान ही हो सकते है, ज्ञान नही । अत यहाँ ज्ञानो का उल्लेख नही किया गया है ।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो में दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन क्यों ?– उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो की आयु तीन पल्योपम की होती है । अतएव उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ही पाए जाते है । जो ज्ञान वाले होते है वे वैमानिक की आयु का बन्ध करते हैं, तब उनमे दो ज्ञान होते है । असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यो में अवधिज्ञान, अवधिदर्शन या विभंगज्ञान का अभाव होता है । इस कारण इनमे दो ज्ञानो, दो अज्ञानो और दर्शनो का उल्लेख किया गया है; तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो का नही ।

मध्यमगुण कृष्ण मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित—मध्यमगुण कृष्णवर्ण के अनन्त तरतमरूप होते है, इस कारण वह स्वस्थान में भी षट्स्थानपतित होता है ।

जघन्य और उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों में ज्ञानादि का अन्तर—जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य के प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने से उसमें अवधिज्ञान और मन.पर्यायज्ञान नही होते जबकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य मे तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं ।

उत्कृष्ट आभिनिबोधिक मनुष्य त्रिस्थानपतित—चूंकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य नियमतः सख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है । सख्यातवर्ष की आयुवाला मनुष्य स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित ही होता है, किन्तु जो असंख्यातवर्ष की आयुवाला होता है, उसे भवस्वभाव के कारण उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञान नही होता ।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित—जैसे एक उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य, दूसरे उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी से तुल्य होता है, वैसे मध्यम आभिनिबो-

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९४ (ख) प्रज्ञापनाधिनी प्रमेयबो. टीका भा. २, पृ. ७५३ से ७५९ तक

धिकज्ञानी, मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी के तुल्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। इसलिए उनमें स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिकता सम्भव है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित क्यों?—मनुष्यो में सर्वजघन्य अवधिज्ञान पारभविक (पूर्वभव से साथ आया हुआ) नहीं होता, किन्तु वह तद्भव (उसी भव) सम्बन्धी होता है और वह भी पर्याप्त-अवस्था में, अपर्याप्त अवस्था में उसके योग्य विशुद्धि नहीं होती तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान् मनुष्य को होता है। इस कारण जघन्यावधिज्ञानी और उत्कृष्टावधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही होते हैं, किन्तु मध्यम अवधिज्ञानो चतु:स्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवधिज्ञान पारभविक भी हो सकता है, अतएव अपर्याप्त अवस्था मे भी सम्भव है।

स्थिति की अपेक्षा से जघन्यादियुक्त अवधिज्ञानी मनुष्य त्रिस्थानपतित क्यों?—अवधिज्ञान असख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्यो मे सम्भव नहीं, वह सख्यातवर्ष की आयु वालों को ही होता है। अत: जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यो मे सख्यातवर्ष की आयु की दृष्टि से त्रिस्थान-पतित हीनाधिकता हो हो सकती है, चतुःस्थानपतित नहीं।

जघन्यादियुक्त मनःपर्यवज्ञानी स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—मन:पर्यायज्ञान चारित्रवान् मनुष्यो को ही होता है, और चारित्रवान् मनुष्य सख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं। अत: जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट मन:पर्यायज्ञानी मानव स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित ही होते हैं।[1]

केवलज्ञानी मनुष्य अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित क्यों और कैसे?—यह कथन केवलीसमुद्घात की अपेक्षा से है, क्योंकि केवलीसमुद्घात करता हुआ केवलज्ञानी मनुष्य, अन्य केवली मनुष्यो की अपेक्षा असख्यातगुणी अधिक अवगाहना वाला होता है और उसकी अपेक्षा अन्य केवली असख्यातगुणहीन अवगाहना वाले होते हैं। अत अवगाहना की दृष्टि से केवलज्ञानी मनुष्य चतु:-स्थानपतित होते हैं।

स्थिति की अपेक्षा केवलीमनुष्य त्रिस्थानपतित—सभी केवली सख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं, अतएव उनमे चतु स्थानपतित हीनाधिकता सभव नहीं है। इस कारण वे त्रिस्थानपतित हीनाधिक हैं।[2]

वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की पर्याय-प्ररूपणा

४९९. [१] वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

[४९९-१] वाणव्यन्तर देवों में (पर्यायों की प्ररूपणा) असुरकुमारो के समान (समझ लेनी चाहिए।)

[२] एवं जोइसिया वेमाणिया। नवरं सट्ठाणे ठितीए तिट्ठाणवडिते भाणितव्वे। से त्तं जीवपज्जवा।

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९४-१९५-१९६ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, भा-२, पृ. ७६०-७७०

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९६, (ख) प्रज्ञापना प्र. बोध. टीका भा-२, पृ. ७७२

[४९९-२] ज्योतिष्को और वैमानिक देवो मे (पर्यायो की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए)। विशेष बात यह है कि वे स्वस्थान मे स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

यह जीव के पर्यायो की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४९९) में पूर्वोक्तसूत्रानुसार तीनो प्रकार के देवो के पर्यायो के कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है।

अजीव—पर्याय

अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या

५००. अजीवपज्जवा णं भंते कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—रूविअजीवपज्जवा य अरूविअजीवपज्जवा य।

[५०० प्र.] भगवन् ! अजीवपर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०० उ] गौतम ! (अजीवपर्याय) दो प्रकार के कहे है; वे इस प्रकार—(१) रूपी अजीव के पर्याय और अरूपी अजीव के पर्याय।

५०१. अरूविअजीवपज्जवा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा--धम्मत्थिकाए १, धम्मत्थिकायस्स देसे २, धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४, अधम्मत्थिकायस्स देसे ५, अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७, आगासत्थिकायस्स देसे ८, आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १०।

[५०१ प्र] भगवन् ! अरूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए है ?

[५०१ उ.] गौतम ! वे दस प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) धर्मास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय का देश, (३) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (४) अधर्मास्तिकाय, (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (६) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, (७) आकाशास्तिकाय, (८) आकाशास्तिकाय का देश, (९) आकाशास्तिकाय के प्रदेश और (१०) अद्धासमय (काल) के पर्याय।

५०२. रूविअजीवपज्जवा ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउविहा पण्णत्ता। तं जहा – खंधा १, खंधदेसा २, खंधपदेसा ३, परमाणुपोग्गले ४।

[५०२ प्र] भगवन् ! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०१ उ] गौतम ! वे चार प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्ध-प्रदेश और (४) परमाणुपुद्‍गल (के पर्याय)।

५०३. ते णं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! अणंता परमाणुपोग्गला, अणंता दुपदेसिया खंधा जाव अणंता दसपदेसिया खंधा, अणंता संखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता असंखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता अणंतपदेसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—ते णं नो सखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

[५०३ प्र.] भगवन् ! क्या वे (पूर्वोक्त रूपीअजीवपर्याय-चतुष्टय) संख्यात हैं, असख्यात हैं, अथवा अनन्त हैं ?

[५०३ उ.] गौतम ! वे सख्यात नही असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि वे (पूर्वोक्त चतुर्विध रूपी अजीवपर्याय सख्यात नही, असंख्यात नही, (किन्तु) अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! परमाणु-पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, यावत् दशप्रदेशिक-स्कन्ध अनन्त हैं, सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, और अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वे न संख्यात है, न ही असख्यात हैं, किन्तु अनन्त हैं ।

विवेचन—अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ५०० से ५०३ तक) मे अजीवपर्याय, उसके मुख्य दो प्रकार, तथा अरूपी और रूपी अजीव-पर्याय के भेद एव रूपी अजीवपर्यायों की संख्या का निरूपण किया गया है ।

रूपी और अरूपी अजीवपर्याय की परिभाषा—रूपी—जिसमें रूप हो, उसे रूपी कहते हैं । यहाँ 'रूप' शब्द से 'रूप' के अतिरिक्त 'गन्ध', रस और स्पर्श का भी उपलक्षण से ग्रहण किया जाता है । आशय यह है कि जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह रूपी कहलाता है । रूपयुक्त अजीव को रूपी अजीव कहते हैं । रूपी अजीव पुद्गल ही होता है, इसलिए रूपी अजीव के पर्याय का अर्थ हुआ—पुद्गल के पर्याय । अरूपी का अर्थ है—जिसमें रूप (रस, गन्ध और स्पर्श) का अभाव हो, जो अमूर्त हो । अत: अरूपी अजीव-पर्याय का अर्थ हुआ—अमूर्त्त अजीव के पर्याय ।

धर्मास्तिकायादि की व्याख्या—धर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का असंख्यातप्रदेशो का सम्पूर्ण (अखण्डित) पिण्ड (अवयवी द्रव्य) । **धर्मास्तिकायदेश**—धर्मास्तिकाय का अर्द्ध आदि भाग । **धर्मास्तिकायप्रदेश**—धर्मास्तिकाय के निरश (सूक्ष्मतम) अश । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय आदि के त्रिको को समझ लेना चाहिए । **अद्धासमय अप्रदेशी कालद्रव्य ।**[1]

द्रव्यों का कथन या पर्याय का ?—पर्यायो की प्ररूपणा के प्रसग में यहाँ पर्यायो का कथन करना उचित था, उसके बदले द्रव्यो का कथन इसलिए किया गया है कि पर्याय और पर्यायी (द्रव्य) कथंचित् अभिन्न हैं, इस बात की प्रतीति हो । वस्तुत: धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायदेश आदि पदो के उल्लेख से उन-उन धर्मास्तिकायादि त्रिको तथा अद्धासमय के पर्याय ही विवक्षित हैं, द्रव्य नही ।[2]

परमाणुपुद्गल आदि की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता

५०४. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

---

१. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२
२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिगुणहीणे वा असंखेज्जतिगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भहिए वा असंखेगुणअब्भहिते वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिते वा असंखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिते वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा; एवं अवसेसवण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, फासा णं सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५०४ प्र.] भगवन् ! परमाणुपुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०४ उ.] गौतम ! परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ.] गौतम ! एक परमाणुपुद्गल, दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की दृष्टि से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अभ्यधिक है । यदि हीन है, तो असख्यातभाग हीन है, सख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है; यदि अधिक है, तो असख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातभाग अधिक है, या सख्यातगुण अधिक है, अथवा असख्यातगुण अधिक है । कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो अनन्तभाग हीन है, या असख्यातभाग-हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है; अथवा सख्यातगुण हीन है, असख्यातगुण हीन है या अनन्तगुण-हीन है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक है, असख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातभाग अधिक है । अथवा सख्यातगुण अधिक है, असख्यातगुण अधिक है, या अनन्तगुण अधिक है । इसी प्रकार अवशिष्ट (काले वर्ण के सिवाय बाकी के) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । स्पर्शों मे शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गलो के अनन्त पर्याय प्ररूपित हैं ।

५०५. दुपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! दुपदेसिए दुपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भहिते पदेसमब्भहिते; ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादीहिं उवरिल्लेहिं चउहिं फासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५०५ प्र.] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०५ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया है कि द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है। यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, वर्ण आदि की अपेक्षा से और उपर्युक्त चार (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०६. एवं तिपएसिए वि। नवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा, अह अब्भहिते पएसमब्भहिते वा दुपएसमब्भहिते वा।

५०६ इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धों के (पर्यायो मे विषय मे कहना चाहिए।) विशेषता यह है कि अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेशहीन या द्विप्रदेशों से हीन होता है। यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक अथवा दो प्रदेश अधिक होता है।

५०७. एवं जाव दसपएसिए। नवरं ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसिए णवपएसहीणे त्ति।

[५०७] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशिक स्कन्धो तक का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से प्रदेशों की (क्रमशः) वृद्धि करना चाहिए; यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है।

५०८. संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! संखेज्जपएसिए खंधे संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए एवं चेव; ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५०८ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०८ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो, संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है। यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है। अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है। वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०९. असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसिए खंधे असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५०९ प्र.] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०९ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु.स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१०. अणंतपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५१० प्र.] भगवन् ! अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१० उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा वर्ण, गध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५११. एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगपएसोगाढ-पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५११ प्र.] भगवन् ! एक प्रदेश के अवगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५११ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय है ?

[उ.] गौतम ! एक प्रदेश मे अवगाढ एक पुद्गल, दूसरे प्रदेश में अवगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१२. एवं दुपएसोगाढे वि जाव दसपएसोगाढे।

[५१२] इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दसप्रदेशावगाढ स्कन्धो तक के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेना चाहिए।

५१३. संखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! संखेज्जपएसोगाढे पोग्गले संखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाइ-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५१३ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो (पुद्गलो) के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१४. असंखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठाए तुल्ले, पवेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठ-फासेहिं छट्ठाणवडिते।

[५१४ प्र.] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१४ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु.-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१५. एगसमयठितीयाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठ-याए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाण-वडिते।

[५१५ प्र.] भगवन् ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५१५ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक समय की स्थिति वाले पुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्-स्थानपतित है।

५१६. एवं जाव दससमयठिईए।

[५१६] इस प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।

५१७. संखेज्जसमयठितीयाणं एवं चेव। नवरं ठितीए दुट्ठाणवडिते।

[५१७] संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है।

५१८. असंखेज्जसमयठितीयाणं एवं चेव। नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिते।

[५१८] असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

५१९. एगगुणकालगाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले[1] एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अट्ठहिं फासेहिं छट्ठाणवडिते।

[५१९ प्र.] भगवन् ! एकगुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१९ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक गुण काला एक पुद्गल, दूसरे एक गुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु.स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट (कृष्णवर्ण के अतिरिक्त अन्य) वर्णों, गन्धो, रसो और स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एव अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से (भी) षट्स्थानपतित है।

५२०. एवं जाव दसगुणकालए।

[५२०] इसी प्रकार यावत् दश गुण काले (पुद्गलों) की (पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।)

५२१. संखेज्जगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते।

[५२१] सख्यातगुण काले (पुद्गलों) का (पर्याय विषयक कथन) भी इसी प्रकार (जानना चाहिए।) विशेषता यह है कि (वे) स्वस्थान में द्विस्थानपतित हैं।

---

१. ग्रन्थाग्रम् ३०००

५२२. एवं असंखेज्जगुणकालए वि । णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते ।

[५२२] इसी प्रकार असंख्यातगुण काले (पुद्गलों) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में चतुःस्थानपतित हैं।

५२३. एवं अणंतगुणकालए वि । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५२३] इसी तरह अनन्तगुणे काले (पुद्गलो) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

५२४. एवं जहा कालवण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासाणं वत्तव्वया भाणितव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे ।

[५२४] इसी प्रकार जैसे कृष्णवर्ण वाले (पुद्गलो) की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कही है,) वैसे ही शेष सब वर्णों, गन्धो रसो और स्पर्शों (वाले पुद्गलो) की (पर्यायसम्बन्धी) वक्तव्यता यावत् अनन्तगुण रूक्ष (पुद्गलो) की (पर्यायो सम्बन्धी) वक्तव्यता तक कहनी चाहिए।

विवेचन—परमाणुपुद्गल आदि की पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रो (सू ५०४ से ५२४ तक) में विविध प्रकार के पुद्गलो की विभिन्न अपेक्षाओ से पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

रूपी-अजीव-पर्यायप्ररूपणा का क्रम—(१) परमाणुपुद्गल तथा द्वि-त्रि-दश-सख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशिक पुद्गलो के विषय मे, (२) आकाशीय एकप्रदेशावगाढ से लेकर असख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गलो के विषय मे, (३) एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलो के विषय मे, (४) एकगुण कृष्ण से अनन्तगुण कृष्ण पुद्गलो के विषय मे तथा शेष वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श पुद्गलों के विषय मे पर्याय-प्ररूपणा क्रमशः की गई है।[1]

परमाणुपुद्गलों में अनन्तपर्यायों की सिद्धि—प्रस्तुत मे यह प्रतिपादन किया गया है कि परमाणु द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्यायो से युक्त होता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य होता है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु एक-एक स्वतन्त्र द्रव्य है। वह निरंश ही होता है तथा नियमतः आकाश के एक ही प्रदेश मे अवगाहना करके रहता है। इसलिए इन तीनो की अपेक्षा से वह तुल्य है। किन्तु स्थिति की अपेक्षा से एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योकि परमाणु की जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट असख्यात काल की है, अर्थात्—कोई पुद्गल परमाणुरूप पर्याय में कम से कम एक समय तक रहता है और अधिक से अधिक असख्यात काल तक रह सकता है। इसलिए सिद्ध है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीन या अधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस एव स्पर्श, विशेषतः चतु स्पर्शों की अपेक्षा से परमाणु-पुद्गल में षट्स्थानपतित हीनधिकता होती है। अर्थात्—वह असख्यात-सख्यात-अनन्तभागहीन, या संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण हीन अथवा असख्यात-सख्यात-अनन्तभाग अधिक अथवा संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण अधिक है।

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भाग १, पृ. १५१ से १५४ तक

प्रदेशहीन परमाणु में अनन्त पर्याय कैसे ?—परमाणु को जो 'अप्रदेशी' कहा गया है, वह द्रव्य की अपेक्षा से है, काल और भाव की अपेक्षा से वह अप्रदेशी या निरंश नहीं है।

परमाणु : चतुःस्पर्शी और षट्स्थानपतित—एक परमाणु में आठ स्पर्शों में से सिर्फ चार स्पर्श ही होते हैं। वे ये हैं—शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। बल्कि असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक मे ये चार ही स्पर्श होते हैं। कोई-कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी चार स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार एक-प्रदेशावगाढ से लेकर संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल (स्कन्ध) भी चार स्पर्शों वाले होते हैं। अतः इन अपेक्षाओं से परमाणु को षट्स्थानपतित समझना चाहिए।[1]

द्विप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से हीन, अधिक और तुल्य : क्यों और कैसे—जब दो द्विप्रदेशी स्कन्ध आकाश के दो-दो प्रदेशों या दोनों—एक-एक प्रदेश में अवगाढ हों, तब उनकी अवगाहना तुल्य होती है। किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश मे अवगाढ हो और दूसरा दो प्रदेशों में, तब उनमें अवगाहना की दृष्टि से हीनाधिकता होती है। जो एक प्रदेश में अवगाढ है, वह दो प्रदेशों मे अवगाढ स्कन्ध की अपेक्षा एकप्रदेश हीन अवगाहना वाला कहलाता है, जबकि दो प्रदेशो में अवगाढ स्कन्ध एकप्रदेशावगाढ की अपेक्षा एकप्रदेश-अधिक अवगाहना वाला कहलाता है। द्विप्रदेशी स्कन्धो की अवगाहना में इससे अधिक हीनाधिकता संभव नहीं है।

त्रिप्रदेशी स्कन्धों में हीनाधिकता : अवगाहना की दृष्टि से—तीन प्रदेशों का पिण्ड त्रिप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। वह आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकता है, दो प्रदेशों में भी और तीन आकाश प्रदेशों में भी रह सकता है। तीन आकाशप्रदेशों से अधिक में उसकी अवगाहना संभव नहीं। ऐसी स्थिति मे यदि त्रिप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में हीनता और अधिकता हो तो एक या दो आकाशप्रदेशों की ही हो सकती है, अधिक की नहीं।

दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता : अवगाहना की दृष्टि से—जब दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन-तीन प्रदेशो में, दो-दो प्रदेशों में या एक-एक प्रदेश में अवगाढ होते हैं, तब वे अवगाहना की दृष्टि से परस्पर तुल्य होते हैं, किन्तु जब एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशावगाढ और दूसरा द्विप्रदेशाव-गाढ होता है, तब वह एकप्रदेशहीन होता है। यदि दूसरा एकप्रदेशावगाढ होता है तो वह द्विप्रदेशहीन होता है और वह त्रिप्रदेशावगाढ द्विप्रदेशावगाढ से एकप्रदेशाधिक और एकप्रदेशावगाढ से द्विप्रदेशाधिक होता है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढ़ा कर चारप्रदेशी से दशप्रदेशी तक के स्कन्धो में अवगाहना की अपेक्षा से हानिवृद्धि का कथन कर लेना चाहिए। इस दृष्टि से दशप्रदेशी स्कन्ध मे हीनाधिकता इस प्रकार कही जाएगी—दशप्रदेशी स्कन्ध जब हीन होता है तो एकप्रदेशहीन, द्विप्रदेशहीन यावत् नौप्रदेशहीन होता है और अधिक हो तो एकप्रदेशाधिक यावत् नवप्रदेशाधिक होता है।[2]

संख्यातप्रदेशी स्कन्ध की अनन्तपर्यायता—संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य-दृष्टि से तुल्य होता है। वह द्रव्य है, इस कारण अनन्तपर्याय वाला भी है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याययुक्त होता है। प्रदेशों की दृष्टि से वह हीन, तुल्य या अधिक भी हो सकता है। यदि हीन या अधिक हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन अथवा संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०१ (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी पृ ७९८-८०१

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०१ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका पृ. ८०६-८०७

अधिक होता है। इसीलिए इसे द्विस्थानपतित कहा है। अवगाहना की दृष्टि से भी वह द्विस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है। वर्णादि में तथा पूर्वोक्त चतु:स्पर्शों में षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित ही क्यों? अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित ही होता है, षट्स्थानपतित नही, क्योकि लोकाकाश के असंख्यातप्रदेश ही हैं और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अधिक से अधिक असख्यात प्रदेशो में ही अवगाहन करता है। अतएव उसमें अनन्तभाग एव अनन्तगुण हानि-वृद्धि की सम्भावना नही है। इस कारण वह षट्स्थानपतित नही हो सकता। हां, वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशीस्कन्ध से वर्णादि की दृष्टि से अनन्त-असख्यात-संख्यातभाग हीन, अथवा सख्यातगुण या असख्यातगुण हीन, अनन्तगुण हीन और इसी प्रकार अधिक भी हो सकता है। इसलिए इनमे षट्स्थानपतित हो सकता है।[1]

एकप्रदेशावगाढ परमाणु प्रदेशों की दृष्टि से षट्स्थानपतित हानिवृद्धिशील—द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होने पर भी प्रदेशो की अपेक्षा से इसमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता है; क्योकि एकप्रदेशी परमाणु भी एक प्रदेशो में रहता है और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक ही प्रदेश मे रह सकता है। किन्तु अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है तथा वर्णादि एव चतु.स्पर्शों की दृष्टि से षट्स्थानपतित होता है।

असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल स्वावगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित—चूंकि लोकाकाश के असख्यात ही प्रदेश है, जिनमे पुद्गलो का अवगाहन है। अत: अनन्तप्रदेशो मे किसी भी पुद्गल की अवगाहना सभव नही है।[2]

संख्यातगुण काला पुद्गल स्वस्थान में द्विस्थानपतित—सख्यातगुण काला पुद्गल या तो सख्यातभाग हीन कृष्ण होता है अथवा सख्यातगुण हीन कृष्ण होता है। अगर अधिक हो तो सख्यात-भाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है।

अनन्तगुण काला पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित—अनन्तगुण काले एक पुद्गल में दूसरा अनन्तगुण काला पुद्गल अनन्तभाग हीन, असंख्यातभाग हीन संख्यातभाग हीन, अथवा संख्यातगुण हीन, असख्यातगुण हीन अनन्तगुण हीन होता है। यानी वह षट्स्थानपतित होता है।[3]

जघन्यादि विशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की पर्यायप्ररूपणा

५२५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! दुपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?

१. (क) प्रज्ञापना. म वृत्ति, पत्रांक २०२ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ ८११ से ८१३
२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०३ (ख) प्रज्ञापना प्र बो. टीका, पृ. ८१४ से ८१९
३ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्रांक २०३-२०४ (ख) प्रज्ञापना प्र. बो. टीका, पृ ८२१-८२२

गोयमा ! जहण्णोगाहणए दुपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सेसवण्ण-गंध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोतमा ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं दुपएसियाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५२५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२५-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्ण वर्ण के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक पुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[२] **उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव ।**

[५२५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले [द्विप्रदेशी पुद्गल-(स्कन्धो) के पर्यायो] के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

[३] **अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि ।**

[५२५-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नहीं होते ।

५२६. [१] जहण्णोगाहणयाणं भंते ! तिपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहा दुपएसिते जहण्णोगाहणते ।

[५२६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२६-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी (पुद्गलों की पर्यायविषयक वक्तव्यता कही है,) वैसी ही (वक्तव्यता) जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के विषय में कहनी चाहिए ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव ।

[५२६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि ।

[५२६-३] इसी तरह मध्यम अवगाहना वाले त्रिप्रदेशो पुद्गलों के (पर्यायों के) विषय में (कहना चाहिए ।)

५२७. [१] जहण्णोगाहणयाणं भंते ! चउपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा जहण्णोगाहणए दुपएसिते तहा जहण्णोगाहणए चउपएसिते ।

[५२७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय कितने कहे हैं ?

[५२७-१ उ.] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्याय जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के पर्याय की तरह (समझना चाहिए ।)

[२] एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि ।

[५२७-२] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के पर्यायो का कथन किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्यायों का कथन करना चाहिये ।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि चउप्पएसिते । णवरं ओगाहणट्ठयाते सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जति हीणे पएसहीणे, अहऽब्भइते पएसब्भतिए ।

[५२७-३] इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्ध का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है ।

५२८. एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं । णवरमजहण्णुक्कोसोगाहणए पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा, जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढिज्जंति ।

[५२८] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए ।) विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले मे एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए । इस प्रकार यावत् दशप्रदेशी तक सात प्रदेश बढते हैं ।

५२९. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! संखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणगे संखेज्जपएसिए जहण्णोगाहणगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिए, वण्णादि-चउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५२९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२९-१ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य अवगाहना वाले संख्यात-प्रदेशी पुद्गलों (स्कन्धो) के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थापनपतित है और वर्णादि चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[५२९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले (सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते।

[५२९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्याय-विषयक कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में (अवगाहना की अपेक्षा से) द्विस्थानपतित है।

५३०. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असंखेज्जपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाण-वडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३०-१ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असख्यात-प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है और वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[५३०-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय) के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[५३०-३] मध्यम अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों) का (पर्याय-विषयक कथन भी) इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह) स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

५३१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता!

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?

गोयमा! जहण्णोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहिं छट्ठाणवडिए।

[५३१-१ प्र.] भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[५३१-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं?

[उ] गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए वि तुल्ले।

[५३१-२] उत्कृष्ट अवगहाना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का (पर्यायविषयक कथन) भी इसी प्रकार (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा भी तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए अणंतपएसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिते।

[५३१-३ प्र.] भगवन्! मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[५३१-३ उ-] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र,] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं?

[उ.] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५३२. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए परमाणुपोग्गले जहण्णठितीयस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-दुफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३२-१ उ.] गौतम ! (उसके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है तथा स्थिति की अपेक्षा से (भी) तुल्य है एवं वर्णादि तथा दो स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि।

[५३२-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलो के पर्यायो) के विषय मे (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३२-३] मध्यम स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलो के पर्यायो) के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

५३३. [१] जहण्णठितीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! ?

गोयमा ! जहण्णठितीए दुपएसिते जहण्णठितीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेसब्भतिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन और यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक है । स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५३३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३३-३] मध्यम स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतु.स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

५३४. एव जाव दसपदेसिते । नवरं पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा । ओगाहणट्ठयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपएसिए णव पएसा वड्ढिज्जंति ।

[५३४] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायो के विषय मे समझ लेना चाहिए । विशेष यह है कि इसमे एक-एक प्रदेश की क्रमश: परिवृद्धि करनी चाहिए । अवगाहना के तीनो गमो (आलापको) में यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक ऐसे ही कहना चाहिए । (क्रमश:) नौ प्रदेशो की वृद्धि हो जाती है ।

५३५. [१] जहण्णट्ठितीयाण भंते ! संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णट्ठितीए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णठितीयस्स संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३५-१ प्र] जघन्य स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे गए हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति को अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतु:स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि।

[५३५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय मे कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३५-३] मध्यम स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

५३६. [१] जहण्णठितीयाणं असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए असंखेज्जपएसिए जहण्णठितीयस्स असंखेज्जपवेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३६-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला असख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठिईए वि।

[५३६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३६-३] मध्यम स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायो के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा चतु.स्थानपतित है।

५३७. [१] जहण्णठितीयाणं अणंतपवेसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए अणंतपएसिए जहण्णठितीयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३७-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से तुल्य है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५३७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्यायो के विषय मे समझना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित होता है।

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू ५२५ से ५३७ तक) मे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना एवं स्थिति वाले परमाणु पुद्गलो तथा द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् सख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो में शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध, ये चार स्पर्श ही पाए जाते हैं, इनमें शेष कर्कश, कठोर, हलका (लघु) और भारी (गुरु), ये चार स्पर्श नही पाए जाते। इनमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता पाई जाती है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध में मध्यम अवगाहना नहीं होती—दो परमाणुओं का पिण्ड द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। उसकी अवगाहना या तो आकाश के एक प्रदेश में होगी अथवा अधिक से अधिक दो आकाशप्रदेशों मे होगी। एक प्रदेश मे जो अवगाहना होती है, वह जघन्य अवगाहना है और दो प्रदेशो में जो अवगाहना है, वह उत्कृष्ट है। इन दोनों के बीच की कोई अवगाहना नही होती। अतएव मध्यम अवगाहना का अभाव है।

मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्धों की हीनाधिकता—चतु:प्रदेशी स्कन्ध की जघन्य अवगाहना एक प्रदेश मे और उत्कृष्ट अवगाहना चार प्रदेशों मे होती है। मध्यम अवगाहना दो प्रकार की है—दो प्रदेशो में और तीन प्रदेशों में। अतएव मध्यम अवगाहना वाले एक चतु:प्रदेशी स्कन्ध से दूसरा चतु:प्रदेशी स्कन्ध यदि अवगाहना से हीन होगा तो एकप्रदेशहीन ही होगा और अधिक होगा तो एकप्रदेशाधिक ही होगा। इससे अधिक हीनाधिकता उनमें नही हो सकती।

मध्यमावगाहनाशील चतुःप्रदेशी से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक-प्रदेशवृद्धि-हानि—मध्यम अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्ध से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश की वृद्धि-हानि होती है। तदनुसार चतु:प्रदेशी स्कन्ध मे एक, पंचप्रदेशी स्कन्ध मे दो, षट्प्रदेशी स्कन्ध में तीन, सप्तप्रदेशी स्कन्ध में चार, अष्टप्रदेशी स्कन्ध में पांच, नवप्रदेशी स्कन्ध में छह और दशप्रदेशी स्कन्ध में सात प्रदेशो की वृद्धि-हानि होती है।

जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों से द्विस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी एक स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से संख्यातभाग प्रदेशहीन या संख्यातगुण प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभागप्रदेशाधिक अथवा सख्यातगुणप्रदेशाधिक होता है। इसीलिए इसे प्रदेशों को दृष्टि से द्विस्थानपतित कहा गया है।

मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध स्वस्थान में द्विस्थानपतित—एक मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले सख्यात प्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की दृष्टि से संख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन होता है, अथवा संख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है।

मध्यम अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी पर्याय-प्ररूपणा जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा के समान ही है। मध्यम अवगाहना वाले अर्थात्—आकाश के दो से लेकर असख्यात प्रदेशों में स्थित पुद्‌गलस्कन्ध की पर्यायप्ररूपणा इसी प्रकार है, किन्तु विशेष बात यह है कि स्वस्थान मे चतु:स्थानपतित है।

मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का अर्थ—आकाश के दो आदि प्रदेशों से लेकर असख्यातप्रदेशो में रहे हुए मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं।[1]

जघन्यस्थितिक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की दृष्टि से द्विस्थानपतित—यदि हीन हो तो सख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इसलिए यह द्विस्थानपतित है।[2]

जघन्यादियुक्त वर्णादियुक्त पुद्‌गलों की पर्याय-प्ररूपणा

५३८. [१] जहण्णगुणकालयाणं परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए परमाणुपोग्गले जहण्णगुणकालगस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठयाएतुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि, गंध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३८-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले परमाणुपुद्‌गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३८-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र. म वृत्ति पत्रांक २०३ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८४१ से ८५८ तक

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०४ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८५९-८६०

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण नही होते तथा गन्ध, रस और दो स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] एवमजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५३८-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले परमाणुपुद्गलों की भी पर्याय-प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५३९. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! दुपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए दुपएसिए जहण्णगुणकालगस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पएसमब्भतिए; ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसवण्णादि-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धो के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[५३९-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले (द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३९-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५३९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित कहना चाहिए।

५४०. एवं जाव दसपएसिते। णवरं पएसपरिवुड्ढी, ओगाहणा तहेव।

[५४०] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना से उसी प्रकार है।

५४१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! संखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए संखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्ण-पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५४१-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे है ?

[५४१-१ उ] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय हैं।

[प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं?)

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५४१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायो के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४२. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठ-

याए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४२-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला असख्यातप्रदेशी पुद्‌गलस्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असख्यातप्रदेशी पुद्‌गलस्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित है तथा कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४२-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले (असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए ।) विशेष इतना है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

५४३. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए अणंतपएसिए जहण्णगुणकालयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, काल-वण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५४३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] ! भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट वर्ण आदि अष्टस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में जानना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४३-३] इसी प्रकार (का पर्याय-विषयक कथन) मध्यगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का करना चाहिए ।)

५४४. एवं नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुर-रसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा । नवरं परमाणुपोग्गलस्स सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णति, दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णति, तित्तस्स अवसेसा ण भण्णंति । एवं कडुयादीण वि । सेसं तं चेव ।

[५४४] इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल (श्वेत), सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, काषाय, आम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों से भी अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि सुगन्ध वाले परमाणुपुद्‌गल में दुर्गन्ध नही कहा जाता और दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्‌गल में सुगन्ध नही कहा जाता । तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रस का कथन नही करना चाहिए, कटु आदि रसों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए । शेष सब बाते उसो तरह (पूर्ववत्) ही हैं ।

५४५. [१] जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकक्खडे अणंतपएसिए जहण्णगुणकक्खडस्स अणंतपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणवडिते, कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५४५-१-प्र] भगवन् ! जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५४५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस आशय से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है एवं वर्ण, गन्ध एवं रस की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, कर्कशस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट सात स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकक्खडे वि ।

[५४५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायों के विषय में समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४५-३] मध्यमगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४६. एवं मउय-गरुय-लहुए वि भाणितव्वे।

[५४६] मृदु, गुरु (भारी) और लघु (हलके) स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय-विषय में भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

५४७. [१] जहण्णगुणसीयाणं भंते! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं?

गोयमा! जहण्णगुणसीते परमाणुपोग्गले जहण्णगुणसीतस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहि य तुल्ले, उसिणफासो न भण्णति, णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५४७-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुणशील परमाणुपुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[५४७-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं?

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रसों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों से तुल्य है। इसमें उष्णस्पर्श का कथन नही करना चाहिए। स्निग्ध और रूक्षस्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोगुणसीते वि।

[५४७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (परमाणुपुद्गलो) के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४७-३] मध्यमगुण शीत (परमाणुपुद्गलों) के (पर्यायों के सम्बन्ध में भी) इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

५४८. [१] जहण्णगुणसीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते दुपएसिए जहण्णगुणसीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसमब्भतिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ।

[५४८-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४८-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गंध और रस के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि ।

[५४८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (द्विप्रदेश स्कन्धो की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए ।

[५४८-३] मध्यमगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धो) का पर्यायसम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

५४९. एवं जाव दसपएसिए । नवरं ओगाहणट्ठयाए पदेसपरिवुड्डी कायव्वा जाव दसपएसियस्स णव पएसा वड्ढिज्जंति ।

[५४९] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धों तक का (पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्य समझ लेना चाहिए ।) विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से पर्याय की वृद्धि करनी चाहिए। (इस दृष्टि से) यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक नौ प्रदेश बढ़ते हैं।

५५०. [१] जहण्णगुणसीयाणं संखेज्जपएसियाणं भंते ! पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते संखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-णिद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिए ।

[५५०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५०-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है; स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श की दृष्टि से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि।

[५५०-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण शीत (संख्यातप्रदेशी स्कन्धों की भी पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[५५०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय सम्बन्धी कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५५१. [१] जहण्णगुणसीताणं असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।
गोयमा ! अणंता।
से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठिईए चउट्ठाणवडिते, वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५१-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण शीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५१-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि।

[५५१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५५१-३] मध्यमगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

५५२. [१] जहण्णगुणसीताणं अणंतपदेसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते अणंतपदेसिए जहण्णगुणसीतस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५२-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि।

[५५२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायो के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५५२-३] मध्यमगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५५३. एवं उसिणे णिद्धे लुक्खे जहा सीते। परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो, सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणितव्वं।

[५५३] जिस प्रकार (जघन्यादियुक्त) शीतस्पर्श-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहा गया

है, उसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों (वाले उन-उन-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।) इसी प्रकार परमाणुपुद्गल में इन सभी का प्रतिपक्ष नही कहा जाता, यह कहना चाहिए ।

विवेचना—जघन्यादियुक्त वर्णादि-पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू. ५३८ से ५५३ तक) मे कृष्णादि वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के परमाणुपुद्गलो, द्विप्रदेशी से सख्यात-असख्यात-अनन्त प्रदेशी स्कन्धो तक के पर्यायो की प्ररूपणा की गई है ।

कृष्णादि वर्णों तथा गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्याय—कृष्ण, नील आदि पांच वर्णों, दो प्रकार के गन्धो, पाच प्रकार के रसो और आठ प्रकार के स्पर्शों के प्रत्येक के तरतमभाव की अपेक्षा से अनन्त-अनन्त विकल्प होते है । तदनुसार कृष्ण आदि अनन्त-अनन्त प्रकार के हैं ।

जघन्यगुण उत्कृष्टगुण एवं मध्यमगुण कृष्णादि वर्ण की व्याख्या—कृष्णवर्ण की सबसे कम मात्रा जिसमे पाई जाती है, वह पुद्गल **जघन्यगुण काला** कहलाता है । यहाँ गुणशब्द अंश या मात्रा के अर्थ मे प्रयुक्त है । जघन्यगुण का अर्थ है—सबसे कम अश । दूसरे शब्दो मे यों कह सकते हैं कि जिस पुद्गल मे केवल एक डिग्री का कालापन हो—जिससे कम कालापन का सम्भव ही न हो, वह **जघन्यगुण काला** समझना चाहिए । जिसमें कालेपन के सबसे अधिक अश पाए जाएं, वह उत्कृष्टगुण काला है । एक अश कालेपन से अधिक और सबसे अधिक (अन्तिम) कालेपन से एक अश कम तक का काला मध्यमगुणकाला कहलाता है । कृष्णवर्ण की तरह ही जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यमगुणयुक्त नीलादि वर्णों, तथा गन्धो, रसो एव स्पर्शों के विषय मे समझना चाहिए ।[1]

अवगाहना की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध की हीनाधिकता—एक द्विप्रदेशी स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से यदि हीन हो तो एक-एक प्रदेश कम अवगाहना वाला हो सकता है और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अवगाहना वाला हो सकता है । तात्पर्य यह है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध की अवगाहना मे एक प्रदेश से अधिक न्यूनाधिक अवगाहना का सम्भव नही है ।

द्विप्रदेशी स्कन्ध से दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर प्रदेशवृद्धि—इनकी पर्याय-वक्तव्यता द्विप्रदेशी, स्कन्ध के समान है, किन्तु उनमे उत्तरोत्तर प्रदेशों की वृद्धि करनी चाहिए । अर्थात्—दशप्रदेशी स्कन्ध तक क्रमश: नौ प्रदेशो की वृद्धि कहनी चाहिए ।

जघन्यगुण कृष्ण संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश एवं अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित—प्रदेशो की अपेक्षा से वह द्विस्थानपतित होता है, अर्थात्—वह सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन या संख्यातभाग-अधिक अथवा संख्यातगुण-अधिक होता है । इसी प्रकार अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित है ।[2]

परस्पर विरोधी गन्ध, रस और स्पर्श का परमाणुपुद्गल में अभाव—जिस परमाणुपुद्गल मे सुरभिगन्ध होती है, उनमें दुरभिगन्ध नही होती, और जिसमें दुरभिगन्ध होती है, उसमें सुरभिगन्ध नही होती, क्योकि परमाणु एक गन्ध वाला ही होता है । इसलिए जिस गन्ध का कथन किया जाए, वहा दूसरी गन्ध का अभाव कहना चाहिए । इसी प्रकार जहाँ एक रस का कथन हो, वहाँ दूसरे रसो का अभाव समझना चाहिए । अर्थात्—जहाँ तिक्त रस हो, वहाँ शेष कटु आदि रस नही होते; क्योंकि

---

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ८८५-८८६

२. प्रज्ञापनासूत्र प्र. बो. टीका, भा. २, पृ. ८८७ से ८९०

उनमें परस्पर विरोध है। इसी प्रकार जहाँ पुद्गल परमाणु में शीतस्पर्श का कथन हो, वहाँ उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों स्पर्श विरोधी हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। जैसे—स्निग्ध और रूक्ष, मृदु और कर्कश, लघु और गुरु परस्पर विरोधी स्पर्श हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चाहिए।[1]

जघन्यादि सामान्य पुद्गल स्कन्धों की विविध अपेक्षाओं से पर्यायप्ररूपणा

५५४. [१] जहण्णपदेसियाणं भंते ! खंधाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णपदेसिते खंधे जहण्णपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेस-मब्भतिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-उवरिल्लचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५४-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्यप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य हैं और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, और यदि अधिक हो तो भी एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्ण, गन्ध, रस तथा ऊपर के चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसपएसियाणं भंते ! खंधाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिते।

[५५४-२ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-२ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस अपेक्षा से आप ऐसा कहते हैं (कि उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म. वो. टीका भा. २, पृ. ८९५

तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित है, किन्तु वर्णादि तथा अष्टस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं भंते ! खंधाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसपदेसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५४-३ प्र.] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यमप्रदेशी स्कन्धों के अनन्तपर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक मध्यमप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यमप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५५५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पोग्गले जहण्णोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहनावाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] 'गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा वर्णादि और ऊपर के स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए तुल्ले।

[५५५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्गल-पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि छट्ठाणवडिते।

[५५५-३ प्र] भगवन् ! मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्गल, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५५६. [१] जहण्णट्ठितीयाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पोग्गले जहण्णठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५५६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है; प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; अवगाहना की अपेक्षा से चतुः-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि।

[५५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए एवं चेव । नवरं ठितीए वि चतुट्ठाणवडिते ।

[५५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार कहनी चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतु:स्थानपतित है ।

५५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पोग्गलाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पोग्गले जहण्णगुणकालयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५५७-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय (कहे हैं) ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला पुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु.स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की दृष्टि से तुल्य है, शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पुद्गलो की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५७-३] मध्यमगुण काले पुद्गलो के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५५८. एवं जहा कालवण्णपज्जवाण वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवाणं वत्तव्वया भाणितव्वा, जाव अजहण्णमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिते । से त्तं रूविअजीवपज्जवा । से त्तं अजीवपज्जवा ।

।। पण्णवणाए भगवईए पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं) समत्तं ।।

[५५८] जिस प्रकार कृष्णवर्ण के पर्यायो के विषय मे वक्तव्यता कही है उसी प्रकार शेष वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण रूक्षस्पर्श स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

यह हुई रूपी-अजीवपर्यायो की प्ररूपणा। और इस प्रकार अजीवपर्याय-सम्बन्धी निरूपण भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त सामान्य पुद्गल-स्कन्धों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू. ५५४ से ५५८ तक) में जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों, तथा जघन्यादि गुण विशिष्ट अवगाहना, स्थिति, तथा कृष्णादि वर्णों, गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्यायो की विभिन्न अपेक्षाओ से प्ररूपणा की गई है।

मध्यमगुण काले पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिक—एक मध्यमगुण काले पुद्गल से दूसरे मध्यमगुण काले पुद्गल में कृष्णवर्ण की अनन्तभागहीनता या अनन्तगुणहीनता, तथैव अनन्तभाग-अधिकता अथवा अनन्तगुण-अधिकता भी हो सकती है, क्योंकि मध्यमगुण के अनन्त विकल्प हैं।

इसी तरह मध्यमगुण वाले सभी वर्णादि स्पर्शपर्यन्त स्वस्थान में षट्स्थानपतित होते हैं।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कध की स्थिति तुल्य क्यों ?—उत्कृष्ट अवगाहना वाला, अनन्तप्रदेशी स्कध सर्वलोकव्यापी होता है। वह या तो उचित महास्कध होता है अथवा केवली-समुद्घात की अवस्था में कर्मस्कध हो सकता है। इन दोनो का काल दण्ड, कपाट, प्रतर और अन्तर-पूरण रूप चार समय का ही होता है। अतएव इसकी स्थिति समान कही गई है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : पंचम विशेषपद (पर्यायपद) समाप्त ॥

---

1. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ ९२७

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

प्राथमिक

☐ प्रज्ञापनासूत्र का यह छठा व्युत्क्रान्तिपद है।

☐ प्रस्तुत पद का विषय नाना प्रकार के जीवों की 'व्युत्क्रान्ति'—अर्थात्—उस-उस गति में उत्पत्ति और उस-उस गति में से अन्यत्र उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्नो की चर्चा करना है। संक्षेप में, जीवो की गति और आगति से सम्बन्धित विचारणा इस पद में की गई है।

☐ यह विचारणा निम्नोक्त आठ द्वारों के माध्यम से प्रस्तुत पद में की गई है—(१) **द्वादश द्वार** (उपपात और उद्वर्तना का विरह काल), (२) **चतुर्विशतिद्वार**—(जीव के प्रभेदो के उपपात और उद्वर्तन का विरहकाल), (३) **सान्तरद्वार** (जीवप्रभेदों का सान्तर एवं निरन्तर उपपात और उद्वर्तन-सम्बन्धी विचार), (४) **एकसमयद्वार** (एक समय मे कौनसे कितने जीवो का उपपात और उद्वर्तन होता है, यह विचार), (५) **कुतःद्वार**—(जीव उन-उन पर्यायो में कहाँ-कहाँ से मरकर उत्पन्न होता है, इसकी प्ररूपणा), (६) **उद्वर्तनाद्वार**—(जीव वर्तमान भव से मर कर किस-किस भव में जाता है, इसकी विचारणा), (७) **पारभविकायुष्यद्वार**—आगामी नये भव का आयुष्य जीव वर्तमान भव में कब बांधता है? इसका चिन्तन, और (८) **आकर्षद्वार**—(आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार, कितने आकर्षों में जीव जाति आदि नाम विशिष्ट आयुकर्म बांधता है? तथा न्यूनाधिक आकर्षों वाले जीवों के अल्पबहुत्व का विचार)।[1]

☐ **प्रथम द्वार** का नाम 'बारस' (द्वादश) इसलिए रखा गया है कि इसमें नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारो गतियों के जीवो का उपपातविरह (नरकादि जीव उस-उस रूप में उत्पन्न होते रहते हैं, उनमें बीच में उत्पत्तिशून्य (काल तथा उद्वर्तनाविरह (नरकादि जीव मरते रहते हैं, उनमें बीच में मरणशून्य) काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त का है।

☐ **द्वितीय द्वार** का नाम 'चउवीसा' (चतुर्विंशति) इसलिए रखा गया है कि नरकादि गतियों के प्रभेदो की दृष्टि से प्रथम नरक में उपपातविरहकाल और उद्वर्तनाविरहकाल जघन्य एक

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. १६३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

(ग) पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ. ६७

समय और उत्कृष्ट २४ मुहूर्त्त हैं। यद्यपि चतुर्गतिक जीवो के प्रभेदो में सबका उपपातविरह काल और उद्वर्त्तनाविरहकाल २४ मुहूर्त्त का नही है, किन्तु प्रथम रत्नप्रभा नरक के उपपात एवं उद्वर्तन के विरह का काल चौबीस ही मुहूर्त्त है, इस दृष्टि से प्रारम्भ का पद पकड़ कर इस द्वार का नाम 'चौबीस' रखा गया है।

- ☐ **तृतीय सान्तर द्वार**—उन-उन जीवों के प्रभेदों में जीवों का उपपात और उद्वर्तन निरन्तर होता रहता है या उसमें बीच में व्यवधान (अन्तर) भी आ जाता है ? इसका स्पष्टीकरण अनेकान्त दृष्टि से इस द्वार में किया गया है कि पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी जीवों का निरन्तर भी उत्पाद एवं उद्वर्तन होता रहता है और सान्तर भी। यद्यपि षट्खण्डागम के अन्तरानुगम-प्रकरण में इसका विचार किया गया है, परन्तु वहाँ इस दृष्टि से 'अन्तर' का विचार किया गया है कि एक जीव उस-उस गति आदि में भ्रमण करके उसी गति में पुन: कब आता है ? तथा अनेक जीवों की अपेक्षा से अन्तर है या नहीं ? तथा नाना जीवों की अपेक्षा से नरक आदि मे नारक जीव आदि कितने काल तक रह सकते हैं ? इस प्रकार का विचार किया गया है।[1]

- ☐ **चौथे द्वार** में यह बताया गया है कि एक समय में उस-उस गति के जीवों के प्रभेदो में कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन होता है ? इस सम्बन्ध में वनस्पतिकाय तथा पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियो को छोडकर शेष समस्त जीवों मे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात जीवों की उत्पत्ति तथा उद्वर्तना का निरूपण है। वनस्पतिकायिकों में स्वस्थान मे निरन्तर अनन्त तथा परस्थान मे निरन्तर असंख्यात का तथा पृथ्वीकायिकादि में निरन्तर असंख्यात का विधान है।[2]

- ☐ **पांचवें द्वार** में जीवों की आगति का वर्णन है। चारों गतियों के जीवो के प्रभेदों से किन-किन जीवो मे से मर कर आते हैं ? अर्थात्—किस जीव में मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होने की योग्यता है ? इसका निर्णय प्रस्तुत द्वार में किया गया है।

- ☐ **छठे द्वार** में उद्वर्तना अर्थात्—जीवो के निकलने का वर्णन है। अर्थात्—कौन-से जीव मर कर कहाँ-कहाँ (किस-किस गति एवं योनि में) जाते हैं ? मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? इसका निर्णय इस द्वार में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि पाँचवें द्वार को उलटा करके पढ़े तो छठे द्वार का विषय स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि पाँचवें में बताया गया है—जीव कहाँ से आते हैं ? उस पर से ही स्पष्ट हो जाता है कि जीव मर कर कहाँ जाते हैं ? तथापि स्पष्ट रूप से समझाने के लिए इस छठे द्वार का उपक्रम किया गया है।

- ☐ **सप्तम द्वार** में बताया गया है कि जीव पर-भव का अर्थात्—आगामी भव का आयुष्य कब बाँधता है ? अर्थात्—किस जीव की वर्तमान आयु का कितना भाग शेष रहने या कितना भाग बीतने पर वह आगामी भव का आयुष्य बाँधता है ? नारक और देव तथा असंख्यातवर्षायुष्क (मनुष्य-तिर्यञ्च) आगामी आयुष्यबन्ध ६ मास पूर्व ही कर लेते हैं, जबकि शेष समस्त जीव

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. १८७, ४६२; पुस्तक ५, अन्तरानुगमप्रकरण पृ. १
२. षट्खण्डागम पु. ६ पृ ४१८ से गति-आगति की चर्चा

(मनुष्यों में चरमशरीरी एवं उत्तमपुरुष को छोडकर) सोपक्रम एवं निरुपक्रम, दोनों ही प्रकार का आयुर्बन्ध करते हैं। निरुपक्रमी जीव आयु का तृतीय भाग शेष रहते और सोपक्रमी वर्तमान आयु का त्रिभाग, अथवा त्रिभाग का त्रिभाग या त्रिभाग के त्रिभाग का त्रिभाग शेष रहते आगामी भव का आयुष्य बाधते हैं। इस प्रकार परभविक आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा की गई है।

☐ अष्टम द्वार में जातिनामनिधत्तायु गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनाम-निधत्तायु, प्रदेशनामनिधित्तायु और अनुभाव-नामनिधत्तायु, यो आयुबन्ध के ६ प्रकार बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि जातिनामादि विशिष्ट आयुबन्ध कौन जीव कितने-कितने आकर्ष से करता है? जातिनामनिधत्तायु आदि से युक्त आयुबन्ध सामान्य जीव तथा नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्त जीव जघन्य एक, दो, तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं, यह प्ररूपणा की गई है। अन्त मे, एक से आठ आकर्षों से आयुबन्ध करने वालो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।[1]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना—पृ. ६७ से ७४ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २०५

(ग) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ९२९ से ९३१ तक

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार

५५९. बारस १, चउवीसाइं २, सअंतरं ३, एगसमय ४, कत्तो य ५ ।
उव्वट्टण ६, परभवियाउयं ७, च अट्ठेव आगरिसा ८॥१८२॥

[५५९ गाथार्थ—] १. द्वादश (बारह), २. चतुर्विंशति (चौबीस), ३. सान्तर (अन्तर-सहित), ४. एक समय, ५. कहाँ से ? ६. उद्वर्त्तना, ७. परभव-सम्बन्धी आयुष्य और ८. आकर्ष, ये आठ द्वार (इस व्युत्क्रान्तिपद मे) हैं।

विवेचन—व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार—प्रस्तुत सूत्र में एक संग्रहणीगाथा के द्वारा व्युत्क्रान्ति-पद के ८ द्वारो का उल्लेख किया गया है।

प्रथम द्वादशद्वार : नरकादि गतियों में उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल-निरूपण

५६०. निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६० प्र.] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६० उ.] गौतम ! (वह) जघन्य (कम से कम) एक समय तक और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

५६१. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६१ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६१ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

५६२. मणुयगती णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६२ प्र.] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है।

[५६२ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है।)

---

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

५६३. देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६३ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३ उ.] गौतम ! (देवगति का उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक का है ।

५६४. सिद्धगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५६४ प्र.] भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ.] गौतम ! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है ।

५६५. निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६५ प्र.] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६६. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६६ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६७. मणुयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६७ प्र.] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ।)

५६८. देवगती णं भंते ! केवतियं काल विरहिता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । दारं १ ॥

[५६८ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।) प्रथम द्वार ॥ १ ॥

विवेचन—प्रथम द्वादश (बारस=बारह) द्वार : चार गतियों के उपपात और उद्वर्त्तना का विरहकाल-निरूपण—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. ५६० से ५६८ तक) में नरकादि चार गतियो और पांचवी सिद्धगति के जघन्य-उत्कृष्ट उपपातविरहकाल का तथा उनके उद्वर्त्तनाविरहकाल का निरूपण किया गया है ।

निरयगति आदि चारों गतियों के लिए एकवचनप्रयोग क्यों ? निरयगति अर्थात्—नरकगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले जीव का औदयिक भाव । इसी प्रकार तिर्यञ्चादि-गति के विषय मे समझना चाहिए । वह औदयिकभाव सामान्य की अपेक्षा से सभी गतियों में अपना-अपना एक है । नरकगति का औदयिकभाव सातों पृथ्वियों मे व्यापक है, इसलिए नरकगति आदि चारो गतियो में प्रत्येक में एकवचन का प्रयोग किया गया है ।

उपपात और उसका विरहकाल— किसी अन्य गति से मरकर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव या सिद्ध के रूप में उत्पन्न होना उपपात कहलाता है । नरकगति में उपपात के विरहकाल का अर्थ है—जितने समय तक किसी भी नये नारक का जन्म नही होता ; दूसरे शब्दों में—नरकगति नये नारक के जन्म से रहित जितने काल तक होती है, वह नरकगति में उपपात-विरहकाल है । इसी प्रकार अन्य गतियो में उपपात-विरहकाल का अर्थ समझ लेना चाहिए । नरकादि गतियां कम से कम एक समय और अधिक से अधिक १२ मुहूर्त्त तक उपपात से रहित होती हैं । बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होता ही है । सिद्धगति का उपपातविरहकाल उत्कृष्टत. छह मास का बताया है, उसका कारण यह है कि एक जीव के सिद्ध होने के पश्चात् सभव है कोई जीव अधिक से अधिक छह मास तक सिद्ध न हो । छह मास के अनन्तर अवश्य ही कोई न कोई सिद्ध (मुक्त) होता है ।

चौबीस मुहूर्त्त-प्रमाण उपपातविरह क्यों नहीं ?—आगे कहा जाएगा कि उपपातविरह-काल चौबीस मुहूर्त्त का है, किन्तु यहां जो बारह मुहूर्त्त का उपपातविरहकाल बताया है, वह सामान्य रूप से नरकगति का उपपातविरहकाल है, किन्तु जब रत्नप्रभा आदि एक-एक नरकपृथ्वी के उपपात-विरहकाल की विवक्षा की जाती है, तब वह चौबीस मुहूर्त्त का ही होता है । इसी प्रकार अन्य गतियो के विषय में समझ लेना चाहिए ।[1]

उद्वर्त्तना और उसका विरहकाल—नरकादि किसी गति से निकलना उद्वर्त्तना है, प्रश्न का आशय यह है कि ऐसा कितना समय है, जबकि कोई भी जीव नरकादि गति से न निकले ? यह उद्वर्त्तनाविरहित काल कहलाता है । उद्वर्त्तना-विरहकाल चारो गतियों का उत्कृष्टत: १२ मुहूर्त्त का है । सिद्धगति में उद्वर्त्तना नही होती, क्योंकि सिद्धगति में गया हुआ जीव फिर कभी वहां से निकलता नहीं है । इसलिए सिद्धगति में उद्वर्त्तना नहीं होती । अतएव वहां उद्वर्त्तना का विरहकाल भी नही है । वहां तो सदैव उद्वर्त्तनाविरह है, क्योंकि सिद्धपर्याय सादि होने पर भी अनन्त (अन्तरहित) है, सिद्ध जीव सदाकाल सिद्ध ही रहते हैं ।[2]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९३५ से ९३७

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०५ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ८३७

द्वितीय चतुर्विंशतिद्वार : नैरयिकों से अनुत्तरौपपातिकों तक के उपपात और उद्वर्त्तना के विरहकाल की प्ररूपणा

५६९. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५६९ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५६९ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक का (कहा गया है ।)

५७०. सक्करप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं सत्त रातिंदियाणि ।

[५७० प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्टतः सात रात्रि-दिन तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७१. वालुयप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धमासं ।

[५७१ प्र.] भगवन् ! वालुकापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अर्द्धमास तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७२. पंकप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं मासं ।

[५७२ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः एक मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।

५७३. धूमप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो मासा ।

[५७३ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७३ उ.] गौतम ! जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः दो मास तक (उपपात से विरहित होते हैं ।)

५७४. तमापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चत्तारि मासा ।

[५७४ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चार मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।)

५७५. अधेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५७५ प्र.] भगवन् ! सबसे नीची तमस्तमा नामक सप्तम पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से रहित कहे गए हैं ?

[५७५ उ.] गौतम ! वे एक समय तक और उत्कृष्ट छह मास तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७६. असुरकुमारा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५७६ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित रहते हैं ।)

५७७. नागकुमारा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५७७ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७७ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है ।

५७८. एवं सुवण्णकुमाराणं विज्जुकुमाराणं अग्गिकुमाराणं दीवकुमाराणं उदहिकुमाराणं दिसाकुमाराणं वाउकुमाराणं थणियकुमाराण य पत्तेयं पत्तेयं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीस मुहुत्ता ।

[५७८] इसी प्रकार सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधि-कुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार देवों का प्रत्येक का उपपातविरहकाल एक समय का तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है ।

५७९. पुढविकाइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ।

गोयमा ! अणुसमयमविरहियं उववाएणं पण्णत्ता ।

[५७९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७९ उ.] गौतम ! (वे) प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं। अर्थात् उनका उपपात निरन्तर होता ही रहता है।

५८०. एवं आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणप्फइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता ।

[५८० प्र.] इसी प्रकार अप्कायिक भी तेजस्कायिक भी, वायुकायिक भी, एवं वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं।

५८१. बेइंदिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[५८१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो का उपपातविरह कितने काल तक कहा गया है ?

[५८१ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक (उनका उपपात-विरहकाल रहता है।)

५८२. एवं तेइंदिय-चउरिंदिया ।

[५८२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय के उपपातविरहकाल के विषय मे समझ लेना चाहिए।)

५८३ सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[५८३ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८३ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक का है।

५८४. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८४ प्र.] भगवन् ! गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गये हैं ?

[५८४ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहते है।)

५८५. सम्मुच्छिममणुस्सा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८५ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५८६. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८६ प्र.] भगवन् ! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५८७. वाणमंतराणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८७ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं।)

५८८. जोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८८ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात विरहित कहे हैं।)

५८९. सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८९ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?

[५८९ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं।)

५९०. ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५९० प्र.] गौतम ! ईशानकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं।)

५९१. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं नव रातिंदियाइं वीसा य मुहुत्ता ।

[५९१ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमार देवों का उपपातविरहकाल कितना कहा गया है ?

[५९१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट नौ रात्रि दिन और बीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित कहे हैं ।)

५९२. माहिंदवेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस राइंदियाइं दस मुहुत्ता ।

[५९२ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्र देवों का उपपातविरहितकाल कितना कहा गया है ?

[५९२ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट बारह रात्रिदिन और दस मुहूर्त्त का है ।

५९३. बंभलोए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धतेवीसं रातिंदियाइं ।

[५९३ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोक में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट साढे बाईस रात्रिदिन तक (उपपातविरहित रहते हैं ।)

५९४. लंतगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पणतालीसं रातिंदियाइं ।

[५९४ प्र] भगवन् ! लान्तक देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५९४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट पेंतालीस रात्रिदिन तक (उपपात से रहित कहे हैं ।)

५९५. महासुक्कदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असीतिं रातिंदियाइं ।

[५९५ प्र] भगवन् ! महाशुक्र देवों का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९५ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट अस्सी रात्रिदिन तक का है ।

५९६. सहस्सारदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं रातिंदियसतं ।

[५९६ प्र.] भगवन् ! सहस्रार देवो का (उपपातविरहकाल कितना कहा गया है) ?

[५९६ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक का तथा उत्कृष्ट सौ रात्रिदिन का (उनका उपपातविरह काल कहा गया है ।)

५९७. आणयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा ।

[५९७ प्र] भगवन् ! आनतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९७ उ.] गौतम ! उनका उपपातविरह काल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक का है ।

५९८. पाणयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा ।

[५९८ प्र] भगवन् ! प्राणतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक उपपात से विरहित कहे हैं ।

५९९. आरणदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा ।

[५९९ प्र.] भगवन् ! आरणदेवो का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९९ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।)

६००. अच्चुयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा ।

[६०० प्र.] भगवन् ! अच्युतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०० उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष तक रहता है ।

६०१. हेट्ठिमगेवेज्जाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससताइं ।

[६०१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात सौ वर्ष तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

६०२. मज्झिमगेवेज्जाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं ।

[६०२ प्र.] भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयकदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक (उपपातविरहित कहे हैं)।

६०३. उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससतसहस्साइं।

[६०३ प्र.] भगवन् ! ऊपरी ग्रैवेयक देवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०३ उ.] गौतम ! (उनका उपपात-विरहकाल) जघन्यत· एक समय का तथा उत्कृष्टत: संख्यातलाख वर्ष का है।

६०४. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजियदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

[६०४ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा है ?

[६०४ उ.] गौतम ! (इनका उपपात-विरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट असंख्यातकाल का है।

६०५. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स संखेज्जइभागं।

[६०५ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट पल्योपम का संख्यातवा भाग है।

६०६ सिद्धा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[६०६ प्र.] भगवन् ! सिद्ध जीवों का उपपात-विरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०६ उ.] गौतम ! उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट छह मास का है।

६०७. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ?

[६०७ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा के नैरयिक कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे गए हैं ?

[६०७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे है।

६०८. एवं सिद्धवज्जा उव्वट्टणा वि भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइय त्ति । नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु चयणं ति अहिलावो कायव्वो । दारं २ ॥

[६०८] जिस प्रकार उपपात-विरह का कथन किया है, उसी प्रकार सिद्धों को छोड़कर अनुत्तरोपपातिक देवों तक (पूर्ववत्) उद्वर्त्तनाविरह भी कह लेना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के निरूपण में (उद्वर्त्तना के स्थान पर) 'च्यवन' शब्द का अभिलाप (प्रयोग) करना चाहिए।

विवेचन—द्वितीय चतुर्विंशतिद्वार: नैरयिकों से लेकर अनुत्तरोपपातिक जीवों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—प्रस्तुत ४० सूत्रों (सू. ५६९ से ६०८ तक) में विभिन्न विशेषण युक्त विशेष नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के उपपातरहितकाल एवं उद्वर्तनाविरहकाल की प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिकादि प्रतिसमय उपपादविरहरहित—पृथ्वीकायिक आदि जीव प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं। कोई एक भी समय ऐसा नहीं, जब पृथ्वीकायिकों का उपपात न होता हो।[1] इसलिए उन्हें उपपातविरह से रहित कहा गया है।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में उद्वर्तना नहीं—ज्योतिष्क और वैमानिक इन दोनों जातियों के देवों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। च्यवन का अर्थ है नीचे आना। ज्योतिष्क और वैमानिक इस पृथ्वी से ऊपर हैं, अतएव देव मर कर ऊपर से नीचे आते हैं, नीचे से ऊपर नहीं जाते।[2]

तीसरा सान्तरद्वार: नैरयिकों से सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर निरन्तर-निरूपण

६०९. नेरइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६०९ प्र.] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६०९ उ.] गौतम (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१०. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६१० प्र.] भगवन् तिर्यञ्चयोनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७
   (ख) देखिये. संग्रहणीगाथा, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७
   (ग) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, भा. २, पृ ९५८
२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७
   (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ९७०

[६१० उ.] गौतम ? (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६११. मणुस्सा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६११ प्र.] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६११ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर की उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१२. देवा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१२ प्र.] भगवन् ! देव सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१२ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१३. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१३ प्र] भगवन् ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१३ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१४ एवं जाव अहेसत्तमाए संतरं पि उववज्जंति, निरंतर पि उववज्जंति।

[६१४] इसी प्रकार सातवी नरकपृथ्वी तक (के नैरयिक) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१५. असुरकुमारा णं भंते ! देवा किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

[६१५ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

[६१५ उ] गौतम ! सान्तर भी होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१६. एवं जाव थणियकुमारा संतरं पि उववज्जंति ? निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१६] इसी प्रकार स्तनितकुमार देवो तक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ?

६१७. पुढविकाइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! नो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति।

[६१७ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१७ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

६१८. एवं जाव वणस्सइकाइया णो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ।

[६१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं (ऐसा कहना चाहिए) ।

६१९. बेइंदिया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६१९ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१९ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२०. एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[६२०] इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तक कहना चाहिए ।

६२१. मणुस्सा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६२१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६२१ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२२ एवं वाणमंतरा जोइसिया सोहम्म-ईसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-हेट्ठिमगेवेज्जग-मज्झिमगेवेज्जग-उवरिमगेवेज्जग-विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धदेवा य संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६२२] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२३. सिद्धा णं भंते ! किं संतरं सिज्झंति ? निरंतरं सिज्झंति ?

गोयमा ! संतरं पि सिज्झंति, निरंतरं पि सिज्झंति ।

[६२३ प्र.] भगवन् ! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते हैं अथवा निरन्तर सिद्ध होते हैं ?

[६२३ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते हैं, निरन्तर भी सिद्ध होते हैं ।

६२४. नेरइया णं भंते ! किं संतरं उव्वट्टंति ? निरंतरं उव्वट्टंति ?

गोयमा ! संतरं पि उव्वट्टंति, निरंतरं पि उव्वट्टंति ।

[६२४ प्र.] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उद्वर्त्तन करते हैं अथवा निरन्तर उद्वर्त्तन करते हैं ?

[६२४ उ.] गौतम ! वे सान्तर भी उद्वर्त्तन करते हैं और निरन्तर भी उद्वर्त्तन करते हैं ।

६२५. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव वेमाणिता। नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु चयणं ति अभिलावो कातव्वो। दारं ३॥

[६२५] इस प्रकार जैसे उपपात (के विषय में) कहा गया है, वैसे ही सिद्धों को छोड़कर उद्वर्त्तना (के विषय मे) भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्कों और वैमानिकों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए।

तृतीय सान्तर द्वार ॥ ३ ॥

विवेचन—तीसरा सान्तरद्वार—नैरयिकों से लेकर सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्त्तना का सान्तर-निरन्तरनिरूपण—प्रस्तुत १७ सूत्रों (सू. ६०९ से ६२५ तक) में नैरयिक से लेकर वैमानिक देव पर्यन्त चौबीस दण्डकों और सिद्धों की सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति एव उद्वर्त्तना की प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पांच प्रकार के एकेन्द्रियों को छोड़ कर समस्त ससारी एव सिद्ध जीवो की सान्तर और निरन्तर दोनों प्रकार से उत्पत्ति और उद्वर्त्तना होती है। किन्तु सिद्धो की उत्पत्ति भी सान्तर-निरन्तर होती है, किन्तु उद्वर्त्तना कभी नही होती।[1]

सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति की व्याख्या—बीच-बीच में कुछ समय छोड़कर व्यवधान से उत्पन्न होना सान्तर उत्पन्न होना है, और प्रतिसमय लगातार—विना व्यवधान के उत्पन्न होना, बीच में कोई भी समय खाली न जाना निरन्तर उत्पन्न होना है।[2]

चतुर्थ एकसमयद्वार : चौबीसदण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय में उत्पत्ति और उद्वर्तना की संख्या की प्ररूपणा

६२६. नेरइया णं भंते! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति।

[६२६ प्र.] भगवन्! एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं?

[६२६ उ] गौतम! जघन्य (कम से कम) एक, दो या तीन और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) संख्यात अथवा असख्यात उत्पन्न होते हैं।

६२७. एवं जाव अहेसत्तमाए।

[६२७] इसी प्रकार सातवी नरकपृथ्वी तक समझ लेना चाहिए।

६२८ असुरकुमारा णं भंते! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा।

[६२८ प्र.] भगवन्! असुरकुमार एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भाग १, पृ. १६६ से १६८ तक

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २०८ (ख) प्रज्ञापना प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९७६-९७७

[६२८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात (उत्पन्न होते हैं।)

६२९. एवं णागकुमारा जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा ।

[६२९] इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक कहना चाहिए।

६३०. पुढविकाइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! अणुसमयं अविरहियं असंखेज्जा उववज्जंति ।

[६३० प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३० उ.] गौतम ! (वे) प्रतिसमय विना विरह (अन्तर) के असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

६३१. एवं जाव वाउकाइया ।

[६३१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवों तक कहना चाहिए।

६३२. वणप्फतिकाइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! सट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया अणंता उववज्जंति ? परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया असंखेज्जा उववज्जंति ।

[६३२ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३२ उ.] गौतम ! स्वस्थान (वनस्पतिकाय) में उपपात (उत्पत्ति) की अपेक्षा से प्रतिसमय विना विरह के अनन्त (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते रहते हैं तथा परस्थान मे उपपात की अपेक्षा से प्रतिसमय निना विरह के असंख्यात (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते हैं।

६३३. बेइंदिया णं भंते ! केवतिया एगसमएणं उववज्जंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

[६३३ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात (उत्पन्न होते हैं।)

६३४. एवं तेइंदिया चउरिंदिया सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सम्मुच्छिममणूसा वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-सुक्क-सहस्सारकप्पदेवा, एते जहा णेरइया ।

[६३४] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंग्योनिक, गर्भज पंचेन्द्रिय, तिर्यंग्योनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एवं सहस्रार कल्प के देव, इस सब की प्ररूपणा नैरयिको के समान समझनी चाहिए।

६३५. गब्भवक्कंतियमणूस-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जग-अणुत्तरोववाइया य एते जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति ।

[६३५] गर्भज मनुष्य, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक, (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव; ये सब जघन्यत: एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्टत: संख्यात उत्पन्न होते हैं ।

६३६. सिद्धा णं भंते ! एगसमएणं केवतिया सिज्झंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसतं ।

[६३६ प्र.] भगवन् ! सिद्ध भगवन् एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

[६३६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत: एक, दो, अथवा तीन और उत्कृष्टत: एक सौ आठ सिद्ध होते हैं ।

६३७. नेरइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उव्वट्टंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उव्वट्टंति ।

[६३७ प्र.] भगवन् ! नैरयिक एक समय में कितने उद्वर्त्तित होते (मर कर निकलते) हैं ?

[६३७ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असख्यात उद्वर्त्तित होते (मरते) हैं ।

६३८. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइया । णवरं जोइसिय-वेमाणियाणं चयणेणं अभिलावो कातव्वो ।। दारं ४ ।।

[६३८] इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा, उसी प्रकार सिद्धो को छोड़ कर अनुत्तरौपपातिक देवो की उद्वर्त्तना के विषय में भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्त्तना के बदले) 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए ।

—चतुर्थ एकसमयद्वार ।।४।।

विवेचन—चतुर्थ एकसमय-द्वार : चौबीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय मे उत्पत्ति तथा उद्वर्त्तना की संख्या की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. ६२६ से ६३८ तक) में एक समय मे समस्त ससारी जीवों की उत्पत्ति एव उद्वर्त्तना तथा सिद्धों की सिद्धिप्राप्ति की सख्या के सम्बन्ध मे प्ररूपणा की गई है ।

वनस्पतिकायिकों के स्वस्थान-उपपात एवं परस्थान-उपपात की व्याख्या—यहाँ स्वस्थान का अर्थ 'वनस्पतिभव' समझना चाहिए । जो वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुन: वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होते हैं, उनका उत्पाद स्वस्थान में उत्पाद कहलाता है और जब पृथ्वीकाय आदि किसी अन्य काय का जीव वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है, तब उसका उत्पाद परस्थान-उत्पाद कहलाता है । स्वस्थान मे उत्पत्ति की अपेक्षा प्रत्येक समय में निरन्तर अनन्त वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते रहते हैं; क्योंकि प्रत्येक निगोद में असंख्यातभाग का निरन्तर उत्पाद और उद्वर्त्तन होता रहता है, और वे वनस्पतिकायिक अनन्त होते हैं । परस्थान-उत्पाद की अपेक्षा से प्रतिसमय निरन्तर असंख्यात जीवों का उपपात होता रहता है, क्योंकि पृथ्वीकाय आदि के जीव असंख्यात हैं । तात्पर्य यह है कि

एक समय में वनस्पतिकाय से मर कर वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होने वाले जीव अनन्त होते हैं एवं अन्य कायों से मर कर वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने वाले असंख्यात हैं।[1]

गर्भज मनुष्य तथा आनतादि का एक समय में संख्यात ही उत्पाद क्यों ? आनतादि देवलोकों में मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जो कि संख्यात ही हैं। तिर्यंच उनमें नहीं उत्पन्न होते।

पंचम कुतोद्वार : चातुर्गतिक जीवों को पूर्वभवों से उत्पत्ति (आगति) की प्ररूपणा

६३९. [१] नेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइया नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं ? तिर्यग्योनिकों में से उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) देवों में से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१ उ.] गौतम ! नैरयिक, नैरयिकों में से उत्पन्न नहीं होते, (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (तथा) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) देवों में से उत्पन्न नहीं होते।

[२] जदि तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? तेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो एगिंदिय० नो बेइंदिय० नो तेइंदिय० नो चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२ प्र.] भगवन् ! यदि (नैरयिक) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, द्वीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२ उ.] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से, न द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से, न ही त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से और न चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं।

[३] जति पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०८, २०९ (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९९२

गोयमा ! जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-३ प्र.] भगवन् ! यदि (नैरयिक) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ? स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं; (अथवा) खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-३ उ.] गौतम ! (वे नैरयिक) जलचरपचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[४] जइ जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे नारक) जलचरपचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ? या गर्भज जलचर-पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-४ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं ।

[५] जति सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे नारक) सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-५ उ.] गौतम ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[६] जति गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-६ प्र.] भगवन् ! यदि गर्भज-जलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से (नारक) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-गर्भजजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-६ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तकगर्भज-जलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से नहीं उत्पन्न होते ।

[७] जइ थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-७ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?, (अथवा) परिसर्प्पस्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-७ उ.] गौतम ! (वे) चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते हैं और परिसर्प्प-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते हैं ।

[८] जवि चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतियचउप्पएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-८ प्र.] भगवन् ! यदि चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं । अथवा गर्भज-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ।

[६३९-८ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं ,

[९] जइ सम्मुच्छिमचउप्पएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-९ प्र.] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-९ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से नही उत्पन्न होते।

[१०] जति गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१० प्र.] (भगवन्) ! यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको मे (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते है, अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१० उ.] गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से नही उत्पन्न होते ।

[११] जति संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तयसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-११ प्र] (भगवन् !) यदि (वे नारक) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-सख्यात-वर्षायुष्क गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-११ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से नही उत्पन्न होते ।

[१२] जति परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं उरपरिसप्पथलयर पंचेंद्रियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१२ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न

होते हैं, तो क्या उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) भुजपरिसर्प स्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१२ उ.] गौतम ! वे दोनों से ही—अर्थात्—उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं, और भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[१३] जदि उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१३ प्र.] भगवन् ! यदि उर:परिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१३ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं और गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[१४] जति सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१४ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रित-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१४ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नही होते ।

[१५] जति गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो ? अपज्जत्तएहिंतो ?

गोयमा ! पज्जत्तगगब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१५ उ.] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[१६] जति भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१६ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१६ उ.] गौतम ! (वे) दोनों से (सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी, तथा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से) भी उत्पन्न होते हैं ।

[१७] जति सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१७ प्र] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिको से उत्पन्न होते है तो क्या (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१७ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[१८] जति गब्भवक्कंतिभुयपरिसप्पथलयरपंचेंद्रियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपजत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१८ प्र.] (भगवन् !) यदि गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे नारक) पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१८ उ.] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर- पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नही होते ।

[१९] जति खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१९ प्र.] (भगवन् !) यदि खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, या गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१९ उ.] गौतम ! दोनों से (सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से तथा गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से) उत्पन्न होते हैं ।

[२०] जति सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२० प्र.] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ।

[६३९-२० उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नही होते ।

[२१] जति गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखिज्जवासा-उएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२१ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२१ उ.] गौतम ! (वे) संख्यातवर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[२२] जति संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न

होते हैं, अथवा अपर्याप्तक असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२२ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नही होते।

[२३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं।

[६३९-२३ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नही होते, गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं।

[२४] जइ गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ? कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२४ उ.] गौतम ? (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) न तो अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[२५] जति कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२५ प्र.] (भगवन् !) यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२५ उ.] गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नही होते।

[२६] जति संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्या से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२६ उ.] गौतम ! पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

६४०. एवं जहा ओहिया उववइया तहा रयणप्पभापुढविनेरइया वि उववाएयव्वा ।

[६४०] इसी प्रकार जैसे औघिक (सामान्य) नारकों के उपपात (उत्पत्ति) के विषय में कहा गया है, वैसे ही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के उपपात के विषय में कहना चाहिए ।

६४१. सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! एते वि जहा ओहिया तहेवोववाएयव्वा । नवरं सम्मुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कातव्वो ।

[६४१ प्र.] शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे पृच्छा ?

[६४१ उ.] गौतम ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको का उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरयिको के उपपात की तरह ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि सम्मूर्च्छिमो से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४२. वालुयप्पभापुढविनेरइया णं भंते । कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जहा सक्करप्पभापुढविनेरइया । नवरं भुयपरिसप्पेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४२ प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४२ उ.] गौतम ! जैसे शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह कि भुजपरिसर्प (पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४३. पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा वालुयप्पभापुढविनेरइया । नवरं खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४३ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहां से उत्पन्न होते हैं ?

[६४३ उ.] गौतम ! जैसे वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि खेचर (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४४. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा पंकप्पभापुढविनेरइया । नवरं चउप्पएहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४४ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४४ उ.] गौतम ! जैसे पकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के उत्पाद के विषय में कहा, उसी प्रकार इनके उत्पाद के विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि चतुष्पद (स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४५. [१] तमापुढविनेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जहा धूमप्पभापुढविनेरइया । नवरं थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४५-१ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहा से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-१ उ.] गौतम ! जैसे धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इस पृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यंचो से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए ।

[२] इमेणं अभिलावेणं—जति पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? थलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? खहयरपंचिंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति, नो थलयरेहिंतो नो खहयरेहिंतो उववज्जंति ।

[६४५-२ प्र.] इस (पूर्वोक्त) अभिलाप (कथन) के अनुसार—यदि वे (धूमप्रभापृथ्वी-नारक) पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है तो क्या जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ? या स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ? अथवा खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-२ उ] गौतम ! (वे) जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं और न ही खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ।

[३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं कम्मभूमएहिंतो अकम्मभूमएहिंतो अन्तरदीवएहिंतो ?

गोयमा ! कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवएहिंतो ।

[६४५-३ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज मनुष्यों से या अकर्मभूमिज मनुष्यो से अथवा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-३ उ.] गौतम ! (वे) कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ।

[४] जति कम्मभूमएहितो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६४५-४ प्र.] भगवन् ! यदि कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है अथवा असख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६४५-४ उ.] गौतम ! (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते है (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से नहीं उत्पन्न होते ।

[५] जति संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

[६४५-५ प्र.] (भगवन्) ! यदि (तम.प्रभापृथ्वी के नैरयिक) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-५ उ.] गौतम ! पर्याप्तकों से उत्पन्न होते है, अपर्याप्तकों से उत्पन्न नही होते ।

[६] जति पज्जत्तयसंखेज्जवासाउयकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति किं इत्थीहिंतो उववज्जंति ? पुरिसेहिंतो उववज्जंति ? नपुंसएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! इत्थीहिंतो वि उववज्जंति, पुरिसेहिंतो वि उववज्जंति, नपुंसएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६४५-६ प्र.] (भगवन्) यदि वे पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं ? या पुरुषों से उत्पन्न होते है ? अथवा नपुसको से उत्पन्न होते है ?

[६४५-६ उ.] गौतम (वे) स्त्रियो से भी उत्पन्न होते है, पुरुषो से भी उत्पन्न होते है और नपुसको से भी उत्पन्न होते है ।

६४६. अधेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एवं चेव । नवरं इत्थीहिंतो [वि] पडिसेधो कातव्वो ।

[६४६ प्र.] भगवन् ! अध:सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिक कहा से उत्पन्न होते है ?

[६४६ उ.] गौतम इनकी उत्पत्ति-सम्बन्धी प्ररूपणा इसी प्रकार (छठी तम:प्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के समान) समझनी चाहिए । विशेष यह है कि स्त्रियो से इनके उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिए ।

६४७. अस्सण्णी खलु पढमं, दोच्चं च सिरीसिवा, तइयं पक्खी ।
सीहा जंति चउत्थिं, उरगा पुण पंचमीपुढविं ।। १८३ ।।
छट्ठिं च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं ।
एसो परमुववाओ बोधव्वो नरयपुढवीणं ।। १८४ ।।

[६४७. संग्रहगाथार्थ—] असंज्ञी निश्चय ही पहली (नरकभूमि) मे, सरीसृप (रेंगकर चलने वाले सर्प आदि) दूसरी (नरकपृथ्वी) तक, पक्षी तीसरी (नरकपृथ्वी) तक, सिंह चौथी (नरक-

पृथ्वी) तक, उरग पाचवी पृथ्वी तक, स्त्रियां छठी (नरकभूमि) तक और मत्स्य एवं मनुष्य (पुरुष) सातवी (नरक) पृथ्वी तक उत्पन्न होते है। नरकपृथ्वियो में (पूर्वोक्त जीवों का) यह परम (उत्कृष्ट) उपपात समझना चाहिए।। १८३-१८४ ।।

६४८ असुरकुमारा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुएहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति। एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ तेहिंतो असुरकुमाराण वि भणितव्वो । नवरं असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अन्तरदीवगमणुस्सतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति। सेसं तं चेव।

[६४८ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४८ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं परन्तु देवो से उत्पन्न नही होते। इसी प्रकार जिन-जिन से नारको का उपपात कहा गया है, उन-उन से असुरकुमारो का भी उपपात कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (ये) असख्यातवर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज एव अन्तर्दीपज मनुष्यो और तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते हैं। शेष सब बाते वही (पूर्ववत्) समझनी चाहिए।

६४९ एवं जाव थणियकुमारा।

[६४९] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक के उपपात के विषय मे कहना चाहिए।

६५०. [१] पुढविकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहिंतो मणुयजोणिएहिंतो देवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारको से, तिर्यंचो से, मनुष्यो से अथवा देवो से उत्पन्न होते हैं।

[६५०-१ उ] गौतम ! (वे) नारकों से उत्पन्न नही होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको से, मनुष्ययोनिको से तथा देवो से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जति एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पुढविकाइएहिंतो जाव वणप्फइ-काइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पुढविकाइएहिंतो वि जाव वणप्फइकाइएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-३ प्र.] (भगवन् !) यदि एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिको से यावत् वनस्पतिकायिको से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-३ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिकों से भी यावत् वनस्पतिकायिको से भी (आकर) उत्पन्न होते हैं।

[४] जति पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति किं सुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ? बादर-पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-४ प्र] (भगवन् !) यदि पृथ्वीकायिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-४ उ.] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनो से उत्पन्न होते हैं।

[५] जति सुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति।

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-५ प्र.] (भगवन् !) यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से (आकर वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-५ उ.] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से ही (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६] जति बादरपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो-अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?
गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-६ प्र.] (भगवन् !) यदि बादर पृथ्वीकायिकों से (आकर) वे उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-६ उ.] गौतम ! (पूर्वोक्त) दोनों से ही (वे) उत्पन्न होते हैं।

[७] एवं जाव वणस्सतिकाइया चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वा।

[६५०-७] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक चार-चार भेद करके उनके उपपात के विषय में कहना चाहिए।

[८] जति बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-८] (भगवन् !) यदि द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से (आकर) वे (एकेन्द्रिय जीव) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-८ उ] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[९] एवं तेइंदिय-चउरिंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी (वे) उत्पन्न होते हैं ।

[१०] जति पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जंति ? एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ भणितो तेहिंतो एतेसिं पि भाणितव्वो । नवरं पज्जत्तग-अपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, सेसं तं चेव ।

[६५०-१० प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं (या अन्य स्थलचर आदि पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५०-१० उ.] (गौतम !) एवं जिन-जिन से नैरयिकों के उपपात के विषय में कहा है, उन-उन से इनका (पृथ्वीकायिकों से लेकर वनस्पतिकायिको तक का) भी उपपात कह देना चाहिए । विशेष यह है कि पर्याप्तकों और अपर्याप्तको से भी उत्पन्न होते हैं । शेष (सब निरूपण) पूर्ववत् समझना चाहिए ।

[११] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणूसेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-११ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-११ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिक दोनों (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) से उत्पन्न होते हैं ।

[१२] जति गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ?

सेसं जहा नेरइयाणं (सु. ६३९ [४-२६]) । नवरं अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-१२ प्र.] (भगवन् !) यदि गर्भज मनुष्यों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्म-भूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं अथवा अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१२ उ.] (गौतम !) शेष जो (कथन) नैरयिकों के (उपपात के) सम्बन्ध मे (सू. ६३९-४ से २४ तक में) कहा है, वही (पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियो के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।) विशेष यह है कि (ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यो से भी उत्पन्न होते हैं।

[१३] जति देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो ?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१३ प्र.] (भगवन् !) यदि देवो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१३ उ.] गौतम ! भवनवासी देवों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् वैमानिक देवो से भी उत्पन्न होते हैं।

[१४] जति भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति किं असुरकुमारदेवेहिंतो जाव थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जंति।

गोयमा ! असुरकुमारदेवेहिंतो वि जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१४ प्र.] (भगवन् !) यदि (ये) भवनवासी देवों से उत्पन्न होते हैं तो असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक (दस प्रकार के भवनवासी देवो मे से) किनसे उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१४ उ.] गौतम ! (ये) असुरकुमार देवो से यावत् स्तनितकुमार देवो तक से भी (दस ही प्रकार के भवनवासी देवो से) उत्पन्न होते हैं।

[१५] जति वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति किं पिसाएहिंतो जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पिसाएहिंतो वि जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) वाणव्यन्तर देवो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पिशाचो से यावत् गन्धर्वों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१५ उ.] गौतम ! (वे) पिशाचो से यावत् गन्धर्वों (तक के सभी प्रकार के वाण-व्यन्तर देवो) से उत्पन्न होते हैं।

[१६] जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति किं चंदविमाणेहिंतो जाव ताराविमाणेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१६ उ.] गौतम ! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से भी उत्पन्न होते हैं तथा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१७] जति वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ? कप्पातीतगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, नो कप्पातीयवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ।

[६५०-१७ प्र.] (भगवन् !) यदि वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं या कल्पातीत वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१७ उ.] गौतम ! (वे) कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न नही होते ।

[१८] जति कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं सोहम्मेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति ।

गोयमा ! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति, नो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति ।

[६५०-१८ प्र.] (भगवन् !) यदि कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे (पृथ्वीकायिक) सौधर्म (कल्प के देवो) से यावत् अच्युत (कल्प तक के) देवो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१८ उ.] गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक के देवो से उत्पन्न नही होते ।

६५१. एवं आउक्काइया वि ।

[६५१] इसी प्रकार अप्कायिको को उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए ।

६५२. एवं तेउ-वाऊ वि । नवरं देववज्जेहिंतो उववज्जंति ।

[६५२] इसी प्रकार तेजस्कायिको एवं वायुकायिको की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए । विशेष यह है कि (ये दोनो) देवो को छोड़कर (दूसरो—नारको, तिर्यञ्चो तथा मनुष्यो—से) उत्पन्न होते हैं ।

६५३. वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया ।

[६५३] वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन, पृथ्वीकायिको के उत्पत्ति-विषयक कथन की तरह समझना चाहिए ।

६५४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया एते जहा तेउ-वाऊ देववज्जेहिंतो भाणितव्वा ।

[६५४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की उत्पत्ति तेजस्कायिको और वायुकायिको की उत्पत्ति के समान समझनी चाहिए । देवो को छोड़ कर (अन्यो—नारको, तिर्यञ्चो तथा मनुष्यों से) इनको उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

६५५. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि तिरिक्खजोणिएहिंतो वि मणूसेहिंतो वि देवेहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-१ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहां से (आकर) उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारको से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं, तिर्यञ्चयोनिकों से भी, मनुष्यो से भी और देवो से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जति।

[६५५-२ प्र.] (भगवन् !) यदि नैरयिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी (तक) के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-२ उ] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं एगिंदिएहिंतो उववज्जति ? जाव पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदिएहिंतो जाव पंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५५-३ प्र.] (भगवन् !) यदि तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (या) यावत् पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-३ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो से भी यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से भी उत्पन्न होते हैं।

[४] जति एगिंदिएहिंतो उववज्जंति किं पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

एवं जहा पुढविकाइयाणं उववाओ भणितो तहेव एएसिं पि भाणितव्वो। नवरं देवेहिंतो जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति, नो आणयकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५५-४ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) एकेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते हैं या यावत् वनस्पतिकायिको (तक) से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-४ उ] गौतम ! इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिको का उपपात कहा है, वैसे ही इनका (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का) भी उपपात कहना चाहिए। विशेष यह है कि देवों से—यावत् सहस्रार-कल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु आनतकल्पोपपन्न वैमानिक देवो से लेकर अच्युतकल्पोपपन्न वैमानिक देवो तक से (वे) उत्पन्न नही होते।

६५६. [१] मणुस्सा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव देवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५६-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५६-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिको से भी उत्पन्न होते हैं और यावत् देवो से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव अहेसत्तमापुढविनेरएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! रतणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति, नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ।

[६५६-२ प्र.] (भगवन् !) यदि नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५६-२ उ.] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से लेकर यावत् तम प्रभापृथ्वी तक के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अधःसप्तमीपृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न नही होते ।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

एवं जेहिंतो पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं उववाओ भणितो तेहिंतो मणुस्साण वि णिरवसेसो भाणितव्वो । नवरं अधेसत्तमापुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहिंतो ण उववज्जंति । सव्वदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा जाव कप्पातीतगवेमाणिय-सव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा ।

[६५६-३ प्र.] (भगवन् !) यदि मनुष्य तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, (या यावत् पचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५६-३ उ] (गौतम !) जिन-जिनसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको का उपपात (उत्पत्ति) कहा गया है, उन-उनसे मनुष्यों का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए । विशेषता यह है कि (मनुष्य) अधःसप्तमीनरकपृथ्वी के नैरयिको, तेजस्कायिको और वायुकायिको से उत्पन्न नही होते । (दूसरी विशेषता यह है कि मनुष्य का) उपपात सर्व देवों से कहना चाहिए, यावत् कल्पातीत वैमानिक देवो—सर्वार्थसिद्धविमान तक के देवो से भी (मनुष्यों की) उत्पत्ति समझनी चाहिए ।

६५७. वाणमंतरदेवा णं भंते ! कओहिंवो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जेहिंतो असुरकुमारा ।

[६५७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५७ उ.] गौतम ! जिन-जिनसे असुरकुमारों की उत्पत्ति कही है, उन-उनसे वाणव्यन्तर देवों की भी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

६५८. जोइसियदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एवं चेव। णवरं सम्मुच्छिम असंखेज्जवासाउयखहयर-अंतरदीवमणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा।

[६५८ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव किन (कहां) से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५८ उ.] गौतम ! इसी प्रकार (ज्योतिष्क देवों का उपपात भी पूर्ववत् असुरकुमारो के उपपात के समान ही) समझना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिष्कों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम असख्यातवर्षायुष्क-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको को तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को छोडकर कहनी चाहिए। अर्थात् इनसे निकल कर कोई जीव सीधा ज्योतिष्क देव नही होता।

६५९. वेमाणिया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं णेरइएहिंतो, तिरिक्खजोणिएहिंतो, मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति।

एवं चेव वेमाणिया वि सोहम्मीसाणगा भाणितव्वा।

[६५९ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देव किनसे उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों से या तियञ्चयोनिको से अथवा मनुष्यो से या देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५९ उ.] गौतम ! (वे) नारको से उत्पन्न नही होते, (किन्तु) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से तथा मनुष्यो से उत्पन्न होते है। देवो से उत्पन्न नही होते।

इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवो (की उत्पत्ति के विषय में) कहना चाहिए।

६६०. एवं सणंकुमारगा वि। णवरं असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगवज्जेहिंतो उववज्जंति।

[६६०] सनत्कुमार देवो के उपपात के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि ये असंख्यातवर्षायुष्क अकर्मभूमिकों को छोड़कर (पूर्वोक्त सबसे) उत्पन्न होते हैं।

६६१. एवं जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवा भाणितव्वा।

[६६१] सहस्रारकल्प तक (अर्थात् माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार कल्प) के देवों का उपपात भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

६६२. [१] आणयदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो।

[६६२-१ प्र.] भगवन् ! आनत देव कहां से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से (अथवा) यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों के उत्पन्न नही होते, तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न नही होते, (किन्तु) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं। देवो से (उत्पन्न) नही (होते)।

[२] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो ।

[६६२-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६६२-२ उ.] गौतम ! (वे आनत देव) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न नही होते।

[३] जति गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगेहिंतो उववज्जति ? अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ? अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगेहिंतो ।

[६६२-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न है तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, (या) अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है।

[६६२-३ उ] गौतम ! (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते है।

[४] जइ कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६६२-४ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, या असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६६२-४ उ.] गौतम ! (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते।

[५] जति संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो ।

[६६२-५ प्र.] (भगवन् !) यदि संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से (वे आनत देव) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तकों से या अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-५ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नहीं होते ।

[६] जति पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ? मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? सम्मामिच्छद्दिट्ठपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ।

[६६२-६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते है ? (या) मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-६ उ.] गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से भी (वे) उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से भी उत्पन्न होते हैं; (किन्तु) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्नक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुप्यों से उत्पन्न नही होते ।

[७] जति सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंनि किं संजतसम्मद्दिट्ठीहिंतो ? असंजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो ? संजयासंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! तीहिंतो वि उववज्जति ।

[६६२-७ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) संयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा संयतासयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ।

[६६२-७ उ.] गौतम ! (वे आनत देव) (उपर्युक्त) तीनों से ही (सयतसम्यग्दृष्टियो से असयतसम्यग्दृष्टियों से तथा सयतासयतसम्यग्दृष्टियों से) उत्पन्न होते हैं ।

६६३. एवं जाव अच्चुओ कप्पो ।

[६६३] अच्युतकल्प के देवों तक (के उपपात के विषय में) इसी प्रकार कहना चाहिए ।

६६४. एवं गेवेज्जगदेवा वि । णवरं असंजत-संजतासंजतेहिंतो वि एते पडिसेहेयव्वा ।

[६६४] इसी प्रकार (नौ) ग्रैवेयकदेवों के उपपात के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि असंयतो और संयतासंयतों से इनकी (ग्रैवेयको की) उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

६६५. [१] एवं जहेव गेवेज्जगदेवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि । णवरं इमं णाणत्तं—संजया चेव ।

[६६५-१] इसी प्रकार जैसी (वक्तव्यता) ग्रैवेयक देवो की उत्पत्ति (के विषय मे) कही, वैसी ही उत्पत्ति (-वक्तव्यता) पाच अनुत्तर विमानों के देवों की समझनी चाहिए। विशेष यह है कि सयत ही अनुत्तरौपपातिक देवो में उत्पन्न होते हैं।

[२] जति संजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पमत्तसंजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो अपमत्तसंजतएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति, णो पमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति ।

[६६५-२] (भगवन् !) यदि (वे) सयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है या अप्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते ?

[६६५-२ उ] गौतम ! (पूर्वोक्त तथारूप) अप्रमत्तसयतो से (वे) उत्पन्न होते हैं किन्तु (तथारूप) प्रमत्तसंयतो से उत्पन्न नही होते हैं।

[३] जति अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति किं इड्ढिपत्तअपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति ? अणिड्ढिपत्तअपमत्तसंजतेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।। दारं ५ ।।

[६६५-३ प्र.] (भगवन् !) यदि वे (अनुत्तरौपपातिक देव) (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) अप्रमत्तसयतों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतों से (वे) उत्पन्न होते हैं ?

[६६५-३ उ.] गौतम ! (वे) उपर्युक्त दोनो (ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतो तथा अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों) से भी उत्पन्न होते हैं।

—पचम कुतोद्वार ।। ५ ।।

विवेचन—पंचम कुतोद्वार : नारकादि चारों गतियों के जीवों की पूर्वभवों (आगति) से उत्पत्ति की प्ररूपणा—प्रस्तुत सत्ताईस सूत्रो में कुत: (कहाँ से या किन-किन भावो से) द्वार के माध्यम से जीवो की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

किनकी उत्पत्ति, किन-किन-किनसे ? का क्रम—इस द्वार का क्रम इस प्रकार है—१. सामान्य नारका की उत्पत्ति किन-किनसे ?, २ रत्नप्रभादि पृथ्वियों के नारकों की उत्पत्ति, ३. असुर-

कुमारादि भवनवासी देवो की उत्पत्ति, ४. पृथ्वीकायिकादि पंचविध एकेन्द्रियो की उत्पत्ति, ५. त्रिविध विकलेन्द्रियो की उत्पत्ति, ६. पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों की उत्पत्ति, ७. मनुष्यों की उत्पत्ति, ८. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की उत्पत्ति ।

निष्कर्ष—सामान्य नैरयिको और रत्नप्रभा के नैरयिकों में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पांच एकेन्द्रिय स्थावर, त्रिविध विकलेन्द्रिय तथा असंख्यातवर्षायुष्क चतुष्पद खेचरों तथा शेष पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भी अपर्याप्तकों एव सम्मूर्च्छिम मनुष्यों तथा गर्भजों में अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्यों तथा कर्मभूमिजों में जो भी असंख्यातवर्षायुष्को तथा सख्यातवर्षायुष्को में भी अपर्याप्तक मनुष्यों से उत्पन्न होने का निषेध किया है, शेष से उत्पत्ति का विधान है। शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको में सम्मूर्च्छिमों से, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में भुजपरिसर्पो से, पंकप्रभा के नैरयिको में खेचरों से, धूमप्रभा-नैरयिको में चतुष्पदों से, तमःप्रभा-नैरयिकों में उरःपरिसर्पो से तथा तमस्तमा-पृथ्वी के नैरयिकों में स्त्रियों से (आकर) उत्पन्न होने का निषेध है। भवनवासियो में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पाच, त्रिविध विकलेन्द्रिय, अपर्याप्त तिर्यक्पचेन्द्रियो तथा सम्मूर्च्छिम एव अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है, शेष का विधान है। पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायिकों मे सर्व नैरयिक तथा सनत्कुमारादि देवो से एव तेजो-वायु-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियो मे सर्व नारको, सभी देवो से उत्पत्ति का तिर्यक् पचेन्द्रियो मे आनतादि देवो से उत्पत्ति का निषेध है। मनुष्यों में सप्तमनरकपृथ्वी के नारको तथा तेजोवायुकायिको से उत्पत्ति का निषेध है। व्यन्तरदेवो में देव, नारक, पृथ्वी आदि पचक, विकलेन्द्रियत्रिक, अपर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम एव अपर्याप्त गर्भज मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है। ज्योतिष्कदेवो मे सम्मूर्च्छिम तिर्यक् पचेन्द्रिय, असख्यातवर्षायुष्क खेचर तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है। सौधर्म और ईशानकल्प के देवो मे तथा सनत्कुमार से सहस्रारकल्प तक के देवो में अकर्मभूमिक मनुष्यो से भी उत्पत्ति का, आनत आदि में तिर्यञ्च पंचेन्द्रियो से, नौ ग्रैवेयको में असंयतो तथा सयतासयतों एव विजयादि पंच अनुत्तरौपपातिकों में मिथ्यादृष्टि मनुष्यो तथा प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है।[1]

'कुतोद्वार' की प्ररूपणा का उद्देश्य—कौन-कौन जीव कहाँ से, अर्थात्—किन-किन भवों से उद्वर्त्तना (मृत्यु प्राप्त) करके नारकादि पर्यायो मे (आकर) उत्पन्न होते हैं? यही प्रतिपादन करना कुतोद्वार का उद्देश्य और विशेष अर्थ है।[2]

छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवों के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा

६६६. [१] नेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ? मणुस्सेसु उववज्जंति ? देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, नो देवेसु उववज्जंति ।

[६६६-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्तर (साक्षात् या सीधा) उद्वर्त्तन करके (निकल

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २१४

२. प्रज्ञापना, प्रमेयबोधिनीटीका भा. २, पृ. १००७

कर) कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अथवा तिर्यञ्च-योनिको में उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यो में उत्पन्न होते हैं या देवो में उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-१ उ.] गौतम ! (नैरयिक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके) नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं या मनुष्यों मे उत्पन्न होते हैं; (किन्तु) देवो में उत्पन्न नही होते हैं।

[२] जति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति किं एगिंदिय जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! नो एगिंदिएसु जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचिंदिएसु उववज्जंति ।

[६६६-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-२ उ] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रियो मे और न ही द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) पंचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं।

[३] एवं जेहिंतो उववाओ भणितो तेसु उव्वट्टणा वि भाणितव्वा । णवरं सम्मुच्छिमेसु ण उववज्जंति ।

[६६६-३] इस प्रकार जिन-जिनसे उपपात कहा गया है, उन-उनमे ही उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि वे सम्मूर्च्छिमो में उत्पन्न नही होते ।

६६७. एवं सव्वपुढवीसु भाणितव्वं । नवरं अहेसत्तमाओ मणुस्सेसु ण उववज्जति ।

[६६७.] इसी प्रकार समस्त (नरक-)पृथ्वियो में उद्वर्त्तना का कथन करना चाहिए। विशेष बात यह है कि सातवी नरकपृथ्वी से मनुष्यो में नही उत्पन्न होते ।

६६८. [१] असुरकुमारा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, णो देवेसु उववज्जंति ।

[६६८-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार साक्षात् (अनन्तर) उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवो में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते ।

[२] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, नो बेइंदिएसु[1] जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति।

[६६८-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों तिर्यञ्चयोनिकों मे उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों मे उत्पन्न होते हैं, किन्तु द्वीन्द्रियों मे, त्रीन्द्रियों में और चतुरिन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते, (वे) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों मे उत्पन्न होते हैं।

[३] जति एगिंदिएसु उववज्जंति किं पुढविकाइयएगिंदिएसु जाव वणस्सइकाइयएगिंदिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! पुढविकाइयएगिंदिएसु वि आउकाइयएगिंदिएसु वि उववज्जंति, नो तेउकाइएसु नो वाउकाइएसु उववज्जंति, वणस्सइकाइएसु उववज्जंति।

[६६८-३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) एकेन्द्रियो में उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियो में यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियो में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-३ उ.] गौतम ! (वे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, अप्कायिक एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो तेजस्कायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं और न वायु-कायिक एकेन्द्रियो में उत्पन्न होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं।

[४] जति पुढविकाइएसु उववज्जंति किं सुहुमपुढविकाइएसु उववज्जंति ? बादरपुढविकाइ-एसु उववज्जंति ?

गोयमा ! बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति, नो सुहुमपुढविकाइएसु।

[६६८-४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होते हैं तो क्या सूक्ष्म पृथ्वी-कायिको मे उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-४ उ.] गौतम ! (वे) बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) सूक्ष्म पृथ्वी-कायिको मे उत्पन्न नही होते।

[५] जइ बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति किं पज्जत्तगबादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ? अपज्जत्तयबायरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएसु उववज्जंति, नो अपज्जत्तएसु।

[६६८-५ प्र.] भगवन् ! यदि बादर पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-५ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तको मे उत्पन्न नही होते।

---

१ ग्रन्थाग्रम् ३५००

[६] एवं आउ-वणस्सतीसु वि भाणितव्वं।

[६६८-६] इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में (उत्पत्ति के विषय में) भी कहना चाहिए।

[७] पंचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसु य जहा नेरइयाणं उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणितव्वा।

[६६८-७] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में (असुरकुमारों की उत्पत्ति के विषय में) उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूर्च्छिम को छोडकर नैरयिको की उद्वर्त्तना कही है।

[८] एवं जाव थणियकुमारा।

[६६८-८] इसी प्रकार (असुरकुमारों की तरह) स्तनितकुमारो तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए।

६६९. [१] पुढविकाइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु उववज्जंति, नो देवेसु।

[६६९-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सीधे निकल कर (अनन्तर उद्वर्त्तन करके) कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे नारको में यावत् देवो में उत्पन्न होते है ?

[६६९-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिको में उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो में उत्पन्न होते हैं।

[२] एवं जहा एतेसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि[1] भाणितव्वा।

[६६९-२] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी (देवो को छोड़कर) कहनी चाहिए।

६७०. एवं आउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया वि।

[६७०] इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों (की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए।)

६७१. एवं तेऊ वाऊ वि। णवरं मणुस्सवज्जेसु उववज्जंति।

[६७१] इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) मनुष्यो को छोड कर उत्पन्न होते हैं।

६७२ [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

---

१ पाठान्तर 'देव— वज्जा' यह अधिक पाठ किसी-किसी प्रति मे है।

गोयमा ! नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ।

[६७२-१ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते है, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् देवो में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, यावत् देवो में भी उत्पन्न होते हैं ।

[२] जदि णेरइएसु उववज्जति किं रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) नैरयिको में उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको में उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् अधःसप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में (से किन्ही मे) उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-२ उ.] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिको मे भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[३] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचिदिएसु ?

गोयमा ! एगिंदिएसु वि उववज्जंति जाव पंचेंदिएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों मे उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियो मे यावत् पंचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-३ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् पचेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[४] एव जहा एतेसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणितव्वा । नवरं असंखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जंति ।

[६७२-४] यों जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि ये असंख्यातवर्षों को आयु वालों मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[५] जति मणुस्सेसु उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु उववज्जंति गब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! दोसु वि उववज्जंति ।

[६७२-५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो में उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-५ उ] गौतम ! (वे) दोनों में ही उत्पन्न होते हैं।

[६] एवं जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणितव्वा। णवरं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जंति त्ति भाणितव्वं।

[६७२-६] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषतया अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं, यह कहना चाहिए।

[७] जति देवेसु उववज्जंति किं भवणवतीसु उववज्जंति ? जाव किं वेमाणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति।

[६७२-७ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) देवो मे उत्पन्न होते है तो क्या भवनपति देवो मे उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् वैमानिको में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-७ उ] गौतम ! (वे) सभी (प्रकार के) देवों मे उत्पन्न होते हैं।

[८] जति भवणवतीसु उववज्जंति किं असुरकुमारेसु उववज्जंति ? जाव थणियकुमारेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति।

[६७२-८ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) भवनपति देवो मे उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमारो मे उत्पन्न होते है ? (अथवा) यावत् स्तनितकुमारो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-८ उ] गौतम ! (वे) सभी (भवनपतियों) में उत्पन्न होते हैं।

[९] एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु निरंतरं उववज्जंति जाव सहस्सारो कप्पो त्ति।

[६७२-९] इसी प्रकार वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और सहस्रारकल्प तक के वैमानिक देवो में निरन्तर उत्पन्न होते है।

६७३. [१] मणुस्सा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति।

[६७३-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवो में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७३-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिको में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

[२] एवं निरंतरं सव्वेसु ठाणेसु पुच्छा।

गोयमा ! सव्वेसु ठाणेसु उववज्जंति, ण कहिंचि पडिसेहो कायव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवेसु वि उववज्जंति, अत्थेगतिया सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

[६७३-२ प्र.] भगवन् ! क्या (मनुष्य) नैरयिक आदि सभी स्थानों में उत्पन्न होते है ?

[६७३-२ उ.] गौतम ! वे (इन) सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं, कही भी इनके उत्पन्न होने का निषेध नही करना चाहिए; यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक में भी (मनुष्य) उत्पन्न होते हैं और कई मनुष्य सिद्ध होते हैं, बुद्ध (केवलबोधप्राप्त) होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण प्राप्त को करते है और सर्वदु:खों का अन्त करते हैं ।

६७४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा । नवरं जोइसियाणं वेमाणियाण य चयंतीति अभिलावो कातव्वो ।

[६७४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म एव ईशान देवलोक के वैमानिक देवो की उद्‍वर्त्तन-प्ररूपणा असुरकुमारों के समान, समझनी चाहिए । विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए ('उद्वर्त्तना करते हैं' के बदले) 'च्यवन करते हैं', यो कहना चाहिए ।

६७५. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा असुरकुमारा । नवरं एगिंदिएसु ण उववज्जंति । एवं जाव सहस्सारगदेवा ।

[६७५ प्र.] भगवन ! सनत्कुमार देव अनन्तर च्यवन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[६७५ उ.] इनकी (च्यवनानन्तर उत्पत्तिसम्बन्धी) वक्तव्यता असुरकुमारो के (उपपात-सम्बन्धी वक्तव्य के) समान समझनी चाहिए । विशेष यह है कि (ये) एकेन्द्रियो में उत्पन्न नही होते । इसी प्रकार की वक्तव्यता सहस्रार देवो तक की कहनी चाहिए ।

६७६. आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एवं चेव । णवरं णो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणूसेसु पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति । दारं ६ ।।

[६७६] आनत देवों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक (च्यवनानन्तर उत्पत्ति-सम्बन्धी) वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए । विशेष यह है कि (ये देव) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न नही होते, मनुष्यो में भी पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ।

—छठा उद्वर्तनाद्वार ।।६।।

विवेचन—छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चतुर्गतिक जीवों के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ६६६ से ३७६ तक) में नैरयिकों से लेकर देवो तक के उद्वर्त्तना-नन्तर गमन एवं उपपात के सम्बन्ध में सूक्ष्म ऊहापोहपूर्वक प्ररूपणा की गई है ।

उद्वर्त्तना की परिभाषा—नारकादि जीवों का अपने भव से निकलकर (मरकर या च्यवकर) सीधे (बीच में कहीं अन्तर-व्यवधान न करके) किसी भी अन्य गति या योनि मे जाना और उत्पन्न होना[1] उद्वर्त्तना कहलाता है ।

निष्कर्ष—अपने भव से (मृत या च्युत होकर) निकले हुए नैरयिको का सीधा (साक्षात्) उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यक्पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में होता है; सातवी नरकपृथ्वी के नैरयिको

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ११०९

का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों में होता है, असुरकुमारादि भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशान कल्प के वैमानिक देवों का उत्पाद बादर पर्याप्त पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिकों में तथा गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियो एव मनुष्यों में होता है। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक तथा द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्पाद तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति मे तथा तेजस्कायिक-वायुकायिकों का केवल तिर्यञ्चगति में ही होता है। तिर्यञ्चपचेन्द्रियो का उत्पाद नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवगति में, विशेषत: सहस्रार-कल्पपर्यन्त वैमानिको मे होता है। मनुष्यो का उत्पाद चारों गतियों के सभी स्थानों में होता है तथा सनत्कुमार से लेकर सहस्रार देव पर्यन्त वैमानिक देवो का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यंचपचेन्द्रियो एव मनुष्यो मे होता है, और आनत कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के देवो का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क मनुष्यो में ही होता है।[1]

सप्तम परभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पारभविकायुष्यसम्बन्धी प्ररूपणा

६७७. नेरइया णं भंते! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

[६७७ प्र.] भगवन्! आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव (आगामी जन्म) की आयु (का बन्ध) करते हैं ?

[६७७ उ.] गौतम! (वे) नियम से छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

६७८. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[६७८] इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक (का परभविक-आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन करना चाहिए।

६७९. पुढविकाइया णं भंते! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ? पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

[६७९ प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बाधते हैं ?

[६७९ उ.] गौतम! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) सोप-क्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें से जो निरुपक्रम (उपक्रमरहित) आयु वाले हैं, वे नियम से आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं तथा इनमे जो सोपक्रम (उपक्रमसहित) आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २१६

आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं।

६८०. आउ-तेउ-वाउ-वणप्फइकाइयाणं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण वि एवं चेव।

[६८०] अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियों (के पारभविक-आयुष्यबन्ध) का कथन भी इसी प्रकार (करना चाहिए)।

६८१. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—संखेज्जवासाउया य असंखेज्जवासाउया य। तत्थ णं जे ते असंखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते संखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते णं सिय तिभागे परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागे य परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

[६८१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं ?

[६८१ उ.] गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) संख्यातवर्षायुष्क और (२) असंख्यातवर्षायुष्क। उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियम से छह मास आयु शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर लेते हैं और जो इनमें संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) सोपक्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुबन्ध करते हैं।

६८२. एवं मणूसा वि।

[६८२] मनुष्यों का (पारभविक आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।)

६८३. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। दारं ७॥

[६८३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों (के परभव का आयुष्यबन्ध) नैरयिकों के (पारभविक आयुष्यबन्ध के) समान (छह मास शेष रहने पर) कहना चाहिए।

सप्तम पारभविकायुष्यद्वार ॥७॥

विवेचन—सप्तम पारभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी प्ररूपणा—नरकादि चारों गतियों के जीवों की आयु का कितना भाग शेष रहते परभवसंबंधी आयुष्य

बन्ध होता है ? इस विषय में प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ६७७ से ६८३ तक) में प्ररूपणा की गई है।

पारभविकायुष्यद्वार का तात्पर्य—वर्तमान भव में नारकादिपर्याय वाले जीव अपने वर्तमान भव सम्बन्धी आयु का कितना भाग शेष रहते अथवा आयुष्य का कितना भाग बीत जाने पर अगले जन्म (आगामी-परभव) की आयु का बन्ध करते हैं ? यही बताना इस द्वार का आशय है।

सोपक्रम और निरुपक्रम की व्याख्या—जो आयु उपक्रमयुक्त हो, वह सोपक्रम कहलाती है और जो आयु उपक्रम से प्रभावित न हो सके, वह निरुपक्रम कहलाती है। आयु का विघात करने वाले तीव्र विष, शस्त्र, अग्नि, जल आदि उपक्रम कहलाते है। इन उपक्रमो के योग से दीर्घकाल में धीरे-धीरे भोगी जाने वाली आयु बन्धकालीन स्थिति से पहले (शीघ्र) ही भोग ली जाती है। अर्थात् इन उपक्रमो के निमित्त से जो आयु बीच में ही टूट जाती है, जिस आयु का भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा से कम हो, उसे अकालमृत्यु, सोपक्रम आयु अथवा अपवर्तनीय आयु भी कहते है। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने म पहले न भोगी जा सके, अर्थात्—जिसका भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा के समान हो, वह निरुपक्रम या अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक (नारक और देव), चरमशरीरी, उत्तमपुरुष और असख्यातवर्षजीवी (मनुष्य-तिर्यञ्च), ये अनपवर्तनीय-निरुपक्रम आयु वाले होते है।

निष्कर्ष—निरुपक्रमी जीवो मे औपपातिक और असख्यातवर्षजीवी अनपवर्तनीय आयु वाले होते हैं। वे आयुष्य के ६ मास शेष रहते आगामी भव का आयुष्यबन्ध करते है, जैसे—नैरयिक, सब प्रकार के देव और असंख्यातवर्षजीवी मनुष्य-तिर्यञ्च। पृथ्वीकायिकादि से लेकर मनुष्यो तक दोनो ही प्रकार की आयु वाले होते हैं। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले होते है, वे आयु (स्थिति) के दो भाग व्यतीत हो जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव का आयुष्य बाधते हैं, किन्तु जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् वर्तमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते है, किन्तु यह नियम नही है कि वे तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर ही ले। अतएव जो जीव उस समय आयुबन्ध नही करते, वे अवशिष्ट तीसरे भाग के तीन भागो में से दो भाग व्यतीत हो जाने पर और एक भाग शेष रहने पर आयु का बन्ध करते हैं। कदाचित् इस तीसरे भाग मे भी पारभविक आयु का बन्ध न हुआ तो शेष आयु का तीसरा भाग शेष रहते आयु का बन्ध करते हैं। अर्थात् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के तीसरे भाग मे आयुष्यबन्ध करते हैं। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ यो करते हैं कि कभी आयु का नौवा भाग शेष रहने पर अथवा कभी आयु का सत्ताईसवां भाग शेष रहने पर सोपक्रम आयु वाले जीव आगामी भव का आयुष्य बाधते हैं।[1]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ११४२-११४३
(ख) तत्त्वार्थसूत्र (विवेचन, प. सुखलालजी, नवसस्करण)
'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ।' २, २५
—तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सू ५२ पर विवेचन। पृ. ७९-८०
(ग) श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़े, प्रथम भाग, पृ. १५०
(घ) 'कभी-कभी अपनी आयु के २७ वें भाग का तीसरा भाग यानी ८१ वां भाग शेष रहने पर, कभी ८१ वें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वां भाग और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वा भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बाधते हैं।' —किन्ही आचार्यों का मत
-- श्री पन्नवणासूत्र के थोकडे, प्रथमभाग पृ. १५०, प्रज्ञापन प्र बो. टीका भा. २, पृ ११४४-४५

अष्टम आकर्षद्वार : सर्वजीवों के षड्विध आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व

६८४. कतिविधे णं भंते ! आउयबंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विधे आउयबंधे पण्णत्ते । तं जहा- जातिणामणिहत्ताउए १ गइनामनिहत्ताउए २ ठितीनामनिहत्ताउए ३ ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४ पदेसणामणिहत्ताउए ५ अणुभावणामणिहत्ताउए ६ ।

[६८४ प्र] भगवन् ! आयुष्य का बन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८४ उ.] गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८५. नेरइयाणं भंते ! कतिविहे आउयबंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते । तं जहा—जातिनामनिहत्ताउए १ गतिणामनिहत्ताउए २ ठितीणामणिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पदेसणामनिहत्ताउए ५ अणुभावनामनिहत्ताउए ६ ।

[६८५ प्र] भगवन् ! नैरयिकों का आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८५ उ.] गौतम ! (नैरयिकों का) आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८६. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[६८६] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिकों तक के आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा समझनी चाहिए ।

६८७. जीवा णं भंते ! जातिणामणिहत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं ।

[६८७ प्र.] भगवन् ! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते है ?

[६८७ उ] गौतम ! (जीव जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से (बांधते हैं।)

६८८. नेरइया णं भंते ! जाइनामनिहत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं ।

[६८८ प्र.] भगवन् ! नारक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

[६८८ उ.] गौतम ! (नारक जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं ।

६८९. एवं जाव वेमाणिया ।

[६८९] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिक तक (के जातिनामनिधत्तायु की आकर्ष-संख्या का कथन करना चाहिए ।)

६९०. एवं गतिणामणिहत्ताउए वि ठितीणामणिहत्ताउए वि ओगाहणाणामणिहत्ताउए वि पदेसणामनिहत्ताउए वि अणुभावणामनिहत्ताउए वि ।

[६९०] इसी प्रकार (समस्त जीव) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभावनामनिधत्तायु का (बन्ध) भी जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं ।

६९१ एतेसि णं भंते ! जीवाणं जातिनामनिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा जातिणामणिहत्ताउयं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा, सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, एवं पंचहिं संखेज्जगुणा, चउहिं संखेज्जगुणा, तिहिं संखेज्जगुणा, दोहिं संखेज्जगुणा, एगेणं आगरिसेणं पगरेमाणा संखेज्जगुणा ।

[६९१ प्र.] भगवन् ! इन जीवों मे जघन्य एक, दो और तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध करने वालो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[६९१ उ.] गौतम ! सबसे कम जीव जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बाधने वाले हैं, सात आकर्षों से बाधने वाले (इनसे) सख्यातगुणे हैं, छह आकर्षों से बाधने वाले (इनसे) संख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार पाच (आकर्षों से बाधने वाले इनसे) सख्यातगुणे हैं, चार (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) सख्यातगुणे हैं, तीन (आकर्षों से बाधने वाले, इनसे) सख्यातगुणे हैं, दो (आकर्षों से बाधने वाले, इनसे) सख्यातगुणे है और एक आकर्ष से बाधने वाले, (इनसे भी) सख्यातगुणे है ।

६९२. एवं एतेणं अभिलावेणं जाव अणुभावनिहत्ताउयं । एवं एते छ प्पि य अप्पाबहुदंडगा जीवादीया भाणियव्वा । दारं ८ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छट्ठं वक्कंतिपयं समत्तं ॥

[६९२] इसी प्रकार इस अभिलाप से (ऐसा ही अल्पबहुत्व का कथन) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और यावत् अनुभावनामनिधत्तायु को बाधने वालो का (जान लेना चाहिए ।) इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्डक जीव से आरम्भ करके कहने चाहिए ।

आठवां आकर्षद्वार ॥८॥

विवेचन—आठवाँ आकर्षद्वार : सभी जीवों के छह प्रकार के आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अष्टमद्वार में नौ सूत्रो (सू. ६८४ से ६९२ तक) द्वारा तीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं—

१. जीवसामान्य के तथा नारकों से वैमानिकों तक का छह प्रकार का आयुष्यबन्ध ।

२. जीवसामान्य तथा नारकादि वैमानिकपर्यन्त जीवो द्वारा जातिनामनिधत्तायु आदि छहो का जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध की प्ररूपणा ।

३ जातिनामनिधत्तायु आदि प्रत्येक आयु को जघन्य-उत्कृष्ट आकर्षों से बाधने वाले जीवो का अल्पबहुत्व ।

आयुष्यबन्ध के छह प्रकारों का स्वरूप—(१) **जातिनामनिधत्तायु**—जैनदृष्टि से एकेन्द्रियादि-रूप पाच प्रकार की जातियां हैं । वे नामकर्म की उत्तरप्रकृतिविशेष रूप है, उस 'जातिनाम' के साथ निधत्त अर्थात्—निषिक्त जो आयु हो, वह **'जातिनामनिधत्तायु'** है । 'निषेक' कहते हैं—कर्मपुद्गलो के अनुभव करने के लिए रचनाविशेष को । वह रचना इस प्रकार की होती है—अपने अबाधाकाल को छोडकर (क्योकि अबाधाकाल में कर्मपुद्गलो का अनुभव नही होता, इसलिए उसमें कर्मदलिकों की रचना नही होती ।) प्रथम—जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तरूप स्थिति में बहुतर द्रव्य होता है । एक आकर्ष मे ग्रहण किये हुए कर्मदलिकों में बहुत-से जघन्य स्थिति वाले ही होते हैं । शेष एक समय आदि से अधिक अन्तर्मुहूर्त्तादि स्थिति में विशेष हीन (कम) द्रव्य होता है, एव यावत् उत्कृष्ट स्थिति मे उत्कृष्टत· (विशेषहीन अर्थात्—सर्वहीन=सबसे कम) दलिक होते है । (२) **गतिनामनिधत्तायु**—गतिया चार हैं—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति । गतिरूप नामकर्म 'गतिनाम' है । उनके साथ निधत्त (निषक्त) आयु **'गतिनामनिधत्तायु'** कहलाती है । (३) **स्थितिनामनिधत्तायु**—उस-उस भव मे (आयुष्यबल से) स्थित रहना स्थिति है । स्थितिप्रधान नाम (नामकर्म) स्थितिनाम है । उसके साथ निधत्त आयु **'स्थितिनामनिधत्तायु'** है । जो जिस भव मे उदयप्राप्त रहता है, वह स्थितिनाम है; जो कि गति, जाति तथा पांच शरीरो से भिन्न है । (४) **अवगाहनानामनिधत्तायु**—जिसमे जीव अवगाहन करे उसे अवगाहना कहते हैं । औदारिकादि शरीर उनका निर्माण करने वाला औदारि-कादि शरीरनामकर्म—अवगाहनानाम है । उसके साथ निधत्त आयु, **'अवगाहनानामनिधत्तायु'** कहलाती है । (५) **प्रदेशनामनिधत्तायु**—प्रदेश कहते हैं—कर्मपरमाणुओ को । वे प्रदेश संक्रम से भी भोगे जाने वाले ग्रहण किये जाते हैं । उन (प्रदेशों) की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) प्रदेशनाम कहलाता है, तात्पर्य यह है कि जो जिस भव में प्रदेश से विपाकोदय के विना ही भोगा (अनुभव किया) जाता है, वह प्रदेशनाम कहलाता है । उक्त प्रदेशनाम के साथ निधत्त आयु को **'प्रदेशनामनिधत्तायु'** कहते हैं । (६) **अनुभावनामनिधत्तायु**—अनुभाव कहते हैं—विपाक को । यहा प्रकर्ष अवस्था को प्राप्त विपाक ही ग्रहण किया जाता है । उस अनुभाव-विपाक की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) 'अनुभाव-नाम' कहलाता है । तात्पर्य यह है कि जिस भव में जो तीव्र विपाक वाला नामकर्म भोगा जाता है, वह अनुभावनाम कहलाता है । जैसे—नरकायु में अशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, उपघात, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति आदि नामकर्म हैं । अतः अनुभावनाम के साथ निधत्त आयु **'अनुभावनामनिधत्तायु'** कहलाती है ।

प्रस्तुत मे आयुकर्म की प्रधानता प्रकट करने के लिए जाति, गति, स्थिति, अवगाहना नामकर्म

आदि को आयु के विशेषण के रूप मे कहा है। नारक आदि की आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नामकर्मों का उदय होता है। अन्यथा नही, अतएव आयु को ही यहां प्रधानता है।[1]

आकर्ष का स्वरूप—आकर्ष कहते हैं—विशेष प्रकार के प्रयत्न से जीव द्वारा होने वाले कर्म-पुद्गलो के उपादान—ग्रहण को। प्रस्तुत सूत्रो (सू. ६८७ से ६९० तक) में इस विषय की चर्चा की गई है कि जीवसामान्य तथा नारक से लेकर वैमानिक तक कितने आकर्षों यानी प्रयत्नविशेषों से जातिनामनिधत्तायु आदि षड्विध आयुष्यकर्म-पुद्गलो का ग्रहण, बन्ध करने हेतु, करते हैं? उदाहरणार्थ—जैसे—कई गाये एक ही घूंट में पर्याप्त जल पी लेती हैं, कई भय के कारण रुक-रुक कर दो, तीन या चार अथवा सात-आठ घूंटो में जल पीती है। उसी प्रकार कई जीव उन-उन जातिनाम आदि से निधत्त आयुकर्म के (बन्धहेतु) पुद्गलो का तीव्र अध्यवसायवश एक ही मन्द आकर्ष मे ग्रहण कर लेते हैं, दूसरे दो या तीन मन्दतर आकर्षों में या चार या पाच मन्दतम आकर्षो में या फिर छह, सात या आठ अत्यन्त मन्दतम आकर्षों में ग्रहण करते है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि आयु के साथ बन्धने वाले जाति आदि नामो (नामकर्मों) मे ही आकर्ष का नियम है, शेष काल में नही। कई प्रकृतियाँ 'ध्रुवबन्धिनी' होती हैं और कई 'परावर्तमान' होती है। उनका बहुत काल तक बन्ध सम्भव होने से उनमे आकर्षों का नियम नही है।[2]

आकर्ष करने वाले जीवों का तारतम्य—बन्ध के हेतु आयुष्यकर्मपुद्गलों का ग्रहण अधिक-से-अधिक आठ आकर्षों मे करने वाले जीव सबसे कम है, उनसे क्रमश. कम आकर्ष करने वाले जीव उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक हैं, सबसे अधिक जीव एक आकर्ष करने वाले है।[3]

॥ प्रज्ञापनासूत्रः छठा व्युत्क्रान्तिपद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २१७-२१८

२. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २१८

३. पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ. ७४

सत्तमं उस्सासपयं

सप्तम उच्छ्वासपद

प्राथमिक

- ☐ प्रज्ञापनासूत्र के सप्तम 'उच्छ्वासपद' में सिद्ध जीवो के सिवाय समस्त ससारी जीवो के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की चर्चा है।

- ☐ जीवनधारण के लिए प्रत्येक प्राणी को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता है। चाहे वह मुनि हो, चक्रवर्ती हो, राजा हो अथवा किसी भी प्रकार का देव हो, नारक हो अथवा एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय तक किसी भी जाति का प्राणी हो। इसलिए श्वासोच्छ्वासरूप प्राण का अत्यन्त महत्त्व है और यह 'जीवतत्त्व' से विशेषरूप से सम्बन्धित है। इस कारण शास्त्रकार ने इस पद की रचना करके प्रत्येक प्रकार के जीव के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की प्ररूपणा की है।

- ☐ इस पद के प्रत्येक सूत्र के मूलपाठ मे **'आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा'** यों चार क्रियापद हैं। वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि **'आणमंति'** और **'ऊससंति'** को तथा **'पाणमंति'** और **'नीससंति'** को एकार्थक मानते हैं, परन्तु उन्होने अन्य आचार्यों का मत भी दिया है। उसके अनुसार प्रथम के दो क्रियापदो को बाह्य श्वासोच्छ्वास क्रिया के अर्थ मे माना गया है।

- ☐ प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम नैरयिको के उच्छ्वासनि:श्वास-विरहकाल की, तत्पश्चात् दस भवनपति देवों, पृथ्वीकायिकादि पाच एकेन्द्रियो, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों तथा पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो, मनुष्यो के श्वासोच्छ्वास-विरहकाल की चर्चा की है। अन्त मे वाणव्यन्तरो ज्योतिष्को, सौधर्मादि वैमानिको एव नौ ग्रैवेयकों तथा पांच अनुत्तरविमानवासी देवो के उच्छ्वास-नि:श्वास-विरहकाल की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की है।[1]

- ☐ समस्त ससारी जीवों के उच्छ्वास-नि:श्वासविरहकाल की इस प्ररूपणा पर से एक बात स्पष्ट फलित होती है, जिस की ओर वृत्तिकार ने ध्यान खींचा है। वह यह कि जो जीव जितने अधिक दु:खी होते हैं, उन जीवो की श्वासोच्छ्वासक्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है और अत्यन्त दु:खी जीवों के तो यह क्रिया सतत अविरत रूप से चला करती है। जो जीव जितने-जितने अधिक, अधिकतर या अधिकतम सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देर से चलती है। अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास-विरहकाल उतना ही अधिक, अधिकतर और अधिकतम है; क्योंकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप में दु:खरूप है, यह बात स्वानुभव से भी सिद्ध है, शास्त्रसमर्थित भी है।[2]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्राक २२०-२२१ (ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ १८४ से १८७

२. (क) प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २२० (ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक) भा. २, पृ. ७५

सत्तमं उस्सासपयं

सप्तम उच्छ्वासपद

६९३. नेरइया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! सततं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

[६९३ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कितने काल से अन्त:स्फुरित उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास (ऊँचा श्वास) और नि:श्वास (नीचा श्वास) लेते हैं ? (अथवा उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेते और नि:श्वास अर्थात् श्वास छोड़ते हैं ।)

[६९३ उ.] गौतम ! वे सतत सदैव निरन्तर अन्त:स्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वास एवं बाह्य-स्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वास लेते रहते हैं ।

६९४. असुरकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति व पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं सातिरेगस्स पक्खस्स वा आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

[६९४ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-नि:श्वासक्रिया करते है ?

[६९४ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः सात स्तोक में और उत्कृष्टतः सातिरेक एक पक्ष मे (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते है तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं नि:श्वास लेते है ।

६९५. नागकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा उससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स ।

[६९५ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं ?

[६९५ उ.] गौतम ! वे जघन्य सात स्तोक में और उत्कृष्टतः मुहूर्त्तपृथक्त्व में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एव नि:श्वास लेते हैं ।

६९६. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

[६९६ प्र.] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक के उच्छ्वास-नि:श्वास के विषय में समझ लेना चाहिए ।

६९७. पुढविकाइया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! वेमायाए आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

[६९७ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एव (बाह्य) उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं ?

[६९७ उ.] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव) विमात्रा (अनियत काल) से (अन्त.स्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एव (बाह्य) उच्छ्वास तथा नि.श्वास लेते हैं ।

६९८. एवं जाव मणूसा ।

[६९८] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् मनुष्यो तक (के आन्तरिक एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के विषय में जानना चाहिए ।)

६९९. वाणमंतरा जहा णागकुमारा ।

[६९९] वाणव्यन्तर देवो के (आन्तरिक एव बाह्य उच्छ्वास और नि.श्वास के विषय मे) नागकुमारों के (उच्छ्वास-नि.श्वास) के समान (कहना चाहिए ।)

७००. जोइसिया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं वि मुहुत्तपुहुत्तस्स जाव नीससंति वा ।

[७०० प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास-निःश्वास एव (बाह्य) श्वासोच्छ्वास कितने काल से लेते हैं ?

[७०० उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. मुहूर्त्तपृथक्त्व और उत्कृष्टत. भी मुहूर्त्तपृथक्त्व से (आन्तरिक और बाह्य) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ।

७०१ वेमाणिया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०१ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ?

[७०१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. मुहूर्त्तपृथक्त्व मे और उत्कृष्टत तेतीस पक्ष में (आन्तरिक एव बाह्य) उच्छ्वास तथा नि.श्वास लेते हैं ।

७०२. सोहम्मगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०२ उ.] गौतम ! जघन्य मुहूर्तपृथक्त्व मे, उत्कृष्ट दो पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०३. ईसाणगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगस्स मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प के देव कितने काल से (अन्त.स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. सातिरेक (कुछ अधिक) मुहूर्त्तपृथक्त्व मे और उत्कृष्टत. सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षो मे (अन्त.स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०४. सणंकुमारदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०४ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमार देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि·श्वास लेते हैं ?

[७०४ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः दो पक्ष मे (अन्त.स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य)निःश्वास लेते हैं और उत्कृष्टतः सात पक्षो मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि.श्वास लेते है।

७०५. माहिंदगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सातिरेगाण सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०५ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०५ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षो मे और उत्कृष्टतः सातिरेक (कुछ अधिक) सात पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०६. बंभलोगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०६ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प के देव कितने काल से (अन्त.स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेतेहैं ?

[७०६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सात पक्षो में और उत्कृष्टतः दस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०७. लंतगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०७ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य दस पक्षो मे और उत्कृष्ट चौदह पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ।

७०८ महासुक्कदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०८ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प के देव कितने काल मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः चौदह पक्षो मे और उत्कृष्टतः सत्रह पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७०९. सहस्सारगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०९ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि.श्वास लेते हैं ?

[७०९ उ] गौतम ! (वे) जघन्य सत्रह पक्षो मे और उत्कृष्ट अठारह पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७१०. आणयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१० प्र.] भगवन् ! आनतकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७१० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य अठारह पक्षों में और उत्कृष्ट उन्नीस पक्षो में (अन्त.-स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते है ।

७११ पाणयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण एगूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७११ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७११ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत: उन्नीस पक्षों में और उत्कृष्टत: बीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ।

७१२. आरणदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१२ प्र.] भगवन् ! आरणकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं ?

[७१२ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत: बीस पक्षो मे और उत्कृष्टत: इक्कीस पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि·श्वास लेते हैं ।

७१३. अच्चुयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं बावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१३ प्र] भगवन् ! अच्युतकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि·श्वास लेते हैं ?

[७१३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. इक्कीस पक्षों मे और उत्कृष्टत: बाईस पक्षो मे (अन्त·स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१४. हेट्ठिमहिट्ठिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहन्नेणं बावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१४ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत बाईस पक्षो मे और उत्कृष्टत: तेईस पक्षो में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ।

७१५. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१५ उ] भगवन् ! अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१५ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः तेईस पक्षों मे और उत्कृष्टतः चौबीस पक्षों में (अन्तः-स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते है।

७१६. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा देवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं पणुवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१६ प्र] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. चौबीस पक्षो मे और उत्कृष्टत. पच्चीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास, यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं।

७१७. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं पणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१७ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि.श्वास लेते हैं ?

[७१७ उ] गौतम ! (वे) जघन्यतः पच्चीस पक्षो में और उत्कृष्टतः छब्बीस पक्षो मे (अन्त.स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१८. मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१८ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१८ उ] गौतम ! (वे) जघन्यतः छब्बीस पक्षो मे और उत्कृष्टतः सत्ताईस पक्षों मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं।

७१९. मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१९ प्र.] भगवन् ! मध्यम उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१९ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सत्ताईस पक्षों में और उत्कृष्टतः अट्ठाईस पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७२०. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा ।

[७२० प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२० उ.] गौतम (वे) जघन्यत. अट्ठाईस पक्षो मे और उत्कृष्टतः उनतीस पक्षों मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ।

७२१. उवरिममज्झिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वाम यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत. उनतीस पक्षो मे और उत्कृष्टनः तीस पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं ।

७२२. उवरिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२२ उ.] गौतम , (वे) जघन्यत तीस पक्षो में और उत्कृष्टत इकतीम पक्षो मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७२३. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजितविमाणेसु णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२३ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ?

[७२३ उ] गौतम ! (वे) जघन्यतः इकतीस पक्षो मे और उत्कृष्टतः तेतीस पक्षों मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि.श्वास लेते हैं ।

७२४. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

।। पण्णवणाए भगवईए सत्तमं उस्सासपयं समत्तं ।।

[७२४ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२४ उ.] गौतम ! (वे) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस पक्षो में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

विवेचन—नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के श्वासोच्छ्वास की प्ररूपणा—प्रस्तुत पद के कुल बत्तीस सूत्रों (सू. ६९३ से ७२४ तक) में क्रमश नैरयिक से लेकर वैमानिक देवो तक चौवीस दण्डकवर्ती ससारी जीवो की अन्तःस्फुरित एव बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-नि.श्वासक्रिया जघन्य एव उत्कृष्ट कितने काल के अन्तर से होती है ? इसकी प्ररूपणा की गई है।

प्रश्न का तात्पर्य—जो प्राणी नारक आदि पर्यायों में उत्पन्न हुए हैं और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हैं, वे कितने काल के बाद उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं ? अर्थात् एक श्वासोच्छ्वास लेने के पश्चात् दूसरा श्वासोच्छ्वास लेने तक मे उनके उच्छ्वास-नि.श्वास का विरहकाल कितना होता है ?, यही इस पद के प्रत्येक प्रश्न का तात्पर्य है।

आणमंति, पाणमंति, ऊससंति, नीससंति पदों की व्याख्या—'अन् प्राणने' धातु से 'आङ्' उपसर्ग लगने पर 'आनन्ति' और 'प्र' उपसर्ग लगने पर 'प्राणन्ति' रूप बनता है तथा सामान्यतया 'आनन्ति' और 'उच्छ्वसन्ति' का तथा 'प्राणन्ति' और 'नि.श्वसन्ति' का एक ही अर्थ है, फिर समानार्थक दो-दो क्रियापदों का प्रयोग यहाँ क्यो किया गया ? ऐसी शका उपस्थित होती है। इसके दो समाधान यहाँ प्रस्तुत किये गए हैं—एक तो यह है कि भगवान् के पट्टधर शिष्य श्री गौतमस्वामी ने अपने प्रश्न को स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने के लिए समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है—जैसे कि 'नैरयिक कितने काल से श्वास लेते हैं अथवा यो कहे कि ऊँचा श्वास और नीचा श्वास लेते है ?' भगवान् के ऐसे प्रश्न के उत्तर में अपने शिष्य के पुनरुक्त वचन के प्रति आदर प्रदर्शित करने हेतु उन्ही समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है, क्योकि गुरुओ के द्वारा शिष्यो के वचन को आदर दिये जाने से शिष्यो को सन्तोष होता है, वे पुन·-पुन अपने प्रश्नों का निर्णयात्मक उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं तथा उन शिष्यों के वचन भी जगत् में आदरणीय समझे जाते हैं। दूसरा समाधान यह है कि 'आनन्ति' और 'प्राणन्ति' का अर्थ अन्तर मे स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया और 'उच्छ्वसन्ति' एवं 'नि·श्वसन्ति' का अर्थ बाहर में स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया समझना चाहिए। अतः यहाँ पुनरुक्ति नही किन्तु अर्थभेद के कारण पृथक्-पृथक् क्रियापदो का प्रयोग किया गया है।

नारकों की सतत उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया का रहस्य—भगवान् ने नैरयिको के उच्छ्वास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में फरमाया कि नैरयिक सदैव निरन्तर अविच्छिन्न रूप से उच्छ्वास-निश्वास लेते रहते हैं, इस कारण उनका श्वासोच्छ्वास लगातार चालू रहता है, एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दूसरी बार के श्वासोच्छ्वास लेने के बीच मे व्यवधान (विरह) नही रहता।

विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेने का तात्पर्य—पृथ्वीकायिक आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय एवं मनुष्य, ये विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं, इसका अर्थ है—इनके उच्छ्वास के विरह का कोई काल नियत नहीं है;

जो स्वस्थ और सुखी अथवा प्राणायाम करने वाले योगी होते हैं, वे दीर्घकाल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं, किन्तु अस्वस्थ और दु:खी या योगी-जल्दी जल्दी श्वास लेते हैं।

देवों में उत्तरोत्तर दीर्घकाल के अनन्तर उच्छ्वास-निःश्वास लेने का रहस्य—देवों में जो देव जितनी अधिक आयु वाला होता है, वह उतना ही अधिक सुखी होता है और जो जितना अधिक सुखी होता है, उसके उच्छ्वास-नि:श्वास का विरहकाल उतना ही अधिक लम्बा होता है, क्योंकि उच्छ्वास-नि.श्वासक्रिया दु:खरूप है। इसलिए देवों में जैसे-जैसे आयु के सागरोपम में वृद्धि होती है, उतने-उतने श्वासोच्छ्वासविरह के पक्षों में वृद्धि होती जाती है।[2]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : सप्तम उच्छ्वासपद समाप्त ॥

□□

२. प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्रांक २२०-२२१

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

प्राथमिक

- प्रज्ञापनासूत्र का यह आठवाँ पद है, इसका नाम है—'संज्ञापद'।

- 'संज्ञा' शब्द पारिभाषिक शब्द है। संज्ञा की स्पष्ट शास्त्रीय परिभाषा है—वेदनीय तथा मोहनीय कर्म के उदय से एवं ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की अभिलाषारूप, रुचिरूप मनोवृत्ति। यो शब्दशास्त्र के अनुसार सज्ञा के दो अर्थ होते हैं—(१) संज्ञान (अभिलाषा, रुचि, वृत्ति या प्रवृत्ति) अथवा आभोग (झुकाव या रुझान, ग्रहण करने की तमन्ना) और (२) जिससे या जिसके द्वारा 'यह जीव है ऐसा सम्यक् रूप से जाना-पहिचाना जा सके'।

- वर्तमान मे मनोविज्ञानशास्त्र, शिक्षामनोविज्ञान, बालमनोविज्ञान, काममनोविज्ञान (सेक्स साइकोलॉजी) आदि शास्त्रों मे प्राणियो की मूल मनोवृत्तियो का विस्तृत वर्णन मिलता है; इन्ही से मिलती-जुलती ये सज्ञाएँ हैं, जो प्राणी की आन्तरिक मनोवृत्ति और बाह्यप्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिससे प्राणी के जीवन का भलीभांति अध्ययन हो सकता है। इन्ही सज्ञाओं द्वारा मनुष्य या किसी भी प्राणी की वृत्ति-प्रवृत्तियो का पता लगा कर उसके जीवन में सुधार या परिवर्तन लाया जा सकता है।

- इस दृष्टि से संज्ञाओं का जीवन मे बहुत बड़ा महत्त्व है, स्वयं की वृत्तियों को टटोलने और तदनुसार उनमे संशोधन-परिवर्धन करके आत्मचिकित्सा करने में।

- प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम आहारादि दस संज्ञाओं का नामोल्लेख करके तत्पश्चात् सामान्यरूप से नारकों से लेकर वैमानिकों तक सर्वससारी जीवो में इन दसो संज्ञाओं का न्यूनाधिक रूप मे एक या दूसरी तरह से सद्भाव बतलाया है। एकेन्द्रिय जीवों मे ये सज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं और उत्तरोत्तर इन्द्रियो के विकास के साथ ये स्पष्टरूप से जीवो मे पाई जाती हैं। तत्पश्चात् इन दस संज्ञाओं में से आहारादि मुख्य चार सज्ञाओं का चार गति वाले जीवो की अपेक्षा से विचार किया गया है कि किस गति के जीव मे कौन-सी संज्ञा अधिकांश रूप मे पाई जाती है? यहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि नैरयिकों में प्राय: भयसज्ञा का, तिर्यंचों में आहारसंज्ञा का, मनुष्यों में मैथुनसंज्ञा का और देवो मे परिग्रहसंज्ञा का प्राबल्य है। यो सामान्य रूप से चारों गतियों के जीवों में ये चारों संज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप मे पाई जाती हैं। तत्पश्चात् प्रत्येक गति के जीव में इन चारों संज्ञाओं के अल्पबहुत्व का विचार किया गया

है। वृत्तिकार ने प्रत्येक गति के जीव में बाहुल्य से पाई जाने वाली संज्ञा का तथा तथारूप संज्ञासम्पन्न जीव की अल्पता या अधिकता का युक्तिपुरःसर कारण बताया है।[1]

☐ कुल मिला कर १३ सूत्रो (सू. ७२५ से ७३७ तक) में जीवतत्त्व से सम्बद्ध संज्ञाओं का प्रस्तुत पद मे सागोपाग विश्लेषण किया है।

☐☐

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ. ७३-७७
(ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १८८-१८९
(ग) जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा पृ. २४२
(घ) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

संज्ञाओं के दस प्रकार

७२५. कति णं भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघसण्णा १० ।

[७२५ प्र.] भगवन् ! संज्ञाएँ कितनी कही गई हैं ?

[७२५ उ.] गौतम ! संज्ञाएँ दस कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) आहारसंज्ञा, (२) भयसंज्ञा, (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा, (५) क्रोधसंज्ञा (६) मानसंज्ञा, (७) मायासंज्ञा, (८) लोभसंज्ञा, (९) लोकसंज्ञा और (१०) ओघसंज्ञा ।

विवेचन—संज्ञाओं के दस प्रकार—प्रस्तुत सूत्र (७२५) में आहारसंज्ञा आदि दस प्रकार की संज्ञाओं का निरूपण किया गया है ।

संज्ञा के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ और शास्त्रीय परिभाषा—संज्ञा की व्युत्पत्ति के अनुसार उसके दो अर्थ फलित होते हैं—(१) संज्ञान अर्थात्—आभोग संज्ञा है । (२) जीव जिस-जिसके निमित्त से सम्यक् प्रकार से जाना-पहिचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते है, किन्तु संज्ञा की शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है—वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की (अभिलाषारूप, रुचिरूप या मनोवृत्तिरूप) क्रिया । यह संज्ञा उपाधिभेद से दस प्रकार की है ।

संज्ञा के दस भेदों की शास्त्रीय परिभाषा—(१) **आहारसंज्ञा**—क्षुधावेदनीयकर्म के उदय से ग्रासादिरूप आहार के लिए तथाविध पुद्‌गलो की ग्रहणाभिलाषारूप क्रिया । (२) **भयसंज्ञा**—भय-मोहनीयकर्म के उदय से भयभीत प्राणी के नेत्र, मुख मे विकारोत्पत्ति, शरीर मे रोमाञ्च, कम्पन, घबराहट आदि मनोवृत्तिरूप क्रिया । (३) **मैथुनसंज्ञा**—पुरुषवेद (मोहनीयकर्म) के उदय से स्त्री-प्राप्ति की अभिलाषा रूप तथा स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-प्राप्ति की अभिलाषारूप एव नपुंसकवेद के उदय से दोनों की अभिलाषारूप क्रिया । (४) **परिग्रहसंज्ञा**—लोभमोहनीय के उदय से ससार के प्रधानकारणभूत सचित्त-अचित्त पदार्थों के प्रति आसक्तिपूर्वक उन्हे ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया । (५) **क्रोधसंज्ञा**—क्रोधमोहनीय के उदय से प्राणी के मुख, शरीर में विकृति होना, नेत्र लाल होना तथा ओठ फड़कना आदि कोपवृत्ति के अनुरूप चेष्टा (६) **मानसंज्ञा**—मानमोहनीय के उदय से अहंकार, दर्प, गर्व आदि के रूप मे जीव की परिणति (परिणामधारा) । (७) **मायासंज्ञा**—मायामोहनीय के उदय मे अशुभ-अध्यवसायपूर्वक मिथ्याभाषण आदि रूप क्रिया करने की वृत्ति । (८) **लोभसंज्ञा**—लोभमोहनीय के उदय से सचित्त-अचित्त पदार्थों की लालसा ।

(९) **लोकसंज्ञा**—लोक में रूढ किन्तु अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण हेय होने पर भी लोकरूढ़ि का अनुसरण करने की प्रबल वृत्ति या अभिलाषा। अथवा मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से ससार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों को (या लोकप्रचलित शब्दों के अनुरूप पदार्थों) को विशेषरूप से जानने की तीव्र अभिलाषा। (१०) **ओघसंज्ञा**—बिना उपयोग के (बिना सोचे-विचारे) धुन-ही-धुन में किसी कार्य को करने की वृत्ति या प्रवृत्ति अथवा सनक। जैसे—उपयोग या प्रयोजन के बिना ही यों ही किसी वृक्ष पर चढ जाना अथवा बैठे-बैठे पैर हिलाना, तिनके तोड़ना आदि। अथवा मति-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से समार के सुन्दर रुचिकर पदार्थों या लोकप्रचलित शब्दो के अनुरूप पदार्थों (अर्थों) को सामान्यरूप से जानने की अभिलाषा। इन दस ही प्रकार की संज्ञाओं में पूर्वोक्त व्युत्पत्तिलभ्य दोनो अर्थ भी घटित हो जाते हैं। उक्त दसों संज्ञाओं में से प्रारम्भ की चार संज्ञाओं में से जिस प्राणी में जिस संज्ञा का बाहुल्य हो, उस पर से उसे जान-पहिचान लिया जाता है। जैसे—नैरयिकों को भयसज्ञा की अधिकता के कारण जान लिया जाता है। अथवा जिसमें जिस प्रकार की अभिलाषा, मनोवृत्ति या प्रवृत्ति हो, उसे वह सज्ञा समझ ली जाती है।[1]

नैरयिकों से वैमानिकों तक में संज्ञाओं की प्ररूपणा

७२६. नेरइयाणं भंते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघ-सण्णा १०।

[७२६ प्र] भगवन् ! नैरयिकों में कितनी सज्ञाएँ कही गई हैं ?

[७२६ उ] गौतम ! उनमें दस सज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मैथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (६) मायासज्ञा (८) लोभसंज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसंज्ञा।

७२७. असुरकुमाराणं भंते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—आहारसण्णा जाव ओघसण्णा।

[७२७ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवों मे कितनी संज्ञाएँ कही हैं ?

[७२७ उ.] गौतम ! असुरकुमारो मे दसों संज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार—आहार-संज्ञा यावत् ओघसंज्ञा।

७२८. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७२८] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक (में पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) कहना चाहिए।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका भा. ३, पृ. ४०-४१

७२९. एवं पुढविकाइयाणं वेमाणियावसाणाणं णेयव्वं ।

[७२९] इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों से लेकर वैमानिक-पर्यन्त (मे पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—नैरयिकों से वैमानिकों तक में संज्ञाओं की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों में नैरयिको से लेकर वैमानिक देवों तक में दसों संज्ञाओं में से पाई जाने वाली संज्ञाओ की प्ररूपणा की गई है। सामान्यरूप से चौबीस दण्डकवर्ती समस्त सांसारिक जीवों में प्रत्येक में दसो ही संज्ञाएँ पाई जाती हैं। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं, जबकि पंचेन्द्रियो में ये स्पष्टत: जानी जाती हैं। यहाँ ये संज्ञाएँ प्राय: पंचेन्द्रियो को लेकर बताई गई हैं।[1]

नारकों में संज्ञाओं का विचार

७३०. नेरइया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता भयसण्णोवउत्ता मेहुणसण्णोवउत्ता परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णं कारणं पडुच्च भयसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३० प्र.] भगवन् ! नैरयिक क्या आहारसंज्ञोपयुक्त (आहारसंज्ञा से युक्तसम्पन्न) हैं, भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं, मैथुनसंज्ञोपयुक्त हैं अथवा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

[७३० उ.] गौतम ! उत्सन्नकारण (बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से वे भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं, (किन्तु) संततिभाव (आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव) की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी हैं।

७३१. एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं आहारसण्णोवउत्ताणं भयसण्णोवउत्ताणं मेहुणसण्णोवउत्ताणं परिग्गहसण्णोवउत्ताणं य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नेरइया मेहुणसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३१ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त, भयसंज्ञोपयुक्त, मैथुनसंज्ञोपयुक्त एव परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७३१ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त, नैरयिक हैं, उनसे संख्यातगुणे आहारसंज्ञोपयुक्त हैं, उनसे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नैरयिक संख्यातगुणे हैं और उनसे भी संख्यातगुणे अधिक भयसंज्ञोपयुक्त नैरयिक हैं।

विवेचन—नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओं के अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. ७३०-७३१) में दो दृष्टियो से आहारादि चार संज्ञाओं में से नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

'ओसन्नकारणं' तथा 'संतइभावं' की व्याख्या—'**ओसन्न**'—(उत्सन्न) का अर्थ यहां 'बाहुल्य अर्थात् प्रायः अधिकांशरूप' से है। '**कारण**' शब्द का अर्थ है—बाह्यकारण। इसी प्रकार **संतइभाव** (संततिभाव) का अर्थ है—सातत्य (प्रवाह) रूप से आन्तरिक अनुभवरूप भाव।

नैरयिकों में भयसंज्ञा की बहुलता का कारण—नैरयिकों में नरकपाल परमाधार्मिक असुरों द्वारा विक्रिया से कृत शूल, शक्ति, भाला आदि भयोत्पादक शास्त्रो का अत्यधिक भय बना रहता है। इसी कारण यहाँ बयाया गया है कि बाह्य कारण की अपेक्षा से नैरयिक बहुलता से (प्राय·) भयसंज्ञोपयुक्त होते हैं।

सतत आन्तरिक अनुभवरूप कारण की अपेक्षा से चारों संज्ञाएँ—आन्तरिक अनुभवरूप मनोभाव की अपेक्षा से नैरयिको मे आहारादि चारो संज्ञाएँ पाई जाती हैं।

नैरयिको में चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार—सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त नारक हैं, क्योकि नैरयिकों के शरीर रातदिन निरन्तर दुःख की अग्नि में सतप्त रहते हैं, आँख की पलक झपकने जितने समय तक उन्हें सुख नही मिलता। अहर्निश दुःख की आग मे पचने वाले नारको को मैथुनेच्छा नही होती। कदाचित् किन्ही को मैथुनसज्ञा होती भी है तो वह भी थोडे-से समय तक रहती है। इसीलिए यहाँ नैरयिको मे सबसे थोड़े मैथुनसज्ञोपयुक्त होते हैं। मैथुनसज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा आहारसज्ञोपयुक्त नारक सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि उन दुःखी नारको मे प्रचुरकाल तक आहार की सज्ञी बनो रहती है। आहारसज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा परिग्रहसज्ञोपयुक्त नारक सख्यातगुणे अधिक इसलिए होते हैं कि नैरयिकों को आहारसज्ञा सिर्फ शरीरपोषण के लिए होती है, जबकि परिग्रहसंज्ञा शरीर के अतिरिक्त जीवनरक्षा के लिए शस्त्र आदि मे होती है और वह चिरस्थायी होती है और परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा भयसंज्ञा वाले नारक सख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए हैं कि नरक मे नारको मृत्युपर्यन्त सतत भय की वृत्ति बनी रहती है। इस कारण भयसंज्ञा वाले नारक पूर्वोक्त तीनो सज्ञाओ वालों से अधिक हैं तथा पृच्छा समय मे भी नारक अतिप्रभूततम भयसज्ञोपयुक्त पाये जाते है।[1]

तिर्यञ्चों में संज्ञाओं का विचार

७३२. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णं कारणं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३२ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या आहारसज्ञोपयुक्त होते हैं यावत् (अथवा) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ?

[७३२ उ.] गौतम ! बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, भयसज्ञोपयुक्त भी यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

१, प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

७३३. एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया परिग्गहसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३३ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक जीवो में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७३३ उ.] गौतम ! सबसे कम परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक होते हैं, (उनसे) मैथुन-संज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे होते हैं, (उनसे) भयसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे होते हैं और उनसे भी आहारसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे अधिक होते हैं ।

विवेचन—तिर्यञ्चों में पाई जाने वाली संज्ञाएँ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३२-७३३) में से प्रथम सूत्र में तिर्यञ्चो मे बहुलता से तथा आन्तरिक अनुभवसातत्य से पाई जाने वाली सज्ञाओ का निरूपण है और द्वितीय सूत्र मे उन-उन सज्ञाओं से उपयुक्त तिर्यञ्चो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

संज्ञाओं की दृष्टि से तिर्यञ्चों का अल्पबहुत्व—परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सबसे कम होते है, क्योंकि तिर्यञ्चो में एकेन्द्रियों की सज्ञा बहुत ही अव्यक्त होती है, शेष तिर्यञ्चो मे भी परिग्रहसज्ञा अल्पकालिक होती है, अत: पृच्छासमय में वे थोडे ही पाए जाते हैं । परिग्रहसज्ञा वालो की अपेक्षा मैथुनसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए है कि उनमे मैथुनसज्ञा का उपयोग प्रचुरतर काल तक बना रहता है । उनकी अपेक्षा भयसंज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उन्हे सजातीयो (तिर्यञ्चो) और विजातीयों (तिर्यञ्चेतर प्राणियो) से भय बना रहता है और भय का उपयोग प्रचुरतम काल तक रहता है । उनकी अपेक्षा भी आहारसज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि सभी तिर्यञ्चों में प्राय. सतत (हर समय) आहारसंज्ञा का सद्भाव रहता है ।[1]

मनुष्यों में संज्ञाओं का विचार

७३४ मणुस्सा णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णकारणं पडुच्च मेहुणसण्णोवउत्ता, संततिभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३४ प्र.] भगवन् ! क्या मनुष्य आहारसंज्ञोपयुक्त होते है, अथवा यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त होते हैं ?

[७३४ उ.] गौतम ! बहुलता से (प्रायः) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते है, (किन्तु) आन्तरिक सातत्यानुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसज्ञोपयुक्त भी होते है, यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

७३५. एतेसि णं भंते ! मणुस्साणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणूसा भयसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३५ प्र.] भगवन् ! आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[७३५ उ.] गौतम ! सबसे थोडे मनुष्य भयसंज्ञोपयुक्त होते है, (उनसे) आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे होते है, (उनसे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते है (और उनसे भी) संख्यातगुणे (अधिक मनुष्य) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं ।

विवेचन—मनुष्यों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३४-७३५) में क्रमशः मनुष्य में बहुलता से तथा सातत्यानुभवभाव से पाई जाने वाली संज्ञाओं एवं उन संज्ञाओं वाले मनुष्यो का अल्पबहुत्व प्रस्तुत किया गया है ।

चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से मनुष्यों का अल्पबहुत्व—भयसंज्ञोपयुक्त मनुष्य सबसे कम इसलिए बताए हैं कि कुछ ही मनुष्यो में अल्प समय तक ही भयसंज्ञा रहती है । उनकी अपेक्षा आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे है, क्योंकि मनुष्यों मे आहारसंज्ञा अधिक काल तक रहती है । आहारसंज्ञा वाले मनुष्यों की अपेक्षा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते है, क्योंकि आहार की अपेक्षा मनुष्यों को परिग्रह की चिन्ता एव लालसा अधिक होती है । परिग्रहसंज्ञा वाले मनुष्यो की अपेक्षा भी मैथुनसंज्ञा मे उपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक पाए जाते है, क्योंकि मनुष्यों को प्रायः मैथुनसंज्ञा अतिप्रभूत काल तक बनी रहती है ।[1]

देवों में संज्ञाओं का विचार

७३६. देवा णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! उस्सण्णं कारणं पडुच्च परिग्गहसण्णोवउत्ता, संततिभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३६ प्र.] भगवन् ! क्या देव आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (अथवा) यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते है ?

[७३६ उ.] गौतम ! बाहुल्य से (प्राय.) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

७३७. एतेसि णं भंते ! देवाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए अट्ठमं सण्णापयं समत्तं ।।

[७३७ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७३७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े आहारसंज्ञोपयुक्त देव है, (उनकी अपेक्षा) भयसंज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे है, (उनकी अपेक्षा) मैथुनसंज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे है और उनसे भी सख्यातगुणे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव हैं ।

विवेचन—देवों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३६-७३७) मे देवो मे बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा का तथा आन्तरिक अनुभव की अपेक्षा से चारो ही संज्ञाओं के निरूपण पूर्वक चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

देवों में बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा क्यों ?—देव अधिकांशतः परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं । क्योंकि परिग्रहसंज्ञा के जनक कनक, मणि, रत्न आदि मे उन्हे सदा आसक्ति बनी रहती है ।

देवों का चारों संज्ञाओ की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम आहारसंज्ञोपयुक्त देव होते है, क्योकि देवो की आहारेच्छा का विरहकाल बहुत लम्बा होता है तथा आहारसंज्ञा के उपयोग का काल बहुत थोड़ा होता है । अतएव पृच्छा के समय वे थोड़े ही पाए जाते हैं । आहारसंज्ञोपयुक्त देवो की अपेक्षा भयसंज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे अधिक होते है, क्योकि भयसंज्ञा बहुत-से देवो की चिरकाल तक रहती है । भयसंज्ञोपयुक्त देवो की अपेक्षा मैथुनसंज्ञा वाले देव संख्यातगुणे अधिक और उनसे भी परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे कहे गए हैं, कारण पहले बताया जा चुका है ।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : अष्टम संज्ञापद समाप्त ।।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२४

णवमं जोणिपयं

नौवां योनिपद

प्राथमिक

- प्रज्ञापना सूत्र का यह नौवा 'योनिपद' है।

- एक भव का आयुष्य पूर्ण होने पर जीव अपने साथ तैजस और कार्मण शरीर को लेकर जाता है। फिर जिस स्थान में जाकर वह नए जन्म के योग्य औदारिक आदि शरीर के पुद्गलो को ग्रहण करता है या गर्भरूप मे उत्पन्न होता है, अथवा जन्म लेता है, उस उत्पत्तिस्थान को 'योनि' कहते हैं।

- योनि का प्रत्येक प्राणी के जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है, क्योंकि जिस योनि मे प्राणी उत्पन्न होता है, वहाँ का वातावरण, प्रकृति, सस्कार, परम्परागत प्रवृत्ति आदि का प्रभाव उस प्राणी पर पड़े बिना नही रहता। इसलिए प्रस्तुत पद में श्री श्यामाचार्य ने योनि के विविध प्रकारो का उल्लेख करके उन-उन योनियो की अपेक्षा से जीवो का विचार प्रस्तुत किया है।

- प्रस्तुत पद में योनि का अनेक दृष्टियो से निरूपण किया गया है। सर्वप्रथम शीत, उष्ण और शीतोष्ण, इस प्रकार योनि के तीन भेद करके नैरयिको से लेकर वैमानिको तक मे किस जीव की कौन-सी योनि है, इसकी प्ररूपणा की गई है, तदनन्तर इन तीनो योनियों वाले और अयोनिक जीवो में कौन किससे कितने अल्पाधिक है? इसका विश्लेषण है। तत्पश्चात् सचित्त, अचित्त और मिश्र, इस प्रकार त्रिविधयोनियो का उल्लेख करके इसी तरह की चर्चा-विचारणा की है। तत्पश्चात् संवृत, विवृत और संवृत-विवृत यो योनि के तीन भेद करके पुन. पहले की तरह विचार किया गया है और अन्त मे मनुष्यो की कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियों का उल्लेख करके उनकी अधिकारिणी स्त्रियो का तथा उनमें जन्म लेने वाले मनुष्यों का प्रतिपादन किया है। कुल मिलाकर समस्त जीवो की योनियों के विषय में इस पद में सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।

- जो चौरासी लक्ष जीवयोनियां है, उनका मुख्य उद्गमस्रोत ये ही ९ प्रकार की सर्व प्राणियों की योनियां हैं। इन्हीं की शाखा-प्रशाखा के रूप मे ८४ लक्ष योनियां प्रस्फुटित हुई है।

- समस्त मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान का निर्देश करने वाली तीन विशिष्ट योनिया अन्त मे बताई गई है—कूर्मोन्नता, शंखावर्ता और वशीपत्रा। तीर्थंकरादि उत्तमपुरुष कूर्मोन्नता योनि में जन्म धारण करते हैं, स्त्रीरत्न की शंखावर्त्ता योनि में अनेक जीव आते है, गर्भरूप में रहते है, उनके

शरीर का चयोपचय भी होता है, किन्तु प्रबल कामाग्नि के ताप से वे वही नष्ट हो जाते हैं, जन्म धारण नही करते, गर्भ से बाहर नहीं आते। इससे विदित होता है कि प्रबल कामभोग से गर्भस्थ जीव पनप नही सकता। तीसरी वंशीपत्रा योनि सर्वसाधारण मनुष्यो की होती है।[1]

□□

---

१. (क) पण्णवणासुत्त मूलपाठ भा. १, पृ. १९० से १९२
(ख) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ ७७-७८
(ग) जैनागम साहित्य : मनन और मीमासा, पृ. २४३

णवमं जोणिपयं

नौवाँ योनिपद

शीतादि विविध योनियों की नारकादि में प्ररूपणा

७३८. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । तं जहा—सीता जोणी १ उसिणा जोणी २ सीतोसिणा जोणी ३ ।

[७३८ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

[७३८ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण योनि ।

७३९. नेरइयाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता, वि जोणी, उसिणा वि जोणी, नो सीतोसिणा जोणी ।

[७३९ प्र.] भगवन् ! नैरयिको की क्या शीन योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७३९ उ] गौतम ! (नैरयिको की) शीत योनि भी होती है और उष्ण योनि भी होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि नही होती ।

७४०. असुरकुमाराणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा, सीतोसिणा जोणी ।

[७४० प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४० उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि होती है ।

७४१. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

[७४१] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक (की योनि के विषय में समझना चाहिए ।)

७४२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४२ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होनी है ?

[७४२ उ.] गौतम ! उनकी शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४३. एवं आउ-वाउ-वणस्सति-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण वि पत्तेयं भाणियव्वं ।

[७४३] इसी तरह अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की योनि के विषय मे कहना चाहिए।

७४४. तेउक्काइयाणं नो सीता, उसिणा, नो सीतोसिणा ।

[७४४] तेजस्कायिक जीवो की शीत योनि नही होती, उष्ण योनि होती है, शीतोष्ण योनि नहीं होती।

७४५. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४५ प्र.] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४५ उ] गौतम ! (उनकी) योनि शीत भी होती है, उष्ण भी होती है और शीतोष्ण भी होती है।

७४६. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव ।

[७४६] सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको (की योनि) के विषय में भी इसी तरह (कहना चाहिए।)

७४७. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७४७ प्र.] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४७ उ] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

७४८. मणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४८ प्र.] भगवन् ! मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४८ उ.] गौतम ! मनुष्यों की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४९. सम्मुच्छिममणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोतमा ! तिविहा वि जोणी ।

[७४९ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४९ उ.] गौतम ! उनकी तीनो प्रकार की योनि होती है ।

७५०. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५० प्र.] भगवन् ! गर्भज मनुष्यो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनी होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५० उ.] गौतम ! उनको न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ।

७५१. वाणमंतरदेवाणं भंते ! किं सीता जोणि उसिणा जोणी सितोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५१ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होतो है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५१ उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, किन्तु, शीतोष्ण योनि होती है ।

७५२. जोइसिय-वेमाणियाण वि एवं चेव ।

[७५२] इसी प्रकार ज्योतिष्को और वैमानिक देवो की (योनि के विषय में समझना चाहिए)।

७५३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सीतजोणियाणं उसिणजोणियाणं सीतोसिणजोणियाण अजोणियाणं य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सीतोसिणजोणिया, उसिणजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सीतजोणिया अणंतगुणा ।।१।।

[७५३ प्र.] भगवन् ! इन शीतयोनिको जीवो' उष्णयोनिक जीवों, शीतोष्णयोनिक जीवो तथा अयोनिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७५३ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े जीव शीतोष्णयोनिक हैं, उष्णयोनिक जीव उनसे असख्यात-गुणे अधिक हैं, उनसे अयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं और उनसे भी शीतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं ।।१।।

विवेचन – नैरयिकादि जीवों का शीतादि त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू. ७३८ से ७५३ तक) में नैरयिको से लेकर वैमानिकों तक चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का शीत, उष्ण एव शीतोष्ण, इन त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार किया गया है ।

योनि और उसके प्रकारों की व्याख्या—'योनि' शब्द 'यु मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्त्यर्थ होता है—जिसमें मिश्रण होता है, वह 'योनि' है। इसकी शास्त्रीय परिभाषा है—तैजस और कार्मण शरीर वाले प्राणी, जिसमें औदारिक आदि शरीरों के योग्य पुद्गलस्कन्धों के समुदाय के साथ मिश्रित होते हैं, वह योनि है। योनि से यहाँ तात्पर्य है—जीवों का उत्पत्तिस्थान। **शीत योनि** का अर्थ है—जो योनि शीतस्पर्श-परिणाम वाली हो। **उष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि उष्णस्पर्श-परिणाम वाली हो। **शीतोष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि शीत और उष्ण उभय स्पर्श के परिणाम वाली हो।

सप्त नरकपृथ्वियों की योनि का विचार—यों तो सामान्यतया नैरयिकों की दो ही योनिया बताई हैं—शीत योनि और उष्ण योनि, तीसरी शीतोष्ण योनि उनके नहीं होती। किस नरकपृथ्वी में कौन-सी योनि है ? यह वृत्तिकार बताते हैं—**रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा** में नारकों के जो उपपात (उत्पत्ति) क्षेत्र हैं, वे सब शीतस्पर्श परिणाम से परिणत हैं। इन उपपातक्षेत्रों के सिवाय इन तीनों पृथ्वियों में शेष स्थान उष्णस्पर्श-परिणामपरिणत हैं। इस कारण यहाँ के शीत योनि वाले नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते हैं। **पंकप्रभापृथ्वी** मे अधिकांश उपपातक्षेत्र शीतस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं, थोड़े-से ऐसे क्षेत्र हैं जो उष्णस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं। जिन प्रस्तटों (पाथड़ो) और नारकावासों में शीतस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र है उनमें उन क्षेत्रों के अतिरिक्त शेष समस्त स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं तथा जिन प्रस्तटों और नारकावासों में उष्णस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं। इस कारण वहाँ के बहुत-से शीतयोनिक नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते हैं, जबकि थोड़े-से उष्णयोनिक नैरयिक शीतवेदना का वेदन करते हैं। **धूमप्रभापृथ्वी** में बहुत-से उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम से परिणत हैं, थोडे-से क्षेत्र शीतस्पर्शपरिणाम से परिणत होते हैं। जिन प्रस्तटों और जिन नारकावासों मे उष्ण-स्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतपरिणाम वाले होते हैं। जिन प्रस्तटों या नारकावासों मे शीतस्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमे उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के बहुत-से उष्णयोनिक नैरयिक शीत-वेदना का वेदन करते हैं, थोड़े-से जो शीतयोनिक हैं, वे उष्णवेदना का वेदन करते हैं। **तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा पृथ्वी** में सभी उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम-परिणत हैं। उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान वहाँ शीतस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के उष्णयोनिक नारक शीतवेदना का वेदन करते हैं।

भवनवासी देव आदि की योनियां शीतोष्ण क्यों ?—सर्व प्रकार के भवनवासी देव, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य तथा व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के उपपातक्षेत्र शीत और उष्ण, दोनों स्पर्शों से परिणत हैं, इस कारण उनकी योनिया शीत और उष्ण दोनों स्वभाव वाली (शीतोष्ण) हैं।

तेजस्कायिकों के सिवाय पृथ्वीकायिकों आदि की तीनों प्रकार की योनि—तेजस्कायिक उष्ण-योनिक ही होते हैं, यह बात प्रत्यक्षसिद्ध है। उनके सिवाय अन्य समस्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान शीतस्पर्श वाले, उष्णस्पर्श वाले और शीतोष्णस्पर्श वाले होते हैं, इस कारण उनकी योनि तीनों प्रकार की बताई गई है।

त्रिविध योनि वालों और अयोनिकों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े जीव शीतोष्ण योनि वाले होते हैं, क्योंकि शीतोष्ण योनि वाले सिर्फ भवनपति देव, गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव ही हैं। उनसे असंख्यातगुणे उष्णयोनिक जीव हैं, क्योंकि सभी सूक्ष्म-बादरभेदयुक्त तेजस्कायिक, अधिकांश नैरयिक, कतिपय पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक उष्णयोनिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अयोनिक (योनिरहित—सिद्ध) जीव अनन्तगुणे होते हैं, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। इनकी अपेक्षा शीतयोनिक अनन्तगुणे होते हैं, क्योकि सभी अनन्तकायिक जीव शीत योनि वाले होते हैं और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे हैं।[1]

नैरयिकादि में सचित्तादि त्रिविध योनिकों की प्ररूपणा

७५४. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—सचित्ता १ अचित्ता २ मीसिया ३।

[७५४ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७५४ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) सचित्त योनि, (२) अचित्त योनि और (३) मिश्र योनि।

७५५. नेरइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

[७५५ प्र.] भगवन् ! नैरयिको की क्या सचित्त योनि है, अचित्त योनि है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५५ उ.] गौतम ! नारको की योनि सचित्त नही होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नही होती।

७५६. असुरकुमाराणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, नो मीसिया जोणी।

[७५६ प्र.] भगवन् ! असुरकुमारो की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५६ उ.] गौतम ! उनके सचित्त योनि नही होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नही होती।

७५७. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७५७] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक की योनि के विषय में समझना चाहिए।

७५८. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! सचित्ता वि जोणी, अचित्ता वि जोणी, मीसिया वि जोणी।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२५-२२६

[७५८ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो को योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्रयोनि होती है ?

[७५८ उ] गौतम ! उनकी योनि सचित्त भी होती है, अचित्त भी होती है और मिश्र योनि भी होती है ।

७५९. एवं जाव चउरिंदियाणं ।

[७५९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक (की योनि के विषय मे समझना चाहिए।)

७६०. सम्मुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव ।

[७६०] सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की योनि के विषय मे इसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

७६१. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो सचित्ता, नो अचित्ता, मीसिया जोणी ।

[७६१] गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तथा गर्भज मनुष्यो की योनि न तो सचित्त होती है और न ही अचित्त, किन्तु मिश्र योनि होती है ।

७६२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाण जहा असुरकुमाराणं ।

[७६२] वाणव्यन्तर देवो, ज्योतिष्क देवो एवं वैमानिक देवो (की योनि के विषय मे) असुरकुमारो के (योनिविषयक वर्णन के) समान ही (समझना चाहिए ।)

७६३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सचित्तजोणीणं अचित्तजोणीणं मीसजोणीणं अजोणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया, अचित्तजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सचित्तजोणिया अणंतगुणा । २ ॥

[७६३ प्र.] भगवन् ! इन सचित्तयोनिक जीवों, अचित्तयोनिक जीवो, मिश्रयोनिक जीवो तथा अयोनिको में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[७६३ उ.] गौतम ! मिश्रयोनिक जीव सबसे थोड़े होते हैं, (उनसे) अचित्तयोनिक जीव असख्यातगुणे अधिक होते है, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं (और उनसे भी) सचित्त-योनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं ॥ २ ॥

विवेचन—प्रकारान्तर से सचित्तादि त्रिविध योनियों की अपेक्षा से सर्व जीवों का विचार— प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ७५४ से ७६३ तक) में योनि के प्रकारान्तर से सचित्तादि तीन भेद बताकर, चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के क्रम से किस जीव के कौन-कौन-सी योनियाँ होती हैं ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत या विशेषाधिक होते हैं ? इसकी चर्चा की गई है ।

सचित्तादि योनियों के अर्थ—सचित्त योनि—जो योनि जीव (आत्म) प्रदेशों से सम्बद्ध हो। **अचित्त योनि**—जो योनि जीव रहित हो। **मिश्र योनि**—जो योनि जीव से मुक्त और अमुक्त उभय-स्वरूप वाली हो, यानी जो सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार की हो।

किन जीवों की योनि कैसी और क्यों?—नारकों के जो उपपात क्षेत्र हैं, वे किसी जीव के द्वारा परिगृहीत न होने से सचित्त (सजीव) नहीं होते, इस कारण उनकी योनि अचित्त ही होती है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव समस्त लोक (लोकाकाश) में व्याप्त होते हैं, तथापि उन जीवो के प्रदेशों से उन उपपातक्षेत्रो के पुद्गल परस्परानुगमरूप से सम्बद्ध नहीं होते, अर्थात्—वे उपपातक्षेत्र उन सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के शरीररूप नहीं होते, इस कारण नैरयिकों की योनि अचित्त ही कही गई है। इसी प्रकार असुरकुमारादि दशविध भवनपति देवो, व्यन्तरों, ज्योतिष्को और वैमानिक देवों की योनिया भी अचित्त ही समझनी चाहिए। पृथ्वीकायिको से लेकर सम्मूर्च्छिम मनुष्य पर्यन्त सबके उपपातक्षेत्र जीवों से परिगृहीत भी होते हैं, अपरिगृहीत भी और उभयरूप भी होते हैं, इसलिए इनकी योनि तीनो प्रकार की होती है। गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और गर्भज मनुष्यो की जहाँ उत्पत्ति होनी है, वहाँ अचित्त शुक्र-शोणित आदि पुद्गल भी होते हैं, अतएव वे मिश्र योनि वाले हैं।

सचित्तादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे जीव मिश्रयोनिक इसलिए बताए गए हैं कि मिश्रयोनिको मे केवल गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही हैं। उनसे अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि समस्त देव, नारक तथा कतिपय पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजीव, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य अचित्त योनि वाले होते हैं। अचित्तयोनिको की अपेक्षा अयोनिक (सिद्ध) जीव अनन्त हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त हैं और अयोनिको की अपेक्षा भी सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि निगोद के जीव सचित्तयोनिक होते हैं और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं।[1]

सर्वजीवों में संवृतादि त्रिविधयोनियों की प्ररूपणा

७६४. कतिविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—संवुडा जोणी १ वियडा जोणी २ संवुडवियडा जोणी ३।

[७६४ प्र.] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है?

[७६४ उ.] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संवृत योनि. (२) विवृत योनि और (३) संवृत-विवृत योनि।

७६५ नेरइयाणं भंते! किं संवुडा जोणी वियडा जोणी संवुडवियडा जोणी?

गोयमा! संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, नो संवुडवियडा जोणी।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२६-२२७.

[७६५ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की क्या संवृत योनि होती है, विवृत्त योनि होती है, अथवा संवृत-विवृत योनि होती है ?

[७६५ उ.] गौतम ! नैरयिकों की योनि संवृत होती है, परन्तु विवृत नही होती और न ही संवृत-विवृत होती है।

७६६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

[७६६] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक (की योनि के विषय मे कहना चाहिए)।

७६७. बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! नो संवुडा जोणी, वियडा जोणी, णो संवुडवियडा जोणी।

[७६७ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की योनि संवृत होती है, विवृत होती या सवृत-विवृत होती है ?

[७६७ उ.] गौतम ! उनकी योनि संवृत नही होती, (किन्तु) विवृत होती है, (पर) सवृत-विवृत योनि नही होती।

७६८. एवं जाव चउरिंदियाणं।

[७६८] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक (की योनि के विषय में समझ लेना चाहिए।)

७६९. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव।

[७६९] सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की (योनि के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।)

७७०. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी।

[७७०] गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो और गर्भज मनुष्यो की योनि सवृत नही होती और न विवृत योनि होती है, किन्तु संवृत-विवृत होती है।

७७१. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं।

[७७१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की (योनि के सम्बन्ध मे) नैरयिको की (योनि की) तरह समझना चाहिए।

७७२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं संवुडजोणियाणं वियडजोणियाणं संवुडवियडजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा संवुडवियडजोणिया, वियडजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, संवुडजोणिया अणंतगुणा। ३ ॥

[७७२ प्र.] भगवन् ! इन संवृतयोनिक जीवों, विवृतयोनिक जीवों, संवृत-विवृतयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवो में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[७७२ उ.] गौतम ! सबसे कम संवृत-विवृतयोनिक जीव हैं, (उनसे) विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे (अधिक) हैं, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) संवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे (अधिक) हैं ।।३।।

विवेचन—तीसरे प्रकार से सवृतादि त्रिविध योनियों की अपेक्षा से जीवों का विचार—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू. ७६४ से ७७२ तक) मे शास्त्रकार ने तृतीय प्रकार से योनियो के सवृतादि तीन भेद बता कर किस जीव के कौन-कौन-सी योनि होती है ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? इसका विचार प्रस्तुत किया है ।

संवृतादि योनियों का अर्थ—संवृत योनि—जो योनि आच्छादित (ढकी हुई) हो । **विवृत-योनि**—जो योनि खुली हुई हो, अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो । **संवृत-विवृत योनि**—जो सवृत और विवृत दोनो प्रकार की हो ।

किन जीवों की योनि कौन और क्यों ?—नारको की योनि सवृत इसलिए बताई है कि नारको के उत्पत्तिस्थान नरकनिष्कुट होते हैं और वे आच्छादित (सवृत) गवाक्ष (झरोखे) के समान होते हैं । उन स्थानों मे उत्पन्न हुए नारक शरीर से वृद्धि को प्राप्त होकर शीत से उष्ण और उष्ण से शीत स्थानो मे गिरते हैं । इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की योनि सवृत होती है, क्योकि उनकी उत्पत्ति (उपपात) देवशैय्या मे देवदूष्य से आच्छादित स्थान मे होती है । एकेन्द्रिय जीव भी सवृत योनि वाले होते हैं, क्योकि उनकी उत्पत्तिस्थली (योनि) स्पष्ट उपलक्षित नही होती । द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवो तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रियो एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की योनि विवृत है, क्योकि इनके जलाशय आदि उत्पत्तिस्थान स्पष्ट प्रतीत होते हैं । गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रियो और गर्भज मनुष्यो की योनि सवृत-विवृत होती है, क्योकि इनका गर्भ सवृत और विवृत उभयरूप होता है । अन्दर (उदर मे) रहा हुआ गर्भ स्वरूप से प्रतीत नही होता, किन्तु उदर के बढने आदि से बाहर से उपलक्षित होता है ।

संवृतादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े सवृत-विवृत योनि वाले जीव होते है, क्योकि गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही सवृत-विवृत योनि वाले हैं । उनकी अपेक्षा विवृतयोनिक जीव असख्यातगुणे हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय एव सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत योनि वाले हैं । उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणे हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे संवृतयोनिक जीव होते हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव सवृतयोनिक होते है और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे होते हैं ।[१]

मनुष्यों की त्रिविध विशिष्ट योनियां

७७३. [१] कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । तं जहा—कुम्मुण्णया १ संखावत्ता २ वंसीपत्ता ३ ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक २२७

[७७३-१ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७७३-१ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—(१) कूर्मोन्नता, (२) शखावर्त्ता और (३) वंशीपत्रा ।

[२] कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं । कुम्मुण्णयाए णं जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमंति । तं जहा—अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा ।

[७७३-२] कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषो की माताओ की होती है । कूर्मोन्नता योनि मे (ये) उत्तमपुरुष गर्भ में उत्पन्न होते हैं । जैसे—अर्हन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव ।

[३] संखावत्ता णं जोणी इत्थिरयणस्स । संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, नो चेव णं निप्फज्जंति ।

[७७३-३] शखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है । शंखावर्त्ता योनि में बहुत-से जीव और पुद्गल आते हैं, गर्भरूप मे उत्पन्न होते हैं, सामान्य और विशेषरूप से उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नही होती ।

[४] वंसीपत्ता णं जोणी पिहुजणस्स । वंसीपत्ताए णं जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमंति ।

।। पण्णवणाए भगवईए णवमं जोणीपयं समत्तं ।।

[७७३-४] वशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनों की (माताओं की) होती है । वशीपत्रा योनि में पृथक् (साधारण) जीव गर्भ में आते है ।

विवेचन मनुष्यो की त्रिविध योनिविशेषों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (७७३/१,२,३,४) मे मनुष्यो को कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियो, योनि वाली स्त्रियो एव उनमे जन्म लेने वाले मनुष्यों का निरूपण किया गया है ।

कूर्मोन्नता आदि योनियों का अर्थ—कूर्मोन्नता योनि—जो योनि कछुए की पीठ की तरह उन्नत—ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो । **शखावर्त्ता योनि**—जिसके आवर्त्त शख के उतार-चढ़ाव के समान हों, ऐसी योनि । **वंशीपत्रा योनि**—जो योनि दो सयुक्त (जुड़े हुए) वशीपत्रों के समान आकार वाली हो ।

शंखावर्त्ता योनि का स्वरूप—शखावर्त्ता स्त्रीरत्न की अर्थात्—चक्रवर्ती की पटरानी की होती है । इस योनि में बहुत-से जीव अवक्रमण करते (आते) हैं, व्युत्क्रमण करते (गर्भ-रूप मे उत्पन्न होते) हैं, चित होते (सामान्यरूप से बढ़ते) हैं और उपचित होते (विशेषरूप से बढ़ते) हैं । परन्तु वे निष्पन्न नही होते, गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं । इस सम्बन्ध मे वृद्ध आचार्यों का मत है कि शखावर्त्ता योनि में आए हुए जीव अतिप्रबल कामाग्नि के परिताप से वही विध्वस्त हो जाते हैं ।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : नौवां योनिपद समाप्त ।।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२८

(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ३, पृ. ८३-८४

प्रज्ञापनासूत्र : स्थान १-९

गाथानुक्रमसूची

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाणं वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपर्युक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलों के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नही मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय: ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात**—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. **धूमिका-कृष्ण**—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत**—शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. **रज-उद्घात**—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. **हड्डी, मांस और रुधिर**—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि**—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बेंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७ श्री कंवरलालजी बेताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२ श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री शा० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G. F) जाड़न
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, महमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूंठा
२७. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७. श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचदजी मोतीलालजी गांदिया, बैंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४. श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५. श्री मांगीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९. श्री भवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२. श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनांदगांव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बैंगलोर
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगांव

९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, भरतपुर
९९. श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४. श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
१११. श्री मांगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडतासिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७. श्री मांगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बेंगलोर
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बेंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़ □□